ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरु कलीधर चमत्कार

(प्रथम भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह



भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कल्ग़ीधर चमत्कार

(*प्रथम भाग*)

श्री गुरू कलगीधर चमत्कार

(प्रथम भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा० वीर सिंह

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कलग़ीधर चमत्कार (प्रथम भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९७०
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : १२०/-

प्रकाशकीय

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। इस रचना का हिन्दी में प्रथम प्रकाशन १९७० में हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धान्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू गोबिन्द सिंह जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरूवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरूमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

प्रकरण-सूची

१ हेमकुण्ट से सचखण्ड को

: १ :

एक ठिकाना है 'हेमकुण्ट सप्त शृंग।' इसे शत् शृंग भी कहते हैं। इसकी सैंकड़ों चोटियाँ हैं, पर विशेष रूप से सात हैं, जो शोभायमान हो रही हैं। सातों ही बरफ़ के कारण मानो चाँदी के कलश बन रही हैं। अमृत बेला का चन्द्रमा लोप हो रहा है। पौ फूट रही है। आकाश आज निर्मल है। पूर्व की ओर लाली फैल गई है। इस लाली का अक्स बरफ़ की चोटियों पर पड़ रहा है। सूरज का गोला सारा-का-सारा बाहर निकल आया है। अब ऊँचा हो गया है। सभी चोटियाँ सोने की तरह चमकने लगी हैं। उधर सूरज की किरणें इधर सूरज की किरणों के प्रतिबिम्ब का आदान प्रदान आपस में ऐसा सुनहरी दृश्य उपस्थित कर रहा है, जो देखते ही बनता है।

बरफानी चोटियों के नीचे बीच में एक नीली जगह है, जो समतल है। इस जगह पर एक पानी की झील है। बरफ के बीच कर्तार की कुदरत को देखो कि झील में से पानी की एक धारा निकलकर कई मील दूर जाकर अलकनन्दा में जा मिलती है। अचरज देखो कि बरफों में इस झील का पानी स्थिर नहीं, बल्कि बीच में से निकलकर बहता है और बरफ जितना ठण्डा भी नहीं। न जाने नीचे कोई गर्म चश्मा है जो पानी को बरफ की अपेक्षा कुछ गर्म रखता है। इस बरफानी जगह पर पानी के कई ओर झरने हैं। यहाँ गुफाओं जैसी कई जगहें भी हैं। पुराने समय में तप करने वाले तपस्वी यहाँ आकर रहते थे। इस स्थान की बरफ गर्मी और बरसात में पिघलने लगती है। नाना प्रकार के फूल खिलते हैं। तपस्वी लोग जाड़े के दिनों में नीचे पण्डकेश्वर तथा निकटवर्ती स्थानों में रहते हैं और गर्मी और बरसात के दिनों में इस घाटी में तपस्या करते हैं। पहाड़ की चोटियों पर गर्मी-सर्दी में सूरज की लाली कुछ ऐसी प्रतिबिम्बित होकर पड़ती है कि लाली का जलवा सभी चोटियों को पिरो लेता है।

आज सूरज काफी चढ़ आया है पर हम क्या देखते हैं कि एक गुफा के भीतर एक लम्बे पतले शरीर वाला तपस्वी नेत्र मूँदे समाधिस्थित है। शरीर के ऊपर नाम मात्र का मांस है। सूक्ष्म-सा पिंजर दिखाई देता है। ऊपर त्वचा का मानो लेप-सा हो रहा है। पर इस हालत में भी कान्ति तेजपूर्ण और आभापूर्ण है। बड़ा उग्र तप किया है, सोच मण्डल पार कर गये हैं। लौलीन रहते हैं, पर अभी दुई को मिटाकर उसके रूप में एकरूप हो जाना चाहते हैं जिसने अपने अरूप रूप में से उनको रूपवान करके फिर किसी हुकमी चोज़ द्वारा तप करने में लगाया था। देखो आसमानी हवाओं के अबखरे जुड़-जुड़कर फिर इकट्ठे हो रहे हैं और सूरज फिर खो गया है। पत्थर, पहाड़ सभी एकाग्र हैं, आवाज़ तक नहीं है। उधर तपस्वी जी की सुरत चली है "जिऊ जल महिं जलु आइ खटाना।। तिऊ जोती संगि जोति समाना।"

सुरत रस रंग के देश में गई। आनन्द घर पहुँची, अंत और अनन्त की सीमा पर पहुँची। पहले भी कई बार पहुँची थी, पर आज अनन्त में से कोई हिलोर उठी, ऐसी उठी कि अन्त के अणु से खींचकर अनन्त में ले गई। अब कोई क्या बताए। अनन्त को स्थान का पता अन्त वाली जिह्वा से बताना, अन्त वाले कानों से सुनना और अंत वाले मन द्वारा समझना कठिन बात है, पर हमारे मतानुसार उसका वर्णन कुछ इस प्रकार हो सकता है:-

जाने वाले महापुरुष को यह तजुर्बा हुआ, कि अनन्त कोई निर्जीव और जड़ अनन्त नहीं; पर स्वमभू चेतना है; वह अनन्त कोई प्राणहीन, न समाप्त होने वाला समय नहीं, पर चेतनाकार अस्तित्वपूर्ण, मूर्त-अमूर्त, अकालमूर्ति है। वह अनन्त कोई एक रस रहने वाली निर्जीव तत्त्वों की दशा या अदशा नहीं, पर अयोनि, अनादि, अनन्त, चेतना स्वरूपता और आनन्द स्वरूपता है। पर इस प्रकार नहीं, जिस प्रकार हम समझते हैं। उस प्रकार है जिस प्रकार हम नहीं समझते, पर अनन्त आप समझता है, निर्विकार, एक रस। उसमें गई सुरत को मानो अचंभा हो रहा है कि पारब्रह्म, पूर्णब्रह्म में उसका अस्तित्व, उसका मान, उसके आनन्द और प्रेम के अलावा कुछ और खेल भी है, जिसके साथ वह निष्क्रय ही है पर फिर सभी क्रियाएं उसकी हैं। हां, वह अंगरहत है, पर सहस्त्र नेत्रों वाला चोज़ी होकर वह आप सब नैनों की ज्योति है। वह अलेप है पर सारा आडम्बर उससे या उसमें है। आप देखते हैं कि अनन्त में यह करिश्मा है, पर फिर अनन्त अनन्त ही है। वह अनन्त अंत में नहीं आता। उसके कार्य और विचार भी अनन्नता की एक गति ही है। कोई करिश्मा है जो हमारे विचार से परे है[१] इस करिश्मे का नाम 'हुकुम' है। उस समय प्रताप ज्योति (तपस्वी) जी को मानो यह ख्याल आया कि धरती के विद्वान पुरुष अनन्त की सीमा किस प्रकार बाँधते हैं, वे सीमित होकर असीम के कार्यों और विचारों को अपने कार्यों और विचारों के बराबर किस प्रकार घड़ लिया करते हैं। ये जो आप अनन्त हैं उनके कार्य और विचार भी अनन्त हैं। जैसे इनके कार्यों और विचारों की समझना असंभव है, वैसे ही इनके कार्यों और विचारों के विषय में कुछ कहना भी अंसभव है। यदि धरती के विद्वान अपने पास ही देखें तो वहां भी एक जलरूप समुद्र है, पर उस समुद्र में भी धरती की तरह नदियां चलती हैं। उस एक समुद्र में, जो सिर से पैर तक जल-ही-जल है, अनेक लहरें चलती हैं, फिर वे सब समुद्र रूप हैं।[२] इसी तरह इस अनन्त में सब कुछ अनन्त-ही-अनन्त है, पर देखो बीच में एक खेल 'हुकुम' है, और वह भी अनन्त ही है। आप सच हैं और आपके कार्य और विचार भी सत्यरूप हैं।[३] सत्यरूप और हुकुम दोनों ही अकथनीय हैं।[४]

इस अचंभे के बाद आप देखते हैं कि यह हुकुम कह रहा है कि तू मृत्युलोक में जा और वहां जाकर चढ़ती कला वाले मनुष्य को सफल कर। आप होकर बता, बताकर सिखा,

---

१. सचे तेरे करणे सरब बीचार।। [वार आसा म: १]

२. जैसे धरती पर नदियाँ चलती हैं, वैसे ही समुद्र में भी नदियों की भांति रौ चलते हैं, जो जल रूप करके एक हैं, पर अलग चलती दिखाई देती हैं।

३. सचा तेरा हुकम सचा फुरमाणु।। [वार आसा म: १]

४. हुकमु न कहिआ जाई।। [जपुजी]

सिवा कर मुकम्मल "खालसा" कर दे, जो चढ़ती कला के आदर्श का नमूना हो। मैंने जिस मनुष्य को धरती का सरदार बनाया था, वह अब गिर रहा है; तू नमूना बनकर दिखा, गुरू बनकर सिखला, पिता होकर अपने बल और प्यार से पालन कर, जिससे धरती सुखी होवे।

यह हुकम सुनकर मानो आप घबड़ाये। जन्मों तक तप करके, महाकाल अकाल का आराधन करके आज अकाल, अदेश, अनन्त, पूर्ण में निवास मिला था, पर आज अकाल अनन्त में से हुकुम का करिश्मा कहता है–मर्त्यलोक में जाओ और काम करो। क्या? आदर्श मनुष्य पैदा करो।[१] हैं! जिसको पैदा करने के लिए अनेकों लोग वापिस लौट आये, उसको मैं करूँ? पर मैं कैसे करूँ? हैं...! पर हुकुम उलटना भी प्रेम नहीं, धर्म नहीं, संभव नहीं, अतः यहाँ से ही यह माँग-माँग लूँ। अतः आप जी ने अर्ज़ की, 'हे अनन्त! आपके हुकुम को जगत में बजा लाने वाला मैं कौन हूँ? यदि तू वहाँ मेरी मैं में चलकर निवास करे, यदि यह मिलाप जो आज हुआ है–न छिने, मैं में तू और तू में मैं रहे; यह अनन्त, जिसमें इस समय मैं पहुँचा हूँ, मुझे में रहे, जुदाई न हो और यह अनन्त हर दशा में मेरा सहायक हो, तो आज्ञा पालन में तपस्वी तैयार है।' हुकुमी ने कहा–'मैं तेरे में तू मेरे में, यह पारस्परिक मेल, यह एकता सदैव स्थिर है, कभी टूट नहीं सकती। जगत में मैं तेरा सहायक हूँ, जैसे वहाँ पिता पुत्र का सहायक होता है वैसे ही मैं तेरा सहायक होऊँगा, हाँ! तेरे कर्म मेरे होंगे, मुझ में मेरी पवित्रता होगी, तुझे कोई कष्ट नहीं होगा[२] तू पुत्र होगा और मैं पिता होऊँगा।[३]'

अब दोपहर हो आई थी। हेमकुण्ट की बरफ़ानी चोटियों के ऊपर सूरज गर्म-गर्म किरणें भेज रहा था कि तपस्वी जी के नैन खुले। विस्मयपूर्ण है, अद्‌भूत है, परमअद्‌भुत है, रस-भरे नैनों की पलकें खुलती हैं, बन्द होती हैं। कभी तो उस अनन्त की झलक का हिलोर आता है, कभी बाहर दिखाई पड़ने वाले दृश्य का विस्मय और स्तुति की झनझनाहट होती है। कभी शान्त स्थिरता का एक सुखदायी रस छा जाता है और अब कभी-कभी ठण्डा शीतल पवन का झोंका भी शरीर को लगता है घड़ी-भर इस तरह के रंग में रहकर आप उठे।

हुकुम का नक्शा आँखों के सामने है–महाकाल अकाल के उग्र तपों के बाद अनन्त की प्राप्ति और अनन्त में विश्राम का संकल्प था, पर 'हुकुम' कहता है: हेमकुण्ट का एकान्त भी नहीं, मृत्यलोक। मृत्यलोक के भी कठिन स्थान पर जाकर काम करो, आदर्श मनुष्य बनाओ जो सुखदाता हो जाओ! देखिए तो सही मर्त्यलोक में क्या है, और कहाँ पर जाना है? तब अपने नज़र उठाई, क्या देखते हैं कि हिन्दुस्तान है, औरंगज़ेब तख़्त पर है,

---

१. जाहि तहा तै धरम चलाइ।। [बचित्र नाटक]
कबुध करन तै लोक हटाइ।।

२. सरब सील ममं सीलं सरब पावन मम पावनह।।
सरब करतब ममं करता नानक लेप छेप न लिप्यते।।३८।। [सलोक सहस म: ५]

३. मैं अपना सुत तोहि निवाजा।। [बचित्र नाटक]

प्रजा हिन्दू मुसलमान अनेकों मत मतांतरों की है, अन्धकार छा रहा है। सार्वजनिक शिक्षा के द्वार बन्द हैं, हिन्दुओं में डर, वहम, कायरता छा रही है। मुसलमानों में जोर-जुल्म, अविद्या, भ्रम का बोलबाला है। दीनदारों और पण्डितों में परस्पर झगड़े, झगड़-झगड़कर मरना ज़ोरों पर है। सृष्टि कमज़ोर और निर्बल है। हाँ, प्रजा दुखी है, अत्यन्त दुखी है।

औरंगज़ेब दरबार में बैठा है। उसने अपने पिता को बंदी बना रखा है। बड़े भाई दारा का सिर काटकर औरंगज़ेब के सामने लाया गया। उसने हुकुम दिया—इसका मुंह भलीभाँति धोकर साफ किया जाये, फिर पहचान कर कहता है—हाँ ठीक यह दारा ही है। उसके मन में ठण्डक पड़ती है, फिर आँखों में आँसू भर-भर आते हैं, एक बाप के बेटे के इकट्ठे खेले पले थे। वाह पातशाही! एक भाई क़ातिल और दूसरा भाई मकतूल। एक भाई तख्त पर बैठा है और उसके सामने दूसरे भाई का सिर ताश में पड़ा है।[१] 'राज पिआरे राजियाँ वीर दुपरिआरे'। जी हाँ औरंगज़ेब को फतह प्राप्त हुई, सभी भाईयों को अधीन कर लिया, पातशाह बन गया। इस शुकराने में दिल्ली की मसजिद बनवाई गई थी। जी हाँ, मज़हब का पर्दा अपने दिल और जनता के बीच में फैला कर डाल रहा है। उस सफलता के लिए जो उसे अपनी बदी के द्वारा प्राप्त हुई है, वह ईश्वर का शुक्र कर रहा है। उधर भाईयों और रिश्तेदारों का क़त्ल किया जा रहा है, इधर मसजिद का निर्माण हो रहा है, कि ईश्वर का शुक्रिया है!!! हिन्द का पातशाह फकीरी लिबास में मसजिद में आता है और इमाम का काम करता है; पर हाँ एक ओर उसका हाथ प्रार्थना में खुदा की ओर उठ रहा है, दूसरी ओर उसका दूसरा हाथ अपने रिश्तेदारों के क़त्लनामों पर हस्ताक्षर कर रहा है। यह कपटी पातशाह कई एक ढोंगी फकीरों का भी अच्छा साथी बनता है।[२]

दरबार लगा हुआ है, सुलेमान को औरंगज़ेब के सामने लाया गया। उसने प्रार्थना की कि मुझे औषधियाँ पिलाकर खराब करने के स्थान पर एकदम ही मार दिया जाये। सभी दरबारी रो उठते हैं, औरंगज़ेब दयालु बनकर इकरार करता है कि तू सुरक्षित और खुशहाल रहेगा। दरबार में एक पर देशी 'बरनियर' भी बैठा है, उसके सामने बातचीत हो रही होती है, पर औरंगज़ेब अपने दिए हुए वचन को तोड़ता है, उसका भाई और मुराद का छोटा लड़का तीनों, ग्वालियर में थोड़े समय के पश्चात मार दिए जाते हैं।[३]

औरंगज़ेब को क्रोध आता है कि चाहे उसके भाई मुराद ने कोई अपराध नहीं किया, पर उसका जीवित रहना ठीक नहीं। एक आदमी को गुजरात से बुलवाया जाता है, वह आकर अर्ज़ करता है कि शाहज़ादा मुराद ने, जब वह गुजरात को सूबेदार था तो उसके पिता को मरवा दिया था। तब नाम मात्र का मुकदमा करके मुराद को अपने क़ैदखाने में ही कत्ल करवा दिया जाता है।[४]

औरंगज़ेब के हुकुम से हिन्दुओं पर जज़ीया (कर) लग रहा है। हुकुम हो रहा है कि प्रविष्टि संवत् का प्रयोग न किया जाये। यह सूरज के उपासकों का तरीका है। अतः चन्द्रमा

१. ऐलफिंस्टन 'हिन्द का इतिहास' भाग २, पृष्ठ ४४७।

२. डऊ का इतिहास, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३५५, देखिए 'लालारूख' पृष्ठ २१८ पर पृष्ठ २ का नोट।

३-४. ऐलफिनस्टन 'हिन्द का इतिहास' भाग २, पृष्ठ ४५०, ४५१।

वाला संवत् शुरू हुआ, चाहे इसमें कितने ही दोष थे। मूर्तिपूजा के वे त्यौहार, जिन्हें कुछ दिखावे के साथ मनाया जाता था जबरदस्ती बन्द किये। हिन्दू त्यौहारों पर लगाये जाने वाले मेले बन्द किए गए,[१] सड़कों के कर बढ़ा दिए गए, राग, नृत्य, भांड और महलों के गायक, रागी सबके विरुद्ध हुकुम हो गया। कवि और ज्योतिषी हटा दिये गये। कविता की रचना करना और कविता का पढ़ना बन्द किया गया। इतिहास लिखने की मनाही कर दी गई। मुकद्दमे मुसलमानी तरह (धार्मिक नियमों) के अनुसार किये जायें, इस तरह के हुकुम दिये गये। हाँ, औरंगज़ेब फ़ुरमान जारी करवा रहा है कि हिन्दुओं को सरकारी पद न दिये जायें, सभी पदों पर मुसलमान रखे जायें।[२]

औरंगज़ेब मसजिद को जा रहा है, हिन्दु बाज़ार में अर्ज़ करने के लिए खड़े हैं कि जज़ीया माफ कर दिया जाये। बाज़ार भरे पड़े हैं, कोई रास्ता नहीं, हुकुम होता है—कूच!!! हाथी और घोड़े दौड़ने लगते हैं और जनता को कुचलते हुए निकल जाते हैं।[३]

पातशाह को अपने दीन (धर्म) का हठ हो गया है। वह केवल हिन्दुओं के विरुद्ध ही नहीं था, बल्कि शीया मुसलमानों और सूफियों के विरुद्ध भी था। ललित कलाओं को नष्ट करने के लिये पातशाह ने लठ पकड़ ली थी और जनसाधारण की शिक्षा के प्रचार का कोई साधन नहीं था। यह हुआ ही करता है कि जब कोई पातशाह ज़बरदस्ती कोई एक फल तोड़ता है तो उसकी सेना बाग़ों के बाग़ उजाड़ देती है। जब पातशाह ने हिन्दुओं के बड़े-बड़े मन्दिर गिरवाकर मसजिदें बनवा दीं, तो सूबों (गवर्नरों) और छोटे अफसरों के इलाकों में होने वाले अन्याय का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है।

इस तरह जो कुछ देश में हो रहा था और जो कुछ आगे होने वाला था, वह सब कुछ तपस्वी जी ने देख लिया। आपने देख लिया कि एक ओर तो तृष्णापूर्ण मनों को भय, वैर और अविद्या ने निकम्मा और कायर कर दिया है, दूसरी ओर तृष्णा ने लोगों को निर्दय और अन्यायी बना दिया है। 'ईश्वरीय मनुष्य' अथवा बंदा, या 'आदर्श व्यक्ति' तो कोई दिखाई ही नहीं देता। एक 'मनुष्य का नमूना' अथवा वाहिगुरू वाँछित नमूने का मनुष्य अथवा 'ऐसा नमूना' जिस प्रकार के मनुष्य को कर्तार स्वयं चाहता है, वैसा बनाकर दिखाना, यह महा कठिन काम तपस्वी जी ने अपने आगे देखा। प्रजा के मनों का नक्शा कमज़ोरी, गिरावट, पातशाह के मन का नक्शा, तंगदिल्ली, सख्ती, ज़ोर, भय देना और जलना-भुनना, यह सभी कुछ देखा। आप सोच में पड़ गये कि अनन्त की प्राप्ति पर हमारे लिए कितना कठिन काम आ गया है। पर 'हुकुम' का उत्साह आपको तैयारी में लगा रहा है, सुरत अनन्त के चरणों में लगी है[४] और बल का तेज जो आपमें है, वह आपको किसी झिझक अथवा भय में नहीं डाल रहा। यह है हुकुम में अहं से मुक्ति अवस्था।[५]

१. ऐलफिंस्टन, पृष्ठ ४९० से ४९३ तक।
२. ऐलफिंस्टन, पृष्ठ ४९० से ४९३ तक।
३. ऐलफिंस्टन, पृष्ठ ४९४।
४. चित न भइओ हमरो आवन कहि।।
चुभी रही स्रुति प्रभ चरनन महि।। [बचित्र नाटक]
५. नानक हुकमै जे बुझै त हऊमें कहै न कोइ।। [जपुजी]

: २ :

सूरज ढल रहा है, पानी की झील के पास–जो कि एक मील के लगभग होगी–एक समतल स्थान पर एक शिला है, यहाँ पर तपस्वी जी बैठे हैं, और तपस्वी आ रहे हैं, अच्छा समागम बन गया। इनमें एक योगीनाथ जी आकर बैठ गए थे, वे बोले:–

'हे अनुगृहीत तपस्वी जी! हम सभी यहाँ आपको शिरोमणि मानते हैं, आपके ऊपर कोई अदेशी अनुग्रह है। आप समदर्शी हैं आप उग्र तपस्वी हैं, मैंने आज अपनी समाधि में देखा है कि आप किसी महान परमपद पर पहुँचकर फिर मोह माया में आ गए हैं, और आपको उपकार की माया का संकल्प हो उठा है और आप लोक में राजा बनने की इच्छा कर रहे हैं। हम आपका सत्कार करते है, पर यदि यह सच है कि आप अपने आपको इस माया से बचा लीजिए, माया बहुत प्रबल है, जो हमें यहाँ पर महा कठिन वनों और एकान्त पर्वतों में भी नहीं छोड़ती।'

अनुगृहीत तपस्वी जी बोले[१]–हे योगीनाथ जी! मैंने पारब्रह्म, पूर्णब्रह्म का मिलाप प्राप्त किया है, पर मैंने देखा है कि वह आकार तो हुकुम है, किसी अचेतन का अस्तित्व नहीं है। न तो वह 'भय, भ्रम, वैर' वाला ईश्वर है, न वह एक अचल और जड़ 'अस्तित्व' मात्र है। वह है तो अनन्त, पर उसकी अपनी देशकाल रहित यथार्थता में उसी रंग का कुछ है, जिसे मैं 'हुकुम' कह सकता हूँ। पर वह तो महाशक्ति है, सामर्थ्य है, कृपा है और फिर निर्लिप्ता है।[२] मुझे उस हुकुम वाले मालिक के हुकुम में से यह काम करने की आज्ञा हुई है, जिसके आगे मैंने अदब, सत्कार, लाड़, प्यार और आज्ञाकारी वाला इन्कार भी सोचा था, मेरा मन उस अनन्त के रस को छोड़ने को भी नहीं है, क्योंकि उस सर्व समर्थ हुकुम के साथ मर्जी के स्वर को एक स्वर किये रखना ही धर्म है। धरती में से पानी बहुत मुसीबतें सहकर, सफर करके समुद्र में पहुँचा; आगे से यदि समुद्र आज्ञा दे कि हवा बनकर आकाश पर चढ़ो और धरती पर बरसो और ठण्ड पहुँचाओ तो बताइए पानी क्या करे? हुकुम के आगे सीस झुकाना ही धर्म है।

संन्यासी दशा वाले तपस्वी जी बोले–'हे बख्शे हुए तपस्वीराज जी! आपका वाक्य सत्य है, मान्य है, पर उस अविनाशी, निर्विकार में इच्छा नहीं हो सकती, वह सर्व वासना का क्षय पद है। यह तो आपको माया ने भुलावे में डाला होगा।'

अनुगृहीत तपस्वी जी–मैं क्या कहूँ? मैंने देखा है, आपने अभी देखा नहीं है। जो 'वासना' आप कहते हैं, ठीक, वासनाएँ मन से ही उत्पन्न होती हैं, पर अनन्त का शरीर और मन नहीं हैं, वहाँ पर यह वासनाएँ नहीं हैं, जिन्हें हम जानते हैं। उस अनन्त में जो 'हुकुम' है वह शरीर वालों की वासनाओं के तुल्य नहीं है, जो विकार रूप है, निर्विकार ही चेता के करिश्मे सभी अनन्त और निर्विकार हैं।

अल्लाह यार तपस्वी–उस हुकुम की कुछ व्याख्या कीजिये?

---

१. आपको इस तप के समय दुष्ट दमन करके भी लिखा है।

२. सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु।। [वार आसा म: १]

अनुगृहीत तपस्वी जी– जिस प्रकार ब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर का वर्णन नहीं हो सकता, उसी तरह उसके हुकुम का वर्णन भी नहीं हो सकता[१]।

बौद्ध मुनि जी–भुलावा है, जब निर्वाण हो गया तो वहाँ पर कोई संकल्प मात्र नहीं, तब हुकुम क्या?

अनुगृहीत तपस्वी जी–जिसको तुम 'हुकुम' कहते हो, जो देशकाल और सीमा वाले मनों में उत्पन्न होता है, यह हुकुम वहाँ पर नहीं है, ठीक है: परन्तु जो हुकुम वहाँ पर है वह ऐसे है जैसे कि समुद्र में नदियाँ बहती हों और वे समुद्र रूप भी हों तो धरती वालों के लिये तो अचंभा ही होगा।

सोनमुनि जी–जब है ही कुछ नहीं तो फिर क्या?

अनुगृहीत तपस्वी जी–यदि है ही कुछ नहीं तो आप अपने संकल्प में 'है नहीं' का विचार लाकर कितना समय लगा चुके हैं और बताइए कि क्या आप 'है नहीं' हो गये हैं? आप हैं। 'है' दूर होने वाला मामला है और 'है' ज़रूर है। 'नहीं' तो 'है नहीं', पर 'है' से 'है' का प्रकाश होता है। इस 'है' की अनन्तता चेतन है और अपने ही किसी रंग में है, जो मन और बुद्धि से परे है।

भाई सज्जनों! एक बात पर विचार कर लीजिए। यह तो मैंने हुकुम की बात बताई है, यह मेरे लिये तो दृढ़ निश्चय वाली बात है, उसमें किसी संशय अथवा भ्रम का कोई स्थान नहीं है। मैं आँखों देखी और आप बीती कह रहा हूँ, अर्थात् प्रत्यक्ष देखी बात कर रहा हूँ। परन्तु यदि आप लोगों को कोई संशय है, तो एक बात का विचार कर लीजिए, मुझे किसी प्रकार की तृष्णा का संकल्प नहीं हुआ, मेरे अंतस की कोई उत्कृष्ट शक्ति उत्पन्न नहीं हुई। चित बिल्कुल निवृत्ति में है, त्याग में है, अपने अनन्त जी एक ही मिलाप रस में लीन है। दूसरी बात यह कि मेरा क्या काम है, अर्थात मेरे वहाँ पर जाने का क्या फल अथवा प्रयोजन है? यह सुन लीजिए। मुझे वहाँ पर जाकर अपने लिए कोई मालिकी, राज, बड़ाई पैदा नहीं करनी, मुझे एक आदर्श व्यक्ति अथवा मनुष्य का नमूना पैदा करना है, जिससे जगत में 'इन्सान' सुखी होवे। तीसरी बात यह है कि मुझे भी दीख रहा है कि शारीरिक दृष्टि से तो मेरे चारों ओर खेद-ही-खेद होंगे। जिस कार्य में पहले दुख-ही-दुख दिखाई पड़ जायें, उस कार्य की ओर तृष्णा की रुचि कभी भी नहीं हो सकती।

ब्रह्म ऋषि जी–हे परम पूज्य जी! मैंने प्राय: विनती की है कि तीन काल तो जगत हुआ ही नहीं, इस संकल्प मात्र की उपाधि को मारिए और रस लीजिए। जगत को काहे का दुख, काहे का सुख, कौन अत्याचारी, कौन कायर, कौन वीर, सभी मन की कल्पना है। यह कल्पना ही दुख रूप है, बंधन रूप है, यह संकल्प ही व्याधि रूप है, इसके ख्याल का त्याग कीजिए। कोई 'हुकुम' नहीं। काहे के लिए इस परम वीतराग दशा का त्याग करके दुबारा जगत में पाँव रखते हैं?

अनुगृहीत तपस्वी जी–विचार कर लीजिए। मेरा और आपका संकल्प तो संकल्प हो सकता है पर 'हुकुम' संकल्प नहीं है, यह तो हुकुमी की भाँति अगम्य है, अगम्य पर दलील क्या? दलील, सोच-विचार, सभी मनों के हैं, मन देशकाल में है, मन सीमा में है,

१. हुकम न कहिआ जाई।। [जपुजी]

मन अंत में है। इसकी परख की कसौटी अंत वाले मामलों की किसी हद तक टोह मात्र हो सकती है, अनन्त के ऊपर यह हावी नहीं है। मेरी इच्छा है कि किसी तरह अपनी अनन्त में प्राप्त हुई साक्षात्कारता आपके सामने कहूँ, पर कह नहीं सकता। मेरी इस समय की बुद्धि और मन मुझे जाने से रोक रहे हैं, मेरा चित भी जाना नहीं चाहता,[१] पर 'हुकुम' मैं कैसे कहूँ, कहा नहीं जाता, हुकुम अमिट है, अमुड़ है; और सत्य है।

सभी बोले:–अच्छा सूर्यास्त का समय हो आया है, अब चलें, विचार फिर सही। सभी सज्जन उठे, नमस्कार किया और अपनी-अपनी गुफ़ा आदि में चले गए। सभी आपको अपना शिरोमणि मानते हैं और सभी इस बात को मान चुके हैं कि हम तप तो इसलिए कर रहे हैं कि हमें अनुग्रह का द्वार प्राप्त हो, पर आप पर अनुग्रह सबसे पहले हुई है और उसके बाद तप आपके सुपुर्द हुआ है। आज सभी चकित हो गए हैं कि अब फिर इन पर अनुग्रह हुई है, साक्षात रूप में इन्होंने देखा है, फिर जगत के जाल की दुर्गम, कठिन यात्रा इसके सुपुर्द हुई है।

: ३ :

जहाँ पर बर्फ-ही-बर्फ है, वहाँ न तो सरसों ही फूलती-फलती है, न तोरिया; न कोई कली ही खिलती है; न गेहूँ की खेती होती है; वहाँ पर तो इस बात का भी पता नहीं चलता कि मौसम कौन-सा है, बसंत आ गया या अभी जाड़ा ही देह को दुखी कर रहा है। अब बर्फ नहीं पड़ती; यह मौसम की तबदीली का चिन्ह है। यदि बर्फ पिघलने लगेगी तो नीचे मैदानों में गेहूँ के खेत दीख पड़ेंगे, कोई सेब आदि पौधों पर फूल खिल उठेंगे, पर यह भी तो नीची घाटियों में; ऊँचे पहाड़ों की तो गति ही और है। ऊँचे पहाड़ों की घाटियों में गर्मी के मौसम में या बरसात में मौसम प्रखर होता है। आषाढ़, सावन और भादों में ही ऊँचे स्थानों पर जाया जा सकता है। यही समझिए वहाँ का बसंत है। सप्त शृंग की बर्फानी धरती हरी-हरी हो गयी है, अनेक प्रकार के रंगों के फूल खिल रहे हैं। आज धूप खूब चमकी है, सर्दी कम हुई है, सभी सज्जन उस तपोभूमि पर फिर इकट्ठे हुए; फिर बातचीत चली। एक तपस्वी जी बोले:–

हे शिरोमणि जी! उस दिन की बातचीत के पश्चात् मेरा मन बहुत सोच-विचार में लगा रहा है। रात को एक स्वप्न तो नहीं पर एक और प्रकार की झलक दिखाई पड़ी। मुझे बुद्ध जी महाराज के दर्शन हुए। आप कहने लगे, "तुम बख्शे हुए तपस्वी जी को मत रोको, वे वास्तव में बहुत ऊँचे आदमी हैं; और वे जाकर एक अत्यन्त आवश्यक काम करेंगे। ऐसे काम तृष्णा, वासना, संकल्प, विकल्प आदि के नहीं होते। ये कार्य जगत के प्रबन्ध के महाकार्य हैं, जो जगत के केन्द्र से; ज्ञान के धुरे से ब्रह्मांड के प्रयोजनों के लिए होते हैं। उनका अंत और फल "निवृत्ति मूलक" ही होता है। फिर कहने लगे, "हम भी जगत में गए थे, हमने भी इन्सानियत का आदर्श कायम किया था। स्वयं नमूना बने थे और दूसरों

१. चित न भयो हमरो आवन कह।।
चुभी रही स्रुति प्रभ चरनन महि।। [बचित्र नाटक]

को भी नमूना बनाया था और यह नमूना चला भी दिया था। इस नमूने में एक तो चेतन केन्द्र के साथ सुरत भी चुभन नहीं थी, दूसरा जगत के व्यवहार में "मरदानगी" के अंश की कमी थी, इसलिए धीरे-धीरे कमज़ोरी और गिरावट इसके साथ मिल गये; बस फिर रीति-रिवाज और दिखावे आ गये, हिन्द में से यह मत दूर ही हो गया। दूसरी जगहों पर ललित कलाओं और वहाँ के पहले मरदानगी के आदर्शों के साथ मिलकर हमारा मत अब तक थोड़ा-बहुत चलता रहा है। अब अनन्त द्वारा इनको जाने की आज्ञा हो रही है। अत: हे जी! आप जरूर जाइए। बुद्ध जी कहते थे कि श्री गुरू नानक देव जी के नाम से 'गुरू ज्योति' जगत में जाकर आदर्श कायम कर रही है। तृष्णा से रहित मरदानगी में रहकर इन्सानियत के नमूने का मनुष्य तैयार हो रहा है और वह फल फूल रहा है। परन्तु अत्याचारी लोग इस नमूने को निर्मूल कर रहे हैं? क्योंकि उन ज़ालिमों का अपना नमूना ज़ोर ज़ुल्म का है। 'इन्सानियत' को भय के नीचे दबाकर कुचलता है। दूसरी ओर जो नया नमूना रूपधारी हुआ है, उसके मारे जाने का भय है; उसमें निर्भयता तो है, मरदानगी का थोड़ा-सा रंग और चढ़ाया जाना है। इसलिए अब बख्शे हुये तपस्वी जी वहाँ पर जायेंगे और उस नमूने की रक्षा करेंगे और उसमें अब जो अधिक मरदानगी और स्वरक्षा की ज़रूरत है, उसे बढ़ायेंगे।

योगीराज जी–आपने सच कहा है! मुझे भी समाधि में प्रकाश दीख पड़ा था, पहले गोरख जी के दर्शन हुए। वे कहने लगे 'योग का आदर्श लोप हो गया है। पातंजल जी ने जो कुछ आदर्श कायम किया था, उसके नमूने का कोई आदमी राजयोगी भी नहीं मिलता। पत्र उठाकर विचार करना ही शेष रह गया है। जिस आदर्श का नमूना ही न मिले उसे अपने शास्त्र के प्रयोजन सहित लोप समझिए। विशुद्ध हठयोग भी अब कम हो गया है। यदि कुछ है भी तो वह नाटकों चेटकों के लिए ही रह गया है। जगत की चाल भी और ढंग की हो रही है। इसलिए, किसी भारी नमूने की आवश्यकता है, और 'पुरुष विशेष' जी की इच्छा है कि बख्शे हुए तपस्वी जी उस 'मर्द के नमूने' को जाकर बचा लें, जिसे गुरू नानक देव जी ने कायम किया है। मेरे संप्रदाय के सिद्ध उनके साथ झगड़ते हैं, पर गुरू नानक ने सब पर विजय पाकर सच्चे 'मनुष्य का नमूना', कायम करके दिखा दिया है और आठों ही महापुरुष यही काम कर चुके हैं। अब नवीं ज्योति (गुरू) यह ईश्वरीय काम कर रही है। प्रत्येक ज्योति ने अलग-अलग हालात और कठिनाइयों में उस नमूने की कायमी संभव करके दिखा दी है। आजकल नवीं ज्योति अत्यन्त कठिनाइयों में काम कर रही है और दसवें गुरू अब यह महाबलि वही रूप धार कर, वही ज्योति बनकर उसी काम को सिरे चढ़ाने के लिए जायेंगे।

फिर मैंने पातंजलि और कपल मुनि के दर्शन किए, वे भी यही वाक्य बोलते रहे।

संन्यासी दशा वाले मुनि जी–हे सज्जनों! आश्चर्य है। मुझे भी दर्शन हुए और वे दर्शन तो शिव जी के थे। आप कहने लगे, दुष्ट दमन जी को न रोकिए। वे हुकम में ही महान कार्य करने के लिए जा रहे हैं। निरा वेदान्त तो संन्यास में ले गया है। प्रजा महापुरुषों से खाली होकर दुख पा रही है। नए आदर्श मनुष्य की आवश्यकता है, जिसे आप जाकर पूर्ण करेंगे। फिर बिशन दास जी बोले–मुझे भी आज दर्शन हुए और वे दर्शन कृष्ण जी के थे।

आप कहने लगे, 'तुम अपने कल्याणार्थ तप कर रहे हो, परन्तु जगत के प्रबन्ध की सूझ संपूर्ण हो चुके और परमपद को प्राप्त कर चुके लोगों को होती है। अपने-अपने समय में महापुरुष ऊपर से जाकर जगत में काम करते हैं, पर कोई-न-कोई उस 'मनुष्य के नमूने' में कमी डालकर गिरावट पैदा कर देती है। ईश्वरीय प्रयोजन यह है कि प्रत्येक वस्तु खिले और अपने क़माल पर पहुँचे। जगत में इस समय इन्सान अपने कमाल पर नहीं है। देखिये जब कुदरती तौर पर गुलाब का पौधा खिलता है तब उसके कमाल की दशा होती है, पर मनुष्य या तो मार खा रहा है, या दूसरों को मार दे रहा है। अगंम खेड़े में लहलहाता और अपने इन्सानी कमाल में झूमता हुआ इन्सान दिखाई नहीं देता। हमने इसलिये गीता में सांख्य और योग के झगड़े मिटाकर एक केन्द्र पर योगी का आदर्श कायम किया था। अर्जुन को नमूना बनाया था। उसने सब कुछ समझा था। पर 'मरदानगी' के आदर्शपूर्ण स्थान पर आकर वह फिर उदासी में पड़ गया था और तृष्णा रहित मरदानगी तथा 'इन्सानियत' के आदर्श पर आकर उसने हिलोर नहीं खाया था पर अंत में जब हमने उसे क्षत्री धर्म की बात कही तब वह चमक उठा, पर इस खत्री धर्म के संकल्प में अहं की कसर थी। इससे उसकी गिरावट, जिसे कि वह धर्म समझ रहा था, हट गई, पर अहं का अंश तो अहं ही है। यदि अहं न हो तो मरदानगी होती है यदि मरदानगी हो तो फिर इन्सानियत होती है। यह कमाल का 'कमाल' है और इसका नमूना वास्तविक जीवन का नमूना 'चढ़ती कला का आदर्श' इसे ही कायम करने के लिये बख्शे हुए तपस्वी जी जा रहे हैं। इन्हें रोको मत, ये महान माया रहित, अहं से परे, तृष्णा रहित कार्य पर जा रहे हैं, हमारी कमी को पूरा करेंगे।

अल्लाह यार तपस्वी जी, जो थोड़े समय से आकर एक ठिकाने पर बैठकर तप कर रहे थे, वे आ गये और बोले:-सज्जनों! मेरी भी एक विनती है। रात को अदेश से मुझे एक आकाशवाणी हुई है। मैंने मुहम्मद साहब को देखा। आप कहने लगे-"तुम सभी अल्लाह की हिकमतों में दखल दे रहे हो। 'बख्शे हुए तपस्वी जी' तुम्हारी तरह इन्सान तपस्वी नहीं है। ब्रह्मांड में सबसे ऊँचे दर्जों पर है। उनका तप करना कोई ईश्वरीय भेद है। अब जो उन्हें हुकम हुआ है, वह उनकी अपनी इच्छा नहीं है वह ईश्वरीय हुकम है, वह ईश्वरीय राज है, उनको जाकर उपकार करना है। हमने धर्म में वहम देखकर और पत्थरों में लोगों का झुकाव देखकर मरदानगी सिखाई। वह रंग ज्यादा चढ़ गया। मरदानगी में इन्सानियत कम हो गई। तैमूर और महमूद जैसे अत्याचारी पैदा हो गये, जो कि आदर्श से इतने ही दूर थे जितने कि कायर दूर हैं। 'न भय खाना और न भय देना' यह कमाल है। जगत में गुरू नानक देव जी ने यह भय न देने और भय न लेने का आदर्श बाँध दिया है। उन्होंने बाबर जैसे जाबर का भय नहीं माना। अरब, ईरान, रोम में जाकर विद्वानों और जोरदार फकीरों के साथ निर्भय होकर बहस करके फतह पाई है और आगे प्यार से रास्ते पर लगाया है और भय नहीं दिया। अब अफसोस है कि उस खूबसूरत नमूने के मनुष्यों को औरंगज़ेब तबाह करना चाहता है। उसके तंग दिल से जो असर सृष्टि पर पड़ रहा है, वह गिरावट का है। वह हमें भी पंसद नहीं है। इसलिये यह जरूरी है कि तृष्णा रहित मरदानगी और इन्सानियत का नमूना जगत में चले। अतः उस काम पर दाता जी जा रहे हैं, अल्लाह के हुकम से जा रहे हैं, उन्हें रोको मत।"

फिर मैंने एक और पैगम्बर के दर्शन किये। वे वही थे जो सूली पर चढ़े थे। वे कहने लगे, "मैंने संसार में इन्सानियत सिखाई और कायम की थी और और सुमति दी थी कि तलवार न चलाओ, जो तलवार का वार करेगा, वह तलवार से ही मारा जायेगा। पर इस दुनिया की हालत ऐसी है कि जब मुझ पर ही आ बनी तो मुझे भी यह कहना पड़ा कि तलवार खरीदकर ले आओ। इससे मेरा अभिप्राय मरदानगी से था। यही कमी है जो मरदानगी से खाली इन्सानियत में रह जाती है। मरदानगी के बिना आदर्श सफल नहीं होता, पर तृष्णा रहित होना चाहिये, अन्यथा मरदानगी जुल्म में बदल जाती है। यदि कोई सिंह किसी विधवा के बच्चे को खाने लगे, तो तुम उस बच्चे पर दया करके शेर को रोकते हो। यदि वह नहीं टलता, तो तुम उसे तलवार से रोकते हो और बच्चे के प्राणों की रक्षा कर देते हो, तो यह मरदानगी तृष्णा रहित मरदानगी है। यदि ऐसा न होता तो तुम्हें कायर समझा जाता। तलवार को जुल्म की ढाल बनना चाहिये, उसे ज़ालम कभी नहीं बनना चाहिये। प्रयोजन यह है कि जगत में प्रेम का राज्य कायम हो, ज़ोर-जुल्म दूर हो।"

फिर आप कहने लगे कि इस बख्शे हुये तपस्वी जी को मत रोको, जाने दो, ये ईश्वरीय आज्ञानुसार जा रहे हैं। आज्ञा पालन में ये सबसे बड़े हैं।

सोम मुनि जी–भाई, नाराज़ मत होना, मुझे अपने देव पर भरोसा तो है, पर मेरे विचार में अंत 'शून्य' है। मुझे आज अपने अवधूत मुनि जी के दर्शन हुए। मैंने उससे कहा कि हमारे बख्शे हुए तपस्वी जी को क्या हो गया है? वे बोले, 'जो हुआ है, अच्छा हुआ है। केवल दया और अहिंसा की चिन्ता एक धूरे की पक्की बात तो है, पर इससे मनुष्य कुछ ओर ही तरह के हो गए हैं। मनुष्य में एक भारी नुक्स यह है कि जिस ओर उसे झुकाओ उसी एक ओर ही सारे का सारा झुक जाता है। सभी ओर से एक जैसा नहीं उठता। अत: जो आदर्श जगत में अब सुखदाई है, वह यही है जो गुरू नानक देव जी ने बताया है: न किसी को भय दो और न किसी का भय मानो। अब उस आदर्श में, वितृष्ण रहकर अहं रहित मरदानगी और आवश्यकता पड़ने पर तलवार को ढाल बनाकर इसके उचित प्रयोग का तरीका भी बताना है। वह कमाल अब इन्होंने जाकर दिखाना है, ताकि मरद चढ़ती कला वाला मरद हो, वह संपूर्ण हो, भय, भ्रम, वहम, काल्पनिक धर्म, फिकर चिंता के गोरखधंधे और अत्याचारियों के भय उस कमाल को खा न जायें। निर्भय, मज़बूत, प्रसन्न धरती पर चलता हुआ आकाश से बातें करने वाला, पूर्ण इन्सानियत वाला व्यक्तित्व कामिल पुरुष का व्यक्तित्व है। इस अदेशी मरद ने, 'इस नमूने का मरद' बनकर दिखाना है और दूसरों को बनाना है। तुमको भी अब यहाँ पर नहीं रहना, इनके साथ ही जाना है, और इनके अधीन रहकर काम करना है। जिस प्रकार तुम पर्वतों में निर्लेप हो, इसी तरह चलती हुई तलवारों में ऊँचे और निर्लेप रहना है जगत के केन्द्र 'अनन्त' से बिछुड़ना नहीं। केन्द्र है, जरूर है, केन्द्र शून्य नहीं, शून्य कुछ नहीं है, केन्द्र है, चेतन है और उल्लास है।

ब्रह्म ऋषि जी–भाई हमने जगत को त्रैकाल में अनहुआ जानकर संकल्प-विकल्प की उपाधि मात्र को दूर करने के लिये यहाँ तप किए। 'नामरूप' को दूर करके पीछे रही एक वास्तविकता पर टिकने के प्रयत्न किए। आज हमें भी व्यास जी के, फिर हंस जी के दर्शन

मिले। फिर याज्ञवल्क्य जी, वशिष्ट जी मिले, फिर मर्यादा वाले राम जी, फिर रसज्ञ कृष्ण जी मिले। फिर दत्तात्रेय, मैत्रेय जी मिले। मतलब यह कि अगणित दर्शन हुए। सब की शिक्षा का सार यह था कि बख्शे हुए तपस्वी जी के साथ जाओ। रणभूमि में तृष्णा रहित रहकर दिखाओ कि जगत तीनों ही काल में मिथ्या है, कभी बना ही नहीं। यदि तनिक-सी भी पीड़ा व्याकुल करती है तो जगत काहे का मिथ्या।" मुनि याज्ञवल्क्य, मनु और व्यास जी ने मुझसे कहा कि इस 'बख्शे तपस्वी' जी के तप को देखकर यह मत भूलना कि ये जीव हैं। ये तो 'गुरू ज्योति' के निवास वाला शरीर है। परमेश्वर निरंकार है, पर जगत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कर्तार, पालक और शिक्षक (गुरू) है। उस 'गुरू' रूपता का निवास इस बख्शे हुए तपी जी में है। ये उस गुरू ज्योति का अवतार है, उसका रूप है। इन्हें जगत में 'चढ़ती कला' का नमूना कायम करना है, अर्थात अहं रहित हो, पर मौन का भय भी न हो। मरदानगी हो, पर तृष्णा रत्ती भर न हो। सच की खातिर अभय पद के मनुष्य निर्भयता का व्यवहार करके प्रवृत्ति पर चलें। 'न भय दें और न भय लें।' यों जगत में बैकुण्ठ हो जाये। ऐसे मनुष्य फिर जगत में कष्ट नहीं पैदा करेंगे।

"सच-केवल सच बोलना मात्र नहीं, सर्वथा सच पर चलना सच है। किसी वस्तु का अपनी वास्तविकता में कमाल पर होना 'सच' है और का और न हो जाना 'सच' है। सच पर टिकाव सच है। भय देने वाला सच में बाधा डालता है। भय खाने वाला सच का त्याग कर देता है। नमूने का मनुष्य तो वह है, जो न भय ले और न भय दे। परन्तु जगत में अब यह आदर्श कायम करना है कि निर्भय मनुष्य, आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र पकड़कर भी, मरकर और मारकर भी, अभय पद पर खड़ा रहे और भेद यह है कि अंदर तृष्णा न हो। 'सच को सच', सच को जैसे का तैसा रखने के लिए, सच के लिए भय के खाते समय यदि शस्त्र उठाने की नौबत आ जाये, तो निर्भय मनुष्य उस दशा में निर्भय होकर व्यवहार करता हो। कमज़ोरी और कायरता रास्ता न रोकें। जुल्म और धक्का बाधा न डालें, 'सच रहे, सदा सच रहे।' अतः इस कार्य के लिए तपस्वी जी को जाना है। गुरू नानक देव जी ने जो ईश्वरीय प्रवाह हुकम में चलाया है, वह कमाल है, पर उस पर मूर्ख वार कर रहा है। उसकी रक्षा और प्रचार के लिये आपको जाना है और गुरू नानक वाला सारा काम भी वैसे ही करना है। अतः मेरा मन तो उसी समय से भय और सत्कार से भर रहा है। सचमुच जगत त्रिकाल मिथ्या है, पर यदि व्यवहार में, दुख-सुख सहन करते हुए अंतस अतीत रहे, तब ही यह निश्चय सफल है।

अब सभी ने कहा-हे तपस्वी जी! आप जाओ। आप महाबलि, पर वितृष्ण, अनुराग और अवधूत रूप, रसाल और फिर रस स्वतन्त्र हैं। आप चलिये और कृपा करके हमें भी साथ ले चलिये। हमने आपके साथ जिस प्रकार एकान्त और बरफ़ों में स्वतन्त्र मौज की है, अब जगत जाल में आपके साथ फिरेंगे और जहाँ तक हो सकेगा आपका हाथ बटायेंगे। यहाँ पर अब हम अकेले क्या करेंगे।

इस पर बख्शे हुए तपस्वी बोलेः-शुक्र है कि आप लोगों के संशय निवृत्त हुये। शुक्र है कि आप मेरे साथ रहेंगे। मेरे लिये अनन्त वाहिगुरू का 'अस्तित्व' एक प्रत्यक्ष बात है

और इस केन्द्र पर निवास करता हुआ मैं सदैव सुखी हूँ। आइए आप सब भी इसी धुरे पर टेक लेकर चलिए और हम सब उसका महान कार्य करें।

ब्रह्म ऋषि जी–क्या आप अब यहाँ से जगत को चलेंगे?

बख्शे हुए तपस्वी जी–नहीं जी, पहले सचखंड में जाऊँगा। वहाँ से सच्चे पिता से, जी! उस अनन्त और अनादि से, उसके हुकम द्वारा जो कुछ प्राप्त होगा, उसे पले में बाँध कर ले चलूँगा। मैं उस 'एक' के चरणों के साथ सुरत को बाँधकर चलूँगा। जगत में माया प्रबल है। लोभ की लहर निरंतर चल रही है और शरीर ग़रक हो रहे हैं। मैं संसार समुद्र में सुरत को ऊँचा रखकर और स्वामी के चरणों में व्यस्त रखकर, आप उसकी प्रेम खींच में रहकर काम करूँगा। यह अनुग्रह हो गया है, पर सचखंड में रहकर मर्त्यलोक में जाने की आज्ञा दाता जी ने दी है। अत: मैं आज जाऊँगा और आपको आज से 'हरि कीर्ति' के अलावा और कोई तप नहीं करना।[१] वापसी पर मैं आपको साथ लेकर मृत्यलोक को जाऊँगा।

तात्पर्य यह कि सब में 'हरि यश' भर गया। कीर्तन का रसदायक तप आ गया। स्तुति में भरकर तपस्वी जी को मानों सबने हेमकुण्ट से सचखंड की ओर भेज दिया।

सूचना–१. पण्डित तारा सिंघ जी नरोत्तम की हेमकुण्ट के बारे में खोज का सारांश इस प्रकार है:–

"जिस गन्धमादन नामक पर्वत पर बर्दीनाथ का मन्दिर है उससे लगभग छ: कोस की उतराई पर पण्डुकेश्वर ग्राम है, जहाँ पर राजा पण्डु ने योग मार्ग की साधना सिद्ध की थी। यह कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय ११९ में लिखा है। यहाँ पर महादेव का मन्दिर और 'पण्डुकेश्वर' इस राजा के नाम का गाँव अब तक मौजूद है। बर्दीनाथ के यात्री पण्डुकेश्वर से ही बर्दीनाथ को जाते हैं। पण्डुकेश्वर से आठ कोस की दूरी पर ऊँचाई की ओर गुरू जी ने तप किया था। वहाँ पर सप्त श्रृंग–हेमकुण्ट नामक पर्वत है। इसके बीच में एक सर है। उसे लोहपाल कहते हैं। इसके पश्चिम की ओर दुष्टदमन तपस्वी जी का तप स्थान अब तक बताया जाता है। गुरू जी का यह नाम वहाँ पर तप करने के समय का है।"

सूचना–२. एक हेमकुण्ट नीचे बताया जाता है, जो कि पटना जिले में है, जिसे रतनागिरि कहते हैं। पाली ग्रन्थों में जिस पंडाऊ पर्वत का उल्लेख आता है, वह यह रतनागिरि ही है।

सूचना–३. दक्षिण में गोदावरी नदी के किनारे पर जो नासक नामक प्रसिद्ध शहर है, इससे २२ मील की दूरी पर सात चोटियों वाला एक पर्वत है, वहाँ भी हेमकुण्ट बताया जाता है और वहाँ पर पाँडवों के जाने का जिक्र भी किया जाता है।

सूचना–४. एक सज्जन का विचार तो मान सरोवर पर ही इस ठिकाने के होने का है। 'हेमकुण्ट' अर्थात् बर्फ का पहाड़ कैलाश माना जाता है, क्योंकि इसे उधर 'कैंगरिंपाँचै'– पवित्र पहाड़ और 'गंगी', अर्थात् बर्फ का पहाड़ भी कहते हैं। इसके समीप सात चोटियाँ भी गिनते हैं:–

---

१. हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा।। [सोरठ महला ५]

(क) गुरला मानधाता की दक्षिण–दक्षिण-पश्चिम चोटी।

(ख) गुरला मानधाता की दक्षिण–पश्चिम चोटी।

(ग) South 60° W बर्फानी चोटी–जो दक्षिण की ओर ६० डिग्री पश्चिम को है।

(घ) West North-West पश्चिम की ओर पश्चिम-उत्तर को है।

(ङ) कैलाश।

(च), (छ) दो चोटियों वाला पुण्डी उत्तर की ओर २० डिग्री पश्चिम की ओर है।

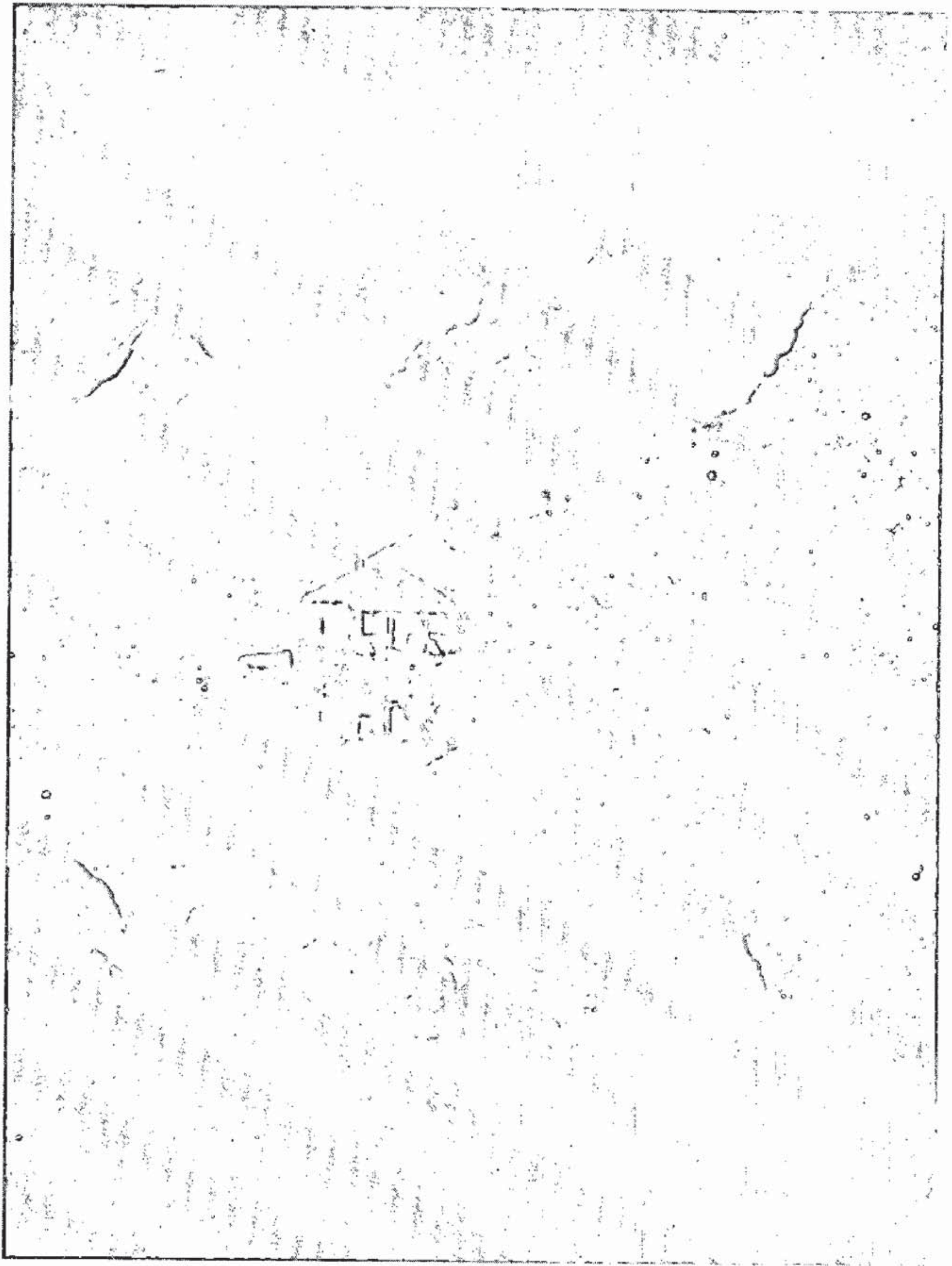
सिद्धान्त–पर अब तक की खोज बर्दीनाथ से इधर, पण्डुकेश्वर से चौदह मील ऊपर वाले ठिकाने को ही वह स्थान सिद्ध करती है, जहाँ पर गुरू जी ने तप किया था, क्योंकि पण्डुराज के योग कमाने का पता गुरू जी ने आप दिया है। यथा–'पंडुराज जहि जोग कमावा' और पण्डुराज ने योग पण्डुकेश्वर या इसके समीप ही कमाया है। इससे कुछ मील ऊपर की ओर उसके तप का निशान 'पाण्डुशिला'[१] है। महाभारत आदि पर्व अध्याय ११९, श्लोक ४७–५० में जहाँ पर गन्धमादन पर्वत, हेमकुण्ट सप्त शृंग का पता दिया है, वह ठिकाना यही है और 'पाण्डुशिला' और 'पण्डुकेश्वर' पण्डु के नाम के ठिकाने भी यहीं पर आज तक कायम हैं। गुरू जी ने आप लिखा है:– 'हेमकुन्ट परबत है जहाँ।। सपत स्रिंग सोभत है तहाँ सपत स्रिंग तहि नाम कहावा। पंडुराज जहिं जोग कमावा'। [बचित्र नाटक]

अत: खोज द्वारा सिद्ध हो चुके इस ठिकाने पर चले आ रहे पुरातन तप-स्थान चबूतरे के ऊपर यादगार मात्र एक छोटा-सा, १० फुट वर्गाकार का गुरूद्वारा है। उसके आगे ३ फुट चौड़ा बरामदा १९३६ ई० में गुरू जी की प्रदान की हुई प्रेरणा द्वारा कायम हुआ था और झण्डा लहरा दिया गया था, जिसके दर्शन सामने वाले चित्र में विशाल सरोवर के किनारे पर हो रहे हैं।

पर्वतों को जिन श्रेणियों 'उत्तराखंड' में हेमकुण्ट सप्त शृंग का ठिकाना है, उसका नक्शा भी अगले पृष्ट पर दिया गया है, ताकि हेमकुण्ट सप्त शृंग तपोधाम के बारे में और उसके आसपास के सम्बन्ध में पता चल सके।

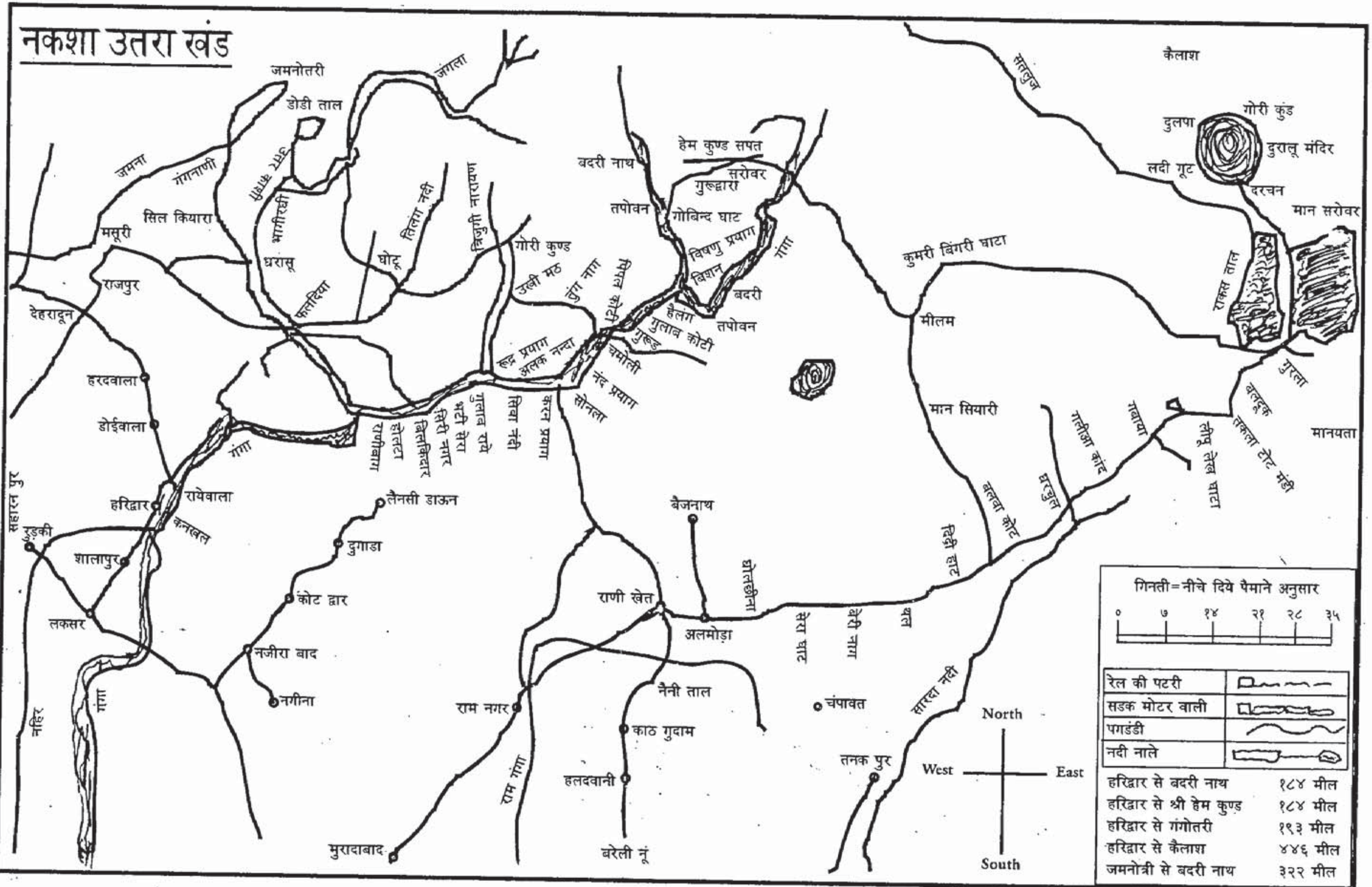


१. सन्त मोहन सिंघ जी के कथनानुसार।



ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਤਪ ਅਸਥਾਨ ਸ੍ਰੀ ਹੇਮ ਕੁੰਟ ਸਪਤ ਸ੍ਰਿੰਗ

.(੧੫੧੧੦ ਫੁਟ ਦੀ ਉਚਾਈ ਪਰ ਵਿਸ਼ਾਲ ਸਰੋਵਰ ਦੇ ਕਿਨਾਰੇ)



इस नकशे में 'हेम कुण्ड सपत श्रृंग' का विवरण है।

२ सचखण्ड से मर्त्यलोक को

कीर्तन सुनते ही सुरत ने ऐसी उड़ान भरी कि मानो संसार ही पलट गया। क्या देखते हैं कि एक अत्यन्त आश्चर्यजनक सुन्दर शहर है, जिसकी उपमा मानवीय कलम नहीं लिख सकती। क्योंकि इसका निर्माण ऐसे पदार्थों से हुआ है, जो मनुष्य की सूझ और बुद्धि से दूर हैं। इसके मकान कभी गिरते, टूटते अथवा पुराने नहीं होते। दिन रात का वहाँ पर कोई ब्योरा नहीं, दुख, दर्द का नाम तक नहीं। 'बेग़मपुरा'[१] इस शहर का नाम है। यहाँ पर कोई चोर, जुआरी नहीं बसता। पहरा देने के लिये कोई चौकीदार, सिपाही आदि नहीं है। एक-से-एक बढ़-चढ़कर सुन्दर महल, चौबारे और मन्दिर साधु पुरुष की वृत्ति की भाँति अचल खड़े हैं। फिर ये मकान ऐसे हैं कि जिस समय जिस प्रकार का ख्याल करें, वैसे ही इनका निर्माण हो जाता है। जब पहले वाले मकानों को बदलने का ख्याल करें तो उनके स्थान पर जिस प्रकार के चाहो और बन जाते हैं। ये मकान ईटों, पत्थरों के बने हुए नहीं हैं, बल्कि ये तो किसी ख्याल से भी सूक्ष्म वस्तु से बने हुए हैं। इन घरों में रहने वाले सुन्दरता और अच्छाई की मूर्ति हैं। इनके चेहरों पर ऐसा प्रकाश है, जैसा कि सूरज का भी नहीं होता। इनके हृदय बसंत ऋतु के आकाश की भाँति निर्मल, सुगन्धित और शुद्ध हैं। इन्होंने प्रेम के वस्त्र पहन रखे हैं।[२] कोई पुरुष भी नंगा नहीं दीखता। इनके कपड़े हमारे कपड़ों जैसे नहीं हैं, पर किसी प्रकाश की-सी वस्तु से बने हुए हैं, जिनके रंग अजीब और इतने रंगों के हैं कि धरती पर कभी इतने रंग देखे ही नहीं गये। इनकी दमक और चमक की लहर भी अजीब है। रोटी दाल, भाजी की यहाँ पर सुगन्धि तक नहीं है। 'नामरस' और कीर्तन नामक पदार्थ ही इन लोगों का आधार है।[३]

भोजनु भाउ कीरतन आधारु। [रामकली म: ५]

जगह-जगह पर फुलवाड़ियों में सजे हुए ऐसे सुन्दर फव्वारे छूट रहे हैं, जिनका सुहावनापन और सजावट मन को मोहित कर रही है। पर ये फव्वारे, पानी और फूल हमारी धरती के जैसे नहीं हैं, ये किसी अनोखी सूक्ष्म वस्तु के हैं। फव्वारे को बरसते हुए देखकर जी गा उठता है:-

बरसु घना मेरा मनु भीना।।
अम्रित बूँद सुहानी हीअरै गुरि मोही मनु हरि रसि लीना।।१।। [रामकली म: ५]
पुन:-छुटत परवाह अमिअ अमरापद अंम्रित सरोवर सद भरिआ।।

---

१. बेगमपुरा सहर को नाऊ।। [गउड़ी रविदास जी]
२. प्रेम पटोला तै सहि दिता ढकण कू पति मेरी। [गुजरी वार महला ५]
पुन:-खड़ि दरगह पैनाईऐ।। [सिरीराग म: १]
३. भोजनु भाउ कीरतन आधारु।। [रामकली म: ५]

ते पीवहि संत करहि मनि मजनु पुब जिन्हु सेवा करीआ॥
तिन भऊ निवारि अनभै पदु दीना सबद मात्र ते उधर धरे॥
कवि कल ठकुर हरदास तने गुर रामदास सर अभर भरे॥२॥ [सवैये महले ४ के]

इस आश्चर्यजनक शहर की व्याख्या नीचे दिए गए शब्दों में लिखी है:–

यथा– **सहज सिफति भगति ततु गिआना॥**
सदा अनन्दु निहचलु सचु थाना॥
तहा संगति साध गुण रसै॥
अनभऊ नगरु तहा सद वसै॥६॥
तह भऊ भरमा सोगु न चिंता॥
आवणु जावणु मिरतु न होता॥
तह सदा अनन्द अनहत आखारे॥
भगत वसहि कीरतन आधारे॥७॥
पारब्रहम का अंतु न पारु॥
कऊणु करै ताका बीचारु॥
कहु नानक जिसु किरपा करै॥
निहचल थानु साध संगि तरै॥८॥४॥ [गउड़ी मः ५]

बेगमपुरा सहर को नाऊ॥
दूखु अंदोहु नहीं तिहि ठाऊ॥
ना तसवीस खिराजु न मालु॥
खऊफु न खता न तरसु जवालु॥१॥
अब मोहि खूब वतन गह पाई॥
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई॥१॥ रहाउ॥
काइमु दाइमु सदा पातिसाही॥
दोम न सेम एक सो आही॥
आबादानु सदा मसहूर॥
ऊहाँ गनी बसहि मामूर॥
तिऊ तिऊ सैल करहि जिऊ भावै॥
मरहम महिल न को अटकावै॥
कहि रविदास खलास चमारा॥
जो हम सहरी सो मीतु हमारा॥३॥२॥ [गउड़ी रविदास जी]

बनस्पति भी यहाँ पर आश्चर्यजनक है। फूल तोड़ लीजिए, फिर देखिए कि तुम्हारे हाथ में भी फूल होगा और पीछे डाल पर भी फूल होगा। यहाँ पर कोई भी वस्तु मरती नहीं। किसी प्राणी, जीव, वनस्पति को यहाँ पर मौत नहीं आती।

इस शहर में इससे भी परे और अपार एक अत्यन्त सुन्दर महल है, जिसकी इमारत ऐसे दिव्य जवाहरात से बनी हुई है कि उनकी सुन्दरता को तो आंखें सहन ही नहीं कर सकतीं और सिर से लेकर पैरों तक सभी हीरों, पन्नों से भी सुन्दर और अमूल्य, पत्थर की

भाँति पर सूक्ष्म रत्न लग रहे हैं और कारीगर की अचूक बुद्धि ने इसे ऐसा सजाकर और जोड़कर रचा है कि देखते ही बुद्धि चकित[1] होकर वहीं की वहीं पर ही रह जाती है। इस के अन्दर ऐसा प्रकाश[2] है जो दो दीवारों के बीच में से होकर बाहर चारों ओर कई रंगों का प्रकाश दे रहा है। मानो दीवारें शीशे से भी अधिक पारदर्शी[3] हैं। पास जाने से दीवारों में से ऐसी सुगन्धि आती है कि जिस के असर से मानो वृत्ति दसम द्वार को चढ़ जाती है और लगता है जैसे सूरज की किरणें चारों ओर फैलकर अनेकों धरतियों को प्रकाश, गर्मी और तेज का दान प्रदान करती हैं और प्राणियों की उत्पत्ति और बढ़ोतरी करती हैं। इस तरह इस महल के प्रकाश की किरणें ब्रह्मांडों में फैलकर सूरजों की गर्मी, तेज, जीवसत्ता, चाँदों को प्रकाश, शीतलता, पृथ्वियों को प्रफुल्लित होने की शक्ति; जीवों को प्राण, प्रतिपालन और आत्मिक जीवों को आत्मिक सत्ता प्रदान करती हैं। समस्त संसार में जो कुछ है, वह सब कुछ इनके बल के आश्रय से है। इस महल को उस देश के लोग 'स्वरूप' कहकर पुकारते हैं। इस महल की ठीक उपमा इस शब्द में है:–

सूख महल जाके ऊच दुआरे॥
ता महि वासहि भगत पिआरे॥१॥
सहज कथा प्रभ की अति मीठी॥
विरलै काहू नेत्रहु डीठी॥१॥रहाउ॥
तह गीत नाद आखारे संगा॥
ऊहा संत करहि हरि रंगा॥२॥
तह मरणु न जीवणु सोगु न हरखा॥
साच नाम की अंमृत वरखा॥३॥
गुहज कथा इह गुर ते जाणी॥
नानकु बोलै हरि हरि बाणी॥४॥६॥ ॥१२॥ [सूही मः ५]

ऐसे सुन्दर महल को देखकर इसके भीतर जाने को मन चाहा, पर दरवाज़े बन्द थे और ऐसी कोई विधि भी नहीं दीखती थी, जिससे अंदर जाने की बात बनती। थोड़े समय के पश्चात एक बड़ा दिव्य ज्योति पुरुष, जिसके तेज से आंखें चकाचौंध हो जाती थीं, दरवाज़े के आगे अत्यन्त प्रेम और नम्रता से करबद्ध होकर खड़ा मन को मोहित कर लेने वाले स्वर में गाता हुआ दीख पड़ा:–

विसरहि नाही जितु तू कबहू सो थानु तेरा केहा।
आठ पहर जितु तुधु धिआई निरमल होवै देहा॥१॥
मेरे राम हउ सो थानु भालण आइआ॥
खोजत खोजत भइआ साध सँगु तिन सरणाई पाइआ॥२॥ [सूही मः ५]

१. माई री पेखि रही बिसमाद॥ [सारंग मः ५]
२. रतन कमल कोठरी॥
चमकार बीजुल तही॥ [सोरठ नामदेव]
३. साच महलि गुरि अलखु लखाइआ॥
निहचल महलु नही छाइआ माइआ॥ [गउड़ी मः १]

पुनः:– **दरमादे ठाढे दरबारि॥**
तुझ बिनु सुरति करै को मेरी॥
दरसनु दीजै खोलि किवार॥ [बिलावल कबीर]

इस महापुरुष की विनती ने आँखों में आसू भर दिये और ऐसा प्रवाह चलाया कि मानो सावन की झड़ी लग गई। फिर एक हिलोर आई, मानो सुध-बुद्ध भूल गई अथवा मूर्छित हो गई। इस शहर में किसी पुरुष की कभी कोई परछाई नहीं देखी थी, पर अपनी परछाईं देख-देखकर लज्जा-सी आ रही थी। जैसे ही अब चारों ओर देखा तो अपनी परछाईं[1] भी उस प्रकाश रूप वायु मण्डल में खो गई थी।

इतने में दरवाजा खुला और उस प्रेमी पुरुष को अंदर जाने का संकेत हुआ; पर उस धर्मात्मा ने बायें हाथ से हमारी अंगुली पकड़ ली और अपने साथ ही अंदर ले गया। वह तो आगे जाकर आदर[2] वाले स्थान पर बैठ गया और हमारी दृष्टि ऐसी चकाचौंध हुई कि हम दरवाज़े के पास ही दीवार की मूर्ति की भाँति दीवार के साथ लगकर खड़े रह गये। कुछ समय के पश्चात जब दृष्टि उस प्रकाश में काम करने लगी, तब सिर बेवश हो झुक गया और यह शब्द मुंह से निकला:–

घर मह घरु दिखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥
दीप लोअ पाताल तहि खंडमंडल हैरानु॥
तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु॥
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिवलाइ॥
अकथ कथा बीचारीअै मनसा मनहि समाइ॥
उलटि कमलु अंम्रिति भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ॥
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ॥
सभि सखीआ पंचे मिले गुरुमुखि निजघरि वासु॥
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानक ताका दासु॥ [मलार वार महला १]

जिस तरह पौष की काली (अंधेरी) पर निर्मल रात को आकाश में करोड़ों तारे चमकते हुए दिखाई देते हैं, उन तारों से करोड़ों गुणा अधिक तारे, जिनका प्रकाश करोड़ों सूरजों से भी अधिक था, उस महल की छत्त के साथ जड़े हुए इस तरह लग रहे थे कि मानो शहतीरों के स्थान पर ये अभौतिक[3] तारे ही डाले गये हों। इनकी दीवारें ऐसी चमकती थीं, जैसे कि योगी पुरुष का मस्तक चमकता है। फर्श ऐसा आश्चर्यजनक था, जैसे कि हमारे संसार में पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी का बिछौना किसी पारे के तालाब पर बिछा हुआ हो। अन्य जो-जो पदार्थ यहाँ पर देखे, वे ऐसे अनोखे थे कि उन्हें न तो कभी धरती

१. निहचल महलु नही छाइआ माइआ॥ [गउड़ी महला १]
२. रे रे दरगह कहै न कोऊ॥
आउ बैठु आदरु सुभ देऊ॥ [गउड़ी ब. अः मः ५]
३. जो तत्त्वों से न बना हो।

पर देखा है और न ही हमारी भाषाओं में उनके नाम हैं, और न ही जीव की इतनी समझ है, जिससे उनके स्वरूप को पकड़ सके, न ही हमारी बोली में ऐसे पद हैं, जिनमें उनका वर्णन किया जा सके। पर मृत्युलोक के जीवों की समझ के लिए हमारी भाषा में यों वर्णन किया जा सकता है:–

एक अत्यन्त सुन्दर जगमगाता हुआ तखत[१] बिछा पड़ा था, जिसकी बनावट ऐसी लगती थी कि बिजली से अधिक सूक्ष्म और तेज वाले पदार्थों का बना हुआ है। इसके ऊपर एक ज्योति स्वरूप विराजमान है, जिसकी कोई सूरत या शक्ल नहीं है। वह बैठा तो तखत पर है, पर जब ध्यान से देखें तो सारे ब्रह्मॉंडों में व्यापक दिखाई देता है और वनों, तृणों, पर्वतों[२] में समाया हुआ लगता है। इतना सूक्ष्म है कि कठोर-से-कठोर पदार्थों में गति रखता है। ज्योति वाला ऐसा है कि सावन की करोड़ों इकट्ठी की हुई बिजलियों का प्रकाश उसके सामने ग्रहण लगे चन्द्रमा से भी मैला-मैला लगता है। फिर वह तेज अत्यन्त प्यारा और सुहावना है। आँखों में ठण्ड और कलेजे की शीतलता प्रदान करता है, और चुम्बक पत्थर की भाँति प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचता है। उसके दर्शन का रस अकथनीय[३] था :–

"कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ"।। [गउड़ी कबीर जी]

इस तखत के आगे चारों ओर चन्द्रमा के मण्डल की भाँति अत्यन्त मनोहर घेरा डालकर अगणित ज्योतिमय रूपों वाले बैठे थे। हम जिस प्रकार जिह्वा द्वारा अपने मन की दशा बताते हैं, फिर भी दूसरे की समझ में कम ही आता है, वैसे उनकी दशा नहीं है। उनके भाव उनके चेहरों[४] पर प्रकट थे, और वे केवल प्रेम और आनन्द के लिखे हुए ग्रन्थ ही लगते थे। इन महात्माओं के स्वरूप दीखते तो थे, पर ये कुछ ऐसे तरल[५] रूप थे, जो हाथ से स्पर्श करने पर स्थूल वस्तुओं की भाँति नहीं लगते थे और न किसी तरह से भौतिक[६] ही लगते थे।

जिस समय हम अंदर पहुँचे थे तो उस समय ये सारे प्यारे बड़े प्यारी और देवी स्वर से मानो यह रसीला शब्द[७] गा रहे थे। यह कंठ से गाया जाने वाला या कानों से सुना जाने

---

१. तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु।। [मलार वार: म: १]
पुनः–सचु हुकमु तुमारा तखति निवासी।।
आइ न जावै मेरा प्रभु अबिनासी।।३।। [वडहंस म: ५]
२. बनि तिनि परबति है पारब्रहम।। [गउड़ी सु: म: ५]
३. ओइ सुख का सिउ बरनि सुनावत।।
अनद बिनोद पेखि प्रभ दरसन मनि मंगल गुन गावत।।१।।रहाउ।।
बिसम भई पेखि बिसमादी पूरि रहे किरपावत।।
पीओ अंमृत नामु अमोलक जिउ चाखि गूंगा मुसकावत।। [सारंग म: ५]
४. गुझड़ा लधमु लालु मथै ही परगटु थिआ।। [मा: ड: वा: म: ५]
५. सूक्षम।
६. तत्त्वों से बने हुए।
७. पंच सबद तह पूरन नाद।।
अनहद बाजे अचरज विसमाद।।

वाला संगीत नही था, पर कोई अजीब रसरूप नज़ारा था, नज़ारा था अथवा संगीत, क्या कहा जाये:–

परतिपाल प्रभु क्रिपाल कवन गुन गनी।।
अनिक रंग बहु तरंग सरब को धनी।।१।।रहाउ।।
अनिक गिआन अनिक धिआन, अनिक जाप-जाप ताप।।
अनिक गुनित धुनित ललित अनिक धार मुनी।।१।।
अनिक नाद अनिक बाज निमख-निमख अनिक सवाद
अनिक दोख अनिक रोग मिटहि जस सुनी।।
नानक सेव अपार देव तटह खटह बरत पूजा गवन भवन जात्र
करन सगल फल पुनी।।२।। [भैरऊ म: ५]

जब यह शब्द समाप्त हुआ तब ध्यानपूर्वक क्या देखा कि उस तखत के आगे एक और प्यारी सूरत निराकार रंग में राँती बैठी है। इनका रूप सब महात्माओं से इस तरह अधिक था, जिस तरह सजे हुए बरातियों में दूल्हे का रूप सबसे अधिक होता है और अनोखी झलक देता है। प्रेम, श्रद्धा, भाव भक्ति, परोपकार और पूर्ण ज्ञान के चिन्ह ऐसे दीप्त[१] थे, जैसे सूर्य के प्रकाश में गर्मी, रोशनी और शक्ति, उसके स्वरूप से पृथक हुए बिना ही, एक रूप में विद्यमान होती है। तखत के ऊपर बैठे हुए अगाध स्वरूप और इस परोपकार मूर्ति के सम्मुख बैठ दिव्य मूर्ति के बीच एक ऐसा प्रेम का डोरा चमकता हुआ दिखाई देता है, जो तखत के ऊपर बैठे हुए प्रेम के स्रोत के अनुग्रह[२] और सामने बैठे हुए की उस निर्विकार अवस्था से बना है, जो पूर्ण अहं के अभाव वाला होता है और 'भय संयुक्त प्रेम' और 'भाव संयुक्त ज्ञान' के रंग वाला होता है।

थोड़े से समय के पश्चात तखत पर बैठी हुई प्यारी ज्योतिमय सूरत ने ऐसा आश्चर्य-जनक दृश्य दिखाया, जिसका अनुवाद हमारी समझ के लिये यों हो सकता है–सामने बैठी

केल करहि संत हरि लोग।।
पारब्रहम पूरन निरजोग।।१।।
सूख सहज आनंद भवन।।
साध संगि बैसि गुण गावह तह रोग सोग नहीं जनम मरन।।१।।रहाउ।।
ऊहा सिमरहि केवल नामु।।
बिरले पावहि ओहु बिस्रामु।।
भोजनु भाउ कीरतन आधारु।।
निहचल आसनु बेसुमारु।।२।।
डिगि न डोलै कतहू न धावै।।
गुर प्रसादि को इहु महलु पावै।।
भ्रम भै मोह न माइआ जाल।।
सुन्नि समाधि प्रभू किरपाल।।३।।
ताका अंतु न पारावारु।।
आपे गुपतु आपे पासारु।। [रामकली म: ५]

१. प्रकाशमान।
२. पहला बाबे पाइआ बखश दर पिछों दे फिरि घाल कमाई।। [वारां भाई गुरुदास १-२४]

हुई सूरत को परम प्रसन्नता के साथ कहते हैं, "हे प्यारे! नौ शरीर[१] धारण करके और अनेकों कष्ट सहन करके, तैंने जो उपकार दुखी सृष्टि पर किया है, वह मेरी प्रसन्नता का कारण बना है। तैंने मेरा स्मरण दृढ़ कराया है और आपा निर्लिप्त रखा है। तैंने आश्चर्यजनक सेवा की है।"

यह संकल्प ऐसी अद्भुत खुशी का असर पैदा करने वाला था कि मानो सारी सभा खुशी और उपमा से–जल से भरे हुए समुद्र में और पानी भर जाने पर भी न उछलने की भाँति–उमंग में रंगी गई, पर उस नम्रता की निधि, सामने सुशोभित सूरत में से एक सुरीला स्वर गूँज उठा:–

मः १ ॥ न देव दानवा नरा॥
न सिध साधिका धरा॥
असति एक दिगरि कुई॥
एक तुई एकु तुई॥२॥
मः १ ॥ न दादे दिहंद आदमी॥
न सपत जेर जिमी॥
असति एक दिगरि कुई॥
एक तुई, एक तुई॥३॥
मः १ ॥ न सूर ससि मंडलो॥
न सपत दीप नह जलो॥
अन्न पउण थिरु न कुई॥
एक तुई एक तुई॥४॥
मः ॥१॥ न रिजकु दसत आ कसे॥
हमारा एकु आस वसे॥
असति एकु दिगर कुई॥
एक तुई, ऐकु तुई॥५॥
मः १ ॥ परंद ए न गिराह जर॥
दरखत आब आस कर॥
दिहंद सुई॥
एक तुई एकु तई॥६॥
मः १ ॥ नानक लिलारि लिखिआ सोइ॥

---

१. जोति ओहा, जुगति साइ, सहि काइआ फेरि पलटीऐ॥ [रामकली वाः सताः बलः]
पुनः–(दस गुरूओं को) भिन्न भिन्न सभहूं कर जाना॥
एक रूप किनहूं पहचाना॥
जिन जाना तिनही सिध पाई॥
बिन समझे सिध हाथ न आई॥ [बचित्र नाटक]

मेटि न साकै कोइ॥
कला धरै हिरै सुई॥
एकु तुई एकु तुई॥७॥ [माझ वार म: १]

इस आश्चर्यजनक स्तुति के शब्द की समाप्ति पर तखत के ऊपर विराजमान प्रेम मूर्ति जी के मनमोहक चेहरे से देखने वालों ने एक अत्यन्त सुन्दर तात्पर्य समझा, जिसे हमारी समझ में लाने के लिए श्री गुरू जी ने बाद में इस प्रकार वर्णन किया था :–

[अकल पुरखों बाच :– चौपाई]

जब पहिले हम स्रिसटि बनाई॥
दईत रचे दुसट दुखदाई॥
ते भुजबल बवरे ह्वै गए॥
पूजत परम पुरख रहि गए॥६॥
ते हम तमक तनक मो खापे॥
तिनकी ठउर देवता थापे॥
ते भी बलि पूजा उरझाए॥
आपन ही परमेसर कहाए॥७॥
महादेव अचुत कहिवायो॥
बिसन आप ही को ठहिरायो॥
ब्रहमा आप 'पारब्रहम' बखाना॥
'प्रभु' को 'प्रभु' न किनहूँ जाना॥८॥
तब साखी प्रभ असट बनाए॥
साख नमित दैबे ठहराए॥
ते कहैं 'करो हमारी पूजा ॥
हम बिन अवरु न ठाकुर दूजा'॥९॥
परम तत को जिन न पछाना॥
तिन कर 'ईसर' तिन कहु माना॥
केते सूर चंद कहु मानै॥
अगनि होत्र कई पौन प्रमानै॥१०॥
किनहूं प्रभु 'पाहन' पहचाना॥
नहात किते जल करत बिधाना॥
केतिक करम करत डरपाना॥
धरम राज को धरम पछाना॥११॥
जे प्रभु साख नमित ठहराए॥
ते हिआँ आए 'प्रभू' कहवाए॥
ताकी बात बिसर जाती भी॥
अपनी-अपनी परत सोभ भी॥१२॥

जब प्रभु को न तिनै पहिचाना॥
तब हरि इन मनुछन ठहराना॥
ते भी बसि ममता हुइ गए॥
"परमेसर" 'पाहन' ठहरए॥१३॥
तब हरि सिध साध ठहराए॥
तिन भी परम पुरख नहीं पाए॥
जे कोई होत भयो जग स्याना॥
तिन-तिन अपनो पंथ चलाना॥१४॥
परम पुरख किनहूँ नहि पायो॥
बैर बाद हंकार बढ़ायो॥
पेड पात आपन ते जलै॥
प्रभु कै पंथ न कोऊ चलै॥१५॥
जिनि जिनि तनिक सिध को पायो॥
तिन तिन अपना राहु चलायो॥
परमेसर न किनहूं पहिचाना॥
'मम' उचारते भयो दिवाना॥१६॥
परमतत्त किनहूँ न पहिचाना॥
आप आप भीतरि उरझाना॥
तब जे जे रिखि राज बनाए॥
तिन आपन पुन सिंमृित चलाए॥१७॥
जे सिंमृितन के भए अनुरागी॥
तिन तिन क्रिया ब्रह्म क्री तिआगी॥
जिन मन हरि चरनन ठहरायो॥
सो सिंमृितन के राह न आयो॥१८॥
ब्रहमै चार ही बेद बनाये॥
सरब लोक तिह करम चलाये॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी॥
ते बेदन ते भए तिआगी॥१९॥
जिन मत बेद कतेबन तिआगी॥
पारब्रह्म के भए अनुरागी॥
तिनके गूढ़ मत जे चलही॥
भाँति अनेक दूखन सो दलही॥२०॥
जे जे सहित जात संदेहि॥
प्रेभ को संग न छोडत नेह॥
ते ते परम पुरी कह जाही॥
तिन हरि सिउं अन्तरु[१] (दूरी) कछु नाही॥२१॥

१. दूरी।

जे जे जीअ जात ते डरे॥
परम पुरख तजि तिन मग परे॥
ते ते नरक कुण्ड मैं परही॥
बार बार जग मो बपु धरही॥२२॥
तब हरि बहुर दत्त उपजायो॥
तिन भी अपना पंथु चलायो॥
कर मो नख, सिर जटां सवारी॥
प्रभु की क्रिया न कछू बिचारी॥२३॥
पुन हरि गोरख को उपराजा॥
सिक्ख करे तिनहूँ बड राजा॥
स्त्रवन फारि मुन्द्रा दुअै डारी॥
हरि की प्रीति रीति न बिचारी॥२४॥
पुन हरि रामानन्द को करा॥
भस बैरागी को जिन धरा॥
कंठी कंठ काठ की डारी॥
प्रभु की क्रिआ न कछू बिचारी॥२५॥
जे प्रभ परम पुरख उपजाए॥
तिन तिन अपने राह चलाए॥
महाँदीन[1] तब प्रभु उपराजा॥
अरब देस को कीनो राजा॥२६॥
तिन भी एक पंथ उपराजा॥
लिंग बिना कीने सभ राजा॥
सभ ते अपना नामु[2] जपायो॥
सत्यनाम काहूं न दृढ़ायो॥२७॥
सभ अपनी अपनी उरझाना॥
पारब्रहम काहूं न पछाना॥ [बचित्र नाटक]

यह आज्ञा सुनकर सचे प्रेमनिधि, अत्यन्त कोमल, नम्रता के भण्डार और भक्ति के सरूप वाले के हृदय में से सच्चे प्रेम के जोश ने इस स्तुति के भाव का एक दिव्य राग उच्चारण करवाया :–

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध करमं॥
अछेदी अभेदी सदा एक धरमं॥
कलंकं बिना, निहकलंकी सरूपे॥
अछेदं, अभेदं, अखेदं, अनूपे॥१॥

१. मुहम्मद।
२. मैं रसूल हूं।

नमो लोक लोके, स्वरं लोकनाथे॥
सदैवं सदा सरब साथं अनाथे॥
नमो एक रूपे, अनेकं सरूपे॥
सदा सरब साहं सदा सरब भूपे॥२॥
अछेदं अभेदं अनामं अठामं॥
सदा सरबदा सिद्ध दा बुध धामं॥
अजंत्रं, अमंत्रं, अकंत्रं अभरमं॥
अखेदं, अभेदं, अछेदं अकरमं॥३॥
अगाधे, अबाधे, अगंतं अनंतं॥
अलेखं अभेखं अभूतं अगंतं॥
न रंगं न रूपं न जातं न पातं॥
न सत्रो न मित्रो न पुत्रो न मातं॥४॥
अभूतं अभंगं अभिखं भवानं॥
परेयं पुनीतं पवित्रं प्रधानं॥
अगंजे अभंजे अकामं अकरमं॥
अनन्ते बिअन्ते अभूसे अभरमं॥५॥ [ज्ञान प्रबोध]

इसके पश्चात् उस तेजमय तखत पर से उस अद्वितीय तेज पुंज, कारणों के कारण, परम स्वरूप, भक्तवत्सल देव जी के परम पावन मुख से एक पवित्र भाव, अपने सामने बैठे हुए प्यारे अनन्य भक्त के प्रेम से पूरित हृदय की ओर अधिक बेअंत प्रेम से परिपूर्ण करने के लिये, प्यार से स्निग्ध हुआ प्रकट हुआ, जिसको भक्त जी ने यों उच्चारण किया है :–

दास अनिंन मेरो निज रूप॥
दरसन निमख ताप त्रई मोचन परसत मुकति करत ग्रिह कूप॥१॥रहाउ॥
मेरी बाँधी भगतु छडावै, बांधै भगतु न छूटै मोहि॥
एक समै मोकउ गहि बाँधै तउ फुनि मो पै जबाबु न होइ॥१॥
मै गुनबंध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास॥
नामदेव जाके जीअ ऐसी तैसो ताकै प्रेम प्रगास॥२॥३॥ [सारंग नामदेव]

सारी सभा के पवित्र सिर झुक गये और सबने बड़े सत्कार सहित नमस्कार किया। कुछ पलों के बाद वह प्यारा भक्त, जो भक्ति के तारामण्डल में चाँद की भाँति छबि दे रहा था, तखत पर बैठे हुये सूरज की भाँति चमकते हुये प्रतिपालक के सामने इस तरह से खड़ा हुआ दिखाई पड़ा, जिस तरह कि हम सांसारिक जीवों में कोई आज्ञाकारी पुत्र, प्यारे पिता के सामने करबद्ध होकर और सिर झुकाकर पिता का आशीर्वाद लेने के लिये खड़ा हो जाता है। इस प्रकार की दशा में होकर उस शिरोमणि महान आत्मा ने प्रेममय नम्रता से इस भाव की पवित्र विनती की:–

किआ गुण तेरे सारि समाली मोहि निरगुन के दाता रे॥
बै खरीदु किआ करे चतुराई इहु जीऊ पिंडु सभु थारे॥१॥
लाल रंगीले प्रीतम मनमोहन तेरे दरसन कउ हम बारे॥१॥रहाउ॥

प्रभु दाता मोहि दीनु भेखारी तुम सदा सदा उपकारे॥
सो किछु नाही जि मैं ते होवै मेरे ठाकुर अगम अपारे॥२॥
किआ सेव कमावउ किआ कहि रीझावउ बिधि कितु पावउ दरसारे॥
मिति नही पाईऐ अन्तु न लहीऐ मनु तरसै चरनारे॥३॥
पावउ दानु ढीठु होइ मागउ मुखि लागै संत रेनारे॥
जन नानक कउ गुरि किरपा धारी प्रभि हाथि देइ निसतारे॥४॥६॥ [सूही म: ५]

पर इस विनती को श्रीमान तेज स्वरूप जी ने समाप्त होने से पहले ही अपने उस पवित्र शब्द[१] द्वारा, जिससे संसार की रचना की थी, यह वरदान दिया :–

मै अपना सुत तोहि निवाजा॥
पंथ प्रचुर करबे कहु साजा॥
जाहि तहाँ तै धरमु चलाइ॥
कबुध करन ते लोक हटाइ॥२६॥ [बचित्र नाटक]

यह नियम, यह वरदान, यह बड़प्पन, यह अकाल पुरुष प्रभु की अद्वितीय कृपा कुछ ऐसी अकथनीय और आश्चर्य के असर से भरी हुई थी कि जिसका समझना जीव मात्र के लिए अत्यन्त कठिन है। उस तेजस्वी तखत पर विराजमान तेज तथा प्रताप के पुंज पिता से भी अधिक कृपालु स्वरूप का प्रकाश प्रेम की लहर के साथ झुकता अपने सामने बैठे और अनुग्रहीत हुए प्यारे भक्त तक इस प्रकार फैला कि दोनों का रूप एकता के रंग में रंग गया। दृष्टि तो क्या, श्वांस रोककर बहुत गहरी लगाई गई टकटकी भी अन्तर झपकने के लिये आतुर हो गई मानो "द्वै ते एक रूप ह्वै गयो" इस मेल का रूप[२] समझना तो कठिन है पर आनन्द[३] की समझ के लिए आगे लिखे शब्द का भाव सहायता करता है :–

जल दुध निआई रीति अब दुध आंच नही मन ऐसी प्रीति हरे॥
अब उरझिओ अलि कमलेह बासन माहि मगन इकु खिनु भी नाहि टरै॥
पुनः– **निसि कुरंक जैसे नाद सुणि स्त्रवणी हीउ डिवै मन ऐसी प्रीति कीजै॥**
जैसी तरुणि भतार उरझी पिरहि सिवै इहु मनु लाल दीजै॥
मन लालहि दीजै, भोग करीजै हभि खुसीआ रंग माणे॥
पिरु अपणा पाइआ रंगु लालु वणाइआ अति मिलिओ मित्र चिराणे॥
[आसा महला ५ छंत]

इस आश्चर्यजनक प्राप्ति, अथवा मेल, या आत्मरस, या ब्रह्मानन्द की अद्भूत दशा में–जो "माई री पेखि रही बिसमाद॥ अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ताके स्वाद॥" वाले भाव को बताती है–उस अनन्य, अद्वितीय कृपापात्र के पवित्र और दैवी मुखारबिन्द ने फिर भी विनती ही की, जिससे इस भेंट के फल का कुछ-कुछ पता चला कि

१. एक कवावै ते सभि होआ॥ [मा: म: ५]
२. ओति पोति मिलिओ भगतन कउ जन सिउ परदा लाहिओ॥ [का: म: ५]
३. मगन भइओ प्रिअ प्रेम सिउ सूधन सिमरत अंग॥ [चउबोले म: ५]

एकता[१] तो थी, पर कुछ अत्यन्त आश्चर्यजनक[२] थी। वह विनती जो महापुरुष ने की थी, वह क्या थी:–

'पंथ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ'[३]

अब एक बार फिर उस जगदाधार, प्रेम पुंज की ज्योति में से एक और वरदान का भाव प्रकट हुआ जो इस प्रकार स्पष्ट होता है:–

"गाछहु पुत्री[४] राज कुआरि॥
नामु मणहु सचु दोत सवारि॥"

पुन:–[५]**'सरब सील ममं सीलं सरब पावन मम पावनह॥**
सरब करतब ममं करता नानक लेप छेप न लिप्यते॥३५॥ [सलोक सह:]

जब यह वरदान प्राप्त हुआ तब सारी संत मण्डली ने करबद्ध होकर प्रार्थना युक्त मानो इस भाव का आशीर्वाद गायन किया :–

मन करहला मेरे साजना हरि खरचु लीआ पति पाइ॥
हरि दरगह पैनाइआ हरि आपि लइआ गलि लाइ॥ [गउड़ी म: ४]

पुन:– **सतिगुर पासि बेनंतीआं मिलै नामु आधारा॥**
तुठा सचा पतिसाहु तापु गइआ संसारा॥१॥
भगता की टेक तूं संता की ओट तूं सचा सिरजनहारा॥१॥रहाउ॥
सचु तेरी सामगरी सचु तेरा दरबारा॥
सचु तेरे खाजीनिआ सचु तेरा पासारा॥२॥
तेरा रूपु अगंमु है अनूपु तेरा दरसारा॥
हउ कुरबाणी तेरिआ सेवका जिन हरिनामु पिआरा॥३॥
सभे इछा पूरीआ जा पाइआ अगम अपारा॥
गुरु नानकु मिलिआ पारब्रहमु तेरिआ चरणा कउ बलिहारा॥४॥१॥४७॥

[सूही म: ५]

---

१. गुरू नानक देव गोबिन्दु रूप॥ [बसन्त म: ५]

२. सुनु सखी पीअ महि जीउ बसै जीअ महि बसै कि पीउ॥
जीउ पीउ बूझहु नहीं घट महि जीउ कि पीउ॥२१६॥ [सलोक कबीर जी]

३. ठाढ भयो मै जोरि कर बचन कहा सिर न्याइ॥
पन्थ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ॥१॥३०॥ [बचित्र नाटक]

४. पंजाबी बोली में अत्यन्त प्यार की दशा में लड़की को 'पुत्र' और 'बच्चू' कहकर पुकारते हैं और पुत्र को 'बचड़ी' और 'बचूंगड़ी' कहकर पुकारते हैं। पहले 'मैं अपनो सुत' कहने और फिर 'पुत्री' कहने का भाव इसी प्रेम का सूचक है। ईश्वर के दरबार में अगम्य प्रेम है, जिसे मनुष्य की समझ में लाने के लिए पुलिंग या स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। पुत्री यहाँ पर अत्यन्त कोमल और लाड़मय भाव का सूचक है।

५. तेरे में सारा धर्म मेरा होगा, तेरे में सारी पवित्रता मेरी होगी, तेरे सारे कर्म मेरे कर्म होंगे। हे नानक! तुझे कोई कष्ट नहीं होगा। गुरू नानक देव जी की ज्योति जो दस पातशाह बनकर प्रकट हुई यही वरदान लेकर जगत में आई थी।

अब वह समय आया जिसे सांसारिक लोग वियोग कहते हैं, पर सांसारिक लोगों के वियोग में तो संयोग का नाम तक नहीं रहता, पर यह वियोग कुछ दैवी ढंग का था। इस वियोग के हो जाने पर भी संयोग में कोई अन्तर नहीं आता। सुरत दूर नहीं होती। प्रकृति के बने हुये शरीर का मानो एक गिलाफ सा उस अभौतिक रूप पर चढ़ जाता है, पर उस संयोग में फर्क नहीं डालता। जैसे किसी जलते हुए दीये के इर्द-गिर्द शीशे का एक गिलाफ रखने से उसके प्रकाश में कोई बाधा नहीं पड़ती; पर हाँ एक पर्दा सा शिखा के आसपास अवश्य ही हो जाता है। चाहे यह पर्दा हमारी समझ में तो नाम मात्र ही है, पर जिन प्रेमियों को इस वियोग का दुख सहना पड़ता है, वे ही इसकी पीड़ा को ठीक प्रकार समझते हैं। आश्चर्य की बात है–न तो संयोग में कोई फर्क पड़ता है, न स्वरूप ही भूलता है, न प्यार कम होता है, न दूरी होती है, फिर वियोग; पर इसकी यथार्थ समझ कठिन है। इस विरह की पीड़ा को उसी सच्चे प्रेम-पुतले महापुरुष ने आप ही इस प्रकार वर्णन किया है :–

तिन प्रभ जब आइसु मुहि दीआ॥
तब हम जनम कलू महि लीआ॥४॥
चित न भयो हमरो आवन कहि॥
चुभी रही स्रुति प्रभु चरनन महि॥
जिउं तिउं प्रभु हमको समझायो॥
इम कहकै इह लोक पठायो॥५॥

तात्पर्य यह कि प्यारे पिता द्वारा अनुग्रहीत हुये, अहं का संपूर्ण अभाव कर चुकने वाले परोपकार के अवतार, श्री दिव्य स्वरूप महात्मा, आज्ञानुसार आनन्द रूपी महल में से नगर में आये। समस्त संत मण्डली सत्कार के लिए साथ आई। क्या देखते हैं कि एक अत्यन्त मनोहर पुष्प विमान पड़ा है, जिसे 'हुकम' करके पुकारते हैं। इसमें यह शक्ति है कि आत्मिक शरीरों को उसमें बैठाकर, कुछ भी समय व्यय किये बिना ही, इच्छा होते ही, इच्छित जगह पर पहुँचा देता है। इसकी रचना भी अभौतिक है। इसको उठाने वाले चार देवता प्रकाश रूप हैं, जिन्हें सहनशीलता, शुक्र, आज्ञा और रजाय कहकर पुकारते हैं।

जब वह दैवी महात्मा, जो पिता की आज्ञा पाकर जगत के दुख दूर करने के लिये, इस प्रकार के सुख स्थान से दुखों और सुखों का भागी होने के लिये उस पुष्प विमान पर जा बिराजा, तब सारे महात्माओं ने, जो संसार के आरम्भ से अब तक हुये थे, और सारे संतों, साधुओं, फकीरों ने, जो उस अभौतिक और निराकार शहर के वासी थे, बड़े प्रेम सहित सिर झुकाया। फिर बड़े सत्कार और श्रद्धा सहित वाहिगुरू के प्रेम में भरकर यह गाया[१] :–

१. कोटि बिसन अवतार संकर जटाधार॥
चाहहि तुझहि दइआर मनि तनि रुच अपार॥
अपार अगम गोबिन्द ठाकुर सगल पूरक प्रभु धनी॥
सुर सिध गण गन्धरब धिआवहि जख किन्नर गुण भनी॥
कोटि इन्द्र अनेक देवा जपत सुआमी जै जैकार॥

भजसतुयं॥
भजसतुयं॥रहाउ॥
अगाधि बिआधि नासनं॥
परेयं परम उपासनं॥
त्रिकाल लोक मान हैं॥
सदैव पुरख परधान हैं॥६॥१४॥
थतसतुयं थतसतुयं॥रहाउ॥
क्रिपाल दियाल करम हैं॥
अंगज भंजि भरम हैं॥
त्रिलोक लोक पाल हैं॥
सदैव सरब दिआल हैं॥७॥१५॥
जपसतुयं॥
जपसतुयं॥रहाउ॥
महानं मोनि मांन हैं॥
परेव परम प्रधान हैं॥
पुरान प्रेत नासनं॥
सदैव सरब पासनं॥८॥१६॥
प्रचंड अखंड मंडली॥
उदंड राज सुथॅली॥
जगंत जोति ज्वालका॥
जलंत दीप मालका॥५॥१७॥ [गिआन प्रबोध]

अब वह पुष्प विमान नीचे को चला। करोड़ों देवता, संत, महात्मा, पूर्णपुरुष पंक्ति बद्ध खड़े देखते थे। सके हृदय श्रद्धा और सत्कार से भरे हुए थे। चारों ओर से नमस्कार हो रहा था और जय जय के शब्द तथा पुष्प वर्षा हो रही थी।

"जै देव सबद पुकारही॥
सभ फूल फूलन डारही॥"

जब यह विमान उस शहर में से चला गया, तब दैव सृष्टि के लोग आपस में बातें कर रहे थे कि आज कैसा आश्चर्यजनक महान समय बँधा है। देखिये, संसार में जाकर कोई महात्मा 'अहं' आदि बातों से बचकर नहीं आया; जो जो भी गया, वह प्रकृति के

अनाथ नाथ दइआल नानक साध संगति मिलि उधार॥२॥
कोटि देवी जाकउ सेवहि लखिमी अनिक भाति॥
गुपत प्रगट जाकउ अराधहि पउण पाणी दिनसु राति॥
नखिअत्र ससीअर सूर धिआवहि बसुध गगना गावए॥
सगल खाणी सगल बाणी सदा सदा धियावए॥
सिमृति पुराण चतुर बेदह खट सासत्र जाकउ जपाति॥
पतित पावन भगत वछल नानक मिलीऐ संगि साति॥ [आसा मः ५]

शरीर के कारण या तो कर्तार को भूलकर अपनी पूजा करवाने लगा या ईश्वर के नाम के साथ अपना नाम भी जपाया और कईयों ने तो केवल अपनी ही पूजा करवाई है। पर यह स्वरूप अत्यन्त पवित्र और दृढ़ विश्वास वाला निकला है, जिसने प्रभु के साथ अभेद होते हुये नौ शरीर धारण करके दो सौ वर्षों तक संसार को फिसला देने वाले मैदान में धर्म की ध्वजा झुलाई और अपने आपका अभाव[१] और कर्तार की पूजा को दृढ़ कराने का नियम अपनाया। कर्तार के हजूर इन्हें जितनी शोभा मिले, उतनी ही कम है। पुत्र होने का मान, जिसका तात्पर्य ऐसी समीपता है जिसमें 'दूरी' न हो, सबसे श्रेष्ठ है, जो इनके स्वरूप में आई है। यह दशम शरीर अत्यन्त कष्टों के सामने जा रहा है। हर प्रकार की शारीरिक मुसीबतें इस शरीर के सामने बल धारकर आयेंगी, और कठोर होकर लगेंगी, पर अंत में टूट जायेंगी और संसार में नौ शरीर धारण करके तैयार किये गये बग़ीचे की रक्षा करके आप उसे अटल होने का वरदान देकर अडिग रहेंगे।

इस समय बहुत से महात्मा जो पहले नौ शरीरों के साथ संसार में समय समय पर जाकर सेवा करते रहे थे, वे अब भी पुष्प विमान के साथ-साथ गये। कई तो पहले ही जा चुके थे, और कई बाद में भी गये, जिनको संसार में उनकी सेवा में परोपकार के लिये कष्ट सहने थे।

यह पुष्प विमान मर्त्यलोक में पहुँचकर हेमकुण्ट पर्वत पर सप्तश्रृंग वाले ठिकाने पर गया। वहाँ के महात्मा लोग बड़े अदब और प्यार सहित दंडवत् करके साथ होकर चल दिये। फिर पुष्प विमान हिन्दुस्तान देश के पटना नामक शहर में पहुँचा। यहाँ पर एक सुन्दर भवन में माता गुजरी जी नामक एक महान पवित्र,[२] प्रभु में जुड़े मन वाली माता विराजमान थी। यह माता श्री गुरू तेग़ बहादुर जी की धर्मपत्नी थी। गुरू साहब जी तो आसाम देश को गये हुऐ थे और इस पवित्रात्मा जी को इस शहर में दैवी महात्मा के आगमन के लिये छोड़कर गये थे।

जब यह पुष्प विमान इस महल पर पहुँचा तब संसार में आने पर इनके तेज की झलक, पहुँच वाले सारे संतों महात्मों को इस तरह पड़ी कि उस समय दैवी शक्तियों सहित अपने आत्मिक स्वरूपों में वहाँ पर पहुँचे और सभ के चरणों पर सीस झुकाकर यह स्तुति गाई :–

जनम मरन दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥२॥ [सूही म: ५]

...   .

प्रगटे गुपाल गोबिन्द लालन कवन रसना गुण भना॥ [बिहा म: ५]

इस प्रकार मनोहर स्वर में गाकर प्रश्न करने लगे कि आपके संसार में आने का क्या

१. होंदा फड़ीअगु नानक जाणु॥
ना हउ ना मैं जूनी पाणु॥ [मलार वार म: ५]
२. तात मात मुर अलख अराधा॥
बहु विधि जोग साधना साधा॥ [बचित्र नाटक]

प्रयोजन है। आपका तेज धरती सह नहीं सकी। अचंभा होकर 'कि इतना महान अवतार किस लिये प्रकट हुआ है'। दास आपके चरणों की धूल प्राप्त करने के लिए हाज़िर हुऐ हैं।

तब श्री दुष्टदमन महात्मा जी ने जो उत्तर दिया वह अपना अर्थभाव यों बताता है :–

चौपाई

इह कारनि प्रभु मोहि पठायो॥
तब मैं जगत जनमु धरि आयो॥
जिम तिन कही तिनै तिम कहिहौ॥
अउर किसू ते बैर न गहिहौ॥३१॥
जे हमको परमेसर उचरि है॥
ते सभ नरकि कुंड महि परिहै॥
मोको दासु तवन का जानो॥
या मैं भेदु न रंच पछानो॥३२॥
मैं हौं परम पुरख को दासा॥
देखनि आयो जगत तमासा॥
जो प्रभु जगति कहा सो कहिहौ॥
मृतलोक ते मौन न गहिहौ॥३३॥

नाराज छंद

कहियो प्रभु सु भाखि हौ॥
किसू न कान राखि हौ॥
किसू न भेख भीज हौ॥
अलेख बीज बीज हौ॥३४॥
पखाण पूज हौ नहीं॥
न भेख भीज हौ कहीं॥
अनन्त नाम गाइ हौ॥
परम पुरख पाइ हौ॥३५॥

चौपाई

जिन जिन नाम तिहारो धिआइआ॥
दूख पाप तिन निकटि न आइआ॥
जे जे अउर धिआन को धरही॥
बहिस बहिस बादन ते मरही॥४१॥
हम इह काज जगत मो आए॥
धरम हेत गुरदेव पठाए॥
जहां तहां तुम धरम बिथारो॥
दुसट दोखीअनि पकरि पछारो॥४२॥

याही काज धरा हम जनमं॥
समुझि लेहु साधू सभ मनमं॥
धरम चलावन संत उबारन॥
दुसट सभन को मूल उपारन॥४३॥
जे जे भए पहल अवतारा॥
आपु आपु तिन जापु उचारा॥
प्रभु दोखी कोई न बिदारा॥
धरम करम को राहु न डारा॥४४॥
जे जे गउस अंबीआ भए॥
"मैं" "मैं" करत जगत ते गए॥
महापुरख काहू न पछाना॥
करम धरम को कछू न जाना॥४५॥
अवरन की आसा किछू नाही॥
एकै आस धरो मन माही॥
आन आस उपजत कछु नाही॥
वाकी आस धरो मन माही॥४६॥.........
इह कारनि प्रभु हमै बनायो॥
भेदु भाखि इह लोक पठायो॥
जो तिन कहा सु सभन उचरों॥
डिंभ विंभ कछु नैकु न करों॥५०॥.........
सुआंगन मैं परमेसुर नाहीं॥ —
खोज फिरै सभ ही को काही॥
अपनो मनु कर मो जिह आना॥
पारब्रहम को तिनी पछाना॥५५॥

[दोहरा]

भेख दिखायो जगत को लोगन को बसि कीन॥
अंति काल काती कटयो बासु नरक मो लीन॥५६॥

[कबि बाच ॥दोहरा॥]

जो निज प्रभ मो सो कहा सो कहिहों जग माहि॥
जो तिह प्रभ को धिआइ है अन्त सुरग को जाहि॥५८॥

यह उत्तर सुनकर सबने नमस्कार किया और कहा कि 'आप धन्य हैं, धन्य'। फिर दंडवत करके सब अपने आत्मिक स्वरूपों में मानो विदा हो गये। पल भर के पश्चात् सारे भवन में यह मंगलमय समाचार प्रकट हो गया कि एक आश्चर्यजनक बालक ने गुरू साहब के ग्रह में जन्म लिया है और अचंभे वाले कौतुक हुये हैं। पहले तो ऐसा प्रकाश हुआ कि मानो हज़ारों बिजलियाँ चमकती हैं। फिर सुरीले और दैवी स्वरों में शब्द सुने गये और जय

जय का शब्द हुआ। फिर बातों की और प्रसन्नता की हंसी की आवाज़ आई, पर समझ में कुछ न आया। बालक का रूप चाँद को मात करता है। वह रोया तक नहीं, मुस्करा रहा है। माता भी बहुत प्रसन्न है। माता जी को तो कई दिव्य दर्शन भी हुये हैं, जिनका व्योरा वे बता नहीं सकती। इस प्रकार के मंगलाचार की खबर सारे फैल गई।

अब हमने भी घर को लौटना चाहा तो चारों ओर अंधेरा छा रहा था और हाथ फैलाने से दिखाई नहीं देता था। जी घबड़ा गया।[१] इस घबड़ाहट में गुरू जी के आगे विनती की कि, 'पातशाह कृपा करके आप ही रास्ता बताइए'। इतने में प्रकाश की एक धारा दिखाई दी। जब इसकी सीध में चले तो आसाम देश में पहुँचे जहाँ साध संगत का दीवान लगा हुआ था। गुरू साहब गुरू तेग बहादुर जी समाधिस्थित हो रहे थे और रागी सिक्ख 'आसा की वार' का कीर्तन कर रहे थे। इस समय गुरू साहब जी हंस पड़े। इस हँसी को देखकर सभी सिक्ख आश्चर्य चकित हो गये और एक प्रेमी ने ऐसी नम्रता से हाथ जोड़े कि जिससे गुरू साहब जी समझ गये कि यह हमारी हंसी का कारण पूछता है। तब करूणानिधि गुरू जी ने कहा "भाई साध संगत जी गुरू नानक देव जी के चरित्र बड़े आश्चर्यपूर्ण हैं। अब संसार की रक्षा करने के लिए दसमा जामा प्रगट हुआ है।"

तब एक सिक्ख ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज नवमे जामे तो आप प्रत्यक्ष बैठे हैं फिर दसमे जामे का क्या तात्पर्य?"

गुरू जी–सच है, पर इस खेल का पता खेलने वाले को है। हाँ तुम इस प्रकार समझ सकते हो कि वह ज्योति जो नौ जामों में जगत का उद्धार करती रही है, आज उसी ज्योति को दसवें जामे में प्रवेश करके काम करने की आज्ञा हुई है और उस जामे का अवतार आज हुआ है।

एक सिक्ख–सच्चे पातशाह हमारी समझ काम नहीं करती। क्या आप हमें छोड़ जायेंगे?

गुरू जी–नहीं भाई। अभी समय नहीं आया। पर जब हम इस जामे को छोड़ देंगे तब गुरू नानक देव जी की ज्योति उस जामे में काम करेगी; जिसका पटने में अवतार हुआ है।

एक सिक्ख–हमारी अकल मोटी है। महाराज आपकी ज्योति क्या और जामा पहनेगी और जो जामा आज प्रगट हुआ है क्या वह अवतार नहीं हैं?

गुरू जी–भाई सिक्खो, यह बात एक दिये से दूसरे दिये को जलाने वाली बात है। वह जामा भी अवतार ही है और गुरू नानक की ज्योति से खाली भी नहीं। पर हम अभी इस रूप को छोड़कर उसमें प्रवेश कुछ समय ठहर कर करेंगे।

---

१. सुपनै ऊभी भई गहिओ की न अंचला।।
सुन्दर पुरख विराजित पेखि मनु बंचला।।
खोजउ ताके चरण कहहु कत पाईअै।।
हरिहां सोई जतंनु बताइ सखी प्रिउ पाईअै।। [फुनहे मः ५]

इस समय चार पाँच पास रहने वाले सिक्ख सोच में पड़ गये कि सतगुरू सारी रात क्यों समाधिस्थित रहे हैं। आसन से उठे ही नहीं। पता नहीं आत्मिक दुनिया में आज रात क्या होता रहा है, इनकी लीला को ये ही जानें।[1]

साध की सोभा साध बनिआई" [गउ: सुख:]

फिर एक सिक्ख ने सोच-सोच कर कहा कि महाराज जी क्या आपके घर साहबजादे पैदा हुए हैं?

गुरू जी—हाँ अगम्य पुरुष प्रगह हुआ है।[2]



---

१. आपे हरि इक रंग है आपे बहु रंगी।।
जो तिसु भावै नानका साई गल चंगी।। [तिलंग म: ४]

२. वह प्रगटिओ मरद अगंमड़ा वरियाम अकेला।। [भा: गु: द्वितीय]

३ भीखन शाह फकीर

कर्तार के रंग देखिये। कहाँ पंजाब और पंजाब का केन्द्र रामदास पुरा और इसके पास का गाँव गुरू की रौड़, जहाँ नवम गुरू जी कुछ समय के लिए विराज रहे थे कहाँ वाहिगुरू के ज्ञान के प्रकाश करने का उद्यम और उस उद्यम का उत्साह–

'ब्रहमगिआनी परउपकार उमाहा'

श्री गुरू तेग़ बहादुर जी को आसाम देश में प्रचार करने के लिए अपने सीस पर विराजमान करवाकर ले चला। इस देश में श्री गुरू नानक देव जी ने सत्यनाम का छींटा दिया था। वह अंकुर अब कुछ कुम्हलाने लगा था। उसे हरा-भरा करने के लिये श्री गुरू जी तैयार हुये। पंजाब छोड़ा और आनन्द भवन आनन्दपुर भी छोड़ा। सृष्टि की चादर श्री गुरू तेग़ बहादुर पूर्व की ओर चल दिये। स्थान-स्थान पर धर्म का उपदेश करते हुए अनेक तीर्थों पर पहुँचकर आपने तीसरे जामे के कौतुक की भाँति "तीरथ उदमु सतिगुरू कीआ सभ लोक उधरण अरथा"।

सृष्टि का उद्धार करते हुए, भय भ्रम में से निकालकर, सत्यनाम के पुल पर चढ़ाते हुए, जीवन का दान, नाम का दान, विश्वास का दान, भरोसे का दान, सिदक का दान, अन्न का दान, वस्त्र का दान, मीठे वचन का दान, प्रेम का दान करते हुए त्रिवेणी पहुँचकर उस स्थान के वासियों को सच्ची त्रिवेणी का मार्ग बताया:–

"कबीर गंग जमुन के अन्तरे सहज सुन्न के घाट॥
तहा कबीरै मटु कीआ खोजत मुनि जन बाट॥५२॥" [सलोक कबीर]

त्रिवेणी नदी में फँसे हुए अनेकों को निकालकर इस सहजपद की त्रिवेणी में पहुँचाया और भारी पुण्यदान किये:–

जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥" [सूही म: ५]

फिर आप पटने शहर में पहुँचे। चाचा फग्गू जैसे प्यारे और भी अनेकों प्रेमी इस देश में रहते थे। उस देश का कृतार्थ करते हुये पटने में ठहर गये।

इस देश ने पहले एक बुद्धिमान का दर्शन किया था,[१] जिसने नेकी के चश्मे[२] की ओर से चुप्पी साधकर केवल नेकी का ही प्रचार किया था। अत: ज़रूरत थी कि इस धरती की वह भूख, जो कादिर विहीने कुदरत के प्रमियों में रहती है, पूरी हो। अब उस धरती में उसे अवतार लेना था, जो पूर्ण नेकी को जानता था, पर जहाँ से नेकी निकली है उसका भी पूरी तरह जानकार था। उसे यह कहने की जरूरत नहीं थी कि 'पर्दे के बाद पर्दा है', बल्कि वह यह कह सकता था कि:–

---

१. बुद्ध जी

२. ईश्वर।

आदि पुरख अबिगत अबिनासी।।
लोक चतुरदस जोति प्रकासी।। [अकाल उस:]

जिसे केवल हुकम का पता मात्र ही नहीं बताना था, पर हुकम के मालिक कर्तार का भी पूरा ज्ञान देकर यह बताना था:–

फोकट धरम बिसार सभै करतार ही को करता जीअ जानयो।।१२।। [३३ स्वै:]
पुन:– **सिध सुयंभु प्रसिद्ध सभै जग एक ही ठऊर अनेक बखाने।।**
रे मन रंक कलंक बिना हरि तै किह कारन तेरे न पछाने।। [३३ स्वै:]

हां, उस धरती को यह गौरव प्राप्त होना था कि संसार का सबसे बड़ा अवतार, सबसे बड़ी तबदीली पैदा करने वाला, गुरू, अवतार, कवि विद्वान, नीतिवेत्ता, सेनापति, गृहस्थी, साधू, सिद्ध, त्यागी, उपदेशदाता, करनी और कथनी का सूरमा यहां प्रकट हुआ है। इसीलिये प्रकाश पुंज श्री गुरू तेग़ बहादुर जी 'तेग़ बहादुर सी क्रिया करी न किनहूँ आन' इस स्थल पर विराजमान हो गये थे। कुछ समय यहाँ रहकर फिर परिवार को यहाँ छोड़कर आप आसाम चले गये थे।

यहां ही संवत् १७२३ का भाग्यवान पौष का महीना आ गया। पहले भी तो सात शताब्दियों से कई पौष इस भारत पर आ रहे थे, पर ज़ुल्म का जाड़ा सदा ही पड़ता रहा, और यह सताई हुई भारत भूमि प्यारे के प्रेम में मानों यों पुकारती रही:–

पोखि तुखारु पड़ै वणु तिणु रस सोखै।।
आवत की नाही मनि तनि वसहि मुखे।।
मनि तनि रवि रहिआ जग जीवनु गुर सबदी रंगु माणी।।
अण्डज जेरज सेतज उतभुज घटि घटि जोति समाणी।।
दससनु देहु दइआ पति दाते गति पावउ मति देहो।।
नानक रंगि रवै रसि रसीआ हरि सिउ प्रीति सनेहो।।१४।। [तुखारी म: १]

पर अब कैसा पौष आया? दुख हरने वाला। प्यारे को संसार में ले आने वाले इस पौष की महिमा यों शोभायमान हो रही है:–

पोखि तुखारु न विआपई कंठि मिलिआ हरि नाहु।।
मनु बेधिआ चरनारबिन्द दरसनि लगड़ा साहु।।
ओटु गोविन्द गोपाल राइ सेवा सुआमी लाहु।।
बिखिआ पोहि न सकई मिलि साधू गुण गाहु।।
जह ते उपजी तह मिली सची प्रीति समाहु।।
करु गहि लीनी पारब्रहमि बहुड़ि न विछुड़ीआहु।।
बारि जाउ लख बेरीआ हरि सजण अगम अगाहु।।
सरम पई नाराइणै नानक दरि पईआहु।।
पोखु सुहंदा सरब सुख जिसु बखसे वे परवाहु।।११।। [माझ म: ५]

ऐसे प्यारे पौष का, जिसमें "बिखिआ पोहि न सकई" का प्रबन्ध करने वाला तेजस्वी महाराज प्रगट हुआ। एक दिन आया, जिस दिन सप्तमी तिथि थी। इस भाग्य भरे दिन सवा

पहर रात रहते, धर्म की चादर, धर्म धुरंदर, पूर्ण गुरू अवतार श्री गुरू तेग़ बहादुर जी के घर में माता गुजरी जी ने सुलक्षणे गृह में–श्री कल्ग़ीधर जी पीरी मीरी के मालिक श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने अवतार धारण किया।[1] महापुरुषों के अवतार धरती के उद्धार के लिये हुआ करते हैं। जब कभी पृथ्वी पर पाप की अति हो जाती है तब आत्म सृष्टि में से कोई उपकारी आता है, पर अब की तो परोपकारियों के सिरताज आ गये और एक बार आकर चले नहीं गये, वरन दस जामे धारण किये। यह अब दसवां जामा उसी ज्योति ने धारण किया है। आत्मिक सृष्टि में आत्म प्रकाश होना स्वाभाविक बात थी। शारीरिक सृष्टि में यदि कोई राजा, पातशाह कहीं जाता है तो शारीरिक उत्साह होते हैं, जिनको करने वाला शरीर में छिपकर बैठा हुआ मन होता है और मन को शक्ति आत्मा देता है। जब आध्यात्मिक सृष्टि के तेजस्वी महापुरुष आये, तब आध्यात्मिक कौतुक प्रकट होने ज़रूरी थे, और आध्यात्मिक रसिकों पर इसका असर होना और भी कुदरती बात थी। सो उस समय एक तपस्वी फकीर[2] ने इस प्रकाश को देखकर सीध बांधी और उसी सीध पर पटने पहुँचा। श्री गुरू जी के द्वार पर जाकर नऐ आये हुए दाता जी के दर्शनों के लिए अर्ज़ की। आगे इस घर में आत्म रसिकों की इस प्रकार कदर होती थी, जिस प्रकार सोने चाँदी के व्यापारी, सराफ़ के घर आदर पाते हैं। दाई दैवी बालक को गोद में लेकर आई और साईं जी ने नमस्कार करके अपना माथा सफल किया। शरीर के रहते हुये कई बार फ़कीरों को भी पर्दा रहता है और संशय उठते हैं। अब फकीर साईं के जी में सेशय उठा। परीक्षा का शौक आया कि देखें ये हिन्दू मत के होंगे या इस्लाम के। उन्होंने इस को देखने की आशा धारण करके, कि यदि दूध गिरायेंगे तो मुसलमान और यदि पानी गिरायेंगे तो हिन्दू, दो कुल्हड़ लिये, एक में दूध और दूसरे में पानी भरकर दैवी बालक जी के आगे रख दिये। पर कौतुकी बालक ने एक पैर से दोनों को उलटा दिया। पानी और दूध दोनों गिरकर रल मिलकर एक हो गये। प्रत्यक्ष उपदेश दे दिया कि तअस्सुब का कुल्हड़ मुसलमानों का और वर्णाश्रम के हठ का कुल्हड़ हिन्दुओं का तोड़कर जल और दूध का एक–खालसा–कर देंगे। जल और दूध की प्रीति प्रसिद्ध है। श्री गुरू वाक्य है :–

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होइ॥
आवटणु आये खवै दुध कउ खपणि न देइ॥ [सिरी रागु मः १]

यों हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के साथ प्यार करने वाले बनाऊँगा। दूध को आग पर रखने से पानी जलता है, दूध को नहीं जलने देता। दूध अपने प्यारे का दुख देखकर

१. श्री गुरू जी ने अपने अवतार का वर्णन अपने ही मुख से इस प्रकार किया है:–
मुर पित पूरब कीयसि पिआना॥
भांति भांति के तीरथ नाना॥
जब ही जाति त्रिवेणी भये॥
पुन्न दान दिन करत बितए॥१॥
तीह प्रकाश हमारा भयो॥
पटना सहर बिखे भव लयो॥ [बचित्र नाटक]

२. कोहड़ाम का शाह भीख, भीखनशाह। आप ठसका नामक गाँव में रहे हैं जो थानेसर तहसील में है।

उछलता है और आप आग पर पड़कर उसे बुझा देता है और यदि उछलते हुये दूध को फिर पानी मिल जाये तो खुश होकर लौट जाता है। फ़कीर जी समझ गये कि यह प्रेम अवतार दोनों को नम्रता की धरती पर डालकर प्रेम सहित गूंथेगा। यह देखकर उसका प्रेम और बड़ा कि शुक्र है इस दुखी सृष्टि का उद्धार होगा। फिर फकीर अपने और भी धन्य भाग समझकर सीस झुकाकर विदा हुआ। फकीर की आयु पूरी हो चुकी थी, वरना वह देवता कि इस वाहिगुरू के नवाजे बालक ने लोगों में से किस तरह 'मैं' निकालकर उनसे भेट में सीस लिये और किस तरह 'अमृत' तैयार करके सृष्टि मात्र को जोड़ने के लिये मानो जोड़ने वाला मसाला तैयार कर दिया। किस तरह हिन्दू सिक्ख हो गये और किस तरह बुद्धू शाह जैसे मुसलमान सिक्ख मत धारण करके अपने सुपुत्र भेंट करके कृत्य-कृत्य हुये। किस तरह प्राणी मात्र के लिये अमृत का दरवाजा खुल गया। किस तरह देश को स्वतन्त्रता मिली। किस तरह संसार को सच्चा धर्म मिला।

सूचना—इस तरह पटने में श्री दसम गुरू जी का अवतार हुआ। बालपन के कौतुक जो पटने में हुये, उनका नमूना मात्र 'मेरा बाला प्रीतम' आगामी पृष्ठों में दरसाया गया है।



४ मेरा बाला प्रीतम

आज चांद नहीं चढ़ा, पर हे चांद, सुन्दरता केवल तेरे ही तो मुहताज नहीं। सुन्दरता एक इलाही जलवा है। कभी तुझ में से झाँकती है, कभी बहते पानी में से झलकती है। कभी पहाड़ों में से उमड़-उमड़ पड़ती है। कभी बनस्पति में से प्रफुल्लित हो उठती है। कभी बिजली की डरावनी गर्ज में से चमकारा मार जाती है। कभी समुद्र की लहरों में से तैर कर आती है। कभी कंठ की नालियों और साज़ों के तारों से प्रकाश करती है। कभी रणभूमि के गोलों में से आवाज़ दे जाती है। कभी संगमरमर, कभी ईंट, चूने, काठ, लोहे में से प्रकट होती है। कभी गत्ते, कागज़ और रंग में से कभी अक्षरों, वाक्यों के भावों में से दर्शन देती है। कभी सुन्दरियों के नैनों में झपकती है। कभी सुन्दर मूछों और बांके शरीरों में से फूट-फुटकर निकलती है। सुन्दरता! तू स्थूल वस्तु नहीं है, पर स्थूल ठिकानों से जलवे खूब मारती है। तू दैवी है अथवा दैव है। तू आप है कि आपे का प्रकाश है? देख एक बुद्धिमान कह रहा है कि जो वस्तु लाभदायक है, वही सुन्दर है, पर तेरे रसिक जानते हैं कि तू कोई आदेश की देवी है। हां, किसी एक की अथवा बहुतेरों की आवश्यकता पूरी करने वाली भली वस्तु है, पर सुन्दरता तो अनावश्यकताओं, आवश्यकताओं से अलग चमकती है। हां सुन्दरता लाभदायक से भी अधिक लाभदायक है। तेरे ठिकाने फकीरों, कवियों, गायकों, चित्रकारों और संगतराशों के मन मन्दिरों में है। सुन्दरता प्रकृति में अपने आप चमकती है, पर कोमल कला वालों के दिल भी नियारियों की तरह जगत के रेत में से निकाल दिखाते हैं। कभी-कभी तेरी झलक पड़ते ही चित अपने आप में इकट्ठा होकर आनन्द के रस में डुबकी लगा देता है। तू वहम की वस्तु नहीं है। तू ख्याल और भ्रम की बनावट नहीं। तू पार के देश का देवता है। इस संसार से आगे जिनको कुछ नहीं दीखता तू उन्हें बताती है कि देखो यह है आगे का दर्शन। लोग समझते हैं कि सुन्दरता जिन पदार्थों और स्थूल वस्तुओं में से झलकती है, यह उनका कोई गुण अथवा खासियत है। कई समझते हैं कि क्रमवार एकत्रता से सुन्दरता पैदा होती है, रेखाओं और रंगों की एकस्वरता सुन्दरता है। बाज़ लोग समझते हैं कि सुन्दरता केवल अपना भाव मात्र है। सुन्दरता यह सब कुछ होती हुई भी अभी कुछ और है, यह सब कुछ लेती हुई भी इनकी मुहताज नहीं और सुन्दरता के जो भी लक्षण कहो, अभी फिर जो कुछ बाकी रह जाता है। सुन्दरता सुन्दर सामानों अथवा स्थूल आश्रयों पर खेलती दिखाई देती है, पर है यह किसी और देश की देवी। जब इसका असर पड़ता है तब रस आता है। वह रस चित को सोचों के मण्डल में से निकाल लेता है। एक बार तो रस में ऐसी लीनता करता है कि सोच, विचार, प्रतीति, ख्याल सब गुम हो जाते हैं; मानो समाधि हो जाती है। चाहे बिजली की चमक की भांति यह एक क्षण का हज़ारवां भाग तक ही क्यों न ठहरे, पर असर तो यही डालती है। हां जी,

सुन्दरता की झलक, एक क्षण में 'रस मण्डल' की हिलोर दे जाती है। वह हिलोर चित को सारे दृष्टमान दृश्य से तोड़कर अपने स्वरूप में देखनहार को देखनहार में जोड़ जाता है। वह आंख झपकने के से समय में उस रस की झलक दिखा जाता है जो आंख, नाक, कान, जिह्वा और शरीर के रस से अलग रस है, जो अन्तर के देखनहार के दृष्टमान से मुक्त आपे में आने से खुलता है और बताता है कि देख:–

"जेते घट अंमृतु सभ ही महि, भावै तिसहि पीआई॥" [केदारा कबीर]

घर के भीतर बैठे बाज़ार में से बाज़ों शहनाइयों की सुन्दर ध्वनि सुनाई देती है। राग की सुन्दरता हमारे मन पर असर करती है। मन अपने में इकट्‌ठा हो जाता है, नैन मंद जाते हैं, रस आ जाता है। राग की सुन्दरता ने मन को मन में जोड़ दिया। वृत्ति चढ़ गई, पर हमारा स्वभाव ही हमारा वैरी है, जो दृष्टमान पदार्थों का अत्यन्त प्यारा हो चुका है, राग की सुन्दरता ने मन को इकट्‌ठा किया और रस देश में डाल दिया था। पर उस रस को त्याग करके बाहर भागता है, खिड़कियां खोलकर बाजा बजाने वालों को, लकड़ी, चमड़े के ढोलों, शहनाइयों को देखता है और इस देखने में दृष्टमान में लग जाता है। सुन्दरता की झलक का असर था–'रस मण्डलों' में ले जाना–अंतर्मुख स्वाद में डोबना–उसे गवा दिया जाता है। सुन्दरता की झलक आते ही तेज़ गति से पार हो जाने वाला रस रूप एक असर होता है। वह आपे को जोड़ जाता है और यदि हम उसका लाभ उठायें तो चाहे उसे समाधि कहें, चाहे लीनता कहें, चाहे लीनता कहें, चाहे परमसुख कहें प्राप्त कर सकते हैं। पर हम सुन्दरता का प्रकाश करने वाले पदार्थों की ओर भागते हैं। जहां सुन्दरता निवास करती दिखाई देती है, उन ठिकानों को काबू में करने और उनका उपभोग करने की ओर लग जाते हैं। अत: ऐसा करने से दृश्यमान में और फंसते हैं। दृश्यमान नष्ट होता है, बिछुड़ता है, बदलता है। इसीलिये दृश्यमान के प्रेमी को सुख के स्थान पर दुख होता है। यदि कभी मनुष्य को यह पता चल जाये कि प्रत्येक प्रकार की सुन्दरता 'कल्याणकारिणी' शक्ति है, मुक्तिदाता है, रसदाता है, सोच के मण्डल में से मुक्ति दिलाकर रस के मण्डल में ले जाने वाली देवी है तो कल्याण बायें हाथ का खेल है। पर रसिक–नाम रसिक–के बिना सुन्दरता का यह लाभ कौन उठा सकता है? लोग तो ऐसा करते हैं कि 'सुन्दरता' देखी, 'सुन्दरों' के पीछे भाग खड़े हुये। 'सुन्दरों' को प्राप्त करने में मन विचलित हो गया, उन्हें प्राप्त करके भोगों में लगाया। भोगों से मन मैला हो गया। विचलित और मैले मन ने सुन्दरता को भी बिगाड़ दिया। सुन्दरता का तो क्या बिगड़ना था, वह फिसल गई, सुन्दर झेंप गये। मैला और विचलित मन 'बलहीन और दुखी' हो गया। जिस सुन्दरता की झलक को एकाग्र और निर्मल करना था, जिस निर्मलता और एकाग्रता को रसरूप और बलवान करना था, वह सुन्दरता जिसको अंतर्मुख करके आपे को आपे में दृष्टवंत को दृष्टवंत में–टिकाना था, जिसको सर्वाधार के मण्डल परम आन्द में पहुँचाना था, उसे सुन्दरता की झलक उलटे और दृश्यमान में ले जाती है। हां हां त्राण कर्ता फाँसने वाला हो जाता है पर यह सुन्दरता का दोष नहीं वर्तने वाले का दोष है। व्यवहार करने वाला क्या करे? उसका स्वभाव यही बन चुका है। जब सुन्दर वस्तु, या सुन्दर जीव देखा तो उसकी प्राप्ति में लग गये। जब मन

भर गया और उससे मुंह मुड़ गया तो फिर और सुन्दर वस्तु देखी, फिर उसके पीछे लग गये। यह स्वभाव कैसे बदले? स्वभाव की तबदीली केवल सत्संग से होती है। सत्संग स्वभाव बदलने के लिये वैराग और 'हुजूरी' का पाठ पढ़ाता है। स्वामी की हुज़ूरी में रहने का प्रयत्न–निरंतर हुज़ूरी–सुन्दरता का रसिक बना देता है। हाँ, जी! जहां पर सुन्दरता है, इस मन को केवल उसी का प्रेमी बना देता है। उससे "रस आनन्द" लेने का ढंग सिखा देता है। दृष्टापद में टिकने का ढंग बता देता है, जो यह है कि सुन्दरता की पहली चमक मन को मन में लगाकर आपे के रस में लीन कर देता है। यह रस लीनता तीसरे गुरू जी के बताये हुये लौ का मार्ग है।

यह सुन्दरता की चमक नहीं, 'मेरो सुन्दरु कहहु मिलै कितु गली' के संदेश हैं, उसका न्योता है, उसकी दावत है, उसके प्रेम का बुलावा है; अपनी गोद में लेकर लाड़ लड़ाने का निमन्त्रण है।

वाह वा चंदहीन रात! हमने आज तुझ में सुन्दरता देखी है। अमृत वेला है, नींद ने कहा: "जाओ अब जागृत की गोद में खेलो"। चाहे ठण्ड है, पर धुर पर जाकर गहरे नीले आकाश में करोड़ों तारे चमकते हुये दीखते हैं। चांदनी रात में तो थोड़े से तारे दीखते और वे भी मन्द; पर आज तो लाखों ही दीख रहे हैं और पूर्ण रूप से चमक रहे हैं। पश्चिम की ओर से पवन के हल्के-हल्के झोंके आ रहे हैं। ओस पड़ रही है, 'भिन्नी रैनड़ीऐ चामकनि तारे' का नक्शा बंध रहा है। रात तो चांदनी ही थी, पर पंचमी थी। चांद सवेरे ही दीदार देकर, आंख मिचोली खेल गया, पर सुन्दरता ने आकाश के गहरे नील और तारों की चमकीली झलक में डेरे लगा लिये। अंधेरे ने तेज वालों का तेज चमका दिया। पश्चिम के पवन के अंबर बहुत ही साफ कर रखा है। प्रत्येक वस्तु का रुख पूर्व की ओर कर दिया है। हमारी पीठ भी अपनी ओर फिरा ली और मुंह पूर्व की ओर करा दिया। हम उठकर तख्त पर बैठ गये और पूर्व के आकाश की ओर देखते देखते एक और दृश्य की ओर खिंच गये। चांद नहीं, पर चांद से कम भी नहीं। एक तारा चढ़ रहा है, कौन है? हिन्दुओं का शुक्र, मुस्लमानों का जुहरा, पश्चिम वालों की वीनस। जुहरा और वीनस वालों ने तो प्रेम के बड़े मज़ेदार किस्से इस नाम के साथ जोड़े हैं, पर हिन्दुओं ने तो इसे अपने आनन्दों का साथी बना लिया है। जब शुक्र नहीं चढ़ता तब न तो कोई ब्याह होता है, न कोई और पुण्यकार्य होता है। इस मित्र के वियोग में सब खुशी के कार्य बन्द। जब चढ़ता है तब हिन्दू घरों में मंगल के चरण पड़ते हैं।

देखिये, आज यह खुशियों के साथ ब्याहा शुक्र हमें भी खींचने लगा और पूर्व की ओर घसीटने लगा है। इसकी तीव्र तेज वाली पर प्यारी झलक पूर्व की ओर खींचकर ले चली। हम मानो शुक्र की ओर ही उठ चले। पर नहीं, ऊँचे नहीं चढ़े। पूर्व की ओर चले। दूर एक सुन्दर ठिकाने पर जा निकले। गंगा का रमणीक किनारा है; हरा हरा दूध का सा गंगा के निथरे हुये पानी का प्रवाह चुपचाप बह रहा है। मीलों का घेरा है, जिसमें पानी और रेता है। एक किनारे पर लंबाई में नगर बस रहा है, जिसे संसार के एक महापुरुष के अवतार का गौरव है। जिसे एक सदाचार और दूसरा भक्ति के देव चरणों की रज प्राप्त होने का मान है। देखिये

अमृत वेला में ही नदी के एक पक्के घाट पर पौड़ियों पर कुशा का आसन बिछाकर पश्मीने की चादर ओढ़े एक सूरत विराज रही है। नैन बन्द हैं पर दिल के द्वार खुले हैं। कोई मोहक मूर्ति अंदर आ जा रही है और खेल कर रही है। आप, किसी, "बाला प्रीतम" के प्रेम में इस ठण्ड में एकान्त में सुखदाई ठिकाने पर बैठे प्रेम का रस ले रहे हैं। अदेश से सौन्दर्य बरस रहा है, तारे प्रकाश की वर्षा कर रहे हैं, पवन संगीत कर रही है और गा रही है :–

भिंनी रैनड़ीऐ चामकनि तारे॥
जागहि सन्त जना मेरे राम पिआरे॥ [आसा छंत म: ५]

वाह वाह स्वाद, रात का एकान्त और चुप का स्वाद, जल के किनारे का स्वाद, मीठी पवन का स्वाद, कुदरती नज़ारे का स्वाद, 'संत जना मेरे राम पिआरे' को किस मौज में हिलोर दे रहा है :–

चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ॥
तिना दरीआवा सिउ दोसती मनिसुखि सचा नाउ॥ [वार माझ म: २]

पूर्व की ओर से अब और प्रकाश आने लगा। लालिमा चमक उठी:–

चिड़ी चुहकी पहु फुटी वगनि बहुतु तरंग॥
अचरज रूप संतन रचे नानक नामहि रंग॥ [गउड़ी वार म: ५]

शहर की ओर से एक दंपति आ रहे हैं। ये घाट पर उतरे और उस समाधिस्थित सज्जन के सामने आ बैठे। कुछ इलायची आगे रखी। बड़े अदब सहित सीस झुकाया और फिर थोड़ी दूरी पर नम्रता सहित करबद्ध होकर बैठ गये। कुछ समय के पश्चात समाधि-स्थित सज्जन ने नैन खोले। नैन जो प्रेम रंग से भरे हुए थे, उन दोनों पर अपनी प्यारी दृष्टि डालते ही दोनों को मोहित करके फिर चरणों पर झुका लिया। समाधिस्थित सज्जन ने आशीर्वाद दिया और इतनी सवेरे आने का कारण पूछा। जिसका उत्तर उस नये आये सज्जन ने इस प्रकार दिया। "हे भगवन्! आप राजा होने के कारण सत्कार योग्य हैं और ब्राह्मण होने के कारण पूज्य हैं। मैं अतिथि होकर आपके द्वार पर आया हूँ।"

ब्राह्मण–आप भी राजा हैं। मेरे सत्कार योग्य हैं, ऐसे वाक्य न कहिये।

नया आया व्यक्ति–हे पण्डितों के शिरोमणि! पण्डित 'शिवदत्त' जी! आप पूज्य हैं, आप ब्राह्मण कुल के चूड़ामणि हैं। मैं क्षत्रिय हूँ। अतिथि होकर इसलिये आया हूँ कि मेरे घर में संतान नहीं है। राज काज को सँभालने वाला कोई नहीं। आपके आशीर्वाद से अनेकों के घर सन्तान हुई है। मुझ पर भी तुष्ट होकर पुत्रदान दीजिये।

शिव दत्त–राजा फतह चन्द मैणी जी! आपका आना मेरे सिर आँखों पर, पर आपको यह खबर ठीक नहीं मिली कि पुत्र दान मैंने किये हैं।

फतह चन्द–श्री जी! फलदार वृक्ष झुकते हैं। बड़े सदा ही नम्रता करते हैं, पर श्री जी, जिस तरह आप जगता सेठ ओर अनेकों पर तुष्ट हुए हैं, मुझ पर भी तुष्ट हो जायें; केवल एक पुत्र की याचना है और इसीलिये मैं आपकी शरण में आया हूँ।

शिव दत्त–हे राजा! हे मेरे मित्र! हे सत्कार योग्य सज्जन! यह कौतुक ईश्वर आप कर रहा है। यह प्रत्यक्ष कला उसकी चल रही है। मैं क्या कहूँ? वह स्वयं आया हुआ है। आप चोज़ कर रहा है।

फतह चन्द–पर तुम्हारी रसना पर ही बैठकर करता है।

शिव दत्त–आप शरीर धारकर कर रहा है, मुझे तो दर्शनों से निहाल कर रहा है। सच जानिये मैं टाल नहीं रहा। मेरा विश्वास–दृढ़ विश्वास–यह है कि आध्यात्मिक मण्डलों की वह ज्योति जो कभी ग्लानि होने पर संसार की रक्षा को आया करती है, वह आई हुई है। मैंने पतियार लिये हैं। मैंने जो जो संकल्प धारण किये थे वे पूरे हुये हैं। यदि जब कभी मैं इस किनारे पर यह सोचकर बैठा कि राम रूप धारण करके दीखें, तो उस दिन वे राम रूप होकर ही दीखे; यदि कृष्ण रूप की इच्छा की तो उसी रूप वाले हो गये, यदि बुद्ध भगवान की सूरत की इच्छा की तो वही धारकर आये; जो कहा वह हो गया। आपने आप वे जो संकेत करके गये सो कर गये कलेजा निकालकर ले गये, मैं अब आठों पहर उनकी सुन्दर मूर्ति की छवि में मग्न हूँ, यही मेरी समाधि है, यही मेरा तप है। देख! पूर्व की ओर से सूरज चढ़ रहा है, पर सूरज की नवयौवना टिकिया पर मेरे 'बाला प्रीतम' जी तीर कमान कसे खड़े हैं। प्यारे मित्र! शरण ले, पुत्र तो क्या, लोक परलोक मिल जायेगा।

यह कहते ही पण्डित जी के नैनों में से नीर बह चला। शरीर कांप गया और प्यारे की खींच में मग्न हो गये। काफी समय के पश्चात् नैन खुले.........

फतह चन्द–भगवन्! कृपा करो, फिर इस दास और दासी को उनके चरण कमलों पर लिटा दो।

शिव दत्त–मित्र जी! यह रास्ते की बात है। तुम अपने घर में बैठो, दिन रात ध्यान रखो कि जगत रक्षक स्वामी के दर्शन हों। केवल ध्यान करो, प्रेम सहित विचार करो, चित का लौ लगाओ। चाह उपजे, प्यार प्रफुल्लित हो, लोचा उमड़े, फिर मेरे चोज़ी गोविन्द, मेरे बाला प्रीतम, मेरे बाल लीला वाले स्वामी स्वयं तुम्हारे गृह में आयेंगे ओर सब वासनाओं को पूरा कर देंगे। पर देखना, उन्हें सूखे पिंजर वाला उदासीन, वैराग के कारण ढल चुका दुर्बल, दीन देखने की आशा न करना। वह आध्यात्मिक मण्डल का स्वामी है। प्रसन्नता वाले रंग का है। हँस मूर्ति है, मनमोहन है, रसिक है, आनन्द कंद है। खुशी का छलकता हुआ सागर है। उल्लास का लबालब भरा सरोवर है। उत्साह का सदा खिला बसंत है। आकर्षक है, खींचता है, कसता है, पर पता नहीं चलता; देखता है, जादू फेरता है, हँसता है, ठगता है। वचन करता है, मोहित करता है। अनुराग अवतार है, साक्षात प्रेम है। यदि तू देखेगा तो फिर देख नहीं सकेगा; पर अंतस के नैने खुल जायेंगे, फिर तू दिव्यता देखेगा।

ये वाक्य सुनते सुनते पत्नी पति, दोनों के कलेजे में खींच पैदा हो गई। सुख की एक झन्नाहट छिड़ी, एक रस की लहर गुज़री, एक उल्लास भरा चक्कर फिर गया।

शिव दत्त–जाओ। घाट पर अब लोग आ रहे हैं; तुम दोनों को इस तरह देखकर सोचेंगे। चाहे मैं राजा हूँ, पर ब्राह्मण होने के कारण और हमेशा ठाकुर पूजा इसी स्थान पर करने के कारण लोक चर्चा का विषय नहीं बना।

फतह चन्द–सत्य वचन भगवन्! लगता है आप के ठाकुर पूजा का इसीलिये त्याग कर दिया है।

शिव दत्त (नैन भरकर):–

"न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृणमये"

[न ठाकुर काठ में है, न पत्थर में, न मिट्टी में]

जीवित ठाकुर, जीवित शक्ति वाला ठाकुर, आप ठाकुर, सचमुच का ठाकुर आ गया है अब–

भावोहि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्।

अब तो मेरी श्रद्धा में ठाकुर बसता है। मेरी भावना ने कोई काल्पनिक मूर्ति नहीं बना ली, बल्कि मेरी भावना, मेरी मनसा मेरे हृदय मण्डल में 'जीवित ठाकुर' आ बसा है। अब यह जीवित ठाकुर मेरा जीवन है। जीवन ठाकुर है। ठाकुर है, जीवित ठाकुर है। जीवित है बोलता है, प्यार करता है, 'मेरा बाला प्रीतम' 'मेरा बाला प्रीतम' कहते कहते पण्डित के नैन बंद हो गये और जलधारा बहने लगी। गंगा के ठंडे सीतल जल में, ये जीवन स्रोत से निकले गर्म आँसू टपटप गिरे।

अब राजा फतह चन्द और उसकी पत्नी सीस झुकाकर विदा हो गये। सूरज की टिकिया ऊँची हो आई। गंगा जल में सूरज की किरणें पड़कर कैसा रंग दे रही हैं। इधर घाट पर चहल पहल हो गई। स्नान करने वालों, ध्यान लगाने वालों और ठाकुर पूजकों की भीड़ लग गई है, शोर हो रहा है। शिवदत्त ब्राह्मण का मन इस शोर में से भी उठने को नहीं चाहता। शोर में वह किसी शन्ति की ओर लौ लगाये बैठा है। भीड़ में वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। अचानक पानी में किसी भारी वस्तु के गिरने की आवाज़ आई और गंगा का पानी इस तरह से उछला, जिस तरह कि एक भीषण भूकंप आ जाता है, पानी उछलता है, मानो विशाल सागर में तूफान आ गया है। लहरों का उछाल नदी के बीच-बीच ही नहीं, बल्कि किनारे पर मानो 'फाग मचिओ री होरी' की भाँति सारे घाट पर ऊधम मचा गया है। सब कर्मकाण्डी ब्रह्मचारी भागे जा रहे हैं। 'गोबिन्द गोबिन्द' की आवाज़ सबके मुँह से आ रही है। क्षणों में घाट साफ हो गया, सारी भीड़ हट गई। घाट के निर्जन होने की देर थी कि लहरें बन्द हो गईं और पानी में से पूर्व की ओर से, सूरज की टिकिया निकली और शिवदत्त के तरसते हुये नैनों के बीच अदेश के सौन्दर्य की ज्योति आ खड़ी हुई। पण्डित जी सीधे दण्डवत में पड़ गये और मोहिनी सूरत, निरंजनी ज्योति ने पैर की प्यार भरी ठोकर से सिर को छूकर कहा–'उठो'।

चरण क्या छूहे थे मानो सुखसागर छू गया था। असीम रस की भन्नाहट पण्डित जी के रोम रोम में गुजर गई। उठकर घुटने टेककर सत्कार सहित बैठ गये। 'बाला प्रीतम' 'मेरा बाला प्रीतम' का जाप जपने लगे। यदि देखते हैं तो एक प्राणपूर्ण और एक प्राण रहित–दो सूरजों के झलकार पड़ने से नैन मुन्द जाते हैं।

बाला प्रीतम जी–"पण्डित जी। देखिये ठाकुर के सारे प्रेमी भाग गये हैं। सूर्य के उपासक पानी के चार छीटों का कष्ट नहीं सह सके। ब्रह्मचारी संध्या तर्पण बीच में ही छोड़कर उठ भागे कि कहीं धोती साफा भीग न जाये। समाधियों वाले पानी की आवाज़ से ही भाग गये। धर्म का प्यार किस पतन में जा पड़ा है। इसलिये देश का कल्याण नहीं हो रहा। देश मुर्दा हो गया है, रीति पूजा शेष है। मूर्ति है, पर प्राण नहीं है। शरीर है पर

प्राण नहीं हैं। देह है पर आत्मा नहीं है। हे पण्डित! त्याग कर। पर जो कुछ त्याग करे उसे नदी में मत डाल, जरूरतमंद को दे दे। योग कर, पर शून्य में एकाग्र मत हो, प्रभु के साथ संयोग कर। संसार से मत टूट, पर ऊँचा होकर उपकार कर। भजन कर, पर गृहस्थ का त्याग मत कर। स्मरण कर, पर काम-काज का त्याग मत कर। शरीर मिथ्या है, जानबूझ कर आलसी मत बन, पर इसे सफल कर। आत्मिक शक्ति है, बल है, उल्लास है, रस है, प्रसन्नता है, जहाँ पर यह है, वहाँ पर प्रभु है।"

यह कहते ही बाला प्रीतम जी ने फिर छलांग लगाई। पीछे पीछे पांच दस और साथियों ने छलांग लगाई। वे अडोल तैरते हैं। गोरा गोरा शरीर, प्यारा प्यारा शरीर, बाला शरीर स्थिर गंगा पर पड़ा है। गंगा का बहाव धीरे-धीरे परे को लिये जा रहा है और पण्ड़ित जी खड़ें देख रहे हैं, सीस झुका रहे हैं, हंस रहे हैं, रो रहे हैं, मस्त हो रहे हैं-"नमो सूरज सूरजे, नमो चन्द्र चन्द्रे" कह रहे.हैं।

कुछ समय के पश्चात् बाला प्रीतम जी दूर निकल गये और आंखों से ओझल हो गये।

: २ :

एक सुन्दर रमणीक महल है। भांति भांति की सजावट है। एक अधेड़ उम्र की पर स्वच्छ, ठहरे मन वाली स्त्री बैठी अपने आप से कह रही है:-

हे शिवदत्त महाराज के बाला प्रीतम जी! इस दीन को भी दर्शन दीजिये। हे जगन्नाथ! दर्शन दीजिये। हे धरा भार हरने के लिये आये! दर्शन दीजिये। हम बुरे हैं, हे अच्छे प्रीतम जी! शिवदत्त महाराज के लिये ही दर्शन दीजिये। उसे हर रोज निहाल करते हैं, कभी हमें भी शीतलता प्रदान कीजिये। हे बाला प्रीतम जी! पण्डित जी ने आपका पता नहीं दिया, ठिकाना नहीं बताया कि पूछकर और चलकर द्वार पर हाजिर हों। यही रास्ता बताया है कि घर बैठकर स्मरण करो, अन्दर बैठकर स्मरण करो। यह कष्ट इसीलिये दे रहे हैं। हे नाथ! दर्शन दीजिये। यदि रास्ता ही स्मरण मिला है, तो चक्कर लगाने का कष्ट तो आपको ही करना होगा। हे शिवदत्त महाराज के बाला पीतम जी अनुग्रह कीजिये। दर्शन का दान दीजिये।'

इतने में फतहचन्द मैणी जी आ गये और कहन लगे:-प्यारी। 'बाला प्रीतम जी' आये क्या?

रानी-स्वामी जी! स्मरण में निवास करते हैं। ध्यान में चक्कर लगाते हैं। ठण्ड पहुँचाते हैं। उद्धार करते हैं। पर इन हाड़ चाम के तरसते नैनों में चरण नहीं रखते इस मटकी के नेत्रों में डेरा नहीं डालते। पति जी! हम कुलीन नहीं, उच्च ब्राह्मण नहीं, गरीब खत्रीय हैं। पति जी! हम जपी तपी नहीं हैं। हमने ठाकुर की पूजा नहीं की है, सेवा नहीं की है। शिवदत्त जी महाराज तो जन्म से पुजारी और तपस्वी हैं। हम मंद कर्मों वाले, अवगुणों से भरपूर हैं। हम पर तो यह भी अनुग्रह हुआ है कि हम स्मरण किया करें और प्यार किया करें। शुक्र है कि अवगुणों से भरपूर हृदय में आते तो हैं।

राजा-प्रिय! आज मेरे चित में आया कि हम कामना करके चेते करते हैं। हमारे मन में पुत्र की लालसा है। इसके लिये स्मरण करते हैं। यदि उन्हें कभी केवल उनके प्रेम के

लिये चेते करें तो शायद वे आ जायें। शिवदत्त जी कल कहते थे कि कामना और गरज़ वाले हृदय निर्मल नहीं होते।

रानी–पति जी! सच है, हमें पुत्र का क्या करना है? पुत्र क्या करेगा? क्या संवारेगा। यदि शिव दत्त जी महाराज की कृपा द्वारा जगत स्वामी जी के दर्शन हो जायें तो शेष क्या रह जाता है?

राजा–प्रिय! हम सौभाग्यवान हैं। हमारा जन्म उस समय में हुआ है, जिस समय 'आप जी' मनुष्य देह धारण करके संसार के उद्धार के लिये आये हैं; हां, जब श्री जी ने स्थूल शरीर धारण किया है और इन नैनों द्वारा दीखने वाला रूप स्वीकार किया है।

रानी–स्वामी जी! सचमुच हम सौभाग्यशाली समय में आये हैं। फिर हम पुत्र की कामना क्यों करें? क्यों न बाला प्रीतम जी को जीवन आधार मानकर मालिक और पालक समझकर अपने जीवन का स्रोत समझकर प्राणों के प्राण, जीवन का जीवन समझकर स्मरण करें और प्यार करें।

राजा–फिर कैसे करें?

रानी–भगवन्! जैसे आपकी आज्ञा।

राजा–पुत्र भावना का त्याग करें, यह भावना छूटती नहीं। दिल में लगी चिन्तायें, मन में बसी सोचें, बहुत गहरा असर डाल चुकी हैं।

रानी–बैराग इन्हें निकालने का डंडा है न!

राजा–सच, कहां है राजा दसरथ, जिसने पुत्र के वियोग में प्राण त्याग दिये? कहां है रावन जिसके सवा लाख पुत्र पोते थे? सब मिथ्या है, झूठ का पसारा है।

रानी–हाँ, पर पुत्र 'पू' नामक नरक का त्राणकर्त्ता है। पुत्र ही हो तो 'पू' नरक से छुटकारा मिलेगा, क्या करें? हे पुत्र लालसा। किसी तरह हमारे अन्दर से दूर हो, जिससे 'बाला प्रीतम जी' के लिये सारा स्थान खाली हो सके।

राजा–नरक की चिन्ता अब क्यों करें? नरक से 'बाला प्रीतम' उद्धार करेगा, सिंह की शरण लेकर फिर शृगालों (गीदड़ों) का क्या भय?

रानी–(प्रसन्न होकर)–ठीक है, सच है, लो मेरी पुत्र कामना तो टूटी।

राजा–भागवान् माल धन कौन संभालेगा?

रानी–जब नरक का भय चला गया तब माल धन का भय भी साथ जाये। यदि 'बाला प्रीतम' नरक से पार करेगा तो 'बाला प्रीतम' माल धन भी संभालेगा।

राजा–हां रानी! माल धन सब उसी की ही देन है। वह स्वामी जो ठहरा, वह दाता जो ठहरा।

रानी–फिर माल धन दिया भी उसने और उसे संभाले भी वह आप। हम बीच में मैं मेरी लाकर क्यों दुख उठायें? हम भी उसी के बनें और उसी के बनने का रस भोगें।

राजा–ठीक है! हे पुत्र कामना! हे हृदय में खटकने वाले कंटक! विदा हो, आज तू हमें छोड़, हम तुझे छोड़ते हैं। हम हों, बाला प्रीतम हो। शिवदत्त महाराज का 'बाला प्रीतम' हमारा 'बाला प्रीतम' हो। नहीं नहीं हम उसके हों, वह स्वामी हो, हम उसके चरण चूमें।

रानी–हे पुत्र तृष्णा! दूर हो, हे पुत्र वासना! दूर हो, हे माल धन के मोह! दूर हो। शिवदत्त जी महाराज! हमारा मन धो दीजिये, जो तुम्हारी तरह सच्ची निष्काम और प्यार भरी लालसा से प्रीतम का स्मरण करें।

यों कहते दोनों के नैन मुंद गये। नैन बंद हैं पर नैनों की ज्योति गंगा के किनारे पर शिवदत्त जी के पास है। शिवदत्त जी सूरत की ओर मुंह करा कर कहते हैं, देखिये ज्योति की टिलिया के ऊपर 'प्रीतम जी' हैं। दोनों देखते हैं तो क्या देखते हैं कि सौंदर्य के सौंदर्य छड़ी लिये खड़े हैं, और बालक गेंद फेंक रहे हैं और आप खेल रहे हैं। दर्शन हुआ:

हाथि कलंम अगंम मसतकि लेखावती॥
उरझि रहिओ सभ संगि अनूप रूपावती॥
उसतति कहन न जाइ मुखहु तुहारीआ॥
मोही देखि दरसु नानक बलिहारीआ॥१॥ [फुनहे म: ५]

कैसा स्वाद आ रहा है। सुरत कैसी ध्यान में मग्न है। मन किस तरह दर्शनों में समा गया है। चित्त किस तरह मग्नानन्द है। आंगन में से आवाज़ आ रही है, इन्हें कोई पता नहीं। आंगन में ठक ठक गेंद को छड़ियां लग रहीं हैं, पर ये चौंक नहीं रहे। आंमेंन लड़के खूब शोर मचा रहे हैं, पर इनके नेत्र खुल नहीं रहे हैं। इतना शोर मचता है कि गहरी नींद में से आदमी जाग उठे; पर इनके शरीर अचल और अडोल बैठे हैं। इन्हें ज्योति मण्डल में ज्योति स्वरूप का दर्शन उसके कौतुक और चोज़ अपनी ओर खींचे बैठे हैं।

अब देखिये, सूखी गोद, 'सूके कासट हरिआ' होते हैं, देखिये 'गुरप्रसाद' होता है, देखिये 'परम पद' मिलता है, यह देखिये जो 'सतसंगति मिलै सु तरिआ' का खेल होता है। हे खत्राणी भाई, हे राजरानी मैणिआणी! देख तेरी गोद हरी होती है। देख! जगत रक्षक दाता, देख! सृष्टि का भार उठाने वाला पाँच सात वर्ष का बालक, बालक नहीं सृष्टि का प्रतिपालक आया है। पर तू पड़ी रह, ध्यान मग्न टिकी रह। यह नटखट और चोज़ी बालक साईं का अपना पुत्र तो अभी चोज़ों में ही मग्न है। अब देखिये खेल बंद हो गया। चोज़ी गोबिन्द कैसे चुपके से अंदर आया है, कैसे दबे-दबे पैर रखता है। कैसे गोद में धीरे से बैठता है, कैसे गले चिपट कर चेहरे की ओर प्यार सहित देखकर कहता है:–

"माँ"

हाँ, "माँ"।

कभी किसी ने नहीं सुना था जो मैणिआणी को 'माँ' कहे। हाँ ध्यान मग्न कानों में आवाज़ आई "माँ", नीचे उतर गई, चित में वह आवाज़ पहुँच गई। जिस मण्डल में ध्यान लग रहा था उसमें सारी ओर लिखा गया 'माँ' 'माँ'। कहाने की लालसा का त्याग कर चुकी मैणिआणी क्या देखती है कि 'माँ' 'माँ' हो रही है।

चौंक पड़ी, नैन खुले, 'माँ' मीठा, प्यारा, धीमा, रसदायक, आकर्षण से भरा हुआ पद 'माँ' कानों में गूँज रहा है।

नैन खुले, अच्छी तरह खुले! क्या देखते हैं कि 'गोद हरी है'। वह सूरज मण्डल के ऊपर खेल रही ज्योति गोदी में बैठी है, गले लगी है। चेहरा झुककर भाई के चेहरे की ओर देख रहा है और नैन कह रहे हैं "माँ"।

हाय! चाह और लालसा करने वाली 'माँ'! देख जन्मों से लालसा करने वाली को पुत्र मिला, कौन सा पुत्र मिला? जिसकी धूल को योगी, जपी और तपी तरसते हैं, देख! तुझे क्या कह रहा है:-

"माँ"

"माँ" एक अक्षरीय पद क्या था? मैणिआणी सारी न्योछावर हो गई। शीघ्रता से सीस झुकाना चाहती है, पर सर्व समर्थ कहाँ हिलने देगा? और फिर कहता है-"माँ"।

ले "माँ" लोगों को तो पुत्र दिया करता था, तुझे तेरे निष्काम प्यार के बदले में आपा दे रहा है, कह रहा है, "तू माँ और मैं पुत्र"।

फतहचन्द के अन्दर रस की झन्नाहट छिड़ी, अदेशों में खेलने वाली ज्योति आँगन में आती दिखाई नहीं पड़ी, अपनी पत्नी की गोदी में बैठती हुई दिखाई पड़ी और आवाज़ आई, "माँ"।

कौन है जो मेरी पुत्रहीन पत्नी को "माँ" कहता है? अरे भाई राजा! भली भांति देख यह कौन है? यह वह है जो:- "जेवदु आपि तेवड तेरी दाति" कर सकता है। पुत्र की याचना कीजिये, जानकर नहीं। वासना का त्याग कीजिये; स्वयं पुत्र।

राजा के नैन खुले, आहा! पत्नी की गोद हरी हो गई है। ज्योति का पुंज, सच्चे साईं का बालक, सौन्दर्य का बुक्का, प्रकाश का पुतला, किस प्यार से बैठा है। किस तरह मातृ प्रेम में मग्न है और किस तरह माता पुत्र प्रेम में मग्न है। हां राजा! 'बाला प्रीतम' यही है।

राजा के चित में से शिवदत्त के वाक्य गुजरे कि "आप आयेगा, तू स्मरण किया कर", सचमुच आ गया है। राजा अब शीघ्रता से सीस झुकाने लगा। पर देखिये, उस बनने वाले फौजी जरनैल ने किस फुरती से, किस बल से गलबांही डाली है कि हिलने नहीं दिया। किस प्रकार नैनों में नैन गाड़कर कहा है, "माँ"। फतहचन्द में कोई शक्ति न रही। रस रूप होकर आत्मानन्द में लौलीन हो गया। मग्न बैठी माँ इस दर्शन को देख रही है। उसके कान गूँज रहे हैं, अंदर से "माँ" की आवाज़ आती है।

कितना ही समय इस आत्मरंग में बीत गया। दरवाज़े में साथी खिलाड़ी खड़े हैं, सब चुप पत्थर की मूर्तियाँ हैं। इतने में शिवदत्त जी आ गये और बड़े गद्‌गद् कण्ठ से बोले:-

"तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही॥"

"बाला प्रीतम जी' उठ खड़े हुये। नज़र आकाश में गड़ गई और शिवदत्त की ध्वनि में महा ध्वनि मिलाई:-

"तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही॥"

'तूंही, तूंही' का रंग बंध गया। एक अकाल की उपासना का नक्शा जम गया। कमरा था कि सच्चे ईश्वरीय प्रभाव का मण्डल हो गया।

इस आराधन के पश्चात् 'बाला प्रीतम' जी अपने बाल स्वभाव में आ गये। "माँ! भूख लगी है, कुछ खाने को दे।"

मैणिआणी ने बाज़ार से ताज़ा मिठाई लाने के लिये आदमी को भगाया, पर चोज़ी प्यारे बोले–

"तले हुये छोले और दूध की पूरी खाऊंगा, हां अंदर रखे छोले और पूरी खाऊँगा।"

सचमुच ये दोनों पदार्थ रसोयन ने तैयार करके अभी-अभी अंदर रखे थे। रानी भागकर गई और ले आई। आगे रखे। चोज़ी जी ने कुछ शिवदत्त को दिये, फिर अपने मित्रों को दिये, फिर राजा और रानी को दिये, फिर आप खाये। फिर आँगन में दौड़ गये। दो घड़ी खूब गेंद बल्ला खेला, फिर खेलते-खेलते, सुन्दर मोतियों की भाँति चमकने वाली ओस की भाँति, खिसक गये।

: ३ :

पाटलीपुत्र, जी हाँ, पुरातन पाटलीपुत्र (यूनानियों का पाली बोथरा) और फिर पटना, और आजकल भी पटना कितना भाग्यवान पटना है। इस पटने में एक सुन्दर घर है। जगत सतगुरू, श्री गुरू तेग़ बहादुर साहब जी की पत्नी, हमारी माता गुज़री जी, अंदर बैठी सुखमनी साहब नामक वाणी का पाठ कर रही है कि मामा कृपाल चन्द आया। गहने, कपड़े, रुपये, रेशम, मिठाई आगे रखकर कहने लगा, लीजिये दीदी।

दीदी–भैया ये कहाँ से लाये हो?

मामा–दीदी! साहबज़ादा जी आज राजा फतहचन्द के घर में जाकर खेले थे। वहाँ पर ऐसा आत्मिक रंग रमाया कि मानो सच्चखंड बन गया। मैणिआणी को "माँ" कहकर उसका उद्धार कर आये हैं। दीदी! कहीं हमसे भूल न हो जाए, यह बालक नहीं (धीरे से) 'आप' है। खेलों की ओर देखकर न भूलें, कौतुकों की ओर नहीं जाना। यह तो इनकी मौज है आत्म हिलोर इतना है कि समा नहीं सकता।

दीदी–भैया जी! इसीलिए तो मैंने कभी कुछ नहीं कहा, चाहे कुछ करते रहें। यदि इन्होंने गुलेले मार मारके मटके फोड़े तो मैंने गागरे लेकर दीं। यदि इन्होंने तीर मारकर वे भी तोड़ दीं तो आज सवेरे कुएँ को अभिशाप दे दिया कि तू खारी[१] हो जा, कोई पानी भरने के लिए न आए, पर लाल से कुछ नहीं कहा।

मामा–अच्छा, आप बुद्धिमान हैं। जिनके मटके फूटे उनके अभाग्य फूटे, जिनकी गागरों में छेद हुए, उनके पाप छिज गए। जिस-जिस के साथ प्यार करते हैं, जिस जिसके साथ छेड़खानी करते हैं, वही भाग्यवान् है, उस उसका इन्हें उद्धार करना है। इनका कोई चोज़ किसी प्रयोजन से खाली नहीं। भला देखिए, राजा, शिवदत्त भारी पण्डित, तेजस्वी

१. यह कूआँ मन्दिर के अंदर है। पहले मीठा था, तब से खारी है।

चेलों वाला, राज्य वाला, इस तरह से इनका भक्त बना है कि उसकी इनमें ईश्वर भावना है। यदि आप उससे प्राण माँगे तब भी देने को तैयार है। उसके सारे कर्म धर्म इनके ध्यान में आकर समाप्त हुए हैं। न जाने क्या किया है? वह साक्षात जागृत ज्योति समझता है। जगत सेठ, रला सेठ, माधो सेठ और अनेकों के घर में इनके जाते-जाते किए गए मज़ाकों से पुत्र पैदा हुए हैं। कितने ही रोगी राज़ी हो चुके हैं। कल एक कोढ़ी को घाट से धक्का देकर गंगा में गिरा दिया। जब वह बाहर निकला तो नीरोग था। यदि करामातों की ओर देखें तो साक्षात और यदि घाटों पर पानी उछालते, गेंद खेलते, गागरें बींधते, खेलते हुए देखें तो आश्चर्य होता है। दीदी अरदास कीजिए!

इतने में धम-धम करती एक आवाज़ आई। तीरकमान खींचे आगे-आगे लाल जी आ रहे हैं। पीछे सौ लड़का एक ही कदम पंक्ति बाँधकर इनके हुकम के अनुसार कदम उठाता, कदम बदलता आ रहा है। मानो सेनापति जी फौज को अभ्यास कराते हुए आ रहे हैं। आते ही बोले:-

"जी! लाओ मिठाई, रोटी, फौज को खिलायें" माँ ने उठकर गले से लगाया, माथा चूमा, प्यार किया औरं कहा-लाल जी लंगर तैयार है, आज तो बहुत देर कर दी।

साहबज़ादा-माँ जी आज एक और माँ बनाई है।

माँ-दो माँवों के पुत्र कैसे बनोगे?

साहबज़ादा-जिस तरह दो आँखों में एक नज़र।

माँ-पर तुम एक, दोनों की गोदी में कैसे खेलोगे?

साहबज़ादा-जिस तरह दो सरोवरों में एक चाँद एक ही समय खेलता है।

माँ-दो माँवों का उद्धार कैसे करोगे?

साहबज़ादा-'नाम' पुत्र सब माँवों की गोदी में खेलेगा, 'गुरुवाणी' पुत्री सब माताओं की गोदी में खेलेगी। सब सुपुत्र होकर तरेंगे। नाम रूप पुत्र न मरेगा; न गोद खाली करेगा। साथ रहेगा और उद्धार करेगा।

माँ-कोई कम अधिक भी?

साहबज़ादा-**'हभ समाणी जोति जिऊ जल घटाऊ चन्द्रमा"॥**

[मारू वार डखः मः ५]

अब जल्दी से रोटी दीजिए न, भूख लगी है।

बस पंक्ति लग गई। लांगरी भोजन लेकर आए। सौ लड़कों को चोज़ी जी आप खिलाते और प्रसन्न होते रहे। फिर सबको विदा किया। जब सब चले गए तो माँ-पुत्र अकेले होकर बैठे।

माता-लाल जी! किसी की नज़र न लग जाए, तुम बड़े दंतकथा में आते हो।

साहबज़ादा-माँ जी! अभी तो लोगों को मेरी नज़र लग रही है। जिसे मेरी नज़र लगती है, वह 'गुरू नानक' का स्मरण करता है। गुरू नानक वालों पर कौन बलि है? बाबे के मनुष्य सबसे ऊँचे और पवित्र हैं।

माता-तुरक का राज्य है, कोई चुगली न करे।

साहबज़ादा–तुरक राज्य ज़ुल्म का है, ज़ुल्म को मिटा देंगे।

माता–कैसे?

साहबज़ादा–तलवार से, सीस से।

माता चौंक गई, डर गई, सहम गई और चुप कर गई। सोचने लगी–यह करामात वाला घर है और बेपरवाही का द्वार है। जो कुछ मुँह से निकाला है, न जाने इसका क्या भाव है। ये तो जो कहेंगे, पत्थर पर लकीर है; तब माता ने बात फेरकर कहा: "लाल जी! मैणिआणी और मैणी जी को वरदान न दिया?"

साहबज़ादा–दोनों निष्काम भक्त हो गये। गुरू नानक का घर कामना वाले की इच्छा पूर्ति करता है, पर निष्काम भक्तों को अपने में निवास देता है; अत: उन्हें अपना लिया है। हाँ गुरू के स्वरूप में निवास दिया है।

इस समय सायंकाल हो गया था, तारे चढ़ आये थे। साहबज़ादा जी यह कहकर अचानक उछले, पलंघ से छलांग लगाई, ऐसी दौड़ लगाई कि जाते दीखे नहीं। एक ब्रह्मचारी स्वयं पाकी के घर में जा खड़े हुये, 'मोन भइओं कर पाती रहिओ' कहते और उसका कलेजा प्रेम से चीर कर दौड़ते हुये मैणी के घर जा घुसे।

इस तरह ईश्वरीय ज्योति अपने बालक शरीर में प्रेम, उपकार और नेकी के चोज करती थी। मैणी जी की आध्यात्मिक दशा अब बहुत स्थिर हो गई। आप जी को भी वह प्यार पड़ा कि हर रोज तीसरे पहर उनके घर चले जाते, आंगन में खेलते, घर के बाग में जाकर चोज़ करते, पौधे उखेड़ते, लगाते, कलम करते। श्री जी के हाथों से लगाया हुआ एक करौंदे का पेड़ अब तक उस बाग में है, जो बारह महीने ही फल देता है। कहते हैं कि बारहमासी करौंदा और कहीं भी देखने में नहीं आया।

सांझ तक तो खेलते, फिर हर रोज इनके घर में तले हुए छोले और पूरियाँ खाते, जो प्रतिदिन 'बाला प्रीतम' जी के लिए इनके घर में बनते। अपने साथी मित्रों को यही प्रसाद देते। उन्हें विदा करके सारे दिन के खिलाड़ी प्रीतम मैणिआणी और मैणी जी के पास जाकर बैठते। उस समय आश्चर्यजनक आत्मिक रस छा जाता और शिवदत्त जी भी प्राय: वहीं आ जाते। चार घड़ी रात व्यतीत होने तक कभी चुप बैठे रहते और यदि कभी उचटते तो ऐसा वाक्य कहते जिससे सब की समाधी लग जाती। कभी तो आंखें मूँदकर बैठते पर साथ ही सबके मन आनन्द में लीन हो जाते। कभी किसी दिन ऐसा तेज और चमत्कार का रूप धारण कर लेते कि तेज असह्य हो जाता। जलाल की ऐसी वर्षा होती कि तीनों प्रेमी एक प्रकार के दैवी भय से भरकर आत्मरस में लग जाते। कभी ऐसी मोहनी सूरत बनाते और इस तरह की रसभरी आँखों से देखते कि उनके नूरी चेहरे का जमाल सब को मोहित करके मूर्छित कर देता। कभी गुरुवाणी का पाठ करते, कभी गुरू के शब्द का गायन करते। गाते क्या, उड़ते हुए पक्षी भी सुनकर मस्त हो जाते। इस तरह उस घर में वह रस छा जाता, वह रंग बंधता जो कि अकथनीय है। इस तरह का सत्संग मण्डल बना कि महमा कही नहीं जाती। उधर माता जी प्रतीक्षा करती उदास हो जाती। मामा जी और कभी दूसरे घर के इतबारी व्यक्ति या सम्बन्धी लेने के लिए आते, तब कहीं घर जाते। घर में भी श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के हुजूर सांझ को सोदर रहरास का दरबार लगा करता था। जब तक

साहबज़ादा जी दीवान में न आ जाते, पाठ न होता। अत: दीवान लग जाया करता और प्रतीक्षा होती रहती। प्राय: चार घड़ी रात व्यतीत हो जाने पर आप आया करते तो मैणी और पण्डित जी साथ आया करते, जब रहरास साहब का पाठ होता। बाद में प्रसाद बाँटा जाता। इन दिनों के इस प्रवाह का यह असर हुआ कि अब तक पटने साहब के गुरुद्वारा में रहरास साहब का पाठ चार घड़ी रात व्यतीत होने के बाद होता है। आपके बालपन के कौतुकों की घर-घर में चर्चा थी। घर-घर में कोई न कोई सुख या वरदान पहुँचा था। साँझ सवेरे के दीवान, साहबज़ादे जी की इन अनुकम्पाओं करके प्रेमियों की अधिकता के कारण, भर भरकर लगते। बाल आयु में ही पटनापुरी के प्रीतम हो गए। शिवदत्त के गहरे प्रेम और बाला प्रीतम कहकर याद किए जाने के कारण अकसर स्थानों पर नाम 'बाला प्रीतम' ही पड़ गया। चाहे आपके खेलों और कौतुकों से कई लोगों को कुछ चक्कर लगते पर ऐसा कोई नहीं था, जिससे आपने कोई चोज़ी खेल किया है और फिर उसे किसी न किसी रूप में कोई सुख न दिया हो। नवाब रहीम बख्श और करीम बख्श, दो शिरोमणि मुसलमान थे, वे भी प्रेमी हो गये। इनके द्वारा भेंट किए हुए बाग और एक गांव अब तक गुरुद्वारे की मालिकी हैं। इन दोनों को वाहिगुरू की ओर लगाया तो गुरू तेग़ बहादुर जी ने था। पर 'बाला प्रतीम' जी के सत्संग से ये नौनिहाल आत्मजीवन में पल निकले और सचे गुरमुख बन गये थे।

इस सारे मण्डल में सबसे ज्यादा प्रेम मैणी और मैणीआणी के साथ था, जिनके आप (सृष्टि के पिता चोज़ी प्यारे) पुत्र जाकर बने थे। हिन्दुओं के विचार में पुत्र 'पू' नरक से पार करता है। यहां पर सतगुरू ने इनको सारे नरकों, सारी चौरासी लाख जन्म और सारे भवसागर से जीते जी पार कर दिया-'

'ठाकुरु हमरा सद बोलंता॥
सरब जीआ कऊ प्रभु दानु देता॥

प्रेम की यह अवधि थी कि कभी एक दिन नागा नहीं पड़ा कि दम्पत्ति जी को जागृत ज्योति के दर्शन नहीं हुए। यदि तीसरे पहर दर्शन अमल के समय आप नहीं पहुंचे तो लोक लज्जा, कुल का मान, राजसी लज्जा को छोड़कर मैणी और पत्नी गुरू के गृह को आप चल देते और खोजते फिरते कि कहाँ हैं? पर ऐसे समय बहुत कम आए कि साहबज़ादा जी ने इन्हें अपनी खोज में डाला हो। आप पहुँचते, आप जाते, आप दया करते। हर किसी के साथ कोई न कोई कौतुक हंसी खेल का होता, पर इन पर कोमलता भरी दया ही निवास करती रही। नरम न नरम, कोमल से कोमल हृदय वाले पुत्र अपने माता-पिता के लिए वह प्रीत अपने अन्दर नहीं रखते जो आप जी मैणी और मैणिआणी जी के लिए थी। शिवदत्त के साथ भी अपार प्रेम था। पहले पहल तो शिवदत्त डोलता रहा है, पर जब उसकी सारी कामनायें पूरी हुईं और हर परीक्षा सची निकली, फिर तो वह भंवर से कम प्रेमी न रहा। दोपहर तड़के से गंगा के किनारे पर ध्यान में बैठता और कई बार साक्षात दर्शन वहाँ पर ही होते। शाम को राजा फतेहचन्द के घर में सत्संग में शमिल होता। फिर दीवान में आकर रहरास के पाठ के पश्चात लंगर का प्रसाद लेकर घर जाता। प्राय: संन्यासियों और कुलीन

ब्राह्मणों में दंतकथा चली, पर शिवदत्त ने कोई परवाह नहीं की। जो कोई आया उसे यह सिद्ध करके दिखाया कि जगत का भार दूर करने के लिए 'आप' आए हैं।

हर प्रकार खेल, कवायद, बाल युद्धों के रंग, उपकार, नेकी, भजन, स्मरण और जीवनदान के चोज़ों में आपकी बाल लीला पटने में होती रही।

: ४ :

अब आपका जी कभी-कभी प्यारे पिताजी के दर्शनों के लिये उदास रहने लगा। कभी-कभी ऐसा विरह किया करते थे मानो सुनने वाले पत्थर भी पिघल जाएँ। इस दशा पर सारे परिवार ने श्री गुरू जी की आज्ञा मांग भेजी। आज्ञा आ जाने पर आनन्दपुर की तैयारी हुई। इस तैयारी का जो असर संगत पर हुआ, उसका वर्णन कर सकना कठिन है। सब पर करुणा रस छा गया, विरह की तलवार फिरने लगी। वियोग का दर्शन कलेज़े को चीरने लगा। प्रेमियों के नैन भर-भर आते हैं, छमाछम बरसते हैं, हिचकियों और मिन्नतों, विनतियों का रूप धारण करके कभी माता जी, कभी मतिदास जी, कभी मामा कृपालचन्द जी के चरणों पर झुकते हैं; विनय करते हैं:- अनुग्रह कीजिये, सदैव यहां पर निवास कीजिये, जो सेवा कहो तन, मन, धन सब हाज़र हैं। पर सारे कहते हैं कि साहबज़ादा जी की मौज है और सतगुरू जी की आज्ञा है। जब यही विनती श्री 'बाला प्रीतम' जी से की जाती तो वे खिलाड़ी दीख पड़ने वाले बालक, अपने चोज़ों से नटखट मालूम होने वाले बच्चे, पूर्ण परमानन्दी अडोल रूप में आकर कहते:-

"मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। मैं अन्तर्आत्मा में तुम्हारे साथ एक ज्योति हूँ। तुम मेरे साथ लग चुके हो, तुम पेवन्द हो चुके हो। मेरा आनन्दी रस हरदम तुम में जाता है। शारीरिक वियोग आत्मा को अलग नहीं कर सकते, मेरे शरीर ने मुझे मेरे प्रीतम प्रभु से नहीं बिछोड़ा है। तुम्हें यह बिछोड़ा मुझसे अलग नहीं करेगा। तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूं। तुम आध्यात्मिक रौ में ब्रह्मांड के केन्द्र वाहिगुरू के साथ जुड़े हो, तुम्हें जुदाई कहां है?"

इस प्रकार के उपदेश और रस भरे कटाक्ष लोगों को धैर्य और सुख देते थे, पर घर पर जाकर वियोग का ख्याल फिर से पीड़ित कर देता था। कई दिनों तक तो यही रंग रहे। जहां पर समागम होता, वहां एक विरह का नक्शा बँध जाता। कई बार इस प्रेम की बाढ़ में आप भी नैन मूँदकर छमाछम के रंगों में आ जाते। सच्चा प्यार, सत्संग का सच्चा प्यार, यही आत्माधार है, यही आत्मरस है, यही मुक्ति है। यही मुक्ति, यही प्रेम, प्रभु का प्रकट स्वरूप है। पर आपको गुरू गद्दी पर विराजना है। वह गुरूता का रंग आपको सदैव ऊँचा ले जाता है। इस समय भी आप 'दातापद' में खड़े हुये ऐसा प्रेम और धैर्य से भरा उपदेश देते अथवा प्रभाव डालते कि सबके मन आत्म रंग में आकर टिक जाते। पर हाय! प्रेम की लगन, सच्चे प्रेम की लगन, आत्मप्रेम की लगन! स्थूल दर्शनों की चाह को बार-बार ले आती है।

इस प्रकार वियोग भरी संगतों के प्रेम मण्डल में से, प्रेम के सुखदाई बन्दीखाने[१] में से, जिस महान कार्य के लिये आये थे, अपने सच्चे पिता की आज्ञा में काम करने का

१. प्रेम बंधनि तुम बाधे।। [सोरठि रविदास]

समय निकट आया जानकर 'बाला प्रीतम' जी दस वर्ष की आयु के मुनि, योगी, संन्यासी, रसिक, तारक, रक्षक, अवतार पूर्णपद के स्वामी जी के विदा होने का दिन आ गया। उस समय की मैणिआणी और मैणी जी की रुदनमय विनती और विरह बींधे मन का चित्र यह है:–

'हे हमारे सिर के स्वामी पल्ला छुड़ाकर न जाओ। हमने आपके चरणों में गहरी प्रीत डाली है, हमें अपने चरणों से दूर मत करो, हमें अपना भँवरा बनाकर अब मुंह क्यों छिपाते हो? हे प्रीतम, नेह लगाकर अब कहां छुपते हो। अन्दर डेरा डालकर और हमारे हृदय को मंदिर बनाकर अब हे गोसाईं आप उसे क्यों खाली छोड़कर जा रहे हैं? अब आप हमारे प्राणों के प्राण बनकर नहीं जा रहे, बल्कि हमारे प्राण निकालकर और हमें निर्जीव बनाकर जा रहे हो। शरीर प्राणों के बिना नहीं जीता और प्राण आपके बिना नहीं रहते। इसलिये आपका बिछुड़ना हमारे लिये दुहरी मौत है। हम आपके ही हो रहे, इसलिए अब आपके हैं। हाय प्रीतम! अब अपनों को जुदाई में मत डालो। हाय तेरे ही हैं, सदैव तेरे ही हैं। हमारी यह 'मैं और मेरी' आपने खरीद ली है। हमारे पास अपनी कोई राशि नहीं रही, आपने जो अपनी देन दी है, अब उसे आप छुपाओ मत। हाय न जाओ, न जाओ और सदा हमारे नैनों में निवास करो, हमेशा दिखाई पड़ो, हमेशा अपने दर्शन दिखाते रहो। यदि आप हमारे अवगुणों को देखकर रूठ गये हैं अथवा हमारे एबों को देखकर जा रहे हो तो जब आप हम पर प्रसन्न हुये थे तब तो हम में अवगुण इससे भी अधिक थे। उस समय न तो आपने हमारे दोष देखे थे और न ही कर्मों को देखा था। हे स्वामी! अपने विरद के सदके आप प्रसन्न हुये थे। वैसे ही हे प्यारे, सदा प्रसन्न रहो। दूर न जाओ और अपने चरणों में बसा लो। अपने विरद के सदके अपनी ही बड़ाई देखकर न जाओ, हाय न जाओ और अपनी शरण में समा लो।'

इस वैराग पर श्री गुरू जी पर भी करुणा रस छा गया। फूल कटोरे जैसे आपके नैनों में जल भर आया और काफी समय करुणा रस छाया रहा। पर जब हुकम विचार कर चले तब रानी और राजा का कलेजा टूट गया, धड़ाम करके गिरे और मूर्छित हो गये। तब सतगुरू जी ने दोनों को आध्यात्मिक बल द्वारा ठीक किया और स्वरूप में स्थित किया और बहुत से वरदान दिये।

पर सारे वरदान और उपदेश लेकर मेणिआणी ने कहा, 'हे मुक्ति दाता, हे त्राणकर्त्ता! हे रक्षक! हे गोसाईं। मुझ अभागी और पुत्रहीन को 'माँ' कहकर सौभाग्यवान और पुत्र वाली करने वाले दया के समुद्र! इन स्थूल नेत्रों द्वारा आपके दर्शनों की लालसा कैसे तृप्त हुआ करेगी? ज्ञान और स्मरण, ध्यान ओर रस, आपको असीम कृपा है, पर दर्शन के बिना जिन्दगी कैसे कटेगी?' चोजी पर बुद्धिमान प्रीतम जी, बाला पर सबसे ऊँचे और बड़े प्रीतम जी ने कहा, "यह कटार और तलवार है, यह पोशाक है। जब स्थूल दर्शनों को जी चाहे,

१. राजे ने घर को धर्मस्थान बनाया और ये सामान कायम किये। ठिकाने का नाम आज तक मैणी संगत है।

तब इनको देखो, मेरे स्वरूप की झलक पड़ेगी। जब प्यार को चित करे, तब छोले तलकर और दूध की पूरियाँ बनाकर मेरे नाम रंग में लगाए सखों को यदि खिलाया करोगे, तब मैं भी खाया करूँगा और तुम्हें मेरे दर्शन हुआ करेंगे।'

नवाब रहीमबख्श ने जब दर्शनों की माँग मांगी, तब आज्ञा हुई कि तुझे जपुजी साहब के पाठ करते समय दर्शन हुआ करेंगे। जैसे भक्त की नाम अवस्था परिपक्व थी। उसने भी दर्शन दान माँगा। आज्ञा हुई, पाठ के समय झलक पड़ेगी। शिवदत्त ब्राह्मण प्रेम में बींधा बेजुबान सिर झुकाए खड़ा था; मन ही मन में माँग माँग रहा था। हँसकर 'बाला प्रीतम' जी ने अपने सच्चे, स्वच्छ और ऊँचे प्रेमी से कहा, सवेरे गंगा के किनारे मानसिक पूजा के समय तुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ करेंगे। जगत सेठ को मुक्ति और भक्ति का वरदान दिया। इसने विनय की कि प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक शहर में मेरी दुकानें हैं, आपकी सेवा के लिए मेरे नौकर हाज़र होंगे, यदि आप कहें तो चिट्ठियाँ भेज दूँ। आपने कहा:—मेरे पास धुर की चिट्ठी है जिसे हर व्यक्ति को सकारना है;[१] पर सेठ ने तब भी हर ठिकाने पर हुक्म भेज दिए कि प्रत्येक स्थान पर श्री जी की सेवा हो। फिर सारी संगत की ओर से विनय हुई। आपने आज्ञा की, "जो अमृत वेला में दीवान में हाज़िर होगा, वार का पाठ सुनेगा, उसे हम पालने में झूटते हुए मन्दिर के बीच दीख पड़ेंगे"।[२]

तात्पर्य यह कि इस प्रकार वरदान देकर, उपकार करते हुए आप विदा हुए। सारी संगत दानापुर तक साथ आई। यहाँ पर एक गरीब प्रेमिन भाई ने सारी संगत की सेवा की। मिट्टी की एक हाँडी में श्री गुरू जी के लिए खिचड़ी बनाकर उन्हें खिलाई। उस गरीब प्रेमिन माई ने अपने मकान को धर्मस्थान बनाया, अब तक उस धर्मस्थान का नाम 'हाँडी वाली संगत' पड़ता है और हाँडी की यादगार पड़ी है।[३] दानापुर से आपने संगत को बड़े यत्नों से वापिस भेजा और आप आगे चले।

राजा फतहचन्द और रानी के घर पर आकर उस कमरे को, जहाँ पर श्री जी आकर बैठा करते, विराजते, सत्संग किया करते थे, मन्दिर के रूप में पलट दिया और वहां पर कृपाण और कटार और पोशाक रखी। दोनों समय कीर्तन करते और छोले पूरी का प्रसाद बाँटते। शिवदत्त, प्रेमी शिवदत्त, बाला प्रीतम के बिना एक क्षण भी न रहने वाला शिवदत्त सायंकाल को प्रतिदिन इसी मन्दिर में आकर सत्संग में भाग लेता।

---

१. हुंडी के रूप में अदा करना।

२. गुरू जी का पालना अब तक वहां पर रखा है।

३. यहाँ पर उस सौभाग्य हांडी की स्तुति में लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत है:—
वह मिट्टी की हाँडी, जिसमें उस माई ने खिचड़ी पकाकर बाला प्रीतम जी को खिलाई, भाग्यशील है। बाला प्रीतम तो चले गए मगर वह पावन हाँडी माई के पास रह गई जिसमें वह प्रतिदिन खिचड़ी पकाकर, गुरू जी का ध्यान धारण करके उनको अर्पण करती हुई संगत को खिचड़ी खिलाती रही। इस हाँडी के कारण वह माई धन्य हो गई और उस हाँडी से उस संगत का नाम भी 'हाँडी संगत' पड़ गया।

: ५ :

समय बीतता गया, समय के रंग बदलते गए। बारह से भी अधिक वर्ष गुज़र गए। मैणिआणी माँ को प्यारे पुत्र, देवी पुत्र, स्वयं आकर उद्धारकर्त्ता के साथ उस रस रंग को देखे हुए युग व्यतीत हो गया। आध्यात्मावस्था टिकाव में है, नाम स्मरण का रंग समाया है। भक्ति बढ़ोतरी पर है, टिकाव और प्रेम ऊँचा है। दर्शन जी हर रोज़ होते हैं। ध्यान में बाला प्रीतम जी का ही निवास है। हाँ, अब तो बाला प्रीतम जी, 'गुरू प्रीतम जी' हो गये हैं और इतने ऊँचे हृदय वालों को, हाँ जिन्हें प्रेम ने ऊँचा किया है, प्रेम खींच रहा है। प्रेम ही तो प्राण है, प्रेम ही आधार है। दर्शन की लालसा अधिक से अधिक हो रही है। जी उमड़ता है, रोकते हैं, पर रुकता नहीं:–

माए! मेरीआं कउण कते हुण पूणीआं।
सुध बिसरी ते मत मगनाई प्रीतम प्रेम झंझूणीआं।
निहुं लगा लग बधदा माए।
बिन प्रीतम गलाँ उणीआं।
फेरू जीवदिआं नेहु बिसरे नाहीं मोइआं बी दूण चऊणीआं।

[कानड़ा फेरू जी]

लगा हुआ नेह बढ़ता है, बढ़ता है और बढ़ता है, इसे मौत भी नहीं घटा सकती। ज्ञान में, ध्यान में, बैराग्य में, प्रेम की उमड़ती हुई बाढ़ को विचार की सीमा में रखते हुये बारह चौदह वर्ष बीत गये। अन्त में राजा फतहचन्द और रानी चल दिये। आनन्दपुर की सीध ली। संगत भी पीछे चली। नेह लगाने वाला, उस बाला प्रीतम का पता बताने वाला, राजा ब्राह्मण शिवदत्त अब बुड्ढा शिवदत्त, दानापुर पर आकर मिला। कहने लगा: फतहचन्द! मेरे दिल के ज्ञाता! इस वृद्वावस्था में मुझे भुलाकर क्यों चला था? मुझे भी उस प्रीतम के देश को ले चल। मेरी बूढ़ी हड्डियां हैं, मांस ढलकता है, शक्ति नहीं है, पर नेह नवबाला है। अरे मेरे साथी! मेरे हृदय की जाननहार! नैनों वाले प्यारे! मुझे साथ ले चल। एक बार कलगी वाले के दर्शन करा दे और फिर उसके चरणों की धूल में मेरी धूल मिला दे।

"हे लाल मेरी देह निमानी है:–

मुझे अपने देश में बुलाकर, हे प्रीतम अपने पास बैठाओ। एक बार अपनी आंखों से मुझे देखो और देख देखकर निहाल करो। हे प्रीतम! मेरे दिन पूरे हो गये हैं, कोई दम बाकी है। मेरे इस चर्खे को घुन खा गया है। काल इसके सिर पर बोल रहा सुनाई देता है। पुराने दास पर दया कीजिये और अपने इस विरद का पालन कीजिये। हे कलग़ी वाले! तू कृपा कर, दर पर गिरे दास को सम्भाल ले।"

शिवदत्त के विरह ने मैणी का कलेजा बींध दिया; मैणी को कोई एतराज नहीं था पर उसकी जर्जरी देह को देखकर, उसके परिवार का भय देखकर कि रास्ते में ही कहीं शरीर न छूट जाये, मैणी अकेला आ गया था। पर प्रीतम का सच्चा प्रेमी शिवदत्त यह कब सहन कर सकता था कि अभी स्वास हों और प्रीतम के दर्शन की आशा हो और वह निराश होकर घर पर रह जाये? फतहचन्द ने चरण छूकर कहा, "मुझे दर दर्शन" की प्रीति लगाने

वाले! यदि इस देह के होते हुए मुझ निक्कमे को यह बड़ाई मिले कि तुझे प्रीतम के दर्शन हो जायें तो मेरा हाड चाम सफल हो जाये। तू चल, तू मेरा सरदार है और मैं तेरा दास बनूँगा।" इस प्रकार दिलासा देकर परिवार से छुट्टी दिलवाकर शिवदत्त प्रेम शिवदत्त जी, 'बाला प्रीतम के प्यारे शिवदत्त-जी को फतहचन्द जी साथ लेकर चले। पालकी में आप की सवारी कराई। हाय शिवदत्त! तेरे हृदय का सत्कार कैसा ऊंचा है? शिवदत्त कहता है, "पापी शरीर! किस समय तैंने आकर हार दी? मैं प्रेम के देश चला हूँ, यदि तू हार न देता तो यों जाता:-

"पैरी थकां सिरि जुलां जे मू पिरी मिलंनि॥

पर तैंने हार दी, मैं बेअदब होकर जा रहा हूँ।"

मैणिआणी-हे हमारे सिक्खी मण्डल के चमकते हुए सौन्दर्य! यों न कहो, धन्य यह शरीर है जिसके होते-होते फिर दर्शन हो रहे हैं। हे बड़े, क्षमा करना।

'इस देही कऊ सिमरहि देव॥
सो देही भजु हरि की सेव॥ [भैरऊ कबीर]

हुकम है! हे सत्कार योग्य! हम आपकी अपार प्रीत की बलिहारी हैं।

प्यार में पिरोये हुए सारे प्रेमी चले जा रहे हैं। कहां बिहार देश का पटना, कहां मैन दोआब का आनन्दपुर। घोड़ों, डोलों के सफर, पर प्रेम पूछता नहीं; बूढ़े, जवान लड़के नहीं देखता, सूख, दुख को नहीं पहचानता, खींचे लिये जा रहा है। खींच के नियम को ख़ींच के बिना और किसी से क्या वास्ता। वह खींचता है और खींच के केन्द्र की ओर खींचे लिये जाता है। है तो खींच, पर इस सौभाग्यवान खींच में ही प्राप्ति है।

शनैः शनै सफ़र करते पौष चढ़ते ही आनन्दपुर आ गए। कल्ग़ी वाले को पता है कि सोलह दर्शनों का वेत्ता शिवदत्त, मेरा गहरा प्रेमी शिवदत्त आ रहा है। मेरे सत्कार योग्य पूर्ण पद के प्रेमी मैणी जी भी आ रहे हैं।

देखिये सारे अपने आप में सिक्ख हैं। मैणिआणी और मैणी पूरे अदब से भरे, पूर्ण सिक्ख भावना में आ रहे हैं। पुत्र का मान साथ नहीं ला रहे। बेचारा शिवदत्त अत्यन्त दीन और नम्रता भरे प्यार में आ रहा है और चाहता है कि चरणों में लीन हो जाये, पर श्री गुरू जी विरद के पक्के, नियम के सच्चे, आगे से मिलने के लिये चले। रोपड़ तक घोड़े पर चढ़कर आगे से आकर मिले।

शिवदत्त की पालकी का कहार उठाये लिये जा रहे हैं। गुरू जी धीरे से पीछे से आकर कहारों को खड़े होने का संकेत करते हैं और पास आकर कहते हैं, 'बाबा जी झांको।'

आहा! ये करामाती वाक्य, जीवनदान करने वाले वाक्य, ईश्वरीय पुकार के वाक्यों ने वृद्ध शिवदत्त को हिलाकर खुशी से उछाल दिया। क्या देखता है कि प्रीतम बाला प्रीतम, अब कल्ग़ी वाला प्रीतम 'झांक' कर रहा है। मरद और नौजवान होकर भी मुझे बाल लीला के चोज़ों से बुला रहा है। खुशी के उछाल से ऐसा उछला कि पालकी से बाहर आ पड़ा, पर सारी पट्टेबाजी के उस्ताद सतगुरू जी ने हाथों में थाम लिया। कलेजे से लगाकर कहा, धन्य सिक्खी! धन्य सिक्खी!! धन्य सिक्खी!!!

शिवदत्त वैराग से द्रवित हो गया, पर प्रेम से उत्साहित हो उठा। प्यारे दर्शनों से निहाल हो गया और चुम्बक के शरीर के साथ लगते ही मानो नई जवानी में आ गया। सतगुरू ने कस कस कर प्यार किया, गले से लगाया और फिर फिर प्यार किया।

देख रे प्रेम की ओर से भूले पाठक मित्र! अपने सतगुरू के प्रेम का दर्शन देख! बुढ़ा ठुँठ, शक्ति जा रही है, देह वृक्ष के तने की भांति झुर्रीदार हो रही है, मांस ढिलक रहा है, हड्डियों का ढांचा हो रहा है। कोई सुन्दरता बाकी नहीं है। यदि तू देखे तो हाथ तक न लगाए, पर तेरा गुरू उसमें आध्यात्मिक सुन्दरता को देख रहा है। ईश्वरीय सुन्दरता को देखकर मस्त हो रहा है। शरीर के बीच के पंछी की सुन्दरता पर मोहित होकर जर्जर पिंजर को भी गले से लगा लगाकर प्यार कर रहा है। कल्ग़ी वाला गुरू धन्य है।

जब प्यार का मिलाप हो चुका तब श्री गुरू जी ने शिवदत्त को पालकी में आराम से बैठाया और पीछे का ध्यान किया। सारे साथ में खबर हो गई थी। मैणी और मैणिआणी घोड़े और डोले से उतरकर पैदल भागे जा रहे हैं। चेहरे खुशी से दमकते हैं, लाली फूटती है। मानों चेहरे से लोहू चू रहा है। आते ही चरणों पर गिरे पर 'मां' कहने वाले मर्यादा के पूरे महापुरुष ने धरती पर पड़ने से पहले ही सिर सँभालकर फिर उसी वेग वाली पुकार में कहा "माँ", हाँ जी।

"माँ"

"माँ" कहना क्या था, वायुमण्डल को आनन्द और प्रेम से भर देना था। मानों दोनों मूर्छित हो गये, रस में आये से ऊँचे होकर चले। दैवी पुत्र खड़ा है और कह रहा है:–

"अम्माँ! ईश्वरीय प्यार"

इस संगम को कैसे कहें? वर्षों की प्रतीक्षा, खींच और वियोग के बाद का मिलाप– सतगुरू जी का आगे आकर मिलना, दासों को निवाजने का विरद, प्रेम की अवधि, सात्विक भाव छा गये। सारी संगत दन्डवत में पड़ गई। घड़ी भर पता न चला कि समय कहाँ व्यतीत हो रहा है। फिर सतगुरू ने कौतुक दिखाया, सबको होश में लाया गया। एक-एक से मिले, कुशलता पूछी, प्यार किया। इससे आधे मील की दूरी पर चोज़ी जी का डेरा लगा हुआ था। लंगर चल रहे थे, वहाँ पर सबका निवास करवाया।

शिवदत्त अब 'सतगुरू जी' कहकर बुलाता है। आप कहते हैं, "देखिये पण्डित जी! तुम्हारी रसना में से 'बाला प्रीतम' का शब्द इस प्रेम से निकलता रहा है कि हमें उसका स्वाद नहीं भूला। तुम वृद्ध हो, बड़े हो, हमारे आदि प्रेमी और सत्कार योग्य हो। तुमको हमें सदा 'बाला प्रीतम' कहना होगा। इसमें से जो रस हमें मिलता है, उसका हम त्याग करने के लिये तैयार नहीं है।" दासों को निवाजने और प्रेम के चोज़ों को देख-देखकर शिवदत्त खुश होता है, जामे में नहीं समाता। कहता है: "फतहचन्द! तू सदा खुश रह, मुझे ये सौभाग्य दिन दिखाए हैं। पर हे जगत के मालिक, मेरे 'बाला प्रीतम'! अब चरणों में समा ले, जिससे फिर वियोग वाले देश में न जाऊँ।" कल्गी वाले हंसकर बोले:–

"जैसी मनसा तैसी दसा[१]॥"

फिर आनन्दपुर पहुँचे। सप्तमी का गुरुपर्व नज़दीक था। सारे इस समागम पर दौड़कर आये थे। प्रीतम जी की वर्षगाँठ के समागम के दर्शनों के उल्लास से सबने रंग माने, दर्शन किये, सुख पाये। यह कौतुक १७४६ विक्रमी[२] के लगभग का है।

सबको यथायोग्य देन प्रदान की गई। फतहचन्द को गुरू जी ने श्री गुरू ग्रन्थ साहब का एक ग्रन्थ, अपने हस्ताक्षर करके दिया और कहा:– यह विदित गुरू है–सारी सिक्ख संगत को इसी का ही आंचल पकड़ना है। तुम स्वदेश में जाकर अब इस स्वरूप में से मुझे देखा करो, मेरी ज्योति से इसके द्वारा मिला करो। इसकी वाणी द्वारा मुझसे बातें किया करो। जो कुछ यह कहे, उसे मेरा उपदेश माना करो। मेरी सेवा, इसी सेवा में साधु संगत की सेवा सहित जाना करो।

इस प्रकार देन देते हुये गुरू सप्तमी के रंग व्यतीत हुये। अब फिर से विरह के दिन आये। सब देशों की संगत बिदा हुई। यह संगत सबके बाद चली। रोपड़ तक सतगुरू जी अपने अनुगृहीत माता पिता को बिदा करने के लिये आये। शिवदत्त जी को तो सदा के लिये सतगुरू जी के चरणों में निवास मिल गया। उसकी उम्र भर की अभिलाषा पूरी हुई। शेष संगत फतहचन्द के नेतृत्व में वापिस चली गई। विरह वियोग में भरे पर आध्यात्म रस के रसिक, जीवित प्रेमी शनैः शनैः पटने पहुँचे।

फतहचन्द ने अपने घरबार को गिराकर वहाँ पर गुरू का मन्दिर बनवा दिया। फिर पदार्थ का लंगर जारी कर दिया। श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी की वहाँ पर स्थापना की। सारी उमर 'गुरू पूजा' करता, उपदेश सुनता, दृष्टि का उद्धार करता रहा। अब तक वह गुरुद्वारा है। एकादशी को श्री गुरू जी का दर्शन होता है। भोग उसी तरह लगता है। नाम 'मैणी संगत' पड़ता है, क्योंकि फ़तहचन्द मैणी खत्री था।[३]

गीत[४]

इसमें पटने से विदाई के समय संगत का प्रेम अंकित है:

संगत–सुन्दर कल्ग़ी वाले आपको यहाँ से नहीं जाना। हमसे यह वियोग सहन नहीं किया जायेगा। आप ही हमारे प्राणों के प्राण हैं। वह आपके बिना कैसे जीवित रहेंगे?

गुरू जी–हमें पिता का संदेश मिला है, जिसमें उन्होंने शीघ्र स्वदेश आने को कहा है। अब हमको उनकी आज्ञा मानकर जाना है।

---

१. कुछ समय के पश्चात् शिवदत्त जी आनन्दपुर गुरू की गोदी में, हाँ अपने बाला प्रीतम की गोदी में सिर रखकर चल बसे। बाला प्रीतम ने अपने हाथों से दाह संस्कार किया और फूल सतलुज में डाल दिये गये। 'सेवक की ओड़कि निबही प्रीति'।

२. तवारीख खालसा।

३. भाई ज्ञान सिंघ जी लिखते हैं कि १९२६ विक्रमी में हमने गुरुद्वारे की दीन हालत देखी। छः महीने वहाँ पर ठहरे। सन्त ईश्वर सिंघ जी भी आकर टिके। प्रयत्न हुआ और धन इकट्ठा करके गुरुद्वारे की सेवा हुई। अब सुन्दर और रौनक वाला गुरुद्वारा बन गया है।

४. यहाँ पर पंजाबी गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

संगत–माता गुजरी के लाल! हमें साथ ले चलिये। हमें आपसे बिछड़कर सुख नहीं मिलेगा।

गुरू जी–मैं सदा तुम्हारा सहाय हूँगा। मैं आकर सदैव तुम्हारे साथ रहूंगा मैं तो सदा संगत में रहता हूँ।

सूचनाः–हमने पीछे गुरू जी की पटने से बिदाई और उनके दानापुर पहुँचने तक का समाचार दिया था। अब उससे आगे के सफर का समाचार आगामी प्रसंग में है।



५ गुरू जी की पहली यात्रा

छोटा मिरज़ापुर

उधर सतगुरू जी समूह (वहीर) समेत दानापुर से आरे, डुमरे और बक्सर आदि ठिकानों पर ठहरते हुये छोटे मिरज़ापुर पहुँचे। प्रत्येक स्थान पर सिक्ख मौजूद थे; प्रत्येक स्थान पर जगत सेठ के सेवक आदर के लिये हाज़िर थे। प्रत्येक स्थान पर दीवान सजते गये और कथा कीर्तन, उपदेश होते गये। मिरज़ापुर में गुरू के काफ़ी सिक्ख थे। संगतों में बड़ा चाव हुआ; इतना कि तीन दिन संगत ने वहाँ से आगे नहीं जाने दिया। सत्संग के दीवान सजते रहे। मामा कृपाल चन्द जी संगतों के कल्याण के लिये कथा कीर्तन, सत्संग का सामान पूरा करते रहे। सहिबज़ादा जी भी अपने अलौकिक दर्शनों से और किसी समय चमत्कारी वचनों से सबको निहाल करते रहे।[१]

काशी

चोथे दिन यहाँ से कूच करके गंगा पार होकर काशी जा पहुँचे। काशी में गुरू नवें पातशाह के ठिकाने का स्थान मौजूद था, वहाँ जाकर निवास किया। काशी में आदि पातशाह (गुरू नानक) के समय के सिक्ख थे। भाई गुरदास जी यहाँ पर काफी समय तक रहे थे। तब से अब तक नगर और इलाके में अच्छा प्रचार बढ़ा था। संगतें श्री जी का आगमन सुनकर शहर से दूर आगे बढ़कर लेने को आई थीं। डेरे में स्वागत के सामान सजा रखे थे। बड़े चाव मंगलाचार से उतारा दिया, भेंटें अर्पित कीं और दर्शन सत्संग से लाभ उठाये। रात को लंगर हुआ। संगतें मेले की तरह इकट्ठी हो रही थीं। सब खा पी कर सोये। दूसरे दिन दीवान के पश्चात भोजन आदि से मुक्त होकर शहर की संगत गुरू जी को शहर की सैर कराने और पुरातन स्थान दिखाने के लिये बड़े साज सामान और आदर सहित ले चली। अर्थात् बहुत कोलाहल और चाव मंगल उस समय नगर में हुआ।

अगले दिन शहर के ग़रीब और ज़रूरतमंद लोग आये और दान के याचक बने। उदारदाता ने सबको झोली भर-भरकर दान दिये। फ़िर जौनपुर के इलाके का मसंद भाई गुरूबख्श संगत और धन सहित आ गया और दर्शन करके निहाल हुआ। उधर शहर की संगत ने यह देखकर कि सदैव के दाता जी ने बहुत कुछ दान कर दिया है, और धन लाकर भेंट किया। सुयश सुनकर तीसरे पहर शहर के विद्या धुरंधर ब्राह्मण दर्शनों को आये। छोटी आयु, पर चेहरे पर अलौकिक सौन्दर्य देखकर प्रसन्न हुये। साथ ही यह शंका पूरी कि क्या इस आयु में कोई चिन्ह अवतारों के हैं भी जैसे कि सुनते हैं। इसलिये विद्वानों ने एक चतुर

१. जहाँ पर नवें पातशाह जी ठहरे थे, गुरुद्वारा भी है।

प्रश्न कर दिया कि साहब जी आपका घराना गुरू नानक देव जी से खत्री घराना चला आ रहा है, दान लेने का अधिकार ब्राह्मण को है, खत्री को नहीं। आप यह दान, पूजा का अन्न क्यों स्वीकार करते हैं?[१] मामा जी कुछ बोलना चाहते थे कि दैवी बालक जी आप बोल उठे–पण्डित जी! किसी शिव, विष्णु, देवी आदि की मूर्ति पर चढ़ा हुआ दान ब्राह्मण पुजारी लेते हैं। हमारे घर में मूर्ति पूजा नहीं है। जो लोग हमें देते हैं वह उनका प्रेम उत्साह है, यह किसी भय और लालच में दिया हुआ दान नहीं। राजा जिस तरह कर लेकर प्रजा का पालन करता है, हमारे बड़े धन को संगतों के लंगर, गरीबों के दुख दूर करने तथा और परोपकार के कार्यों पर लगाते रहे हैं। यहां तक कि कई बार रात को बरतन धोकर उल्टे रखवा देते थे और सवेरे के लिये तनिक सा भी नहीं रखते थे। यदि कुछ रखा भी तो संगतों के सुख के लिये रखा, उपकार के लिये रखा। पानी की तंगी वाले स्थान पर कुएँ लगवाये, तालाब बनवाये, बाबड़ियाँ बनवाईं। नगर बसाकर हजारों ज़रूरतमदों के रोज़गार चलाये। अंत में हमारे बाबा जी ने उस धन के साथ फौज रखकर उस तुर्क को चार बार हार दी, जिसके सामने कोई देख भी नहीं सकता था। हमारा लेना वृक्ष के जल लेने की भाँति है जो कि फीका जल लेकर सृष्टि को मधुर फल 'दान' देता है। गुरू के सिक्खों को सतगुरू धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ देते रहे हैं। आपको पता है कि हमारे पूर्वजों ने धर्म की रक्षा के लिये अत्यन्त कष्टों में अपना पावन तन देकर शहीदी पाई है और आये धन से अपनी जान बचाने का प्रयत्न नहीं किया, पर धन से अमृत सरोवर, कई कुएँ, तरनतारन में सरोवर, कर्तारपुर नगर आदि अनेकों स्थान प्रजा के सुख के लिये बनाये।

एक पण्डित ने कहा–आप सत्य कह रहे हैं। आपके बजुर्गों ने धर्म की रक्षा के लिये बड़ा कुछ किया और कर रहे हैं, पर आपने तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ गिने हैं, इनमें तीन तो जो कोई दे और ले तो ये दिखाई पड़ जाते हैं, पर मुक्ति तो मर कर ही मिलती है। उसकी साक्षी कौन आकर भरता है कि हमें मिली है। साहबज़ादा जी कहने लगे: यदि मुक्ति केवल मरकर ही मिले और जीवित काल में न दीख पड़े तो वह काहे की मुक्ति है? देह होते हुये भी जब मुक्ति प्रकट होती है और ब्राह्म ज्ञान उदय होता है, तो मुक्ति दीख पड़ती है। इसी का नाम वास्तविक मुक्ति है। हमारे पूर्वज 'ईत ऊत जन सदा सुहेले' करते रहे और कर रहे हैं।

यह उत्तर सुनकर सब पण्डितों के सिर झुक गये। एक ने कहा:–'क्षमा कीजिए, आपकी यह आयु और वह महिमा जो कल हुई है, उसे देख सुनकर हमें संशय था कि लोग बड़ा यश कर रहे हैं: देखें भला यहाँ पर कोई वास्तविकता भी है कि नहीं है। इसलिये हम आये थे कि परीक्षा करके तसल्ली करें। आप जानते हैं: पढ़ा हुआ मन संशय के घर में खेलता है और परखकर ही तसल्ली पकड़ता है और निश्चय में आता है। यह विद्या का अवगुण है, (सारे हंस पड़े)।

साहबज़ादा–पण्डित जी एक विचार रह गया है। आप सब ब्राह्मण हैं, अपने आपको पूज्य समझते हैं, पर सारे राम, कृष्ण आदि अवतारों के पूजक हो, और वे खत्री थे। हम

१. तवारीख खालसा।

तो जातपाँत के विचार वाले नहीं हैं, पर तुम अपनी ब्राह्मण उत्तमतत्ता में देख लो कि खत्रियों की पूजा करते रहे और कर रहे हो। अतः वाहिगुरू के भेजे और खास काम करने के लिये आये हमारे पूर्वजों को अवतार समझो, उन्हें पूजो और सुख लो। जाति अभिमान से अपने धर्म से ही दूरी हो जायेगी।

इस पर ब्राह्मण पहले तो क़ायल हुए थे, अब नम्रता में आ गये और सबने नमस्कार किया। स्तुति की और यह बात मानी कि आपको परमेश्वर ने हमारी रक्षा के लिये अवतार देकर भेजा है, आप धन्य हैं।[१]

प्रयाग

इस प्रकार काशी में आपके धर्म धुरंधर और अवतार होने की कथा घर-घर में फैल गई। आप यहाँ पर दस दिन ठहरे, सत्संग होता रहा। यहाँ से प्रयाग होकर जाने का संकल्प हो गया। फिर गंगा पार होकर बड़े 'मिरज़ापुर'[२] से होते हुए शनैः शनैः प्रयाग जा पहुँचे। यहां पर भी उस स्थान पर जाकर ठहरे जहां पर नवें गुरू जी जाते समय ठहरे थे। शहर के लोग बड़े प्यार सहित दर्शन को आये और खूब रौनक लगी। 'आसा दी वार' और 'सोदर' के दीवान लगे, कथा कीर्तन हुये और सत्यनाम के उपदेश का कार्य चलता रहा। यहां पर पाँच दिन निवास रहा, फिर अयोध्या की ओर चल दिये। [इस गुरुद्वारे के साथ एक गाँव और कुछ रसद रोज़ के लिये लगी हुई बताई जाती है]।

अयोध्या

प्रयाग से चलकर रास्ते में अनेकों स्थानों पर ठहरते हुये और प्रचार करते हुये अंत में आप अयोध्या पहुँचे। जहाँ पर अब गुरुद्वारा है वहाँ पर डेरा डाला। यहां पर भी दो तीन दिन ठहरे। संगतों में सत्य धर्म का प्रचार किया। पुरातन ठिकाने, गुपतार घाट आदि स्थान देखे। ज़रूरतमन्दों को दान दिये।

गुरू नानक मता

अयोध्या से चलकर आप गुरू नानक देव जी द्वारा पवित्र किये गए स्थान—गुरू नानक मता में आये। इसी स्थान को जब योगियों ने गुरू के सिक्खों से छीन लिया था तब छठे गुरू जी ने पंजाब से आकर दुबारा सिक्खों को इसका कब्जा दिलवाया था। इस दूहरे आकर्षण ने आपका डेरा यहाँ पर करवाया।

---

१. काशी में ये गुरूधाम हैं:—१. बड़ी संगत, जहाँ पर नवें गुरू साहब और अब साहबज़ादा जी ठहरे थे। नवें गुरू जी का चोला यहाँ पर पड़ा है और नवें और दसवें गुरू जी के जूते पड़े हैं। २. छोटी संगत नवें गुरू जी के ठिकाने का स्थान। ३. गंगा पार मिरज़ापुर में गुरू का बाग़ है। साहबज़ादा जी प्रयाग जाते समय यहाँ पर टिके थे। ४. गुरू नानक जी के ठिकाने का स्थान।

२. यहाँ पर भी गुरूधाम है।

पीलीभीत–देव नगर

यहाँ से चलकर आप पीलीभीत आए। यहाँ पर आपके आने और आपको लाने का कारण इधर का मुखिया शमशेर बहादुर था, जिसके दादा बाज़-बहादुर को छटे गुरू जी ने सिक्ख धर्म प्रदान किया था। इस प्रेमी ने आपको पाँच दिन अपने पास रखा और फिर बड़े सम्मान सहित विदा किया। अब आप जी को आकर्षण हुआ कि भाई बिधी चन्द की समाधि के दर्शन करें, जिसकी वीरता की कथा आपने मामा जी से सुन रखी थी कि छटे गुरू जी के समय उसने कितनी सेवा की थी। अत: आप अब देवनगर आये। यहां पर वीर बहादुर की अंतिम आरामगाह देखी, दीवान सजाये, सत्यनाम का पल्ला फेरा। यहाँ पर बेनवा फकीरों का डेरा था, जो गुरू जी को सम्मान सहित देखते थे। ये सुन्दर शाह के चेले थे। इन्होंने बड़ा आदर किया और हर प्रकार का सम्मान दिया।

लखनऊ

यहाँ से चलकर आप लखनऊ आये। यहाँ पर भक्त भगवान ने आप जी को अपने पास रखा और बहुत प्यार और सम्मान किया। लिखा है कि साहबज़ादा जी ने उन्हें एक तलवार प्रदान की जो अब तक उनकी पूजा में है। यहाँ से चलकर बठूर बस्ती के पास ब्रह्मावर्त तीर्थ पर जाकर ठहरे।

मथुरा

यहाँ से विदा होकर चंदौसी, खुरजा होते हुये मथुरा आ गये। ब्रजलाल चौबे ने आपका बहुत सत्कार किया और यहाँ से चलकर वृन्दावन देखते हुए कई स्थानों पर ठहरते हुये, दान देते हुए, सत्यनाम की वर्षा करते हुए, दीवान सजाते हुए हरिद्वार आ गये। कनखल में तीसरे गुरू जी के गुरुद्वारे वाले स्थान पर पाँच दिन ठहरे, दान दिये और सत्संग के दीवान सजाये। फिर सांतल सर भगवानपुर से होकर बूड़िये आये और दीपला गाँव के पास कुन्ड के पास डेरा डाला। यहाँ पर आराम करके आगे चले और लखनौर में आकर डेरा डाला।[१] यह स्थान अंबाला के परगने में था। यहाँ पर जेठा नामक गुरू का एक मसंद रहता था।

१. सूरज प्रकाश में लिखा है कि जब लखनौर के नजदीक पहुँचे तो नवें गुरू जी का संदेश आया कि हम शरीर का त्याग करने के लिये दिल्ली को चले हैं, तुमको लखनौर में ही ठहरना, अभी आनन्दपुर को न जाना, जब संदेश आये तब जाना। कुछ समय के पश्चात नवें गुरू जी जब तुर्केश की बन्दी में पड़ गये, तब आनन्दपुर जाने की आज्ञा आई, तब आप गये। उधर दिल्ली में प्रभु आज्ञा हो गई (गुरू तेग बहादुर की शहीदी) और सीस आनन्दपुर में साहबज़ादे के पास पहुंचा। जीवित दर्शन नहीं हुए, पर तवारीख खालसा में लिखा है कि लखनौर से आनन्दपुर में गुरू तेग बहादुर के जीवित काल में पहुँचे थे। दो तीन वर्ष पित्रा पुत्र इकट्ठे रहे। गुरू तेग बहादुर की शहीदी का समय बाद में आया। दशम पातशाह जी के अपने कथनानुसार भी आनन्दपुर की शहीदी का समय बाद में आया। दशम पातशाह जी के अपने कथनानुसार भी आनन्दपुर में पिता जी के पास पहुँचने पर और उनकी प्यार छाया में समय व्यतीत होने का पता चलता है। जैसा कि वाक्य है:–

मद्र देश (पंजाब) हमको ले आये। भाँति भाँति दाई अन दुलराये।
कीनी अनिक भाँति तन रछा। दीनी भाँति भाँति की शिछा।
जब हम धर्म कर्म मों आए। देवलोक तब पिता सिधाए।

इसलिए आपका आनन्दपुर में पिता जी के पास पहुँचने का प्रसंग अधिक ठीक समझकर यहाँ लिखा है।

इसे गुरू तेग़ बहादुर जी की आज्ञा मिली थी कि वह साहबज़ादा को और संगत को अभी लखनौर में ही रखे। इस प्रेमी भाई जेठा ने आपके ठहरने का आदर सम्मान भरा प्रबंध किया और माता जी और सारे साथियों के आराम के प्रबन्ध कर दिये। यहाँ पर सारे घर की भाँति टिके। नगर के सिक्ख, आसपास के गाँवों के सिक्ख श्रद्धा भक्ति सहित दर्शनों को आने लगे। साँझ को और अमृत वेला में कीर्तन दीवान सजने लगे। सारा दिन चहल-पहल लगी रहती। साहब जी घोड़े की सवारी करते, बालक इकट्ठे करके खेल खेलते, तीरअंदाजी आदि के खेल खेलते। इस स्थान पर कुएँ खारी थे। लोगों का कष्ट देखकर एक दिन चलते फिरते माता गुजरी जी ने एक स्थान को खोदने की आज्ञा दी, तो नीचे से प्राचीन काल से दबा हुआ कुँआ निकला। इस पर से मिट्टी हटाई गई तो इसका जल मीठा निकला। यह कुँआ अब तक माता जी का कुँआ कहलाता है। इसको खोदने आदि का खर्च भी माता जी ने ही दिया।

लखनौर के निकट ही उस शाहभीख का निवास था जो साहबज़ादा जी के दर्शन करने के लिये पटना गया था। यह कभी कुहड़ाम और कभी सिआने गाँव में रहता था। ठसका नामक एक गाँव इसे जागीर के रूप में मिला हुआ था। यह शाहभीख[१] फिर दर्शन करने के लिये लखनौर आया।

इसने अपने मुरीदों के साथ होते हुए भी खेल रहे साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को सीस झुकाया, चरण चूमें। फिर प्यार, सम्मान के वाक्य कहकर कहने लगा–श्री जी! आप बालक हैं, पर पीरों के पीर हैं, और जगत के नाथ हैं। मैं आपको पहचानता हूँ और आपको जो कुछ करना है उसकी जानकारी भी खुदा ने मुझे दी है। मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मेरी रोटी बनी रहे। आप हँस पड़े और कहने लगेः–

चिरंकाल रहि देग़ तुमारी।
जो तेरे टुकरे को खोवहि,
खोयो जाइ सु नहिं थिर होवहि।

लिखा है कि उसका लंगर अब तक चलता है। यथाः–

कवि संतोख सिंघ करत उचारे।
तिसको ग्राम सु निकट हमारे।
बहुँदिश सिंघन राज बडेरा।
ठसका ग्राम बीच हम हेरा।।४२।।
शाहभीख को रहे फकीर।
देत देग़ जो आवै तीर।
सिंघ भूप नहि छीनियों काहूँ।
रहयो तिनहुँ ढिग सभहिन माहूँ।।४३।। [गुः प्रः सूः ४४३९]

जब भीख वापिस लौटा, तब चेलों ने तर्क किया कि आपने हिन्दू बच्चे को सिजदा क्यों किया? भीख ने कहा, यह अल्लाह का भेजा हुआ अवतार आया है। हिन्दू और

१. सूरज प्रकाश में, दो बार आया लिखा है। एक पटने एक लखनौर। तवारीख़ खालसा में पटने वाला आना यहाँ दिया है।

मुसलमान को एक रास्ते पर चलायेगा। यह दरगाह के मालिक का अपना सौन्दर्य है। जब आप आये थे तब मैंने मराकबे में (अंर्तध्यान होकर) जलवा देखा था और दर्शनों को गया था। तब वे चेले खुश हो गये।

साहब जी अब नीले घोड़े पर चढ़कर इधर-उधर दूर तक फिरने के लिए निकलते। एक दिन भूस्थल के खंडहर पर पहुँचे। वहाँ पर लूखी नामक गाँव के राजपूत[१] आये हुए थे। इन्होंने अपने पीर से दैवी बालक की महिमा सुन रखी थी। इन्होंने आकर सलाम किया। कुछ तीर और एक शिकरा भेंट किये। आपने आशीर्वाद दिया: आबाद रहो! ये लोग बसते रहे। इस आशीर्वाद का सिक्ख सरदारों ने बाद में काफी सम्मान किया और इनकी जागीर जब्त नहीं की थी। चलते-चलते आप मरदो, भाणो, खेड़ी, सूलर आदि गाँवों के चक्कर लगाते रहे, जहाँ पर यादगारी गुरुद्वारे हैं। ननहेड़ी गांव का वासी मसंद घोगा आपको गांव में ले गया। वहाँ पर जाकर आपको किसी ने उसके आचरण में गिरावट की बात बताई तो आप उसे 'कपट का मोघा' कहकर वहाँ से चल दिये। उसके घर का पानी भी न पिया और जहाँ पर अब अम्बाला तहसील है, वहाँ पर आकर आराम किया।

यहाँ पर भी आप इसी तरह ही विचरते थे। एक दिन खूब खेल मच रहा था। लखनौर के बालक आपके साथ दो भागों में बँटकर युद्ध कर रहे थे कि एक पीर पास से गुज़र गया। इसका नाम आरफ़दीन[२] था और पालकी पर सवार था। इसके साथ इसके मुरीद भी थे। इसकी कथा इस प्रकार है[३]–

बाल्यकाल में दशम गुरू जी ने आनन्दपुर को जाते समय कुछ दिन लखनौर में रहकर अदेशी ज्योति जलाई। दाता जी एक दिन बालकों के साथ खेल रहे थे। आरफदीन के पास से गुज़रते समय आपको पहचान लिया। वह पालकी में सवार था और पालकी को उसके चेलों ने उठा रखा था। उसके पीछे-पीछे मुरीदों की भीड़ चल रही थी। सतगुरू का माथा ईश्वरीय सौन्दर्य से चमक रहा था। उसको देखते ही पीर नीचे उतर आया। जब पास आया तो चरणों पर झुका और झुक झुककर सिजदा किया। स्तुति कही, 'वाह वाह' उच्चारण किया, अपना जन्म सफल किया। फिर करबद्ध होकर आपको एक ओर ले गया और विनती की। चुपके से कोई बातचीत करके विदा ली। जहाँ पर सतगुरू जी दिखाई पड़ते रहे, वहाँ तक वह पैदल चलता गया और पालकी पर नहीं चढ़ा। उसने इस प्रकार गुरू जी का आदर किया। जब घर में अपने ठिकाने पर जाकर बैठा, तब मुरीदों ने कहा–आप ग़ैर मुस्लिम के आगे झुके हैं, हमें इसका भेद पता नहीं चला। आप ईश्वर वाले शरह वाले महान पीर हैं। आपने बालक को क्यों सिजदा किया है? इसका कारण हमें बताइए।' आरफदीन बोला, मैं तो स्वाभाविक अदब में भर आया था। यह सच्ची बात है! जो कुछ मैंने देखा है, वह तुम्हें सुना दिया है। कभी-कभी जब मैं अंतर्ध्यान होकर, समाधिस्थित हुआ और दरगाह में गया तो मैंने क्या देखा–कि यही बालक, ज्योति का जामा पहनकर

१. सूरज प्रकाश में इन्हें रंघड़ लिखा है, जो आकर आपसे मिले थे।
२. सूरज प्रकाश में यहाँ पर भीख से मिलना ही लिखा है। पर तवारीख खालसा ने भीख और आरफदीन दो फकीरों का मिलना और सजदे (नमस्कार) करना और आपको महाज्योति मानना लिखा है।
३. यहाँ पर पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

नूरानी रूप वाला जगमग कर रहा था। सुन्दरता जिसके पैर चूम रही थी और रूहानी नूर ही नूर लगता था। यह सबसे ऊँचा, सबसे बड़ा और सबसे अधिक नूर जलाली है। इसके आगे सारे झुकते हैं, इसकी चाल निराली है। 'मेरी पहुँच में अल्लाह में फ़ना का दर्जा है पर पहुँचा वहाँ पर नहीं था। मैंने इसको वहाँ भी देखा था और यहाँ भी देखा है। यह वहाँ से यहाँ पर आया है इसे अल्लाह ने स्वयं भेजा है। यह कुफ्र ज़ुल्म के पाप मिटायेगा, इसीलिये आया है। मैंने अल्लाह के द्वार पर इसी एक को सबसे ऊँचा देखा है। आज मैंने इसे खाक़ी जामे में (मनुष्य रूप में) पहचाना है। जलाल भरा इसका रंग देखा है। इसीलिये मैंने सिजदा किया है और तुम भी अदब में आओ। यदि तुम शक करोगे तो तुम काफिर होगे, इसमें श्रद्धा लाकर खुशी प्राप्त करो। अल्लाह की बातें अल्लाह ही जानता है, हमें तो झुकना ही चाहिये। उसके आगे झुकने का हुक्म है और सच कहने से मैं डरता नहीं हूँ। तब मुरीदों ने सीस झुकाया और जो कुछ पीर ने कहा उसे सिर पर रखा। उन्होंने तअस्सुब को छोड़कर सच पहचाना और झूठा हठ न किया।

इस तरह लखनौर में से साधुओं, फकीरों, पीरों, पण्डितों, धनी लोगों, आम लोगों, ग़रीबों में साहब जी का परिचय हो गया और दोनों समय के दीवानों में शब्द कीर्तन का प्रचार तारनहार हो गया। अब जब आनन्दपुर से बुलावा हो गया, तब यहाँ की संगत ने बड़ी विह्वलता से साहबज़ादा जी को भेजा। चलते समय प्रेम के नजारे अद्भूत थे। दूर तक संगतें विदा करने को आईं। यहाँ से आप नीले घोड़े पर सवार होकर चले।

रोपड़

लखनौर से चलकर कई स्थानों पर टिकते हुये आप रोपड़ पहुँचे। जिन दो-तीन स्थानों पर टिके थे उनके नाम ये हैं—पहले राणोमाजरे पर डेरे करने का पता चलता है। यहाँ एक दिन ठिकाना करके चल दिये, फिर नंदपुर कलौड़ में डेरा करने का पता चलता है, यहाँ पर गुरुद्वारा[१] है। इस तरह विश्राम करके रोपड़ में जा उतरे। यहाँ पर एक-दो दिन डेरा किया। मौला शाह नामक एक पीर यहाँ पर रहता था, इसने आकर दर्शन किये और पूरे सत्कार सहित सिजदा किया। साहबज़ादा जी ने इसकी शक्ल-सूरत साफ देखकर और प्रेमी देखकर इससे पूछा:-"साईं जी! आपने कैसे आकर सीस झुकाया?" पीर जी ने कहा, मैं आपके पिता-गुरू का चेला हूँ। आप बोले—'कैसे बने थे?' पीर ने कहा कि जब आपके पिता जी, गुरू तेग़ बहादुर जी आनन्दपुर को आबाद कर रहे थे, तब मैं फिरता-फिरता वहाँ से गुज़रा। मैंने चकित होकर पूछा कि ये मकान किसके बन रहे हैं। किसी ने बताया कि गुरू नानक साहब की गद्दी पर विराजमान गुरू तेग़ बहादुर जी के हैं। तब मैंने और चकित होकर पूछा कि गुरू जी के लिये क्या यह एक मकान काफी नहीं था? यह दूसरी ओर बड़े-बड़े मकान, कोठे किसके लिये हैं। इनके बुजुर्गों का वाक्य है, "जिनी चलणु जाणिआ, से किउ करहि विथार।। चलण सार न जाणनी काज सवारणहार।"

तब एक सिक्ख ने कहा—ये संगतों के लिये हैं। मैं और अधिक चकित हुआ कि ये तो बकाले के मठ में बैठकर तप किया करते थे, गुरू गद्दी तो लेते ही नहीं थे, बड़ी

१. यह भी कहा जाता है कि गुरुद्वारा नवें पातशाह के समय से था।

मुश्किल से संगतों ने आकर मनाया था, वाणी वैराग्मय उच्चारण करते हैं, ये कैसे आडम्बर रचने लगे हैं? फिर मेरा जी चाहा कि चलकर दर्शन तो करें। जब मैं गया, तो आखिर मैं भक्ति अभ्यास वाला मनुष्य था, मैंने उनके चेहरे पर ईश्वरीय सौंदर्य को पहचान लिया और सत्कार सहित सलाम करके बैठ गया। आपने मुझ से प्यार किया। भोजन का समय था, भोजन करवाया। फिर कहने लगे; पीर जी! आराम कर लीजिये! मैं सोते समय विचार में पड़ गया, विचारों में ही नींद आ गई तो मैंने स्वर्ग देखा। वहाँ पर एक मनुष्य को मैंने बहुत सुखी देखकर पूछा, भले लोग! तेरी डील बहुत तेज दीखती है, तू यहाँ पर कैसे आ गया? वह कहने लगा, पीर जी! मैं शेर की देह में था। एक बार वर्षा हुई, ओले पड़े, तेज हवा चली। मैं बाहर शिकार को गया हुआ था, बड़ी मुश्किल से अपने ग़ार में पहुँचा। पर बहुत बड़ा गार था और उसमें मैंने तीन तरफ से रास्ते रखे हुये थे। जब मैं वहाँ पर पहुँचा तो वहाँ से मनुष्यों की आवाज़ आई। मैं समझ गया कि अत्यन्त जाड़े के कारण रास्ते में जाने वाले मुसाफिरों ने यहाँ आकर आश्रय लिया है। तब पीर जी! मुझे मनुष्य शरीर का ध्यान आया कि मैं अंदर न जाऊँ, अन्यथा सारे डर के कारण भाग जायेंगे और जाड़े में मरेंगे और यदि न जाऊँ तो ये सुखी रहेंगे। अतः भले लोग कहते हैं कि सुख देना, सुख लेने की अपेक्षा उत्तम है। यह विचार कर मैं कुछ दूरी पर जाकर बैठ गया। अत्यन्त जाड़े के कारण मैं सुन्न हो गया और सुन्नपने में मेरी देह छूट गई। उस शुभ उपकार के बदले में आपा न्योछावर कर देने के कारण मुझे यह सुख मिला है। लो मेरे साहब के लाल जी! अब मेरी नींद खुल गई। न जाने यह सपना था अथवा सच था कि आपके पिता ने मुझे एक चमत्कार दिखाकर सुमति प्रदान की, अथवा मेरे ही भागों ने मेरे ही संशयों की मेरे अंदर निवृत्ति कर दी, पर समझ में आ गया कि गुरू साहब परोपकार के लिये, संगतों के सुख के लिये मन्दिर बनवा रहे हैं। इनके अन्दर तो ईश्वर का प्रेम ही प्रेम है और कुछ नहीं। जगत के उपराम हैं, पर गुरू नानक के होने के कारण गृहस्थ में हैं, पर गृहस्थ उदास हैं। गृहस्थ में होने के कारण परोपकार इनका व्यवसाय था।

फिर मैं उठकर गुरू जी के दर्शनों को चला तो कुछ बालकों को ईंटों के साथ खेलते हुये देखा। इन्होंने ईंटों के कीले कोट बनाये, रेत के खंडहर बनाये और कई खेल रचे। फिर झट सब कुछ गिराकर घरों को चल दिये। यहाँ से भी मेरी समझ में आ गया कि यह खेल भी मेरे ही भले के लिये दिखाया गया है। इनकी वृत्ति में पकड़ नहीं है। इन बच्चों की भाँति इनका आडम्बर एक खेल मात्र है। मन्दिर बनाकर अपने सिक्खों का धन पदार्थ सफल कर रहे हैं कि साधु-संत अतिथि ग़रीब आकर टिकें तो उनका, जिनका पदार्थ आप लगा रहे हैं, भला हो! इस तरह मैं निश्शंक हो गया। फिर जाकर आपके चरणों से लग गया। आप जी ने अपार अनुकंपा की है। ऐसे वाक्य कहे कि मेरे कपाट खुल गये। मैंने बड़े तप किये थे, ज़िक्र में भी था, पर मेरे नाम में रस नहीं पड़ता था। एकाग्र भी होता था, पर कुछ बनता भी लगता था, पर रस रूप नहीं हो पाता था। आप जी के पिता जी की कृपा से मैं रस रूप हो गया, तो अपने दीन धर्म की लज्जा का त्याग करके और शरईयों

से निर्भय होकर चरणों पर झुक गया और आपको सच्चा मुर्शिद[१] (गुरू) मानकर चला। तब से मैं नाम का स्मरण करता हूँ, जहाँ पर जरूरत समझता हूँ, धर्मस्थान और सराये बनवा देता हूँ।

यह है मेरे दाता जी के लाल जी! मेरा किस्सा और आप जी का मेरे साथ रिश्ता, जिसके कारण चरण स्पर्श करने के लिये आया हूँ। साहबज़ादा जी सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे, 'सूरति साईं में यदि पिरोई न रहे तो रिक्त[२], यदि सुरति पिरोई जाये तो भरा हुआ।' भरे हुये को साईं बाहर भी दीखता है और सबके भले में साईं को प्यार भी करता है। साहबज़ादा जी की इतनी गूढ़ और गुरू नानक के मत के सिद्धान्त की आध्यात्मिक बात थोड़े से अक्षरों में सुनकर, प्रेम से भरकर पीर चरणों पर पड़ गया और कहने लगा, "पूरे का कीआ सभ किछु पूरा।।" "धन्य हैं, धन्य हैं, आयु के बस में क्या है? प्रभु स्वामी के खेल हैं, जिसे चाहे पूरा बना दे।"

इस तरह के कौतुक करते और देखते हुये आप अब रोपड़ से चल दिये और कीरतपुर आये। यहाँ आने से पहले ये समाचार पहुँच गये थे कि श्री गुरू तेग़ बहादुरी नन्दन आ रहे हैं। आप जी की सुन्दरता, सच्चाई, शाहज़ोरी, दयालुता, सहृदयता, स्वरूपस्थिति और सर्वगुण-संपन्नता की इस छोटी आयु में प्रसिद्धि यहाँ पर भी पहुँच चुकी थी। रिश्तेदारी में पहले पहल गुरू तेग़ बहादुर जी के साथ प्यार हुआ। फिर थोड़ी सी शरीकावृत्त आई थी, वह भी अब शमन हो चुकी थी। पुराने समय व्यतीत हो चुके थे, अब तो चारों कुलों के गुरू वंश, बाबे बूड्ढे के, सारी संगत और सारे मसंद गुरू तेग़ बहादुर जी के चरणों की सेवा कर रहे थे। यहाँ कीरतपुर में ही गुरू परिवार और संगत में साहबज़ादे जी के दर्शनों का चाव भर रहा था। अत: संगत और सूरजमल के पोते आदि परिवार के सभी बड़े छोटे दूर तक स्वागत के लिये आये। शबद वाणी का उच्चारण करते बहुत आदर और प्यार सहित शहर में ले गये। सुन्दर स्थान पर डेरा करवाया। माताओं से मिलकर परिवार की माताएँ प्रसन्न हुईं। माता नानकी जी ने पूर्व की सौगातें सारे परिवार में बांटीं। परस्पर दोनों परिवारों के मेलजोल बड़े आनन्दमय हुये। अगले दिन साहबज़ादा जी ने गुरू हरिगोबिन्द साहब जी के स्थान की यात्रा की। फिर बाबा गुरुदित्ता के स्थान की यात्रा की। फिर गुरू हरिराय साहब के बाग़ की सैर की। इसके उपरान्त गुरू हरिकृष्ण जी का निवास स्थान देखा। माता कृष्ण कौर जी ने बहुत आदर किया। दर्शन करके उस वियोगिन माता को अपने सुपुत्र गुरू के मानो दर्शन हुये। उस तरह के चाव के साथ भरकर साहब जी को प्रेम के अश्रुयों से आदर दिया। सारे गुरुद्वारों में कड़ाह प्रसाद करवाया और सारे नगर में बाँटा। घर घर में उत्साह मंगलाचार हुआ।

सवेरे और साँझ को दीवान सजे और आसपास के गाँवों के लोगों ने आकर दर्शन करके सुख प्राप्त किया। एक दिन ठहरकर फिर बिदायगी ली। उधर आनन्दपुर से कुछ

१. तवारीख खालसा।

२. बचपन से ही गुरू जी की सुरति साईं में पिरोई हुई थी। इसका पता गुरू जी ने स्वयं दिया है:—चुभी रही स्रुत प्रभु चरनन महि। अर्थात् मैं प्रभु में से जगत में आ गया था, पर सुरति उनके चरणों में चुभी रही।

मुखिया सिक्ख और मसंद साहबज़ादा जी को लेने के लिये कीरतपुर आ पहुँचे। चरमणकमलों में हाज़िर होकर सबने प्रसाद भेंट आगे रखी और सीस झुकाया। फिर आदर सहित साथ लेकर आनन्दपुर को चल दिये। कीरतपुर में परिवार और नगरवासियों ने बड़े सुखों से कुछ दूरी तक साथ जाकर सम्मान सहित आपको विदा किया। चलते समय साहबज़ादा जी हँसी-हँसी में सूरजमल के पोतों से कहकर गये, तुमको आनन्दपुर मेरे पास आकर रहना है। उन्होंने भी प्यार और चाव सहित सत्य वचन कहा।

आनन्दपुर

कीरतपुर से चलकर आनन्दपुर आये। जब नया नगर निकट आ गया तब आनन्दपुर की सिक्ख संगत कीर्तन करती हुई आगे से स्वागत के लिये आ मिली। इधर से भी संगत गुरू तेग़ बहादुर जी के सम्मान में शब्द पढ़ती हुई पैदल हो चली थी। दोनों संगतें अत्यन्त प्रेम से आपस में मिलीं। आनन्दपुर से आये हुये सब प्रेमियों ने बारी-बारी साहबज़ादा जी को जुहार किया और आशीर्वाद लिया। फिर मिलकर दोनों संगतें एक होकर आनन्दपुर पहुँचीं। नगर के बाज़ार, कोठे और मंडप संगतों, नर-नारियों से भरे पड़े थे। ज्यों-ज्यों आप जी आगे बढ़ते, फूलों की वर्षा होती और गुलाबजल छिड़का जाता।

मेल

जब गुरुद्वारे में पहुँचे तब श्री गुरू जी मर्यादा के पक्के दाता जी ने बाहर आकर अपनी माता जी के आगे नमस्कार किया और उनसे आशीर्वाद लिया। फिर साहबज़ादा जी ने पिता जी के चरणों पर सिर रख दिया। गुरू जी ने उठाकर छाती के साथ लगा लिया। साहबज़ादा जी प्यार से विह्वल होकर पिताजी से लिपट गये। ज्योति से ज्योति मिल गई, प्रकाश से प्रकाश मिला। समुद्र से सागर मिला। दो से मानो एक रूप हो गये। दोनो सूरतियाँ वाहिगुरू में चुभी रहने वाली आपस में एक होकर अनन्त में लीन रहीं। चुप में लीनता का प्रभाव बाहर भी पड़ा। सारी संगत में एक मगनता छा गई। नैन मूँद गये। मन प्रेम रस को चखते-चखते टिक गये। सूरतियाँ सुरतियों का रंग लेकर आनन्द की ओर झुक गईं, अंदर ही अंदर चुभ गईं। जब अनन्त के हिलोर से पिता-पुत्र के नैन खुले गलवाँटी ढीली हुई तो सबके नयन खुले, तब पिता-पुत्र संगम पर फूलों की वर्षा पहले तो गुरू जाणे अदेश से गुप्त ही होती रही, अब दृष्टमान प्रेम मण्डल में प्रेमियों के हाथों खूब फूल वर्षा हुई। हाँ, सदैव होती रहे यह पुष्प वर्षा। इस आत्म आध्यात्म मेल पर इस दो से एक रूप हो ज़ाने पर, सुन्दर साईं के रंग में रांती सुरतियों के ऊपर सदा फूल वर्षा होती रहे और दर्शकों को शीतलता प्रदान करती रहे।

फिर गुरू जी धीरे से अंदर गये और अपने सिंहासन पर जाकर विराजे। बाँह से चिपटे हुए लाल जी साथ-साथ अंदर गये। सिंहासन पर बैठकर आपजी ने साहबज़ादा जी को गोद में बिठा लिया। दोनों पवित्र हृदयों में अनन्त बैठा है। दोनों सुरतियाँ अनन्त में तद्रूप हैं।

ऐसी सुरति वाले दोनों शरीर एक हुए बैठे हैं। मानो पारब्रह्म परमेश्वर की 'प्रिय स्वरूपता' ने दो रूप धारण करके फिर मिलकर एक अनोखी एकरूपता धारण कर रखी है। ब्रह्म का स्वरूप–अस्त-भाँति-प्रिय है। प्रिय का अर्थ है प्रेम। इन तीनों लक्षणों वाले दाता गुरू नानक 'स्तुति और शलाघा का मार्ग' चलाने वाले ने चौथा लक्षण मिलाया है, 'सुहाण' अर्थात् 'सुन्दरता' अत: 'प्रियस्वरूपता' की एकता अपने आपको आश्चर्यजनक सुन्दरता में दिखा रही है। दोनों ज्योति स्वरूपों की अंतरीय गति 'अस्त, भाँति, प्रिय' में लीन है, पर शरीरधारी होने के कारण शरीर की एकता में वह अंतरीय एकता अपने आपको सुन्दरता के स्वरूप में दिखा रही है। सत्य, सुहाण (मनि=) चिंद... (चाउ=) आनन्द रूप इस समय प्रत्यक्ष नैनों को प्रत्यक्ष होकर देशकाल में दीदार दे रहा है। दीदार करने वाले देख-देख कर निहाल हो रहे हैं। 'सुहाना-दर्शन' अकथनीय अद्‌भुद्‌ता वाला है, जो देखने वालों की सुरतियों को अनन्त का स्पर्श लगाकर आनन्द में रसमय करके रस में लीनता दे रहा है। यह दर्शन, यह धन्य मूर्ति, दर्शन, ध्यान, प्रेमियों के नैनों में आकर बसे, हृदय में उतर जाये और अनन्त अगम्य के देश को ले जाए–

ब्रहमै ब्रहमु मिलिआ कोइ न साकै भिंन करि बलिराम जीउ॥
बिसमु पेखै बिसमु सुणीऐ बिसमादु नदरी आइआ॥ [सूही म: ५]

सूचना–आनन्दपुर में संगतों के प्यार, आपका उत्साह, अनुकंपा, नवें सतगुरू का दिल्ली में जाकर सीस देने का महान बलिदान कार्य आदि बड़ी कथाएँ हैं। बाद में आप गुरू गद्दी पर विराजे। गुरू प्रकट हुये। पिछली नौ गुरूओं वाली नित्य क्रिया जारी कर दी। शस्त्र विद्या तथा और सामान, छटे सतगुरू जी की भाँति आरंभ कर दिये और एक आलौकिक ठाठ बाँध दिया। तब के हाल बहुत विस्तुत हैं; पर इस समय के कौतुक के नक्शे का कुछ ज्ञान अगले दो प्रसंगों 'किशोर कौतुक' और 'राजा रतनराय' में से प्रकट होता है।



६ किशोर कौतुक

जाड़े की ठण्डी और कड़कती साथ-साथ मन को भी शरद करने वाली और उदासी भरी ठंड जा चुकी है। बसंत खिल रहा है। हवाएँ अब हाड़ नहीं तोड़तीं, बल्कि मीठी लगती हैं। धूप अभी व्याकुल नहीं करती, सुहावनी लगती है। अमृत वेला है, पौ फूटने वाला है। सतलुज नदी का पूर्वी किनारा है। कोई सुहावनी मूर्ति पूर्व की ओर मुँह और नदी की ओर पीठ करके इस किनारे पर नैन गुँदकर बैठी है। थोड़ी दूरी पर कुछ और सज्जन बैठे हैं। पहले तो इनके नैन भी मुँदे हुये थे, पर जब सूरज ने आँख झपकी और धरती पर दृष्टि डाली, तब इनके नैन भी खुले। चारों ओर देखा। अपने से थोड़ी दूरी पर बैठी सूरत को पहचाना, सीस झुकाया और फिर चुपके से पास आकर बैठ गये। थोड़े समय के पश्चात पहली सुन्दर सूरत ने नैन खोले, पास बैठे सज्जनों की ओर देखा, मुस्कराये, परस्पर सीस झुके, तब यों वार्तालाप छिड़ाः-

साहब चन्द (सुन्दर सूरत की ओर देखकर)-भाई हरिदित्ता जी! वाहिगुरू की आज्ञा से आपके प्यारे भाई गुरुदित्ता जी का भी देहांत हो गया। वे गुरू घर के कितने प्रेमी थे? जिस प्रकार उनकी निभी, वैसी ईश्वर प्रत्येक सिक्ख की निभाये।

नन्द चन्द-भाई हरिदित्ता जी! क्या कहें? गुरू घर ही इस समय प्रजा की ओट है, शेष तो चारों ओर अँधेरा है और अंधेरगर्दी मच रही है। जैसे अपूर्व हमारे सतगुरू जी हैं वैसे ही अनोखे कर्मों वाले उनके सिक्ख हैं। गुरू तेग बहादुर जी की सी करनी कौन कर सकता है। फिर जैसे वे आप करनी के सूरज वैसे ही उनके द्वारा रोशन किये हुये चन्द्रमा की भांति उनके सिक्ख, धन्य भाई गुरुदित्ता और धन्य भाई मतिदास, जिन्होंने वीरता से आरे का कष्ट झेला और दयाला जी ने उबलती हुई देग में बैठकर शरीर पर असह्य कष्ट सहन किये। प्राणों की बाजी लगा गये, पर धर्म न हारा। आपके बड़े भाई गुरुदित्ता जी नाम के रसिक, सतगुरू के प्रेमी उस ज़ालिम की कैद से उसी दिन छुटकारा भी पा गये थे। पर वाह-वाह प्रेम! किस प्रकार हृदय की मर्म भरी प्रीत ने प्यारे के बिना अपना शरीर रखना न झेला और न झेला। सुना है उधर श्री गुरू तेग बहादुर जी की शहीदी हुई, इधर आकर आपने शरीर का त्याग कर दिया, यह वार्ता कैसे हुई थी?

भाई हरिदित्ता-जिस सिक्ख ने उनका दाह संस्कार किया है, उसने उनका अन्तिम सन्देश हमारे पास रामदासपुरे में पहुँचाया है। उसने यों बताया है कि सतगुरू तेग बहादुर जी ने गुरुदित्ता जी से कहा दिया था कि तुझे कैद से छुटकारा मिल जायेगा; अपने नामरंग से सावधान रहना। पर उन्होंने विनय कर दी थी कि पातशाह! आपके नामरंग से रंगा वह मन आपके देहान्त के पश्चात् विरह पीड़ा सहन नहीं कर सकेगा। हजूर के चरणों में ही पहुँचेगा। वही बात हुई। जिस समय (मकर सुदी पंचमी सन् १७३२) दोपहर के बाद दिल्ली में श्री

गुरू जी का सीस तन से अलग हो गया तब बन्दीखाने वाले तुर्कों ने भाई गुरुदिता को मुक्त कर दिया। भाई साहब वहाँ से चलकर मजनू के टीले पर, गुरू नानक के द्वार पर आये और अरदास करके यमुना पार हो गये, जहाँ पर भाई बुड्ढ़ा जी गुरू हरिगोबिन्द के घोड़ों को चराया करते थे वहाँ पर जाकर जपुजी साहब का पाठ किया। अरदास की और सतगुरू जी की लौ में लेट गये। उनकी परम प्रेमी और अभ्यासी आत्मा ने दशम द्वार के रास्ते से शरीर से उडारी मारी। निकटवर्ती एक सिक्ख ने, जो उस समय पास था, आपकी देह का दाह संस्कार किया और टिके का सामान और संदेश हमें आकर पहुँचाया।

साहब चन्द–धन्य सिक्ख! धन्य प्रेम! धन्य नन्द चन्द–

'जिसु पिआरे सिऊ नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ।।
ध्रिगु जीवण संसारि ताकै पाछै जीवणा।।२।। [वार सिरी राग म: २]

साहब चन्द–सतगुरू तेग बहादुर जी का सीस तो एक गुरू का प्यारा आनन्दपुर ले आया पर शरीर की कथा और ही अद्‌भूत है।

हरिदित्ता जी–यों सुना है कि जिस समय सैय्यद आदम जलाद ने तलवार चलाई, तो उस समय सीस धड़ से अलग होकर धरती पर नहीं गिरा। उस समय शहर के लोगों के दुखी दिलों की भीड़ झुक रही थी। उनमें दो गुरू के प्यारे जैता और ऊदा मुसलमानी भेष धारण करके उसी उद्देश्य से गये हुये थे कि सतगुरू जी के सीस जैसे हो सके लेकर उड़ चलें।

साहब–हां जी! वे जो सतगुरू जी के ग़रीब निवाज विरद के नीच जाति से ऊँच करके सिक्ख धर्म से सुहावने किये हुये थे, वही न?

हरिदित्ता जी–जी हाँ, वह ऐसा कौतुक हुआ कि सीस पर तलवार चलते समय सख्त अँधेरी चली, अन्धकार छा गया, ऐसे अन्धकार के दिन के समय तारे दीखने लगे, भूकम्प आ गया और सारे शहर पर सहम और भय छा गया[१]। उस समय के शोर शराबे और आपाधापी से भाई जैता श्री गुरू जी के सीस को सँभाल कर और एक पेटली सी बना कर और उसे सिर पर उठाकर दिल्ली से निकल गया। कातिल और लोग तो आपाधापी में थे घटना चांदनी चौक कोतवाली में घटी थी। भाई ऊदा मुसलमानी भेष में आसपास इसी ताक में फिरता रहा कि यदि कोई विधि बन पड़े तो धड़ को भी ले चलूँ। तीसरे पहर शहर में फिर से धूप निकली, तो ढिंढोरा फिरा कि यदि कोई सिक्ख चाहे तो गुरू जी का शरीर ले जाये। वास्तव में यह एक चाल थी कि जो कोई आएगा उसे पकड़कर उससे इस बात का पता चल सकेगा कि इतना दिलेर कौन था जो पहरेदारों के होते हुए सीस लेकर भाग गया है। पर शहर के हिन्दुओं में से तो क्या, सिक्खों में से भी कोई न आया। शाम को

१. मुसलमानों ने सतगुरू जी के समाचार इस तरह कट्टरता से लिखे हैं कि मैकालफ ऐसे विदेशी ने भी उनको सच्चा मानने से इन्कार कर दिया। पर मुहीतआजम और सैरुल मुताखरीन ने वह बात मानी है कि हिन्दु कर्म की रक्षा के लिए औरंगजेब ने नवें गुरू जी को कत्ल करवाया और जिस समय आप कत्ल हुये उस समय अँधेरा छाया, तारे दिखाई पड़े, आँधी आई...।

[खालसा तवारीख]

एक लबाण सिक्ख जिसे बनजारा भी कहते थे, किले में जब चूना डालकर खाली गाड़ियां लेकर निकला तब भाई ऊदे ने उसे जाकर कहा कि अब जीवन सफल करने का अवसर है, कृतार्थ हो ले। अतः सलाह पकाकर लखी बनजारे ने गाड़ियाँ चांदनी चौक की ओर चला दीं। खड़खड़ की आवाज से और चूने के उड़ने से पहरेदार नाक मुँह पर कपड़ा रखकर तनिक पीछे हो गये गाड़ियाँ धस-धसकर उस ओर उलट जाती थीं जिस ओर धड़ पड़ा था। लिखा है कि कई सौ गाड़ियाँ जा रही थीं। जिस समय दाव लग गया तो दोनों ने हिम्मत करके धड़ को गाड़ी में रख लिया। इसे ढक लिया, फिर तरीके से इसे आगे निकाल लिया। यहाँ से तीन मील की दूरी पर रकाबगंज के पास बनजारों का छप्परों वाला गाँव था। यहाँ पहुँचते ही एक छप्पर में लकड़काठ डालकर, शरीर को ऊपर रखकर, अरदास करके आग लगा दी। आग फैल गई और सारे गाँव में फिर गई।

धड़ के खो जाने के बाद फिर शोर मच गया। सिपाही दूर-दूर तक तलाशी के लिये निकले। जिन लोगों पर सिक्ख होने का शक था, उनके घरों की तलाशी शुरू हुई। एक मनचला कोतवाल सवार होकर रकाबगंज में लखी के पीछे पहुँचा आगे क्या देखता है कि अभी उन्होंने सारी गाड़ियाँ तो खोली ही नहीं थीं। गांव को आग लग रही थी और सारे लोग आग को बुझा रहे थे। तब उसका संशय भी दूर हो गया, पर फिर भी गाड़ियों में सरसरी नजर मारकर पूरी तसल्ली करके वापस लौटा कि धड़ ये लोग नहीं लाये। जब सिपाही चले गए तब लुबाणे, जो दिखावे मात्र आग बुझाने का यत्न कर रहे थे, आग को छोड़कर धड़ वाले स्थान पर और ईंधन डालने लगे। यों 'धन्य सिक्ख! धन्य गुरू के सिक्ख ने अपने अदेशी दाता के उनके लिए शरीर न्योछावर कर गए, प्यारे जी के शरीर का दुख देने वालों के हाथों से बचाकर दाह संस्कार किया।'

साहब चन्द–श्रद्धा इसी का नाम है, हृदय का प्यार यही वस्तु है, औरंगज़ेब मूर्ख है, जिसने दिल वालों को भी छेड़ा है। मुर्दा मन वाले लोग मर जाते हैं, पर जिनकी प्रीत लगी होती है उनके दिल शरीर से पहले से ही उदास होते हैं। उनके दिलों को कौन-सी ताकत तोड़ सकती है? प्रेम सूर्य की चमकती हुई किरणें जब हृदय में दमक उठती हैं, तब यही हीरा कण होकर अमर प्रकाश रेखा बन जाती है। उन्हें कौन मिटा सकता है? जीवित को मारने के यत्न, अपनी मौत को संदेशा भेजने के तुल्य है। पर राज्य मद बुरी वस्तु है। कौन है जो प्रभुता पाकर होश को ठिकाने पर रख सकता है और विचार को उड़ने से रोक सकता है? कोई एकाध भाग्यवान। भैया! चाहे दिल्ली में सिक्ख कम हैं और जो हैं वे भी दब गए हैं और बोले तक नहीं; पर देख लो ये लखी और जैता और ऊद, ये तीनों सिक्ख चोटी के मरद निकले हैं। बस यदि एक मरद हो तो कहा जाता है कि मरद ने बांध रही है, पर यहां तो तीन निकले।

नन्द चन्द–सच है, पर स्वाद आ जाता यदि दिल्ली में से कुछ और सुन्दर पुरुष निकलते और उस एक प्यारी ज्योति पर आकर सैकड़ों परवाने शहीद हो जाते। हां, स्वाद आ जाता, जान भर जाती पर मिटी प्रजा में।

साहब चन्द–धैर्य करो! जान भर दी है उस सीस पर खेलने वाले सुन्दर सिरताज गुरू तेग बहादुर ने, अब समझिये जागृति आ गई है। जागृत तो आ ही गई थी जब सुलतानपुर से

गुरू नानक देव जी चले थे। हां जागृति आ गई थी जब शान्ति के सरोवर गुरू अर्जुन देव जी जान पर खेले थे। हां जागृति आ गई थी जब खड़गधारी श्री गुरू हरिगोबिन्द साहब ने ख़ाँडा बजा दिया था और हाँ, अब इस प्यारे किशोर गुरू पर नज़र टिकाइए। इस नई-नई, हरी-हरी, ऊदी-ऊदी, तेज-तेज 'गुरू कोंपल' पर नैन लगाइए। मुझे तो यह दीखता है कि गुरू तेग बहादुर जी ने प्राण भर दिए हैं और इस किशोरावस्था में खेलने वाला यह ईश्वरीय सौंदर्य प्राणों की ज्वाला को धधका देगा।

इतने में मुलतान के इलाके के मसंद दुलीच चन्द आ गये, जिन्हें लोग दुलचा कहा करते थे। उन्होंने भी हरिदित्ता जी से भाई गुरुदित्ता जी के गुरू के वियोग के कारण स्वर्गवास होने पर शोक प्रकट किया और सारी बात जो हो चुकी थी, संक्षिप्त रूप से फिर से सुनी। फिर साहब चन्द ने कहा:-

आप मरी हुई प्रजा में प्राण भरने की बात कह रहे थे। देखिये, मतिदास जी बैरी के आरे से चीरे गये, पर आह तक न भरी। सिक्ख धर्म को स्वासों पर्यन्त निभाया। भाई दियाला जी के हाथ-पाँव बाँधकर उन्हें उबलती हुई देग में डाला गया। पर हाँ, वे धर्म से न डोले, उन्हें भय न हुआ, कष्टों के मुँह में से मौत के द्वार पर गये, बड़े चाव से सेहरे बाँधकर जैसे कोई दूल्हा-दूल्हन को ब्याह लाने के लिये जाता है! वाह भाई दियाला! गुरू जी की शहीदी और इन दोनों सिक्खों का बलिदान, जिन लोगों ने देखा, जोकि हज़ारों लोगों के सामने हुआ, इससे देश में घूम मच गई और लोगों में प्राण भर गये। पर देखिये भाई गुरुदित्ता का प्रेम, बिना कष्ट और मजबूरी के और बिना किसी के देखे, अलग उजाड़ में जाकर सांप को कांचुली की भाँति शरीर छोड़ दिया। यह प्रेम, यह प्यारे का वियोग न सह सकने वाला प्रेम, सिक्ख मण्डल में प्यार और आपा न्योछावर करने की रूह फूँक गया है।

दुलचा-आप सत्कार योग्य हैं, गुरू नानक का घर सबसे बड़ा है, सतगुरू जी की करनी को कौन पहुँच सकता? सिक्खों के कारनामे अद्वितीय हैं, पर इतनी बात बताइये कि भाई गुरुदित्ता जी के शरीर का त्याग करना आत्मघात नहीं? आत्मघात गुरू के घर में तो सिखाया ही नहीं गया। तुम भाई हरिदित्ता जी! इसे मेरी गुस्ताखी मत समझना। मैंने तो एक बात समझने के लिये कहा है, अन्यथा मैं तो स्वयं भाई गुरुदित्ता जी की बड़ाई करने वाला हूँ।

हरिदित्ता जी-सज्जन! तू मसंद हैं। संगत में सम्मान योग्य हैं, मैं तुझे क्या बताऊँ? आत्मघात गुस्से, क्रोध, निराशा, दिलगीरी, शरीर और मन की अत्यन्त हार के समय होता है। किसी शारीरिक ढंग से शरीर को तोड़ दिया जाता है कि दुःख असह्य है, चलो शरीर का अंत ही कर दो। पर भाई गुरुदित्ता जी को गुस्सा, शोक, क्रोध और निराशा कोई नहीं थी। कैद से मुक्त होकर आये, शहीद होने से बच गये। उनके घर में राज है, पदार्थ है, लेना है, सिक्ख विचारधारा है, खज़ाना है, परिवार है, हम सारे दास हैं, फिर वे अपने प्रीतम का वियोग सहन नहीं कर सके। उनके प्रेम में साथ चले हैं। कितना उच्च भाव है। फिर वे छुरी मारकर अथवा कुछ खाकर नहीं मरे। जब यमुना पर गए है तब युमना में डूब कर नहीं मरे। एकान्त में स्वच्छ स्थान पर बैठकर प्राण दशम द्वार को चढ़ाकर प्यारे के ध्यान

में मग्न होकर विरह चोट से शरीर का त्याग करते हैं। ऐसा कौन कर सकता है? केवल वही, जिसका प्रेम सीमा लांघ चुका हो, जिसे प्यारे का वियोग हो विरह का आघात करता हो और विरह चोट ही प्राणान्त कर देती हो। इसे अनजान हृदय तो क्या प्रेमी हृदय भी तब समझ सकते हैं जब वे प्रेम की अवधि का अनुभव कर लें। केवल भीतर के विरह की तीक्ष्णता में प्राणों का सीस को चढ़कर शरीर में से निकल जाना–क्या यह हर कोई कर सकता है? प्रेम की अवधि और अभ्यास की परिपक्वता ने दशम द्वार से परलोक का रास्ता लिया। यह आत्मघात नहीं, यह तो–"लागी होइ सु जानै पीर।। राम भगति अनीआले तीर।।" क्या मुझे सतगुरू जी के साथ प्रेम नहीं? क्या मुझे उनके वियोग का दुःख नहीं? मैं सच कहता हूँ, मैं कई दिनों तक अन्न नहीं खा पाया, पर मैं मरा नहीं। मैं चाहता था और अब भी चाहता हूँ कि भाई के पीछे सतगुरू के चरणों में पहुँचू, पर मेरे प्रेम में वह तीक्ष्णता नहीं है जो बड़े भाई जी के प्रेम से बींधे कलेजे में थी।

साहब चन्द–सच है, (नेत्र भरकर) यह पापी शरीर जीवित ही रहा। सतगुरू तेग बहादुर प्यारे के कष्ट और बलिदान के बारे में सुनकर, ये प्राण देह को छोड़कर नहीं गये, इस पापी शरीर में ही रहे। विरह चोट से मरना कोई बनावटी बहाना या निराशा की बात नहीं, वह तो बेबसी का खेल है।

"नानक सतीआ जाणीअनि जि बिरहे चोट मरंनि।।"

सबके नेत्रों में जल भर आया और मूकता छा गई।

दुलचा–मेरे सतकार योग्य सज्जनों! प्रेम और सिक्ख धर्म का प्रचार और जीवन जो कुछ भी है, वह सतगुरू जी के वजूद के साथ है, हम लाखों हों, हमारी क्या गणना? यदि अब गोबिन्द कहीं सतगुरू गोबिन्द प्यारे जी का वजूद है तो सारा सिक्ख सम्प्रदाय तिलक देने के लिये आ रहा है। मेरा मुँह जले–यदि आपका शरीर है, तो ही सब कुछ है, अन्यथा हम क्या हैं? दूल्हे के बिना बारात क्या?

हरिदित्ता जी–(घबड़ाकर) फिर ····।

दुलचा–सतगुरू के घर का अब औरंगजेब के साथ मुकाबला छिड़ गया है, किसी तरह इसे सँभाल लीजिए। आप बुद्धिमान हैं, विषाद मिट जाये तो अच्छा है।

साहब–ठीक है, पर मिटाये कौन? कैसे मिटे?

दुलचा–कोई रास्ता निकालो, आप बुद्धिमान हैं, दाना हैं।

नन्द चन्द–एक ही रास्ता है कि चलकर औरंगजेब के पाँव पड़ा जाये, दीन (मुसलमानी धर्म) कबूल कर लें, जागीरें ले लें, युगों तक जीवित रहें। शरण लेने और धर्म बदलने के सिवाय, कभी अत्याचारी से बन पड़ी है?

दुलचा (आँखों में आँसू भरकर, फिर पोंछकर) हे सुन्दर! एक छोटा-सा दस वर्ष की आयु का महापुरुष हमारे पास है, इसके सहारे हम सब जीवित हैं, यदि यह न हो तो क्या होगा? इसका कुशल सोचो। किसी तरह शाह को प्रसन्न करो, जिससे आगे के लिये सुख रहे। मैं भलाई सोचता हूँ।

हरिदित्ता जी–तुम तो पुराने सेवक हो, भला तुम नहीं सोचोगे तो और कौन सोचेगा? पर कोई नई बात नहीं। पंचम गुरू जी की शहीदी के पश्चात् छटे दाता जी ने ईन न मानी, शरण

न ली, खाँडा बजाया। अब इस दशम जामे के लक्षण उसी दादा गुरू के से दीख रहे हैं। हमारे विचारानुसार तो खाँडा फिर बजेगा, दुख, कष्ट और शहीदियाँ होंगी, पर अन्त में सच की विजय होगी। तुर्क मरेगा, उसकी जड़ तक नहीं रहेगी। गुरू जी का उद्यम सफल होगा।

दुलचा–इसी बात से तो मैं कांपता हूँ। जब सतगुरू जी जवान हो जायें, तब जो आप चाहें सो करें, अभी तो बालक हैं। मामा कृपाल चंद बड़े हैं, तुम बाबा बुड्डा के घराने के बुजुर्ग हो। बाल्यावस्था, हाँ किशोरावस्था में तो तुम शान्ति, सुलह और ठण्ड की ओर चलाओ और चुपचाप हो जाओ। शत्रु को जलन न दो, जैसे अब देखो तिलक की रस्म के लिये सारा जहान आ रहा है, भला इसकी क्या जरूरत है? चुपके से कर लो। औरंगा कहेगा, देखो ये कितने कठोर हैं। उधर तो मैंने इनके अगुआ को कत्ल किया है, मैं चोटी के सिक्खों को चीरता और उबालता हूँ, इधर ये निर्भय होकर पहले की अपेक्षा ज्यादा संख्या में इकट्ठे होकर रौनक करते हैं। गुरू अभी किशोर हैं। कल पिता शहीद हुये हैं, आज वह तीर चलाता फिरता है और आने-जाने वाले सिक्खों से कटार, कमान और खंजर के पते पूछता फिरता है। इस तरह करने से तो और सख्ती होगी। पहले ही हम क्या कर सके हैं और अब क्या कर लेंगे? यह तो ठीक है कि पातशाहों के राज्य पापों के कारण ही नष्ट होते हैं, पर यह बताइये कि इसमें समय कितना लगता है। अत: शान्ति की कोई विधि निकालिये।

साहब चन्द–दुलचा जी! गुस्सा न करना। तुम सिक्ख मत को किस ओर लिये जा रहे हो। यह अकाल पुरुष का अपना सिक्ख पंथ है। दसों गुरू साहब उनके द्वारा भेजे हुए आये हैं। उसकी आज्ञा से सुशोभित हुये हैं। इनके सिर पर उसका हाथ है। देखिए! गुरू हरिकृष्ण जी की क्या उम्र थी? क्या उन्होंने ईन मानी थी? फिर देखिये! जो कुछ आप कर गये हैं, वह कमाल है कि नहीं? फिर देखिये यह उम्र और गुरू तेगबहादुर जी की गुरू पद के लिये चोण, है न पारदर्शक दृष्टि और ईश्वरीय मामला? धन्य गुरू हरिकृष्ण। डरिये मत! यह दाता, जिसके तिलक के लिये हम सब इकट्ठे हो रहे हैं, वही अदेशी ज्योति है; यह जो कुछ करेगा, ठीक ही करेगा। हमको तो सिक्ख वाले भरोसे से सीस ही झुकाना है। जो अग्नि छटे गुरू जी ने हमारे अंदर जला दी है, उसे ठण्डा नहीं होना। हाँ, हमको अब 'आन शान' में रहना है, ग़ैरत को खो नहीं बैठना, आन को मरने नहीं देना, मरद होकर मरदानगी में जीवित होकर साईं के नाम का स्मरण करके संपूर्ण मनुष्य बनना है। इस चिंगारी को आग बनकर सीना बसीना धधकना और जलना है। तुम औरंगजेब से दबते हो। मेरा चित चाहता है कि टुकड़े-टुकड़े होकर मरूँ, सर्वस्व बह जाये, पर हार न मानूँ। काश! मुझे सिदक मिले। काश! मेरे पर कृपा बरसे। काश! मैं मतिदास जी की भांति चीरा जाऊँ। ज्यों-ज्यों कष्ट आता है, मन तगड़ा होता जाता है। क्या तुम्हें धर्म को अत्याचारी के अत्याचार से स्वतन्त्र नहीं कराना? क्या तुमको देश को, प्रजा को, अन्याइयों से मुक्त नहीं कराना? यदि मुक्त कराना है तो सीस हथेली पर····।

दुलचा–सुन्दर भैया जी! तुम जैसे तो युगों तक जीयें, पर मेरे जैसे लड़कर मरें। हाँ, भेंट देने के लिये मेरे जैसे निकम्मों को भेजो, मैं तो यह कह रहा हूँ कि हमारा सतगुरू

किशोरावस्था में है। वह अभी नाबालग है। उसके सुन्दर और आवश्यक शरीर को बचाओ। अत्याचारी के अत्याचार से बचाओ। यदि वह है तो सबकुछ है।

हरिदित्ता जी–मेरा मुँह छोटा और बात बड़ी है, पर बूड्ढ़ा साहब जी के वंश से होने के कारण मुझे अधिकार है कि प्यारे सतगुरू जी के लाड़ और नखरे में प्यार की झिड़की भी दूँ, चाहे तुम मुझ से बड़े भी हो। हे सज्जन! बता तो अकबर की आयु उस समय कितनी थी, जिस समय हिन्द के राज्य का बोझ उसके सिर पर आ पड़ा था? कुछ चेता तो कर।

दुलचा–होगा कोई तेरह वर्ष का, पर क्या उसने राज्य को सँभाला था?

हरिदित्ता जी–राज्य की गद्दी पर उसी समय बैठ गया था और उसके पिता के सेनापति बहराम ने राज्य को सँभाला था। पर क्या तेरह वर्ष का अकबर आजकल के तेरह वर्ष के हज़ारों लड़कों जैसा था अथवा उसमें इनसे कुछ फरक था?

दुलचा–क्या फर्क था?

हरिदित्ता जी–पृथ्वी और आकाश का। एक ही बात सुन ले। जब हुमायूँ मर गया, तब बहराम पंजाब में सेनापति था। थोड़े समय के पश्चात जब 'हेमू' सुलतान आदिलशाह की ओर से भारी लशकर लेकर चढ़ आया था और जब वीरता से लड़ते हुये आँख में तीर लगने के कारण जख्मी होकर गिरा, तब उसे गिरफ्तार करके अकबर के दरबार में लाया गया। बहराम ने अकबर से कहा कि इस काफिर को खंजर के साथ जख्मी कर और फिर तू इस जैसे दुष्ट का नाश करके धर्मात्मा बन। उस समय अकबर ने कहा कि कैदी शत्रु को मारना मेरी वीरता के विरुद्ध है। सोच ले, वह तेरह वर्ष का लड़का था, जिसके मन में वीरता का यह आदर्श था। फिर जिस बहराम की शूरवीरता पर किसी को कोई संदेह नहीं, उसने जब अहंकार किया और अकबर ने उस शूरवीर को फूटी कौड़ी का-सा कर दिया और सारा राज्य सँभाला, उस समय अकबर सत्तरह वर्ष का था। दुलचा जी! पांचों अंगुलियाँ बराबर नहीं होतीं। सारे इन्सान एक जैसे नहीं होते। नाक, मुँह, कान तो सबके एक ही गिनती के हैं, पर अन्दर की बुद्धि तो भिन्न-भिन्न है। फिर सोचो, दुनिया में कई लोग कलावान पैदा होते हैं। इस कला से ही दिमाग़ी लियाकत और समझ में पृथ्वी आकाश का अन्तर पड़ जाता है। पर जहाँ पर, 'रूहानी कला' साथ हो, वहाँ पर बात ही और हो जाती है। मैंने यह आश्चर्यजनक बात देखी है कि जब सांसारिक मण्डलों में, बच्चे अनोखे काम करते हैं तब लोग चकित नहीं होते। इतिहासकार उनकी बातों को बड़े गौरव से लिखते हैं, पर रूहानी मण्डल में रूहानी कलावान बच्चे कोई अलौकिक काम करते हैं, तब लोग उन्हें पैनी दृष्टि से देखते हैं और संशय भरे दिल से उन्हें तौलते हैं। हाँ, इतिहासकारों को इतिहास लिखते समय साँप सूँघ जाता है और तुम स्वयं भरोसेवान होकर छटे, सातवें, आठवें, नवें गुरूओं के कौतुकों को देखकर घबड़ा रहे हो। हे सज्जन! ऊँचा उठ। गुरू की ज्योति जगत के साहिबे लियाकत लोगों से, कलावानों से ऊँची वस्तु है। गुरू तेग बहादुर ने कैदखाने से जो संदेशा और तिलक का सामान भेजा कि हमने गुरू-गद्दी गुरू गोबिन्द सिंघ को दी है यह बात समझने के लिए काफी है कि जो कुछ नौं गुरू हुये हैं वे ही ये होंगे और हैं। वहम क्यों? संशय क्यों? सूरज को अंधेरा करने वाला कौन पैदा

हुआ है। बादल आये और अगणित बार आये, गर्जे, कड़के, सूरज के आगे तन कर खड़े हुए, पर आखिर में फट गये, नीचे गिरे सूरज अखण्ड रहा। गुरू ज्योति दैवी वस्तु है। भरोसा धारण कर। औरंग और उसका राज्य लोप हो जायेगा। गुरू साहब का प्रयत्न सफल होगा। सिक्ख मत सदैव चलता रहेगा। पहले जो बात हो चुकी है उसका भी विचार कर ले। गुरू पंचम जी की शहीदों के समय, छटे सतगुरू जी छोटी उम्र के थे। फिर देख ले आप शाही फौजों से लड़ते हुए पंजाब में ही गरजते रहे।

दुलचा– अच्छा वाह, वाह! मैं स्वयं सेवक हूँ। मैने तो भले के लिये ही दूरदर्शिता की बात कही है।

हरिदित्ता–सज्जन! दूरदर्शिता बड़ी कीमती वस्तु है, पर इन दस सतगुरुओं का अस्तित्व रूहानी कला का वजूद है और रूहानी कलावान है और सबसे रूहानियों से भी ऊँचा है–

"सभ ते वडा सतिगुरू नानकु जिनि कर राखी मेरी।"

इनके हुकम में चलना इनकी सेवा है, दूरन्देशी है। संसार के लोग इन्हें नहीं समझ सकते, पर हम मर्मियों को राज़दानों को, निकटवर्तियों को तो पता होना चाहिये। हर कोई दूसरे को अपने आप हिसाब लगाकर अपने जैसा ही समझता है, पर कलावान को इस तरह नहीं परखा जाता।

दुलचा–सज्जन जी! मेरी तो इतनी ही विनती है कि किसी बुद्धिमान को नियुक्त किया जाये जो बचपन के दिनों में काम-काज सम्भाले और इस प्रकार व्यवहार करे कि बादशाह का गुस्सा शमन हो जाये और हम सारे बचे रहें।

हरिदित्ता जी–हे सज्जन तू कहाँ है? सरोवर में रहकर कमल का पता नहीं पाया। मैं दास हूँ, पर सतगुरू के लाड से, गौरव से और नखरे से कहता हूँ कि औरंगजेब खप-खप कर मरेगा और गुरू घर स्थिर रहेगा। चाहे कभी निकले, जो गुरू करेगा वह ठीक निकलेगा। शेष रहा प्रबन्ध, उसके लिये मामा कृपाल चन्द जी से बढ़कर और कौन सयाना है? सारा राज-काज सँभाले बैठे हैं और सारा प्रबन्ध सुन्दर ढंग से चला रहा है। दोनों माताएँ–माता नानकी (दादी जी) और माता गुजरी (माँ) आप स्वयं बुद्धिमान हैं। हर प्रकार की रक्षा और सम्भाल कर रही हैं। सारे मर्मी हैं, जानकार हैं। यह देख ले कि मामा भी और माताएँ भी उस तेरे बताए हुये बच्चे का सब कुछ संवारते हैं और उसकी हँसी, खेल और मुँह से निकलने वाले प्रत्येक शब्द का ध्यान रखते हैं। आवश्यक से आवश्यक मामले में जो कुछ उस ईश्वरीय बालक के मुँह से निकल जाता है कि 'यों करो' तो सभी वैसा ही करते हैं। वे जानते हैं कि इस किशोरावस्था के शरीर में ज्योति तो गुरू नानक की ही है न। वे शरीर की ओर नहीं बल्कि ज्योति की ओर देखते हैं। हे मित्र! तू भी ज्योति की ओर देख (कुछ सुनकर और कान लगा कर) वह क्या आवाज़ है··? हां, देख! आयु छोटी है, ठीक!, पर देख अमृत वेला में पिता पितामह की भाँति उठ बैठते हैं। समय पर दीवान में पहुँचते हैं संगतों से मीठे वचन करते हैं और शीतलता प्रदान करते हैं। कहीं पर हों, किसी रंग में हों। रहरास की बाणी के पाठ के समय पहुँच जाते हैं। सतगुरू नानक देव

जी के बाल्काय की तरह ईश्वरीय आकर्षण में खिंच जाते हैं। आवाज़ लगाते हैं। ईश्वरीय कूक कूकते हैं। नैन मूँदकर इलाही रंग में मगन हो जाते हैं। हैं ···· (चौंक कर) फिर वही, भाई ध्यान करो। उधर देखो, ईश्वरीय पुकार सुनो। उधर देखो, किशोर गुरू जी की ध्वनि आ रही है–

सभि संजम रहे सिआणपा, मेरा प्रभु सभु किछु जाणदा।
प्रगट प्रतापु बरताइओ, सभु लोक करै जैकार जीउ॥१७॥

फिर आवाज़ बन्द हो गई। फिर आवाज़ आई:–

मेरा गुण अवगन न बीचारिआ, प्रभि आपणा बिरदु समारिआ॥
कंठि लाइ कै रखिओनु लगै न तती वाउ जीउ॥१८॥

फिर खामोशी हो गई। फिर आवाज़ उठी और नज़दीक हो गई:–

तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ, मै राति दिहै वडिआईआ।
अणमंगिआ दानु देवणा, कहु नानक सचु समालि जीउ॥२४॥१॥

[सिरी राग म: १]

इतने में साईं के रंग में राती, मीठे-मीठे प्यार से भरी, शुक्र-शुक्र की वर्षा करती हुई किशोर सतगुरू जी की मूर्ति वहाँ पर आकर खड़ी हो गई 'तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ' की ध्वनि का बार-बार धीरे-धीरे मीठा-मीठा अलाप हो रहा है, नैन आकाश की ओर खिंच रहे हैं।

सारे शरीरों ने उठकर नमस्कार किया। उस बाल वरेस किशोरावस्था वाले साईं के लाडले के मुँह से ध्वनि उठी।

धन्य गुरू नानक!
धन्य गुरू नानक!!
धन्य गुरू नानक!!!

सबकी नज़रे स्वर किये हुये साज़ की भाँति 'धन्य गुरू नानक' के संगीत में थर्रा उठीं। आधी घड़ी इसी कीर्तन और इसी इलाही रंग के नाद का रस बँधा रहा। नैन मुँद गये और इसी रस में मगन हो गये। मानो सतगुरू नानक अदेश में खड़े हैं और कृपा की वर्षा कर रहे हैं और ये सारे उससे निहाल हो रहे हैं। इसी रंग में नैन मुँद गये, ध्यान मगन होते गये···। जब नैन खुले तब ठण्डा स्वाद आ रहा था। हाँ, दुलचे जैसे पक्के दुनियादार, बनिक वृत्ति वाले ने भी एक बार तो रूह के टिकाव की एक झपकी ले ली। पर अब यह मोहिनी किशोर मूर्ति गुम हो चुकी थी। न जाने पवन में व्याप्त लपट की भाँति कहीं उड़ गई थी।

भाई हरिदत्ता जी के रसिक गले ने अब गमक खाई और एक अत्यन्त मीठे स्वर में यह कीर्तन उच्चारण किया गया:–

हउ गोसाई दा पहिलवानड़ा॥
मैं गुर मिलि उच दुमालड़ा॥
सम होई छिंझ इकठीआ
दयु बैठा वैखै आपि जीउ॥१७॥

वात वजनि टमक भेरीआ॥
मल लथे लैदे फेरीआ॥
निहते पंजि जुआन मै गुर थापी दिती कंडि जीउ॥१८॥
सभ इकठे होइ आइआ॥
घरि जासनि वाट वटाइआ॥
गुरमुखि लाहा लै गए मनमुखि चले मूलु गवाइ जीउ॥१९॥
तू वरना चिहना बाहरा॥
हरि दिसहि हाजरु जाहरा॥
सुणि सुणि तुझै धिआइदे तेरे भगत रते गुणतासु जीउ॥२०॥
मै जुगि जुगि दयै सेवड़ी॥
गुरि कटी मिहडी जेवड़ी॥
बाहुड़ि छिंझ न नचऊ॥
नानक अऊसर लधा भालि जीउ॥२१॥२॥२९॥ [सिरी राग म: ५]

: २ :

हिन्दुस्तान शताब्दियों की मार खाता हुआ अपनी सुरत भी गवा बैठा था। पश्चिम-उत्तर की ओर से जो आक्रमणकारी आया, जुल्म और सख़्ती करके मालिक बन बैठा। समय पाकर वह निर्बल हो गया फिर और विदेशी आया; वह मालिक बन बैठा। उन देशवासियों को बर्बरता से रूई की भांति धुना गया, जिनके घरबार, भूमि, माल, जागीरें यहाँ पर थीं; जिनका निर्माण इस देश की मिट्टी से हुआ था, जिनके बजुर्गों की यादगारें इस मण्डल में गूँज रही थीं, जिनके धर्म मन्दिर, प्यार मन्दिर, पवित्र स्थान यहाँ पर थे, जिनके दिमाग़ ने इस भारतवर्ष को धरती में सबसे ऊँचा और स्वच्छ स्थान मान रखा था और जिन्होंने दर्शन के रहस्य की खोज की थी। देशवासी नित्य मार खाकर, दबैल होकर इस तरह फटे थे कि जो कोई भी आक्रमणकारी आया, उसी के दास बन गए, उसी का भेष धारण कर लिया और उसी की रहन-सहन अपना ली। यदि वह हलाल करके मांस खाता है, तो इन्होंने झटके करके खाना छोड़ दिया, यदि वह बृहस्पति और शुक्र की पूजा करता है तो ये भी उसकी तरह शरीनी (प्रसाद) बाँटने में लग गये। यदि वह रोज़ा (उपवास) रखकर तड़के उठकर सहरगी खाता है तो ये भी अपने व्रत के दिन तड़के उठकर खाने लगे। जब पुराना अत्याचारी मर गया और उसके स्थान पर नया आ गया तो मोहरों के थाल भरकर उससे जा मिले, उसके पैर पकड़ लिये और उससे चाकरी मांगी। देश क्या है, देश का क्या करना है, अनख, आन, मान की मौत कोई वस्तु है, इसका विचार कोई भी नहीं करता था। सब भावनायें मर चुकी थीं। राजा, राणा, हैंकड़ी वाले राजपूत और भूपति, बेटियों के डोले लेकर जा मिले। ग़ैरत ग़र्ज़ में खत्म हो चुकी थी। हिन्दी अथवा हिन्दू जिनका यह देश शतब्दियों से जन्मभूमि था, वन में कटे हुये काँटों के ढेर की भांति मुर्दों का ढेर पड़ा था—

लकड़ी के कई ढेर लगे हुये हैं, जो तराजू पर तुल नहीं सकते। पत्थर की भाँति मृतक पड़े हैं, जिनमें प्राणों की गर्मी नहीं होती।

हाँ सतगुरू रूपी बिजली आकर कड़क पड़ी :–

आकर बिजली कड़क पड़ी, रंगीली स्पर्श लग गयी। इस के कारण सौंदर्य दमक उठा है और प्राणों की सवाई आग जल उठी है।

हाँ 'सतगुरू ज्योति' इस आर्यवर्त, इस भारतवर्ष में आ चमकी, जिसने मुर्दनी और सड़ाँध में आग की भभक लगा दी। हृदयों पर अँधेरा छा रहा था, कोई रास्ता नहीं था। दुख भी दासता का था। दासता की ही हिचकियाँ भरते थे, दुखों को दुख तो समझते थे, पर यह प्रतीति मर चुकी थी कि यह 'दुख पीड़ा' दासता की है और स्वतन्त्रता को गवा देने की है। हाँ यह प्रतीति मर चुकी थी और हृदयों पर अन्धकार छा रहा था:–

अविद्या का अन्धकार, दासता का अन्धकार, दुखों का अन्धकार खुदग़र्जी का अन्धकार। पिंजड़े में पड़े हुये बटेरों का अन्धकार। हाँ स्वतन्त्रता को भूल कर पिंजड़े में पड़कर खानाजंगी का अन्धकार। हाँ, 'रात अन्धेरी है, जिसने सारी धरती को घेर रखा है; इसके कारण उदासी ही उदासी छा रही थी'।

अब गुरू ज्योति की ओर देखिए :–

आप सूरत बनकर आये हैं 'प्रकाश का स्पर्श' साथ लाये हैं। प्रकाश का एक धक्का देकर 'सौंदर्य की चमक' ला दी है। हाँ, मौत तो मर गई है। प्राणों में सौंदर्य बसा दिया है। इसमें एक क्षण भी नहीं लगा। साईं का यही बिरद है।

हाँ, गुरू तेगबहादुर जी की शहीदी मुर्दा मनों में मानों बिजली की एक कड़क सी होकर आ पड़ी। दिल झंझोड़े गये। एक 'प्रकाश स्तम्भ' नीले समुद्रों में खड़ा होकर काले आकाशों में चमक पड़ा। प्राण और शरीर खेलने के लिए एक वस्तु है, जो उसूल पर, धर्म पर; सच पर न्योछावर की जाती है। आन, मान, शान, उसूल को कायम रखा जाता है। जितना पवित्र शरीर होगा, जितना अधिक पवित्र मन होगा, बलिदान का असर इतना ही गहरा होगा। हाँ, सारे देश में जागृति का सौंदर्य लगाकर सिक्ख मण्डल में ज्वाला–नूर की ज्वाला, पहले से प्रजवलित ज्वाला की और भड़काने की आग लगा गये। आपके सीस को एक सिक्ख ने दिल्ली से उठाकर आनन्दपुर पहुँचाया। दिल्ली राजधानी है, औरंगज़ेब जैसा ज़बरदस्त पातशाह आप बैठा है। उसके तप, तेज, जुल्म से पत्थर काँप रहे हैं। राजा, राणा भेड़ों की भांति सिर झुकाये हुये हैं। उसके भय से अभय होकर, खुलेआम दिल्ली के चाँदनी चौक में से सीस उठाकर एक सिक्ख ने आनन्दपुर पहुँचाने का साहस किया था। ये थे प्राण जिन्हें गुरू ज्योति भर रही थी। यह था आपे के ऊपर से खेल जाने का मादा जो दिलों में भरा जा रहा था। एक सिक्ख जो मर मिटी प्रजा के बीच में से दिल्ली से सीस लेकर चलता है और सारा रास्ता पैदल चलकर आनन्दपुर पहुँचता है! है न साहस! है न हिम्मत! है न प्यार और आन! ग़ैरत इसी का नाम है। इस एक व्यक्ति का निकलना उस समय के दिल की धड़कन की नबज़ है, जिसे मुर्दा दिलों में गुरू ज्योति ने प्रवाहित कर दी थी। हाँ एक नहीं दूसरा सिक्ख, फिर साहस करता है। तीसरा उसके साथ मिलता है। उसी स्थान से पहरों के बीच पवित्र धड़ उठा लेते हैं और अपने घरों में रखकर घरबार सहित फूँक देते हैं। यह है साहस, दिलेरी, कुर्बानी, खतरे में पड़ने की निर्भयता। मर मिटी, दासता से दबी कौमों में प्राण भर देना बड़ी कठिन कला है, पर सीस देकर सतगुरू ज्योति

ने फिर दूसरी बार सीस देकर निर्भय की विद्या पढ़ा दी है। मरने से निर्भय होकर भीतर के ऊँचे जीवन में जी कर सच्चे धर्म पर न्योछावर होने के लिये संन्यास धारण करना सिखा दिया है।

आनन्दपुर में सीस का दाह संसकार हो चुका है। जहाँ पर शहीदी की घटना घटी थी, वहाँ पर उसी चाँदनी चौक में सीसगंज नामक गुरुद्वारा स्थित है। शहीदी के समय के बुड्ढे पुरुषों से मिली निशानी से यह गुरुद्वारा पहले पहल सरदार बघेल सिंघ ने बनवाया था। मुसलमानों ने फिर गुरुद्वारे को गिराकर पास मस्जिद बनाई, पर फिर ग़दर के बाद जींद के राजा ने सरकार से जगह लेकर गुरुद्वारा बनवाया। इस समय नया आलीशान गुरुद्वारा खालसा ने बनवाया है। रकाबगंज भी सरदार बघेल सिंघ ने बनवाया था। गुरू जी के धड़ के दाह-संस्कार वाले स्थान पर दाह करने वाले भाईयों ने शरीर की भस्म दबाकर ऊपर चबूतरा बना दिया था। १७६४ के लगभग जब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी दिल्ली गये तब मन्जी साहब बनवाई। बाद में १८४७ में सरदार बघेल सिंघ ने गुरुद्वारा बनवाया जो अब तक खड़ा है। सीस के दाह संस्कार वाले स्थान पर गुरुद्वारा आनन्दपुर में है।

सतगुरू जी के ठिकाने पर श्री गुरू जी के प्यारे पुत्र और सिक्ख श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी हुये। इस समय आप किशोरावस्था में चरण रख रहे थे। दसवाँ वर्ष था, पर रूह न जाने किन ऊँचे घरों से आई थी। बुद्धिमान पुरुष कहते हैं, हाँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सब दिशाओं के सयाने लोग मानते हैं कि 'कलावान' पुरुष आम मनुष्यों की अपेक्षा निराले होते हैं। पर अदेशी ज्योति से आश सौंदर्य कलावानों से ऊँचा प्रकाश पुन्ज होता है। देखिये साहबज़ादा जी की दस वर्षों की आयु के कौतुक आश्चर्यजनक हैं। छोटे से, पतले, लम्बे शरीर में समा न सकने वाला कोई आध्यात्मिक प्रकाश है। पटने के हिन्दू, मुसलमान मान चुके थे, अब आनन्दपुर के मानते हैं। हाँ, आज तीन सौ वर्ष बाद उनके जीवन वृत्तान्तों को पढ़कर जगत उनकी शक्ति को मानता है।

आनन्दपुर में नवें सतगुरू जी के सीस का दाह संस्कार हो चुका है। दस्तार बन्दी हो चुकी है। जो कोई भी आया प्यार भरे नैनों से आँसू बहाता हुआ आया, दिल को फाड़-फाड़कर आगे रखता आया, पर गुरू ज्योति वाले बालक ने यही कहा "संभलो, वे तो दुष्ट राज्य के सिर पर ठीकरा फोड़कर अदेश को गये हैं और देश में प्राण भर गये हैं, अब तुम सब तैयार होवो। अब उनका शोक न करो। शुक्र करो और उनके बताये हुये कदमों पर चलो।" इस तरह संगतें चकित हैं, पीड़ित हैं, पर दबकी नहीं। किसी को भय नहीं आया, ज़ोर शोर से आये और खुफिया मुखबरों और चुग़लखोरों से नहीं डरे। अमीर, ग़रीब, इज्ज़तदार, जागीरदार और रियासती सब पहुँचे हैं, ये इस बात के प्रमाण हैं कि प्राणों में प्राण भर उठे हैं। छटे सतगुरू जी ने शरीर की निर्भयता सिखलाई थी:–"जब आवश्यकता पड़े, कोई कष्ट आवे शरीर देने की आवश्यकता पड़े तो दे दो।" देखिए सिक्खों में कितनी निर्भयता है। ज़ालिम से ज़ालिम पातशाह से भी निर्भय होकर आनन्दपुर को चले आ रहे हैं। दस्तारबन्दी हो चुकी, ईश्वरीय बालक ने गुरुता का काम सँभाला, गुरुता का क्या काम है? प्यारे वाहिगुरू के प्यार में खिंचे रहना, सुरति को उसके चरण कमलों में जमाये रखना, मन को खुशी और चढ़ती कला में टिकाये रखना, किसी समय

चमक उठना और यह स्पर्श, नूर का स्पर्श, अन्धकार की आग की लपट का स्पर्श दूसरों को लगा देना, मानो चमकना, जलना, जीना और लकड़ी के ढेर को चमकाना, जलाना, जीवित कर देना ये सब कौतुम दिखाते और सिखाते हैं। हाँ जगत देखता है कि किशोर गुरू जी कभी तो उछल रहे हैं, कभी गुरू के किसी शब्द का ईश्वरीय स्वर का उनके गले से यों उच्चारण हो उठता है कि सुनने वाले द्रवित होकर नैनों में नीर को रोक नहीं पाते। दूसरी ओर घोड़े की सवारी और तरी चलाने का अभ्यास होता हैं युद्ध के सामानों की ओर तीव्र रुचि है, इधर मामा कृपाल चन्द जी सारा प्रबन्ध सँभालते हैं और जो किसी बुद्धिमान, नेक, ईश्वर के भय वाले व्यक्ति का काम है, उस सारे को निभाते हैं। प्यारे सतगुरू जी के समय के कार्यकर्ता भी उसी तरह सेवा, कामकाज करते हैं। अब माता और मामा जी की सलाह से गुरूगद्दी पर विराजमान होने का दिन फागुन के पहले पक्ष की पंचमी तिथि निश्चित हुई थी।[१] देश विदेश संदेश पहुँच गये कि अब दशम गुरू को गुरू नानक की गद्दी पर उस ज्योति का सौंदर्य चमकाना है और टीके का दिन फागुन की पंचमी है।

दिन निकट आ रहा है, संगतें दूर-दूर से आ रही हैं। भाई बुड्ढा जी का परिवार आ गया भाई गुरदित्ता जी का बड़ा भाई हरिदित्ता आया है। इसके साथ राम कौर जी भी हैं, जो अभी बालक हैं।[२] बेदियों, त्रहणों, भल्लों और सोढियों--सबसे से बड़े-बड़े पुरुष आये हैं। बख्शिशों वाले, मंजियों वाले, मसंद सब आ रहे हैं। जगह-जगह से संगतों के टोले चले आ रहे हैं। काबुल, कंधार, बुखारा, आसाम और दक्षिण तक के सिक्ख आनन्दपुर में पहुँच रहे हैं और आनन्दपुर में भारी जमाव हो रहा है। आगे सारा प्रबन्ध पूरा है। मामा जी ने प्रबन्ध के लिये काम को ऐसे सुन्दर ढंग से बाँट रखा है कि जो लोग आते हैं उन्हें रहने का स्थान मिल जाता है और आराम से लंगर का प्रसाद लेते हैं। बीबी वीरो जी के पाँचों पुत्र संगोशाह, जीतमल, गुलाब चन्द, गंगा राम और माहरी चन्द आ चुके हैं। सूरज मल के दो पोते गुलाब राय, शामदास पहुँच चुके हैं। दयाराम सतगुरू जी का मित्र, भला मसंद नन्द चन्द भी मौजूद हैं। साहब चन्द और मुखिये सज्जन प्रबन्ध में लगे हैं और सारे मसंद दूर-दूर से आ गये हैं। इतनी चहल-पहल है कि जितनी किसी भारी मेले पर भी नहीं होती। सिक्ख भाँति-भाँति की भेंटें, सौगातें और नज़राने लेकर आ रहे हैं। अब दिन निकट आया जानकर आसपास के सिक्ख, संगतें, साधु, संत, महंत, जागीरदार, गरीब, अमीर उमड़कर आ रहे हैं, मानो पुरुषों की एक नदी में बाढ़ आ रही है और वह निर्भय होकर चली आ रही है।

तिलक का दिन आ गया, गुरू गद्दी पर विराजमान होने का समय आ गया। पहले

---

१. खालसा तवारीख वालों ने बैशाखी का दिन लिखा है।

२. सूरज प्रकाश में लिखा है कि राम कौर जी आये। तवारीख खालसा में लिखा है कि गुरदित्ता आया, पर गुरदित्ता जी का तो देहान्त हो चुका था। जीवन चरित्र भाई बुड्ढा जी में राम कौर और हरिदित्ता दोनों को आना लिखा है। इनके हिसाब से राम कौर जी इस समय तीन वर्ष के थे, पर एक और हिसाब से राम कौर जी उस समय कुछ बड़े थे, पर गुरू जी से छोटे थे। सूरज प्रकाश में लिखा है 'आरबला लघु है जिस केरी। त्रै संबत बीते तिस बेरी।'

अंक में लिखी गई बातचीत इस मौके पर आये भाई हरिदित्ता जी ओर दुलचा आदि में हुई थी।

आनन्दपुर में एक दमदमा था। यहाँ पर एक कुदरती ढलान इस प्रकार का था, जैसे कि ऊपर नीचे बैठाने के लिये दर्जे बनाये जाते हैं। यहाँ पर एक शामियाना लगाया गया। प्रेमियों ने इसकी सजावट स्वयं की थी। संगतों के बैठने के लिये बिछौने बिछाए गये। शामियाने के नीचे एक सुन्दर तख्त बिछाया गया। इसके ऊपर मखमली गद्दी बिछाई गई, जो पिछले सतगुरों के विरामजान होने की गद्दी थी। तख्त के ऊपर एक ज़रीदार चँदवा लगा रखा था। जिस स्थान पर गद्दी बिछ रही थी उसके ऊपर छत्र लटक रहा था।

अमृत वेला में गुरू जी को स्नान करवाया गया और तैयारी हुई, जैसे कि कवि संतोख सिंघ जी ने लिखा है:–

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ स्नाने।
सूखम बस्त्र दास गन आने॥२४॥
पहिरति भए अंग बड़ शोभा॥
देखति सभ के मन बहु लोभा॥
सुन्दर सिर दस्तार सजाई।
मुकता माल बिसाल सुहाई॥२५॥
हीरन जरे हेम की मुष्ट।
पहिरयो खड़ग लोह बहु सुष्ट।
मुकता गुच्छे संग निखंग।
भरकर तीखन ब्रिंद खतंग॥२६॥
पाइ गरे महिं बाँधी कमर।
संमत दसमें महिं जिन उमर॥
खंजर जमधर बिछुआ लीनि।
कमर कसे महि धार प्रबीन॥२७॥
पान कमान लहौरी धरिकै।
हेरति सर कर फेरन करिकै॥
अनिक विभूखन चामी करकै।
जथा योग सभ पहिरनि करिकै॥२८॥
जुगमातन को कर पद बंदन॥
अभिनन्दन ह्वै देखयो नन्दन।
देति असीस सीस कर फेरा।
'होवहु सुजस प्रताप उचेरा'॥२९॥
निकसे सदन पौर गुर पूरे।
पंकज पाए उपाइन रूरे।
दरस हेत सिख खरे हज़ारों।
उमगे जनु जल पारावारो॥३०॥

यों फकीरों के पातशाह, शहनशाहों के शहनशाह, रूहानियों के सुलतान सज धज कर अपनी अध्यात्मिक ज्योति में दमकते हुये बाहर निकले। आगे संगतों की भीड़ दर्शनों के लिये खड़ी थी। दर्शनाभिलाषियों से शहर के मकान भरे पड़े थे। घर से बाहर एक बलवान कुमैत घोड़ा खड़ा था, जिस पर आप सवार हो गये। सवारी धीरे-धीरे चली :-

शनैः शनैः तब कीन पयाना।
गरीअनि महिं ठांडे नर आना।
मनहुँ चकोर चंद को जौवैं।
रिदै अनन्द नंम्रि सिर होवैं॥४॥
सभि दिश देखति जाति कृपाला।
हुयें निहाल श्रद्धालु बिसाला।
भई भीर बहु मानव केरी।
चलहिं पिछारी मंगल हेरी॥३५॥

चारों ओर और महलों के ऊपर से फूलमालाओं की वर्षा होती थी और इत्र, गुलाब-जल आदि उड़ते थे। कहीं पर शंख की ध्वनि उठती थी, कहीं पर नरसिंघे का नाद ध्वनि लगाता था, कहीं पर बाजे नफीरियाँ बजती थीं। इस तरह के प्यार और आदर के मण्डल में से गुज़रते हुये, सतकार लेते हुये और प्यार भरे उत्तर देते हुय सतगुरू जी दमदमे पहुँचे। आगे दीवान सज रहा था, कीर्तन हो रहा था। श्री गुरू जी घोड़े पर से उतरे। दीवान में से बड़े-बड़े मुखिया आगे स्वागत के लिये आये हुये थे। मामा जी और दूसरे मुखिया साथ हो लिये। एक सुनहरे झूलते हुये छत्र के नीचे चलते हुये दीवान में आये। सारी संगत जै-जै कार करती हुई खड़ी हो गई। खुशियों का एक उछाल उछला। प्यार और उल्लास भरे मनों का एक उमड़ाव उमड़ा। इस सांसारिक और मानसिक आदर के मण्डल में आप आगे बढ़े। तख्त पर बिछी अपने पहिले सतगुरूओं की गद्दी को सतकार भरी दृष्टि से देखा। नैन मूँद लिये, करबद्ध हो गये। इस गद्दी पर पहिले विराजमान होने वाले सतगुरू नानक जी का दर्शन पाकर सीस झुकाया। फिर ध्यान में इस गद्दी पर गुरू अंगद देव जी को विराजमान हुआ देखकर सीस झुकाया। फिर गुरू अमर दास जी की मूर्ति देखकर नमस्कार किया। फिर श्री गुरू रामदास जी के दर्शन हुये, अपने कल्गी जिगा वाले सीस से जुहार किया। फिर गुरू अर्जुन जी का रूप देखा और प्रणाम किया। फिर गुरू हरिगोबिन्द जी की तेजस्वी मूरत दिखाई पड़ी। तब फिर सीस झुकाया। फिर श्री गुरू हरिराय साहब जी का टिके टिकाव में दमकता हुआ चेहरा देखा और सजदा किया, फिर श्री गुरू हरिकृष्ण जी दुखहर्ता की प्रत्यक्ष झलक पड़ी, आपने बंदना की। फिर पिता श्री गुरू तेग बहादुर जी का हर्षशोक से मुक्त स्वरूप गद्दी पर बैठा दिखाई पड़ा। सतकार, अदब और प्यास से खून के रिश्ते के स्नेह के कारण नैन भरं गये। सुन्दर सतगुरू जी के चरणों पर सीस रख लिया। क्षण भर के पश्चात ईश्वरीय ज्योति ने सदैव आनन्द से भरे सिर को उठाया। आपजी ने मुड़ कर सारी संगत की ओर देखा। गुरू वंश के बेदी, त्रिहन, भल्ले मुखियों की ओर दृष्टिपात किया, सबके मुँह से एक बार आवाज आई:-

'गुर गादी पर बिराजिये दाता जी।'

सभिहिनि की आयसु को पाइ॥
भए अरूढ़न गुरनि मनाइ॥३८॥
गुरुता स्यंदन पर आरोहे।
दिख्यो प्रताप दयोसपति सोहे।
गन संगति पंकज बिगसंते।
बिच मकरंद अनंद बधंते॥३५॥ [सू: प्र: रु: अंसू ५]

जिस समय आपने गुरू गद्दी पर बैठकर दीदार दिया, उस समय चंवरदार के पीछे खड़े होकर चंवर किया और दुदुम्भि वालों ने शादियाना बजाया। इसके पश्चात सारी संगत ने 'आज हमारे मंगलचार' का शब्द गायन किया। फिर रागी सिंघों ने यही शब्द गाकर टीके की बार गायन की। अब वृद्ध वंश के भाई हरिदित्ता जी आगे बढ़े, साहब रामकौर जी को भी अपने साथ लाये। आपने इस समय सनम्र आरदास की। फिर सोने की केशर कटोरी हाथ में लेकर रामकौर जी से श्री सतगुरू जी के माथे पर तिलक करवाया। फिर नारियल और पाँच पैसे, जो नवें सतगुरू जी ने अपने देहान्त से पहले दिल्ली से भेजे थे, सतगुरू जी के आगे भाई रामकौर के हाथों से रखवाकर, नमस्कार करके रामकौर जी सहित परिक्रमा की और धरती पर सीस रखकर दण्डवत किया और संगत की ओर मुँह करके आवाज़ निकाली:–

सचा पातशाह दशम गुरू हाज़र हजूर,
जाहिर जहूर, जगमग ज्योति,
साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी।

इस समय शादियाने बजे और आकाश जै-जै कार से गूँज उठा। यह पाँच पैसे और नारियल आगे रखकर, परिक्रमा करके सीस झुकाकर गुरुता देने की मर्यादा आदि पातशाही श्री गुरू नानक देव जी से आज तक जारी रही, जिसे सतगुरू जी स्वयं किया करते थे। उसे आज सतगुरू जी की आज्ञा में भाई बुड्ढा जी के वंशजों ने किया। माथे पर तिलक देने की मर्यादा सतगुरू नानक देव जी ने गुरू अंगद देव जी को गद्दी देते समय चलाई, जिसे आज तक भाई बुड्ढा और उनके वंश का मुखिया करता आया था। अत: तिलक और गुरू गद्दी मिल चुकने के पश्चात की मर्यादा दस्तार और भेंटें देने की हुआ करती थीं, जिसे सबसे पहले भाई बुड्ढा के वंशज किया करते थे। उसके अनुसार :–

कोरदार चहुं ओरन चीरे।
जरे बिकीमत जिस महिं हीरे॥२॥
ज़बर ज़ेब जुति जगमग कारी।
जिगा दई सिर बंधि उदारी।
जड़े जवाहर जागति जोती।
उज्जवल गोल पोइ बिच मोती॥३॥
कलगी चारु उतंगहि करीं।
सतिगुर सीस धरी बिधि खरी।
बहु मोला इक दीनसि बाज़।
कर बिठाए देखयो महाराज॥४॥ [सू॰ प्र॰ रु॰ २, अंसू ६]

एक कलग़ी और जिगा, हीरों, पन्नों की जड़त वाली, एक दस्तार समेत भेंट की और सीस पर तीनों चीज़ें सजा दी–एक दोशाला, मोतियों की माला, एक कमान, एक तलवार, चाँदी के साज़ वाला एक घोड़ा, एक बाज, पाँच मुहरें अर्पण की।[१]

औरंगज़ेब ने अपना भय बैठाने के लिये नवें गुरू जी को कत्ल करवाया। वह चाहता था कि ऐसा करने से लोग उससे डरें और सारे देश को ज़बर्दस्ती मुसलमान बना लिया जाये। उसका विचार था कि गुरू तेग बहादुर को मार लेने के बाद कोई भी चूँ नहीं कर सकेगा। पर यहाँ तो सिक्खों पर ऐसी निर्भयता बस रही थी कि वे नवें गुरू जी की शहीदी के पश्चात और ज़्यादा निर्भय हो गये। उन्होंने अपने सतगुरू जी का तिलक पूर्ण रूप से राजसी तख्त नशीनी के ठाठ बाठ से किया। यहाँ तक कि कल्ग़ी जिगा भी गद्दी पर बैठाकर लगाई। शस्त्र, घोड़े, बाज अर्पण किये। सिक्ख न तो भय देते हैं और न ही भय मानते हैं। नवें गुरू जी की शहीदी को चार-पांच महीने गुज़र चुके हैं, पर आज उसे नवें गुरू के सिक्ख, उनके द्वारा सिखाई गई उज्जवल मति, आन, शान, ग़ैरत, अनख वाले निर्भय मनुष्य उनके द्वारा स्थापित किये गये उसूल :–

"भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन॥"

के अनुसार निर्भय और जागती सुरति वाले गुरू गद्दी की मर्यादा पूरी करते हैं।

भाई बुड्ढा जी के घर की रीति के पश्चात बेदी, त्रिहण, भल्ले आये। गुरूवंश के बजुर्गों की भेंटें पेश हुईं। मामा कृपाल चन्द जी तथा दूसरे सम्बन्धियों, संगतों, सिक्खों की ओर से भेंट अर्पण हुईं। मेवड़ा सबके लिये अरदास करता था। मुँशी लिखते थे और मामा जी तथा दीवान जी सँभाल रहे थे। सौग़ातों और भेंटों के ढेर लग गये। इसके बाद रागियों ने शब्द पढ़ा, अरदास की गई और कड़ाह प्रसाद बाँटा गया। श्री गुर प्रताप सूरज ग्रन्थ में भाई संतोख सिंघ जी ने लिखा है कि हज़ार रुपये का कड़ाह प्रसाद आज के दिन संगत में बाँटा गया। तवारीख खालसा वालों ने लिखा है कि पाँच हज़ार रुपये का कड़ाह प्रसाद बाँटा गया। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस अवसर पर कितनी संगत आई होगी।

फिर रागियों और रबाबियों को कीर्तन के लिये भेंटें मिलीं। ढाढियों और दूसरे कीर्तन करने वाले पाठकों आदि को इनाम मिले। फिर सतगुरू जी ने सिक्ख पंथ के मुखियों, नामरसिकों, गुरू अंश वालों को, संतों तथा साधुओं, मसंदों आदि को सम्मान प्रदान किये पहर भर समय इस तरह सफल हुआ। उस समय को भाई संतोख सिंघ जी ने इस प्रकार बांधा है :–

कलग़ी रही बिराज उतंगा।
दमकति मुकता हीरन संगा।
चमर ढुरति सुख बारंबारा।
उज्जल हंस मनिंद उदारा॥१३॥

---

१. वह तवारीख खालसा का लेख है। जीवन बाबा बुड्ढा में लिखा है कि पाँच घोड़े, एक बाज, पाँच सौ मुहर और एक पोशाक।

दरसहिं सोभा खरे कितेक।
बैठि बिलोकति सिक्ख अनेक।
सभि के दृग इक टक लगि ऐसे।
गन चकोर ससि के दिशि जैसे॥१४॥
मन बरबस ही सरब चुराये
जन् सूरज मुख कमल खिराए।
एक जाम लौ थिर तहिं भए।
सभिनि मनोरथ पूरन भए॥१५॥

फिर आप दीवान से चलकर बाहर आये। प्रत्येक को आशीर्वाद देते हुये, हाथ उठाकर आशीर्वाद का इशारा करते हुये महलों में आये। पहले दादी जी को, फिर माता जी को सीस झुकाकर मिले। कुछ समय के पश्चात लंगर बांटना शुरू किया गया। पहला थाल सतगुरू जी के आगे आया और दूसरी ओर संगतों में लंगर बँटने लगा। दोपहर का यह समय था। अब से लेकर सवा पहर रात तक लंगर बँटता रहा। सिक्ख संगतों की संख्या का कुछ अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है। इस संख्या के औरंगे के ज़ुल्म से सिक्खों की निर्भयता का अनुमान लगाया जा सकता है। पर ज़ालिम पातशाह और अकड़ वाले मनुष्य अपने ऐश्वर्य और प्रताप के मद में यह कभी भी नहीं समझते कि किस तरह उनके ही अमल उनकी नींव खोखली करते हैं।

अब प्रतिदिन इस तरह होने लगा कि बाहर से आए मुखिया सज्जन, मसंद, संगतें विदा होने लगीं, मामा जी ने सबको उनके अधिकार के मुताबिक प्रसाद दिया और सिरोपाव दिलवाये और सतगुरू जी के विहँसते मुख और प्रफुल मस्तक से लोग ईश्वरीय रंग प्राप्त करके विदा हुये। जैसे-जैसे लोग विदा होते वैसे-वैसे पीछे रहे, बाद में चले, दूर-दूर से सुनकर और सिक्ख संगतें आने लगीं। प्रतिदिन नये सिक्ख और नई संगतें दूर-दूर से पहुँचतीं। यों गुरूद्वारा की रौनक, वही ठाठ, वही मर्यादाओं के रंग और रौनक लगी रही, जो नवें सतगुरू जी के समय थी।

आनन्दपुर का नगर राजा बिलासपुर के राज्य में था, जब उसकी गुरू जी के तिलक का पता चला, तब वह अपने मन्त्री को बुलाकर और गुप्त स्थान पर बैठाकर पूछने लगा– "मन्त्री! सुना है कि हमारे राज्य में एक ऐसा राज तिलक हुआ है जैसा कि हमारे यहां कभी भी नहीं हुआ। इस देश की इतनी प्रजा हमारे यहां कभी नहीं आई। क्या ये समाचार दिल्लीपति के पास नहीं पहुँचेंगे? और जिस औरंगज़ेब ने देश को कँपा रखा है, जिसने उनके पिता का क़त्ल करवा दिया था, क्या वह हमसे नहीं पूछेगा कि तुमने अपने राज्य में ऐसा क्यों होने दिया?" मन्त्री ने करबद्ध होकर कहा:–"राजा! मुझे सारे समाचार का पता है। मैंने अपने पुत्र को भेष बदलकर वहाँ पर भेजा था कि मुझे ठीक पता चल जाये। अत: वह आंखों देखी खबरें लाया है। राजन! वह गद्दी गुरू नानक की है, जिसके सिक्ख दक्षिण में सिंहलदीप तक, पूर्व में आसाम तक, पश्चिम में बलख बुखारे तक और उत्तर में लद्दाख तिब्बत तक फैले हुये हैं। उनकी गद्दी के तिलक के समय भीड़ तो अवश्य ही होनी थी, वे धर्म के पूज्य हैं न। बाकी रही बात उनकी सुरति की, वे निर्भय हैं। औरंगज़ेब

ने नवें गुरू का कत्ल करवाया है और सिक्ख इससे अधिक दिलेर हो गये हैं, दबे नहीं हैं। इसलिये मैंने विचार किया है कि इसको छेड़कर गले न पड़ने दिया जाये, जैसे औरंगज़ेब ने नवें गुरू जी के साथ किया है और यदि ये बढ़े तो वह स्वयं समझ लेगा। दशम गुरू अभी बच्चा है, देखिये क्या निकलता है, आयु है कितनी क्या पता? यदि औरंगज़ेब हमसे पूछेगा तो हम कहेंगे कि हज़ूर की ओर से कोई हुकम आयां ही नहीं था, इसलिये आपकी राजनैतिक चाल का पता न होने के कारण हमने स्वयं कुछ नहीं किया। इसलिये हे राजन! मैने आपकी ओर से दस्तार नहीं भेजी थी ताकि हम अपनी उपरामता उस समय बता सकेंगे।" यह सुनकर राजा को तसल्ली हो गई।

इधर सतगुरू जी के चारों ओर प्रतिदिन रौनक बढ़ रही थी, सिक्ख संगतें प्रतिदिन दूर-दूर से आने लगीं। जो संगतें प्रतिदिन आती थीं, उनमें दिल्ली से लुबाणा सिक्खों या वणजारियां की एक संगत आई। इनमें भाई लखी वणजारा भी था। दीवान में जब श्री आसा की वार का भोग पड़ा, संगतों की ओर से भेंटें पेश हो चुकीं, तब 'किशोर मूर्ति' जी ने लखी से पूछा, "हे सिक्ख! तैंने किस तरह सतगुरू जी की देह सँभाली थी और दाह संस्कार किया था?" लखी ने सारा हाल कह सुनाया। किस प्रकार ऊदा उससे मिला, कैसे वह अपनी गाड़ियाँ लिये आ रहा था, कैसे ऊदे ने उसे सेवा के लिये प्रेरणा की और किस तरह अंधेरी गर्दा और उसकी अपनी गाड़ियों से चूने का गुब्बार उड़ता था। जब वे चाँदनी चौक की ओर से गुज़रे और पवित्र शरीर को रकाबगंज ले गये और अपने छप्परों में चिता बनाकर आग लगाकर पवित्र देह का दाह संस्कार किया। इस समाचार को पहले सब सुन चुके थे, पर अब दोबारा सेवा करने वाले के मुँह से सुनकर सारे करूण रस से भर रहे थे कि, 'किशोर मूर्ति' ने पूछा, "लखी! दिल्ली में कई सिक्ख हैं कोई और न आगे आया?" लखी ने कहा, 'महाराज! दिल्ली में नित नये उपद्रव होते हैं, प्रजा सहमी रहती है, पातशाह का बड़ा त्रास है, सिक्ख थोड़े हैं और गरीब हैं। डर बैठाने के लिये कई सिक्खों को कष्ट भी दिये गये हैं। इसलिये साहस बटोर कर कोई सामने नहीं आया और मैं भी पातशाह! आपकी सहायता से सेवा कर पाया हूँ। सारे सिक्ख दुखी हैं, पर भय से बहुत विचलित हैं। तब सतगुरू जी ने जो वचन कहे, उन्हें कवि संतोख सिंघ जी ने इस तरह बताया है:-

इस विधि को अबि पंथ बनावौं।
सकल जगत महि बहु बिदतावौं॥८॥
लाखों जग के नर इक थाइं।
तिन महिं मिले एक सिक्ख जाइ।
सभ महिं पृथक् पछानयो परै।
रलै न कयोहूँ कैसिहुँ करै॥९॥
जथा बकन महिं हंस न छपै।
गिझन बिखै मोर जिम दिपै।
जिउं खर गन महिं बली तुरंग।
जथा मृगनि महिं केहरि अंग। [सूरज प्रकाश रुत २ अंसू ७]

इस प्रकार एकाएक निकले वाक्य सुनकर संगत चकित रह गई। फिर सिक्ख ने

बताया कि मैंने तांबे की गागरों में विभूति डालकर उसे वहीं पर दबा दिया है। सतगुरू जी ने कहा, वहां पर पक्का चबूतरा बना दो और निशान कायम कर दो। कभी कोई हमारा एक सिक्ख आयेगा जो वहां पर मन्दिर बनवा देगा।[१]

इस आयु में ही सतगुरू जी को घोड़े की सवारी और धनुष-बाण चलाने का शौक था। छोटे तीर, छोटी कमान और गुलेलों के खेल के अभ्यास तो पटने से ही करते आ रहे थे। घोड़े की सवारी भी पिता जी के समय से ही सीख चुके थे। अब कुदरत का रंग देखिये! अमृत वेला में आसा की वार के कीर्तन में अडोल, अचल बैठकर कई बार कीर्तन के प्रभाव में ही नैन भर आते। समाप्ति पर बड़े सुन्दर ढंग से संगतों से बातचीत करते हैं, अरदास सुनकर अनुकंपा भी करते हैं। इसके बाद भोजन करने के लिये उठकर घर को चले जाते हैं, दोपहर को धनुष-बाण के रंग देखते हैं और अपने लिये लाहौर से खास किसम के तीर मँगवाते हैं। बीबी वीरो के बेटे सूरजमल के पोते तथा दूसरे साथी और बजुर्ग रिश्तेदार जी तीरंदाज़ी, घुड़सवारी और बन्दूक चलाने में बहुत प्रवीण थे, उनको पास रख लिया। दोपहर को इनके अभ्यास देखते, आप तीर चलाते, दूर-दूर निशाने बाँधते और उनसे बन्दूकें चलवाकर गोली को निशाने पर लगता देखकर प्रसन्न होते। तीसरे पहर आप शिकार को जाते, शिकार को देखते, घुड़दौड़ करवाते, गदके के खेल करवाते और हर प्रकार के शस्त्र देखकर प्रसन्न होते। सिक्ख भी सुन्दर-सुन्दर शस्त्र भेंट करते। संध्या होने पर 'सोदर रहरास' के दीवान में ज़रूर पहुँचते और बड़े अडोल होकर सुनते और कभी-कभी आश्चर्यजनक बातें करते। कभी हँसते, खेलते और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते, तो हाथ न आते, कभी वैराग में आकर कोई शब्द गा उठते कि सारे जगत पर उपरामता का प्रभाव छा जाता।

गुरप्रताप सूरज के अनुसार संवत १७३४ के आषाढ़ की २३ प्रविष्टे को सतगुरू जी का लाहौर के प्रेमी खत्री भिखिया की बेटी जीतो जी से विवाह हुआ। आनन्दपुर से कुछ मीलों की दूरी पर नया नगर लाहौर बसाया गया। भिखिया परिवार सहित वहाँ पर आ गया और विवाह की रस्म वहाँ पर हुई, पर तवारीख खालसा में लिखा है कि लाहौर के भिखिया जाति के खत्री हरजस राय की सुपुत्री के साथ १५ जेठ संवत १७३० को गुरू जी का विवाह गुरू तेग बहादुर ने स्वयं रचाया और आनन्दपुर के पास लाहौर रचकर वहाँ पर मर्यादा की।

: ३ :

मुलतान की हाकिम कचहरी लगाकर बैठा है, अहलकार पास बैठे हैं, मुँशी अपने आगे बस्ते रखकर कलमें लिये काम कर रहे हैं। एक मुकदमा पेश है। रूपा नामक एक व्यक्ति हथकड़ी और बेड़ी में बन्धा हुआ खड़ा है और गवाह पेश हो रहे हैं। देर तक गवाह पेश होते रहे। अंत में हाकिम ने पैनी दृष्टि डालकर कहा, "रूपा! तुझसे कुछ और पूछने की जरूरत तो नहीं है, इस समय चाहिये तो यह कि तुझे सुलतान के चौक में खड़ा करके

१. सरदार बघेल सिंह जी ने यहाँ गुरुद्वारा बनवाया था, जो अब तक कायम है। रकाब गंज ग्राम अब नहीं है, पर गुरुद्वारे का नाम यही प्रसिद्ध है।

कुत्तों से टुकड़े-टुकड़े करवा दूँ, पर फिर भी न्याय का पक्ष पूरा करना है। अब तू ही बता, जो अब तक चुप खड़ा रहा है कि इस भारी और पक्की गवाही के सामने क्या तुझको कुछ कहना है? यदि कहना है तो कह। (काज़ी की ओर देखकर) क्यों काज़ी साहब?"

काज़ी—हाँ जी! अदल की दृष्टि से पूछ लीजिये, मेरा फतवा (निर्णय) तो लिखा ही पड़ा है, उसे सुनाना ही केवल बाकी है।

रूपा—मैं बेकसूर हूँ, इस पाप से बिल्कुल अज्ञात हूँ और मैं ये वचन सत्य कह रहा हूँ।

हाकिम—तेरे कहने मात्र का तो कोई अर्थ नहीं। कोई प्रमाण दे! यदि तू सच्चा होता तो इन गवाहों से कुछ तो पूछता, अपने बरी होने की कोई तदबीर तो निकालता। दण्ड तो मैं दूँगा ही, यदि तू सच कह दे तो मुझे और तसल्ली हो जाये। अब छिपाने और झूठ कहने से क्या लाभ?

रूप ने आकाश की ओर दृष्टि उठाई, नैन मूँद लिये, फिर कुछ समय के पश्चात खोले और कहा: मैं सच कह रहा हूँ मैं बेकसूर हूँ। इसके सिवाय मेरे पास और कुछ नहीं है, आप दण्ड दीजिये, मैं भुगतूँगा। आखिर एक दिन तो मरना ही है। किसी दुख, रोग, मुसीबत से मरना है, चलो इसी तरह ही सही, पर मैं निर्दोष हूँ। आपको और लोगों को इस बात का पता किसी न किसी दिन लग ही जायेगा। मेरे गुरू का वाक्य है 'कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही।' मैं सच्चा हूँ, अंत में सच प्रकट होगा। यदि न भी हुआ तो अन्त में मेरा तो सब कुछ मेरे वाहिगुरू के हाथों में है, उसके दरबार में मैं सच्चा होऊँगा।

हाकिम (चकित होकर)—रूपा! क्या तू गुरू नानक का सिक्ख है? ठीक कह।

रूपा—सरकार इसी कोतवाल से पूछ लीजिये, अपने कर्मचारियों से पता कर लीजिये।

इस पर सबने कहा कि "हाँ जी! यह सिक्ख है।" यह सुनकर हाकिम कलम रखकर बैठ गया और कहने लगा :—यह तो हो ही नहीं सकता कि बाबा नानक का सिक्ख झूठ बोले, यह हो ही नहीं सकता कि बाबा नानक का सिक्ख इस प्रकार का नीच काम करे। मेरा उम्र भर का तजुर्बा है, सिक्ख कभी झूठ नहीं बोलता।

काज़ी—आप ठीक कह रहे हैं, पर देखिये पाँचों अंगुलियाँ बराबर तो नहीं होतीं।

कोतवाल—मैं भी चकित हूँ, पर करूँ क्या? मैंने आप इसे पकड़ा है और प्रमाण आपके सामने पेश कर दिये हैं।

हाकिम—ठीक है"पर"(रूपा की ओर देखकर) रूपा! तू बाबे नानक की सौगंध खाकर कह दे कि सच क्या है?

रूपा—मैं सच कहता हूँ कि मैं बेगुनाह हूँ। सौगंध मैं नहीं खा सकता। मैं सिक्ख हूँ, बड़ी से बड़ी सौगंध यही है कि मैं सिक्ख होने के नाते कहता हूँ कि मैं बेगुनाह हूँ।

हाकिम—शाबाश! तेरे वाक्य सिक्खों वाले हैं। सिक्ख सदैव इसी तरह से ही बोलते हैं, पर तू ही बता कि मैं इतने भारी प्रमाणों और गवाहियों के सामने क्या करूँ? मैंने आज तक किसी सिक्ख को झूठ बोलते हुये नहीं पकड़ा, तुझे झूठा समझने में झिझकता हूँ, पर क्या करूँ?

कोतवाल–जो कुछ मिसिल (File) कहती है आपको तो उसी के अनुसार चलना होगा। मजबूरी है, आप क्या कर सकते हैं।

हाकिम–ठीक है पर मैं लकीर का फ़कीर नहीं, आईन (संविधान) और कानून इसलिये बनाये जाते हैं कि न्याय में सहायता मिले, सच मिले, न्याय हाथ में आये, इसलिये नहीं कि न्याय तो एक तरफ रह जाये और आईन, न्याय का स्थान ले ले और इसका परिणाम अन्याय हो।

कोतवाल–ठीक है, पर यह धनाढ्य है, इसके पास प्रमाण और गवाह कोई नहीं क्या?

हाकिम–रूपा! क्या तेरे पास कोई प्रमाण नहीं? कोई तेरी गवाही देने वाला नहीं?

रूपा–यदि लोग निर्भय हों और यदि सच बोलने से फंदे में न पड़ें, तो क्यों नहीं, मेरे गवाह भी बहुत आ जायेंगे। पर वे तो दबकर बैठे हैं कि यदि सच्च बोला–जो इस समय किसी एक ताकतवर मनुष्य को स्वीकार नहीं–तो परसों उन पर दोष लगाकर काज़ी के पास शिकायत चली जायेगी कि इसने हज़रत की शान में बुरी बात कही है, इसे मार दिया जाये अथवा दीन में शामिल किया जाये। फिर तुम ही बताओ कौन किसी के लिये अपने आपको संकट में डाल ले।

इस वाक्य पर कोतवाल ने होंठ काटे और काज़ी ने दाँत पीसे। हाकिम ने दोनों बातों को देखा, फिर सोच में पड़ गया: रूपा बड़ा अमीर आदमी है। इसको डाका डालने की क्या ज़रूरत थी? यह सिक्ख है, इसकी जान पर आ बनी है, फिर भी यह सौगंध नहीं खाता, किस प्रकार अपने सच्च पर पक्की टेक रखकर खड़ा है, उधर प्रमाण पूरे के पूरे हैं।

हाकिम (रूपा को)–रूपा! केवल बातों से तो कुछ नहीं बनता। अपने बेगुनाह होने की कोई पक्की टोह अथवा टेक पेश कर।

रूपा–'तेरे दर पर कभी न आना, यदि आना भी पड़े तब कभी झूठ नहीं बोलना, अपने और पराए जब भय में आकर सहायता न करें तो अपने सतगुरू के दरबार में पुकार करना', यही सिक्ख धर्म है। मैं कर चुका हूँ और तेरे आगे दया के लिये पुकार है कि यदि तुझको मुझे मारना ही है तो किसी सुगम मौत से तो मार। मरना है, सतगुरू जी ने मरना सिखाया है। हमारे यहाँ शरीरों के साथ मोह नहीं है। सच्च के साथ मोह है, यही सिक्खी है, और क्या कहूँ?

इस समय एक ऊँटनी सवार आया। शीघ्रता से अंदर आया और एक चिट्ठी हाकिम के हाथ में पकड़ा दी। यह चिट्ठी तुलंभे के कोतवाल की थी।

यह कोतवाल तो पढ़ा-लिखा था, पर इतना अधिक नहीं। थानेदार था और बहुत तगड़ा और साहसी मुसलमान था, पर सचमुच का दीनदार था। इसकी चिट्ठी पड़कर हाकिम ने काज़ी को पकड़ा दी। चिट्ठी को पढ़ते ही काज़ी का रंग नीला पड़ गया। कोतवाल ने कहा–काज़ी साहब! यदि यह कोई गुप्त आज्ञा नहीं तो सुना दीजिये। काज़ी साहब नें यह चिट्ठी पढ़ी, जिसका अर्थ यह था :–

मैंने आप काफी खराबी के पश्चात् डाकुओं का एक टोला पकड़ा है, जिनके सरदार का नाम रूपा है। इनकी ज़मींदोज़ कोठरी में से कम से कम बीस डकैतियों का माल बरामद हुआ है। मुझे एक नेक अमल कर्मचारी ने बताया है कि मुलतान डकैती के सम्बन्ध में एक रूपा नामक व्यक्ति गिरफ्तार है। इस टोली का सरदार बताता है कि वह रूपा निर्दोष है। वह डकैती भी इसी रूपा ने डाली है और इससे बहुत सारा सामान भी बरामद हो गया है। हजूर उस रूपे के मुकदमे का फैसला अभी न सुनायें, मैं इस अपराधी को शीघ्र ही भेजूँगा।

यह सुनकर रूपा के नैन बन्द हो गये और धीमी सी आवाज आई :-

धन्य गुरू नानक!
धन्य गुरू नानक!!
धन्य गुरू नानक!!!
बन्दी छोड़ दाता गुरू हरिगोबिन्द! तू धन्य!
साहब दशम पातशाह! मेरे साईं! तू धन्य!

सुनते ही कोतवाल का रंग फीका पड़ गया, पीला ज़र्द हो गया।

हाकिम-कहिये कोतवाल साहब!

कोतवाल-मेरे विचारनुसार तो तुलंभे के हाकिम से भूल हुई है, आप पता कर लें, तसल्ली हो जाये।

हाकिम-यदि सच्च निकल आया तो फिर आपकी इस...।

कोतवाल (बात काटकर)-मुझे आशा नहीं, पर खैर! भूल भी तो इंसान से ही होती है। हो ही जाता है, कोई बेईमानी तो नहीं हैं (काज़ी की ओर देखकर) क्यों काज़ी साहब!

काज़ी-जी हाँ, इंसान की बुनियाद ही ग़लती है। अपनी ओर से तो ठीक ही करना चाहिये, ग़लती अल्लाह के सिर।

रूपा-अल्लाह के सिर सदैव सच्च, हमारी भूल को अल्लाह क्षमा करे।

हाकिम-रूपा! यदि मैं तुझे मुक्त कर दूँ, तो क्या तू अपने आप अदालत में हाज़िर हो जायेगा, जिस दिन तुलंभे का कोतवाल मुकदमा लेकर यहाँ पर हाज़िर होगा?

रूपा-हाँ जुनाब, हाज़िर हो जाऊँगा।

कोतवाल-तब तक इसे हवालात में रखा जाये! न जाने यह उस दिन आये ही नहीं और भाग जाये।

हाकिम (रूपा की ओर)-क्या मैं गुरू नानक के सिक्ख के वचन पर भरोसा कर सकता हूँ, तू कहीं भागेगा तो नहीं?

रूपा-आप पक्का भरोसा कर सकते हैं।

कोतवाल-यदि हवालात में ही रखा जाये तो क्या हर्ज है?

हाकिम-यह बेकूसर है, आपके प्रमाण सच्च नहीं हैं, मुकदमा बड़ा न होने के कारण यदि इसका आप ही फैसला कर देते तो यह बेगुनाह तो मारा गया था न, पर अब दूसरे मुकदमे की पेशी तक इसे कैद क्यों रखा जाये? यह सिक्ख है, यदि इसे फाँसी पर भी

लटकना होगा तो यह इक़रार करके पहुँच जायेगा। इस ग़रीब को मुक्त कर दो, यह बहुत कष्ट सहन कर चुका है।

अत: रूपा मुक्त होकर आज घर आया। घर में उसके आने पर जो खुशी हुई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पर उसके हृदय में जो उछाल आज आया है, उसका रस उसी को मिला है। यह कहता था, 'मेरा। सतगुरू ज़ाहिरा ज़हूर हाज़रा हज़ूर है।'

रूपा बेगुनाह था। कोतवाल ने खार खाकर इसे पकड़ा था। काज़ी को खार थी कि रूपे के सतसंग से लोग दूसरे हिन्दुओं को भी दीन में पड़ने से रोक लेते हैं। दसवें दिन रूपा–भाई रूपा फिर अदालत में गया। डाकू रूपा अदालत में पेश था, उसकी टोली भी हाजिर थी। मामले के प्रमाण भी वहाँ पर हाज़िर थे। हाकिम ने सारे दिन के झंझट के बाद डाकू रूपे और उसके साथियों को दोषी माना और भाई रूपे को–जो गुरू का सिक्ख था–सम्मान सहित मुक्त किया।

रूपा खुशी-खुशी घर आया। शुक्र-शुक्र में खुशी-खुशी में, इसलिए कि अब आनन्दपुर जायेगा, पर आगे पत्नी बीमार थी। तिलक के समय, गुरू के गद्दी पर विराजमान होने के समय, तख्त नशीनी के समय भी आनन्दपुर नहीं पहुँच सका था, अब दीपमाला के समागम पर पहुँचने का इरादा था कि किशोर मूर्ति जी के, बन्दी मुक्त कराने वाले के पोता जी के, अपने किशोर साईं जी के दर्शन करके निहाल होवे, पर मानो कुदरत ने रोक लिया। मुलतान का मसंद दुलचा आनन्दपुर को जाने के लिये तैयार था, रूपा उसके घर पहुँचा और उसके आगे दस्तार के लिये १०० सुच्चे मोती, ५० मोहरें, एक जोड़ी जड़ाऊ कड़े, एक जड़ाऊ खंजर, एक रेशमी दरियायी की पोशाक और दो पोशाकें रेशम की माता जी के लिये तथा और धन पदार्थ रखकर कहा कि यह भेंट गुरू जी के आगे रखकर और रोकर कहना: गुरू नानक का घर सबसे बड़ा है, दाता! तू धन्य है जिसने मेरी लज्जा रखी! तू धन्य हैं! कृपालु हैं, अब इस तरसते हुये नैनों को दर्शन दे। मैं लज्जित हूँ, बेमुख हूँ कि नवें सतगुरू जी की शहीदी पर न पहुँच सका, अब मौत तथा अपजस के मुंह से मुक्त होकर तैयार हुआ फिर रह गया, दाता! दया कर, और दर्शन प्रदान कर।

: ४ :

दुलचा आनन्दपुर पहुंच गया था। उसके साथ संगत भी आई थी, सारे पेश हो चुके थे। सतगुरू के सामने न आ सकने वाले सिक्खों की भेंटें पेश हुईं। मेवड़े ने अरदास की भेंटें खज़ाने में दाखिल हो गईं, बात समाप्त हुई। दीपमाला का दर्शन मेला हो चुका।

एक दिन भाई हरिदित्ता जी और दुलचा में फिर वार्तालाप हुआ। हरिदित्ता कह रहा था कि दशम सतगुरू जी हरिगोबिन्द जी के चिन्हों पर चल रहे हैं। कितनी छोटी आयु है और शस्त्रों तथा युद्ध के सामानों के साथ कितना प्यार है। दुलचा कहता था कि औरंगज़ेब के वैर को रगड़ नहीं देनी चाहिये और हरिदित्ता कह रहा था कि सतगुरू भूल नहीं करते तुम उन्हें मामूली बच्चा क्यों समझते हो?

हरिदित्ता–दुलचा जी! तुम भूल कर रहे हो। कभी मनुष्य हैं और एक ही जाति, एक ही श्रेणी अथवा एक ही किस्म के मनुष्य हैं, पशुओं से इनकी श्रेणी ऊँची है, पर है सारे

एक ही जैसे, यह एक भूल है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर की शक्ति, योग्यता, प्रवीणता, दिल और दिमाग़ की अलग-अलग शक्ति होती है। अतः बड़प्पन और छुटपन का बीज अंदर है, फिर कोई इन्सान कलाधारी होता है। वह पुरुष दूसरे बुद्धिमानों की अपेक्षा स्वाभाविक ही अधिक प्रवीण होता है। कलाधारी एक जीवित शक्ति है, मनुष्यों में, मनुष्यों से ऊँची श्रेणी का मनका है।, वह जलती हुई आग की लपट है, जीवन की ज्वाला है।

दुलचा-क्या सतगुरू जी कलाधारी हैं?

हरिदित्ता-मैं यह कहना बेअदबी समझता हूँ, क्योंकि कलाधारी उनके आगे निम्न श्रेणी है, वे उनमें से भी उच्च वस्तु हैं?

दुलचा-क्या आप करामाती हैं?

हरिदित्ता-करामात कोई बड़ी बात नहीं, पर कई लघु मनों की भरोसा करामात से ही आता है। देखिये अगले दिन, सतगुरू जी ने तीन बरछे मारकर, पानी के तीन स्रोत खोले थे। इस आश्चर्यजनक कार्य पर हजारों जीवों के संशय की निवृति हो गई। सबने मान लिया कि इस किशोरावस्था में ज्योति गुरू नानक की है, यह घर करामात वाला है। फिर एक दिन एक आदमी बाज़ार में रो रहा था और कह रहा था कि मेरी थैली को चोर चुराकर ले गया है। वह सतगुरू जी के पास पहुँचा और कहने लगा कि क्या आपके घर में आने वालों की भी चोरी होती है। तब आपने चोर का घर और उसकी अलमारी में रखी थैली का पता देकर आदमी भेजे, ठीक वहां से सब कुछ निकला। ये निशानी दिलों में विश्वास बंधाती है। यह सुनकर दुलचा का रंग कुछ फिरा, कुछ घबरा-सा गया, पर फिर सँभलकर कहने लगा: उम्र बड़ी छोटी है, समाधि-ध्यान योग में जुड़ना, पारदर्शक होना, इस उम्र में कैसे हो सकता है?

हरिदित्ता जी-दुलचा! तू कहाँ चला गया। तू इन्हें हठयोगी अथवा राजयोगी समझता है? गुरू नानक के घर को तैने करामातें अथवा हठ से करामातें करने वाला समझा है? यह तो कोई अगम्य घरं है, यहाँ पर रूहानी ताकत अगम्य है। देख! करामात! सबसे बड़ी करामात यह हैं कि कभी कहीं पर कलाधारी के बाद कलाधारी नहीं आया, यदि कहीं आया भी होगा तो एकाध। यहाँ देख गुरू नानक देव से लेकर दशम जामे तक एक के बाद दूसरा रूहानी कला का कलावान, हाँ कलावानों का सरदार आया है। सोचकर देख कि किससे कौन कम था? यह ईश्वरीय करामात है, नया रास्ता, नया मार्ग, मृतकों को जीवित कर दिया है, प्राण भर दिये हैं, मनों में नाम पिरो दिये हैं, मानो मनों पर वाहिगुरू जी का चित्र बना दिया है, यह करामात है। देख! क्या आयु है, कैसे भजन बन्दगी, कैसे नाम प्रदान करते हैं, नाम जो देते हैं वह भीतर चुभता है। अभी इसी दीपमाला के अवसर की बात है, एक वैरागी साधु ने कहा था, "मैं दूर से आशा धारण करके आया था, मैं साधु बना, मुझे प्रभु की प्राप्ति नहीं हुई, मैंने सुना है कि गुरू नानक के द्वार पर जाने से ईश्वर मिलता है, अतः वे उसकी गद्दी के मालिक! मुझ पर दया कर मुझे भी कोई कण प्रदान कर।" देखिए दुलचा जी! मैं पास ही खड़ा था, सतगुरू उससे कहने लगे-अरे साधु राम!

मेरी ओर देख!
भली भाँति देख!
देखा है?
कह वाहिगुरू।

उसने वाहिगुरू कहा : मेरे देखते-देखते उसके नैन मूंद गये और वह खड़ा रहा, फिर चरणों पर गिर पड़ा, रो पड़ा, शुक्र में कहने लगा :-"कभी भी नहीं देखा था, यह रस, यह स्वाद। नाम मैंने जपा है पर गाल, मुँह, सिर थक जाते थे। यह नाम रस वाला है, स्वाद वाला नाम है अथवा नाम वाला आप है।"

दुलचा! यह है करामात![१]

दुलचा (झिझककर)-पर इस किशोरावस्था में कैसे?

हरिदित्ता-दस जामों में एक ही ज्योति ने काम किया है, उस ज्योति को शरीर के बड़े छोटे होने का कुछ अन्तर नहीं। वह ज्योति कोई अगम्य वस्तु है। वाहिगुरू गुरू है, उसकी 'गुरू ज्योति' मेरे विचारनुसार तो वही 'ज्योति' है पर हे दुलचा मित्र! मुझे भय है कि तेरे अंदर कोई और मोह है, सतगुरू के प्रेम से निम्न मोह, वह तुझे ठोकर लगा रहा है, वह मुझे किसी समय भारी चोट मारेगा! हे मित्र! तगड़ा हो। गुस्सा मत करना, मैं प्यार से कह रहा हूँ।

दुलचा-हम लोग इतने दूर से आते हैं, जो कुछ लाते हैं, उसे आगे लाकर रख देते हैं, हाकिमों से नहीं डरते, आयु की ओर नहीं देखते, उसी तरह चाकर हैं, जिस तरह पहले गुरूओं के थे। अब भी तू हमें ठोकर देता है और डरावा देता है? अच्छा!

हरिदित्ता-भैया! मैंने ईर्ष्या से तो नहीं कहा, प्यार से कहा है। तुम्हें संशय क्यों होता है? सिक्ख धर्म तो प्यार का नाम है, भरोसे का नाम सिक्ख धर्म है। फिर हमारा गुरू जाहिर है, हाज़िर है। हमने और हमारे पूर्वजों ने नौ जामें देखे हैं। मेरे पूर्वज स्वयं करामाती थे, पर सारे इस द्वार के दास और प्यार वाले रहे हैं। मेरे बड़े भाई ने गुरू जी से बिछुड़कर जीवित रहना पसंद नहीं किया। मेरी आशायें तो ये हैं कि इस मूर्ति को, जिसे मैं सदैव एक रस जाग्रत ज्योति समझता हूँ, इस देश का बोझ हरना है। स्पष्ट लक्षण ये हैं कि ये देश का राजदुख भी दूर करेंगे। मुग़लों का बड़ा तेज है। पर तेज निस्तेज हो चला है। दोपहर व्यतीत हो चुकी है, सूरज ढलने लगा है, चाहे वैसे दोपहर के बाद ढला हुआ प्रतीत नहीं होता। जुल्म की अति है, जो जालिम के अपने पैरों पर कुल्हाड़ा है। गुरू जी की शहीदी उनके तप और तेज का खत्म कर गई है, अब बड़े वृक्ष को गिरते, सूखते हुये कुछ देर तो लगती ही है न। यह कुमार मूर्ति, मुझे आशा है कि इस जुल्म भरे राज्य की नींव को पानी में डुबो देगी, आगे ईश्वर जाने।

दुलचा-तुम ही तो कहते हो कि किशोर मूर्ति अंतर्यामी है।

---

१. सतिनामु बिन बादर छाई।
पुनः-बाझहु सचे नाम दे होर करामात असाथे नाहीं। [भाई गुरुदास]

२. पुनः-सा सिधि सा करामाति है अचिंतु करे जिसु दाति। [सोरठ वार मः ३]

हरिदित्ता (गंभीर होकर)—मैं यह तो डंके की चोट से कहता हूँ, ढोल बाजकर कहता हूँ कि मेरे सतगुरू जी अंतर्यामी हैं। मेरे सतगुरू वाहिगुरू के साथ सदैव अंतरात्मा में जुड़े हैं। उनमें सदैव वाहिगुरू जी की ज्योति का "बल और बुद्धि" लहरें मारते हैं, वे हैं जो वे हैं, वे पूर्ण हैं और पूर्ण के हैं। अंतर्यामी कहकर कोई बड़ी बड़ाई नहीं दी जा सकती, वे तो सारी परमेश्वरताई, रूहानियत, अलूहीयत से सरशार, भरपूर लहलहाते हुये 'गुरू नानक देव गोबिन्द रूप' हैं। इसमें गौरव है, सुख है, यह सच्च है और सुखदाई सच्च है। तू भी इसी द्वार का है, तू भी यही जानता होगा; कही मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहा है?

दुलचा हँसकर उठ गया।

दूसरे दिन जब आसा जी की वार का भोग पड़ चुका, कड़ाह प्रसाद बांटा गया, तो 'किशोर मूर्ति' जी आंखें मूंदे ही बैठे थे। आज नई संगत कोई नहीं आई हुई थी। पहली संगतों के साथ ही दीवान खचाखच भर रहा था। एकाएक सतगुरू जी ने नैन खोले और कहने लगे: दुलचा कहाँ है?

दुलचा करबद्ध आ खड़ा हुआ। आपने कहा: भाई! तू मेरे लिए क्या लाया है?

दुलचा—पातशाह! जो कुछ लाया था उसी दिन आपके चरणों में अर्पण कर दिया था।

सतगुरू—तू स्वयं क्या लाया है?

दुलचा—जो कुछ तिल फूल बना सारा अर्पण कर दिया था।

सतगुरू—किसी प्यारे, प्यार वाले की दी हुई कोई अमानत?

दुलचा—सब कुछ आपके अर्पण कर दिया था।

सतगुरू—भूले भटके कोई वस्तु रह गई हो, ध्यान कर ले, देख मेरे हाथ खाली हैं।

दुलचा—मैं तो सब कुछ दे चुका हूँ, आप चोज़ करते हैं, क्या बालावस्था का चोज़ मेरे साथ ही करना था? आपका बालकपन का चोज़, मेरी इज्जत ओ हो¨।

सतगुरू—हाँ दुलचा! तेरी इज्ज़त और मेरा चोज़। देख चोज़ उस शूरवीर गुरू तेग बहादुर का, चोज़ देख।

यह कहकर उछले और उसकी पगड़ी उतार फेंकी। सिक्ख सेवक दुलचे के इस प्रकार के दलेरी वाले अनुचित उत्तरों से चौकस हो ही चुके थे कि यह, किशोर कौतुक घट गया। जब पगड़ी उतरी तब उसमें से छोटे-छोटे, सतगुरू जी के नाप के, जड़ाऊ कड़ों की एक जोड़ी निकली। एक सिक्ख ने इन्हें उठाकर आपके आगे रख दिया, जहाँ पर आप गद्दी के ऊपर शान्त चित्, चढ़ते हुये चाँद की मुस्कराहट के साथ जाकर बैठ गये थे। दुलचा ने उतारी हुई पगड़ी उठाई और चरणों पर जाकर रख दी और कहा कि मुझसे भूल हुई है। मुझे क्षमा कीजिये। मैं किसी मान के मद में उतर गया था। मैंने समझा था कि मैं धन इकट्ठा करके देता हूँ, मैं अच्छा और ऊँचा हूँ। मैंने समझा था कि उम्र में आप छोटे हैं। कल एक सिक्ख ने मुझे सुमति दी थी कि तू सँभल, ठोकर खायेगा। मैं न समझा, आज ठोकर खाई। मैं मायाधारी अन्धा और बहरा हूँ, पर हे दयालु मूर्ति! हे प्रत्यक्ष गुरू नानक! मुझे क्षमा कर।

इस समय भाई हरिदित्ता जी का कोमल मन पसीज गया, करबद्ध होकर खड़ा हो गया, "पातशाह! क्षमा कीजिये?"

किशोर मूर्ति बोले—गुरू नानक का घर सदैव क्षमा करने वाला है। यहाँ पर धन का लोभ नहीं, सब लुटा दो और बरतन उल्टे कर दो, पर प्रेमियों के प्रेम को देखो! कह दो भाई हरिदित्ता जी! दुलचे से कह दो बख्श दिया, पर वह प्रेम सुना दे, वह दर्द सुना दे, वह पुकार सुना दे जो मैंने अभी सुनी है, कड़े वाले की कथा।

तब दुलचे ने उठकर भाई रूपा की, उस धनी सेठ की, जो चोरों की भाँति पकड़ा गया था, कथा सुनाई। गुरू नानक के द्वार पर उसकी पुकार की कथा सुनाई। उसकी अदालत में गुरू के सिक्ख की, सिदक की कथा सुनाई। उसके सच्च की कथा सुनाई और उसके कैद से मुक्त होने की, अगम्य से सहायता पहुँचने की, गुरू नानक के द्वार से सुर्खरू होने और बन्धन काटे जाने की कथा सुनाई। फिर दुलचे ने वह प्रेम संदेश, जोकि उसने दिया था, सुनाया और आप इस बात को माना कि रूपे के पदार्थ की सुन्दरता ने उसे मोहित कर लिया था। मैंने उसमें से ५८ बढ़िया मोती और २६ मुहरें तो घर में रख ली थीं और कड़ों की जोड़ी पर यहाँ आकर मेरा मन डोल गया था, इसीलिये पगड़ी में रखे हुये फिर रहा था। मैंने सतगुरू जी को बालक समझा था, मैंने माया से मोह किया था। मेरा भरोसा श्री गुरू तेग बहादुर जी की शहीदी के बाद डोल गया था। मैं अपराधी हूँ, पर शुक्र है कि इस जगह पर इसी दरगाह में मेरा पाज उघड़ गया है। हे साईं! अब आगे से मेरी रक्षा करो।

किशोर सतगुरू जी—माया मोहिनी है, माया मोहिनी है, दुलचा! इसे शस्त्रों पर सफल कर। देश में पीड़ा है, प्रजा दुखी है, जाओ क्षमा किया। हरिदित्ता जी! प्यारे जी! दुलचे के अवगुणों को मत कोई चेते करे, इसे कोई मत फटकार दे, इसे क्षमा कर दिया है। पर माया बुरी वस्तु है, माया का मोह बुरा है। हाँ, रूपा भला है, रूपा गुरू नानक का सिक्ख है। धन्य गुरू नानक! धन्य गुरू नानक! धन्य गुरू नानक! कहते-कहते सतगुरू कितना समय ध्वनि में मग्न रहे। सारा दीवान इसी ध्वनि में मग्न हो गया। फिर किशोर मूर्ति के नैन खुले और उत्तर की ठंडी-ठंडी वायु की भाँति धीरे-धीरे चलते शान्ति-शान्ति की लपटें देते हुये माता जी के पास चले गये।

इधर इस तरह के कौतुक होते थे, उधर सतगुरू जी के खेल-कूद, शिकार, तीरंदाजी के कौतुक आश्चर्यजनक थे। शिकार को भी जाते थे, शस्त्रों का भी अभ्यास करते, मामा जी और माता जी ने जो सांसारिक ध्यान करके विद्या का प्रबन्ध कर रखा था, उसे भी पूरा करते थे, उनके ख्याल और स्वाभाविक ही मुंह से निकले अध्यात्मिक वाक्य अथवा कभी-कभी ईश्वरीय प्यार में उच्चारण किये हुये वलवले सांसारिक विद्या पढ़ाने वाले को भी चकित कर देते थे।

पटने साहब में जो जल क्रीड़ा का शौक था, वह यहाँ आकर और बड़ा। कई बार आपने नदी में जाकर ऊधम मचाये। अपने साथी और खेल के सखों को साथ लेकर, दो टोले बनाकर, जल में पानी उछालने का जंग जाकर मचाते थे। कहा जाता है कि एक बार एक टोली के नेता आप थे और दूसरी टोली का नेता गुलाब राय को बनाया। नदी में खेलते हुए और एक दूसरे को भगाते हुये ऐसे भारू हुये कि गुलाब राय भाग गया और बाहर आकर तेज़ी से गुरू जी की पगड़ी उठा कर और सिर पर रखकर दौड़ गया। किसी ने

बताने पर जब उतारने लगा, तब सतगुरू जी ने कहा, रहने दे, अब मत उतार, कभी तू भी कुछ समय तक अगुआई करेगा। पर इस पगड़ी वाले सिर में अहंकार को न घुसने देना[१], यदि अहंकार आ गया तो गया, अदब सदैव सुखदाई है।

एक दिन किशोर मूर्ति के कानों में किसी माई के रोने की एक अत्यन्त दर्द भरी आवाज पड़ी। आप बड़े कोमल दिल वाले होकर उसके पास गये तो वह रो रही थी और उसके आगे उसका पुत्र पड़ा था। आपका दिल बहुत पसीजा और कहने लगे, माई! तू क्यों रोती है? उसने कहा, हे सदैव के पातशाह! यह मेरा पुत्र है, इकलौता, अभी भला-चंगा था, अभी लेट गया है और देखिये यह तो बोलता भी नहीं, हिलता भी नहीं, श्वास भी नहीं ले रहा। सतगुरू जी उसी तरह कोमल हृदय से स्वाभाविक ही बोले: अभी श्वास तो आ रहा है, देखो आँखें झपकता है, यह देख माई! यह तो जीवित है। यह कौतुक देखकर लोग चकित हो गये। सिक्खों ने समझ लिया कि आपमें भी वही गुरू अमर दास वाली दया है, वही परोपकारी सामर्थ इनमें भी है:-

मिरतक कउ जीवालनहार॥
भूखे कउ देवत आधार॥ [सुखमनी]

अब आपकी आयु बढ़ रही थी, चौदहवें वर्ष में प्रवेश हो रहा था। युद्ध का शौक ज्यादा बढ़ रहा था, शिकार में आप पक्के निशानेबाज़ हो गये थे। तीरंदाज़ी के साथ-साथ अब बन्दूक भी चलाते थे, अद्‌भुत निशाना बैठता था। सिक्खों के मनों के प्रेम ऐसे थे कि जिधर आपका रुख था, उसी किस्म की सेवा करते थे। काबुल में से दो लाख रुपये की लागत से एक शामियाना तैयार होकर दिल्ली पहुँचा, पर दिल्ली के सिक्खों में चाव भर आया कि हमारे पातशाह के लिये, जोकि रूह का पातशाह है, एक इससे भी अधिक सुन्दर डेरा बनना चाहिये।

अफ़गानिस्तान की संगत ने उससे भी अधिक सुन्दर डेरा तैयार करवाया। इस पर रुपया अढ़ाई, तीन लाख खर्च हुआ। ज़री बादले का काम हुआ था और बीच-बीच में जवाहरात की जड़त थी। काबुल के दुनी चन्द नामक एक धनवान सिक्ख ने ये शामियाना अपनी ओर से खर्च करके बनवाया था, परन्तु सिक्खों ने भी यथा शक्ति इसमें कुछ धन लगाया था। इस शामियाने की तैयारी का प्रबन्ध काबुल के मसंद भाई दयाल दास के सुपर्द रहा। संवत १७३६ अथवा ३७ में यह शामियाना आनन्दपुर में लाकर ताना गया। इसकी सुन्दरता और उत्तमता को देखकर संगतें चकित रह गईं।

ये नमूने और बानगियाँ हैं जो कोई-कोई समय की सीमा लांघकर स्मृति में रह गई हैं। कैसे सिक्ख सतगुरू जी से प्यार करते थे, कैसे प्रभु के साथ जुड़ रहे थे और मद भरे औरंगजेब के राज्य में कैसे खुले और स्वतन्त्रता वाले मनुष्य पैदा हो रहे थे।



१. कहते हैं कि जब सतगुरू जी दक्षिण को चले गये और आनन्दपुर की सेवा उदासी संत भाई गुरु बख्श के हवाले करके गये, तब समय पाकर गुलाब राय ने आनन्दपुर पर कब्ज़ा किया। सेवा और कारदारी के साथ आप गुरू कल्गीधर के तुल्य गुरू होने का दावा भी किया। सतगुरू द्वारा स्थापित उदासी संत ने समझाया, पर वह न माना। इस दावा का सिक्ख पंथ में कोई अधिकार न चला और अंत में वह और बाद में उसकी सन्तान, निर्वंश होकर जगत से चले गये।

७ राजा रतन राय

: १ :

"तनि बिरहु जगावै मेरे पिआरे नीद न पवै किवै॥"

चढ़ती हुई जवानी के एक राजकुमार, बड़े तड़के ही, शीशे के सामने खड़े होकर केशों में कंघा करके उन्हें बना संवार रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि अपने माथे के सिरे पर पड़ी और केशों के पास एक दाग़ सा नज़र आया, जैसे कोई अक्षर सा हो, पर यह पहचाना नहीं जा सकता कि वह क्या था? राजकुमार ने समझा कि छुटपन में कहीं कोई चोट लगी होगी अथवा किसी फुन्सी का कोई निशान रह गया होगा। पर यह दाग़-दाग़ नहीं लगता था, कुछ और ही लगता था। यह सोचते हुये उसकी हैरानी बढ़ गई और इसका पक्का पता लगाने की इच्छा भी तीव्र हो गई। अंत में उसे ध्यान आया कि चाहे यह चोट है, चाहे फिंसी का दाग़, चाहे और कुछ, पर इसका पता मेरी माता जी को अवश्य होगा कि यह क्या है और कैसे हुआ है। यह सोचकर वह पगड़ी बाँधकर अपनी माता जी के पास गया। वह आगे करबद्ध होकर, नैन मूँदकर ध्यान मग्न बैठी थी। थोड़ी देर तक राजकुमार प्रतीक्षा में बैठा रहा। जब माँ की आँख खुली, तब इसने आगे बढ़कर सीस झुकाया। माँ ने बेटे को गले से लगाया, माथा चूमा और सिर को प्यार से थपथपाया। उस समय राजकुमार ने सिर पर से पगड़ी उतारकर माँ से कहा, "अम्माँ जी! मेरे सिर पर यह काहे का निशान है?" माँ ने निशान को देखा, सीस झुकाया, नैन मूँद गये, दो चार बूँदें आँसू नैनों में से बरसे। यह देखकर राजकुमार घबड़ाया कि न जाने उसने अपनी माँ को उदास तो नहीं कर दिया, अधीर होकर कहने लगा, "अम्माँ जी! क्या मैंने कोई बेअदबी की है जो तुम रो पड़ी हो?" माँ की आँखें खुलीं, उनमें अभी आँसू भरे हुए थे। बच्चे की ओर देखा ओर हाथ से 'नहीं' का संकेत किया। वह बोलना तो चाहती थी, पर भीतर से कंठ भर आया और गदगद हो रहा था, इसलिये बोल न सकी। अब लाड़ले तथा दुलारे पुत्र ने माँ से फिर कहा–"अम्माँ जी! उदास मत होवो। यदि तुम बताना नहीं चाहती तो मैं नहीं पूछता, पर तुम प्रसन्न होवो।" इस तरह कुछ समय चुप रहकर माँ का दिल बोलने के रुख में आ गया और बोली :–

"लाल जी! यह निशान चोट अथवा फिंसी का नहीं है, यह तो तुम्हारी जन्मकथा है और इस निशान में तुम्हारा और मेरा कल्याण छिपा हुआ है।"

यह सुनकर नौजवान शाहज़ादे को और ज्यादा शौक जाग उठा कि किसी तरह इस निशान के भेद को जाना जाये। अधीर होकर कहने लगा: "अम्माँ जी! फिर तो मुझे बताइए।" माँ बोली, "लाल जी! इसके बारे में जान लेने पर यह आवश्यक है कि तुम्हारे हृदय में भक्ति का भाव और प्रेम जागृत हो और ईश्वर करे यह होगा भी, पर अपने आपको

तैयार कर लो। तुम्हारी युवावस्था है, रुचि खेल तमाशे की ओर है और छोटी आयु में ही राजगद्दी पर विराजमान हुये हो, इस समय तुम्हें कोई वाहिर्मुखी वृत्ति का काम तो है नहीं? यह भेद अपने आप में सत्कार की आवश्यकता रखता है। यदि तुम्हारे पिता जी आज जीवित होते तो वे स्वयं तुम्हें बताते और यह महान पवित्र और अत्यन्त कठिन काम मुझ स्त्री को आज न करना पड़ता। पर सृजनहार को जैसे अच्छा लगता है, वैसा ही होता है।"

राजकुमार–अम्माँ जी! मैंने कभी कोई बात तुम्हारी उदासी की की है? (नेत्रों में जल भरकर)–तुम मेरी प्यारी अम्माँ जी हो! सोच में मत पड़ो, मैं वही कुछ करूँगा जो कुछ मेरे लिये पिता जी की आज्ञा आपके पास है, मैं वही कुछ करूँगा जो कुछ आप प्रसन्न होकर मुझसे करवाना चाहोगी।

माँ–लाल जी! फिर सुनिये! तुम हमारे घर में हमारी वृद्धावस्था में प्रभु के भेजे हुये आये हो। आज इस बात को हुये बहुत वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, जब कामरूप के देश को फतह करने के लिए अकबर ने राजा मान सिंह को भेजा था, जो इसे फतह करके गया था। फिर औरंगज़ेब ने अपने सेनापति मीर जुमला को व्यस्त रखने के लिए कामरूप को भेजा, जो कि फिर स्वतन्त्र हो रहा था कि इसे फतह करे। मीर जुमला पहले तो जीत गया, फिर बरसात हो जाने के कारण और महामारी पड़ जाने के कारण अत्यन्त दुखी हुआ। उसका लशकर तबाह हो गया और आप ढाके पहुँचकर मर गया। अब उसके पश्चात् औरंगज़ेब ने राजा राम सिंह राजपूत को भेजा, जिसके साथ कामरूप के राजा–प्रणपाल की मुठभेड़ होने ही वाली थी कि कामरूप वालों ने ब्रह्मपुत्र नदी का पानी शत्रु के दल की ओर भेजकर उनका नुकसान कर दिया।

इस समय लाल जी! अदब में हो जाओ और दूसरी कथा सुनो:–जगत में मलेच्छता और पाप बढ़ गया है। अदेशी दाता ने आदेश से अपनी एक ज्योति को भेजा जो जगत की रक्षा करे और जगत को ईश्वर के साथ मिला दे। उस ज्योति का नाम, बेटा जी! गुरू नानक हुआ। (यह कहकर माई का चेहरा लाल हो गया और सिर भूमि पर जा लगा, जब सिर उठा तब मोतियों की दो-तीन बूँदें गालों पर ढलक रही थीं। राजकुमार भी बड़े अदब में था)। हाँ लाल जी! वह ज्योति पंजाब देश में प्रकट हुई, जहाँ पर मलेच्छों ने बड़े भारी उपद्रव फैला रखे थे। श्री गुरू नानक देव जी ने लगभग सारी दुनिया में फिरकर सत्यनाम का छत्र झुलाया और वाहिगुरू जी से भेंट कराई।

राजकुमार (अधीन होकर)–अम्माँ जी! आप अब कहाँ पर हैं?

माता–बेटा जी! आप तो अपना दैवी काम करके प्रभु के देश चले गये, पर अपने स्थान पर ज्योति जलाकर गये ही। उनके पश्चात् श्री गुरू अंगद देव जी हुए, उनका ही रूप, उनकी ज्योति। आप भी इस मुर्दा संसार में जीवन प्रदान करते, अपने स्थान पर गुरू अमरदास जी के स्वरूप में अपने जैसी ज्योति जलाकर हरि के देश को चले गए। इस तरह लाल जी! गुरू नानक देव जी के पश्चात् आठ गुरू साहब हुये। फिर गुरू श्री गुरू तेग़ बहादुर जी–देवमूर्ति हुये। पहले आठ गुरूओं के तो हमने नाम, करनी और यश सुने हैं, पर सौभाग्यवान हैं ये आखें, जिन्होंने नोवीं ज्योति के साक्षात दर्शन किये हैं।

राजकुमार (चाव में अधीर होकर)–कब, अम्माँ जी! कब?

माता–लाल जी! तब जब तुम इस जगत में अभी नहीं आये थे।

राजकुमार–क्या तुम दर्शन करने के लिए गई थीं?

माता–नहीं लाल जी! सतगुरू जी स्वयं आसाम देश का उद्धार करने के लिए आये थे। आदि गुरू, सतगुरू नानक देव जी भी हमारे देश में आये थे। सारे कामरूप और आसाम में फिरे थे। धुबड़ी में भी उनकी स्मृति में गुरुद्वारा है। जिस प्रकार हमारा उद्धार करने के लिए गुरू नानक देव जी आये थे, उसी तरह नोवें सतगुरू–श्री गुरू तेग़ बहादुर साहब जी भी आये थे।

राजकुमार–तुमने दर्शन किये थे क्या, तुमने स्वयं? हैं अम्माँ जी!

माता–जी! लाल जी! इन आँखों द्वारा, जिनके द्वारा अब लाल जी को देख रही हूँ।

लो लाल जी! अब पहली बात याद करो, राजा राम सिंह के आक्रमण वाली। जब वह सेनाएं लेकर कामरूप पर आ धमका, तब सतगुरू जी ने स्वयं बीच में पड़कर कामरूप के राजा और राम सिंह की सुलह करवा दी और सारे रक्तपात, लूटमार और कत्लेआम से सृष्टि की रक्षा कर दी।

राजकुमार–हमारे इलाके में तब गुरू जी का डेरा कहां पर था?

माता–जब श्री गुरू जी स्वयं ढाके में ज्योति जला रहे थे, तब वे ढाके से मथुरापुर गये और फिर रंगामाटी पर ब्रह्मपुत्र के किनारे पर जा डेरा डाला। पर सुलह के समय नदी पार होकर कामरूप के राजा और राम सिंह की सुलह करवाई थी। धुबड़ी में गुरू नानक जी द्वारा पवित्र किये गये ठिकाने पर गुरू जी ने एक ऊँचा टीला बनवाया था और धर्म प्रचार के लिये कई एक सिक्खों को वहाँ पर छोड़ गये थे।

इस महान काम को करके गुरू जी फिर इस पार आ गये और अपना धर्म प्रचार का कार्य करने लगे। तब मेरे पिता जी ने उनका यश सुना और सबको साथ लेकर दर्शन करने को गये।[१] हम सारे गुरू नानक देव जी के समय से ही गुरूघर के सिक्ख थे, पर बहुत कुछ भूल चुका था। कामरूप देश के सबसे बड़े जादूगर नूरशाह को जब गुरू नानक देव जी ने जीता और उसके कुफ्रगढ़ को तोड़कर उसे सिक्ख बनाया, तब सारे आसाम में, घर-घर में गुरू नानक का डंका बज गया था। अत: आसाम को 'गुरू नानक' के नाम का पता, टेक और सत्कार तो था ही, यह सुनकर कि नोवें सतगुरू नानक आये हैं, सारा देश दर्शनों को जाने लगा। पर सालाह इस ऊँचे घर को, जो गया अपनी मनोकामना पूर्ण करवाकर आया। हम भी गये, दर्शन किये, दर्शन क्या थे? एक महान प्यारी, मीठी, ठण्डी रसदायक लहर सारे शरीर में दर्शन करते ही फिर गई। यों लगता था जैसे कि अपने ही हैं, स्वाद स्वाद आता, कलेजा ठण्डा होता, शरीर हल्का फुलका होता जाता, आँखों में खुशी भरती जाती और एक उच्चता और चाव भरता। थोड़े समय के पश्चात जिह्वा अपने आप 'वाहिगुरू' 'वाहिगुरू' करने लगी। कभी तो ऐसे लगता कि मानो हमारे कान श्री 'वाहिगुरू' सुन रहे हैं, कभी लगता कि हमारी जिह्वा जप रही है।

१. राजा राम राय नोवें सतगुरू जी को धुबडी पर मिला लगता है।

राजकुमार–अम्माँ जी! यह वाहिगुरू क्या बात है?

माता–यह परम पिता श्री अकाल पुरुष जी का नाम है, गुरू घर का मंत्र है। अत: लाल जी! जब तुम्हारे पिता जी ने यह प्रत्यक्ष करामात देखी, तब चरणों पर गिर पड़े और उनसे सिक्ख धर्म का दान मांगा। श्री गुरू जी ने कृपा की, हम सबको नाम का दान प्रदान किया, वाहिगुरू जी की गोदी में डाला, हम सिक्ख बने। एक दिन तुम्हारे पिता जी को उदास देखकर श्री गुरू जी ने पूछा कि "राजा! उदास क्यों हो?" उन्होंने कहा, "सचे पातशाह! अब आयु बड़ी हो रही है और घर में बेटा नहीं है, राजगद्दी के होने के कारण कभी-कभी चिंता आ जाती है कि मैं आसाम का राजा हूँ, मेरे इस राज्य को कौन संभालेगा? पहले तो यह चिंता पीछा ही नहीं छोड़ती थी, पर जब आपके चरण कमलों को परसा है तब से चित सुखी है। कभी किसी समय ध्यान आ जाता है, तो दो चित्ती में पड़ जाता हूं, कभी चित करता है कि मुझे क्या? मुझे सारा सुख मिल गया है, मैं भजन करूँ, जगत का मालिक प्रजा की रक्षा स्वयं करता है, स्वयं करेगा। कभी चित करता है कि श्री जी आप सब कुछ देने वाले हैं, यह देन भी आपसे मांग लूँ।"

इस समय लाल जी! श्री गुरू जी अपने हाथ की अंगूठी के साथ खेल रहे थे। अंगुली से अंगूठी उतारकर हाथ में पकड़ रखी थी और हाथों में उसे इधर उधर कर रहे थे और बात आपके पिता जी की सुन रहे थे, आँखें कुछ मस्त सी बंद होतीं और खुलती थीं और अत्यन्त स्वाद भरा प्रभाव डाल रही थीं। अब आपके पिता जी ने सतगुरू जी के आगे ज़रा खुलकर विनती की कि "यदि आपकी कृपा हो और एक बालक हो जाये तो गुरू नानक के घर से इहलोक और परलोक दोनों संवर जायें।" यह कहकर राजा श्री गुरू जी के चरणों पर गिर पड़ा। आपने उसी रंग में अंगूठी के साथ, जिसके साथ कि आप खेल रहे थे, आपके पिता के माथे पर ठोकर दी और कहा, "राजा! गुरू नानक के दर से एक बालक आयेगा, उसके सिर पर लम्बे-लम्बे केश होंगे, जो सदैव कायम रहेंगे। उसके सीस पर हमारी इस अंगूठी का चिन्ह होगा, ताकि तुझे भरोसा रहे कि यह बालक ठीक ही सतगुरू नानक के घर से आया है।" अत: लाल जी! उनके बचन पूरे हुये। ठीक उस दिन से एक वर्ष बाद तुम्हारा जन्म हुआ और सारा परिवार यह देखकर चकित रह गया कि तुम्हारे सिर पर न केवल अंगूठी का ही चिन्ह है, पर उस अंगूठी पर पंजाबी अक्षरों में लिखे '१ओअंकार' का निशान भी है। अत: हे बेटा! तू सतगुरू जी के वाक्य के अनुसार उनकी कृपा से गुरू नानक के घर से आया है। ये चिन्ह कलियुग का उद्धार करने वाले ईश्वरीय अवतार जी की अंगूठी की निशानी है।

राजकुमार सुनते-सुनते अब आश्चर्य में लहरा रहा था कि उसके नैनों में से भी एक मोती ढरा, बड़ी लम्बी सांस भरी और कहने लगा, "अम्माँ जी! क्या किसी तरह मैं भी उन दाता जी के दर्शन कर सकता हूँ?"

अब अम्माँ ने बड़ी लम्बी सांस ली और रोने लगी। कण्ठ रुक गया और काफी समय तक विह्वलता में बोल तक न सकी। फिर दिल को इकट्ठा करके बोली, "लाल जी! उन्होंने परोपकार करते समय और नाम का दान देते समय, उस ज़ुल्म को देखकर, जो औरंगज़ेब सारे देश पर ढा रहा था, जी में बड़ा तरस खाया। औरंगज़ेब ने यह देखकर कि

गुरू तेग़ बहादुर का प्यार, सत्कार सारे देश में असीम है, दुख माना। दुख के फटने के कई समय आये, पर अन्त में जब जबर्दस्ती धर्म छीनने की अति हो गई, तब श्री गुरू जी ने उसे संदेश भेजा कि धर्म में प्रजा को स्वतन्त्र रहने दे। उधर काश्मीर आदि स्थानों पर, गवर्नरों ने लिखा कि जिन लोगों को गुरू नानक का सिक्ख धर्म प्राप्त है वह गुरू तेग़ बहादुर के अनुयायी हैं, वे धर्म का त्याग नहीं करते और दूसरों को भी रोकते हैं और बहुत बाधा डालते हैं। यदि कहीं गुरू तेग़ बहादुर को ही मुसलमान बना लिया जाये, तब सारा देश एक क्षण में मुसलमान हो जायेगा। अत: उसने गुरू जी को बुलवा भेजा। पर जब ज़ोर लगाया तब उन्हें अचल ही पाया। इसलिये उनके पवित्र शरीर से उनका ईश्वरीय रंग वाला सीस उसने अलग करवा दिया।

राजकुमार (नैन भरकर)—हैं, हैं, अम्माँ जी! हैं। दोनों ओर खामोशी छा गई, नैन बन्द हो गये और नैनों में से मोतियों की लड़ी ढरकने लगी।

कुछ समय के बाद अम्माँ बोली :—लाल जी।

जनम मरन दुहहू महि नाही जन पर उपकारी आए।
जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।

वे दाते जो जीवन दान प्रदान करने के लिए आते हैं। जन्म और मरण तो हम कर्मों में बँधे हुये पापियों के लिये हैं। अत: वह खेलकर गये, जैसे 'जीवन का खेल' खेलते थे; वैसे ही अपने सीस पर भी खेल गये।

राजकुमार—अम्माँ जी! मैं बड़ा अभागा हूँ।

अम्माँ—गुरू का सिक्ख, कभी अभागा नहीं होता। तू गुरू का सिक्ख है, फिर तू क्यों अभागा है?

राजकुमार—कैसे?

अम्माँ—श्री गुरू तेग़ बहादुर जी की गद्दी पर उनके परम प्यारे पुत्र इस समय ज्योति जला रहे हैं।

राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ क्या! उन दाता जी की गद्दी हरी है और उन जैसे ईश्वरीय ज्योति वाले, उनकी गद्दी पर उनके पुत्र विराजमान हैं?

अम्माँ बोली—लाल जी! वही ज्योति, वही रंग, वही काम, साक्षात आप गुरू तेग़ बहादुर जी हैं। लाल जी! इस बली घराने में जो गुरू गद्दी पर विराजमान होता है, किसी ईश्वरीय रहस्य द्वारा उनमें गुरू नानक की ज्योति का संचार हो जाता है। प्रत्येक गुरू यों लगता है कि वह गुरू नानक स्वयं साक्षातकार बैठा है, केवल कायां तबदील करके आया है।

राजकुमार—अम्माँ जी! धरती के कौन से ठिकाने पर वह ज्योति जल रही है?

अम्माँ—पंजाब देश, सतलुज नदी का किनारा, हिमालय की तराई शिवालक के टीले, आनन्दपुर नामक नगर में।

राजकुमार—है तो दूर, पर दूर नहीं है। यदि आपकी आज्ञा हो तो कोशिश करूँ, दर्शन करूँ, चरण कमलों को परसूँ, जिस प्रकार तुम्हें नाम प्राप्त हुआ है, मैं उसी प्रकार नाम प्राप्त करूँ; जिस प्रकार तुम्हारा उद्धार हुआ है, उसी तरह मेरा उद्धार भी हो। पिता जी नाम प्राप्त करके जगत से बहुत सुखी होकर गये हैं क्या?

अम्माँ–जी हाँ लाल जी! उनके अंत के समय कई योगी संन्यासी कहा करते थे कि ऐसा अन्त किसी महा तपस्वी योगीराज का भी नहीं होता। लाल जी! यह सब कुछ सतगुरू जी की अनुकंपा के सदके 'नाम' का प्रताप था।

राजकुमार–अम्माँ जी! यदि मैं पंजाब को चलूँ तो क्या तुम मेरे साथ चलोगी?

अम्माँ–इससे अधिक उत्तम अवसर मेरे लिये इस ढलती हुई अवस्था में और कौन-सा है कि मेरा सरवन पुत्र मुझे 'मेरे जगत के जीवन गुरू' के दर्शन कराये।

माँ के 'हाँ' करने से राजकुमार को इतनी खुशी हुई कि उस खुशी को छिपाने के लिए, 'अच्छा, अच्छा' कहकर माँ को सीस झुकाकर शीघ्रता से चला गया।

माँ ने उस समय उठकर गले में पल्ला डालकर अत्यन्त प्यार से जुड़कर अरदास की। दस गुरूओं के नाम लिये, ध्यान को अपने देखे हुए श्री गुरू तेग़ बहादुर जी में लगाया और विनय की कि 'हे दीनबन्धु! आपने कृपा की और पुत्र दिया और दया की जो नाम प्रदान किया, अब और अनुकम्पा की जो पुत्र में सत्संग और अपने प्रेम की किरण डाल दी; मैं सौभाग्यवान हो गई कि मेरी सन्तान मेरी कामना के अनुसार आपकी निरोल अनुकम्पा द्वारा आपके चरणों में श्रद्धालु हो उठी। हे दाता! यह अनुकम्पा है, विशुद्ध अनुकम्पा।"

इस अरदास में ही उसे अपने प्राणपति जी की याद आई। उनकी अंतिम भावना याद आई, जो कि उन्होंने रानी से कही थी कि, 'देखना गुरू नानक का द्वार मत छोड़ना, देखना पुत्र को गुरू नानक के द्वार का प्रेमी बनाना, ऐसा न हो कि कहीं मेरा पुत्र किसी कुसंग में जा बैठे। मैं तो जा रहा हूँ, पुत्र अभी सात वर्ष का बच्चा है, अब इसे सतगुरू जी के मार्ग पर चलाने की जिम्मेदारी तुम्हारी है।" ये सब कुछ याद करके रानी शुक्र में रो पड़ी और कहने लगी। 'हे मेरे सिर के स्वामी जी! आपका लाल गुरू के चरणों का प्रेमी हो गया है, मेरे सिर पर धरा हुआ आपका फर्ज गुरू ने आज स्वयं पूर्ण कर दिया है।'

: २ :

मनि आस उडीणी मेरे पिआरे दुइ नैन जुते। [आसा महला ४]

राजकुमार के चाव भरे चित को अपनी ही माँ के हाथों एक चुभन लग गई। चाव कुछ कम हो गया, वह चाव जो जवानी की हिलोर का बेपरवाही का होता है। उसका स्थान एक रुख ने ले लिया। मन ने एक रुख पकड़ लिया। एक नुकता पैदा हो गया, जिसकी ओर मन का आर्कषण हो गया। इस नुक्ते का रूप रंग तो कोई नहीं बना, पर यह नुक़ता और इसकी ओर रुख भीतर एक स्थान ले बैठा। इस रुख ने एक दिशा भी पकड़ी। उत्तर-पश्चिम की ओर यह रुख हुआ और उसी दिशा की ओर कहीं दूर एक नुक़ता बना जिसकी ओर मन उमड़े और एक उमाह, एक चाव भरे स्वाद से मन भर जाय। यह चाव तैयारी के सामानों की ओर लगाये कि कैसे चलूँ और कैसे पहुँचू? कैसे हाज़िर होवूँ? चाहे मैं अपने देश का आप ही गद्दीनशीन राजा हूँ, पर जहाँ पर पूर्ण वैराग और आत्मदान देने का ईश्वरीय तख्त बिछ रहा है वहाँ राजाओं की क्या परवाह है। जिन्होंने सीस दिये और

सी न की, जिन्होंने शहंशाह के आगे अपनी आन नहीं दी, पर सिर दे दिए। उन लौ वालों की दरगाह में किसी के राजा होने की क्या परवाह है और किसी के गरीब होने से क्या घृणा है? यह विचार कुछ ऐसा चुभा कि कई बार नैनों में तरावट आकर मोती गिर पड़े कि क्या कभी मेरे मन के प्यारे दाता जी मेरी ओर भी प्यार की दृष्टि से देखेंगे, कभी मुझ पर भी कृपा करेंगे, जैसी कि कभी मेरे पिता जी पर की थी। मैं क्या कार्य करूँ? मैं क्या तैयारी करूँ, जिससे द्वार पर पहुँचकर स्वीकार होवूँ। उस द्वार पर जहाँ मेरे जैसे राजा इसी प्रकार भिखारी बनकर खड़े होते हैं, जिस प्रकार मेरी प्रजा मेरे द्वार पर आकर कुछ मांगती है। उस द्वार पर जिस पर कृपा होती है उन पर जिन पर वे आप रीझते हैं। यह पता नहीं कि वे कैसे और किन गुणों के कारण रीझते हैं? इस प्रकार के सोच-विचार राजा को दिलगीर करते हैं। यह दिलगीरी नहीं, ये उस 'प्रेम कणिका' की चुभन की मर्मपूर्ण कसकें हैं, जिसे माँ अपने पुत्र के हृदय में जान बूझकर चूभोया है। हां, एक माँ और हुई है, मैना वन्ती जिसने अपने पुत्र गोपीचन्द के कलेजे में कुछ चुभोया था। वह 'वैराग्णी' थी जिसने राजा को राज्य से उदास करके, हाथ में भिक्षापात्र देकर, गली-गली में भटकाया और कान फड़वा कर और योगी बनाकर द्वार-द्वार पर फिराया था। रानी मैना वन्ती पुत्र के वियोग में सिसकियाँ भरती हुई भटकती रही और गोपीचन्द की रानियाँ महलों पर से कूद कर मर गईं। राज्य उजड़ गया और दुख की मारी प्रजा मर गई जिसका वाकुरा राजा फकीर हो गया। फिर भी उस मैना वन्ती का सपना सच्चा न निकला कि योग धारण करके पुत्र की सुन्दर काया सदैव स्थिर और कंचन की हो जायेगी और कभी भी नहीं मरेगी। न तो उसकी मिट्टी की मढैया राजा की देह अमर हुई और न राजा का राज्य ही रहा; केवल पल्ले रह गई 'द्वार-द्वार की भिक्षा' हठयोग की सख्त मेहनत, वैराग और तप।[१] हाँ यों ही देश दुर्बल हो गया था, सुन्दर कलावानों के संसार से नाराज होकर एक ओर चले जाने के कारण, पर यहां पर तो माँ किसी अन्य कला की कलावान है। पुत्र को शुष्क वैराग्य का नश्तर नहीं लगाया, पर उसके कलेजे में मीठा-मीठा भीगा-भीगा प्यार का तीर चुभो दिया है। उसके मन को किसी जीवित नुक़ते की ओर रुख कर दिया है, जिस पर कि उसका ध्यान स्थिर हो, जिस 'ध्यान के टिकाव' से अंदर की सोई हुई सभी कला शक्तियां और खूबियां जाग उठें। वह पुत्र, जिसके लिये आशंका है कि जवानी चढ़ने पर कहीं कुसंगत में न पड़ जाये और राज्य को न खो बैठे, वह यौवन की किनारे तोड़ने वाली बाढ़ों से बच जाये और दो प्रकार के तीरों का चलाने वाला हो जाये-'सो सुरतानु[२] जु दुइ सर तानै।'[३] वह है सुलतान (राजा) जो दो तीर चला सके-एक तीर प्रजा को दुखाने वालों की छातियों को बींधने वाला, दूसरा तीर मनों पर छाये हुए अन्धकार की छाती को चीरकर रूह के सौंदर्य को प्रकट करने वाला। हाँ, यह प्रेम का तीर माँ पुत्र को चुभा चुकी है, "...अणीआले अणीआ

१. गोपी चन्द के तप की गुफा आबू से तीन चार मील की दूरी पर अचलगढ़ की चोटी के नीचे की ओर है।

२. सुलतान, राजा।

३. जो दो तीर चलाए।

राम राजे जिसु लागी पीर पिरंम की सो जाणै जरीआ।" यह तीर ही पुत्र को सुपुत्र बनायेगा। वह स्वयं तरेगा और दूसरों का उद्धार भी करेगा। हाँ, यह पुत्र द्वार-द्वार पर नहीं भटकेगा पर पिता के तख्त पर बैठेगा और (१ राज, २ जोग) राज्य भी, और योग भी करेगा। हाँ, अब पुत्र का मन बांध दिया है, निशाने के नुक्ते पर और माँ आशीर्वाद दे रही है :–

"तूं गुरप्रसादि करि राज जोगु।"

यह दूसरी माँ है, जिसने पुत्र के कलेजे में वैराग का बाण मारा है, पर यह प्रजा पालन के फर्ज को खो देने वाला वैराग्य नहीं यह वैराग्य 'वैराग अनंदी' है। यह वैराग 'रसिक वैराग' है। इसको पाकर माँ का बिंधा पुत्र अब रोता है। हाँ माँ की बिंधा हुआ पुत्र अब रोता है, पर क्या रोता है:–

"मेरा मनु तनु बहुतु बैरागिआ हरि नैण रसि भिन्ने।"

मन वैरागी हो गया है, पर इस वैराग्य ने नैनों को 'रस भीने' कर दिया है। दिलगीरी, उदासी, पतन, रुष्ठता में नहीं ले गया है। हाँ माँ की ही 'प्रेम वाणी' ने इसके मन को मार दिया है, पर निशाने से इधर उधर नहीं डाला, प्रेम का बाण सुघड़ करता है :–

"जिन अंतरि हरि हरि प्रीति है ते जन सुघड़ सिआणे राम राजे।"

अत: राजा अब 'प्रेम प्रबुद्ध' हो गया है। प्रेम एक 'जीवित निशाने' का है, अंदर से उस निशाने की ओर रुख है और हर समय उसी की ही लगन है; लगन और प्यार और 'दर्शन की लालसा', ये ही वैराग्य है चुभन है, पर साथ ही दर्शन का चाव है, आशा है प्राप्ति की; लगन है वहाँ पर पहुँचने की और प्यारे को रीझाने का उमाह है। यों है वैराग्य और यों है प्रेम रस। प्रेम में 'रस+वैराग्य' ही होता है। रस है जो प्रीतम प्यारा लगता है, रस है, क्योंकि प्रीतम का स्वाद मीठा लगता है, पर 'आपा' और अपना सर्वस्व प्यारे पर न्योछावर करके जी प्रसन्न होता है। देकर रस चढ़ता है। यह जो देने का, न्योछावर करने का, न्योछावर होने की भावना है, यह वास्तविक वैराग्य है, वैराग्य का शिरोमणि यह वैराग्य है, अत: प्रेम क्या है? दाता का प्रेम है–रस+वैराग्य।

"पूरब करम अंकुर जब प्रगटे, भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी॥"

हाँ जी, माँ ने पुत्र का कलेजा बींध दिया है, पर देखिये, स्वर्णमति माता, मैनावन्ती माता से अधिक सयानी माता है। जगत से उदासी का, शुष्क वैराग्य का, बाण नहीं मारा, पर 'रस+वैराग्य' का बाण मारकर बींध दिया है, हाँ, आकर्षण में डाल दिया है, वह आकर्षण जो कि गुरू नानक का 'रसिक बैरागी' है।

राजा अब क्या कर रहा है? प्यारे के लिये सौगातों की खोज कर रहा है। आसाम हाथियों का देश है अत: उसने एक मकना हाथी खोज लिया। इसका रंग काला स्याह है, पर माथा सफेद, हाथी दाँत की भाँति है, इस सफेद माथे से निकलती हुई एक रेखा पीठ पर से होकर दुम तक चली गई है और इस सफेदी की छोटी-छोटी रेखाएं टाँगों की ओर चली गई हैं, मानो एक कैलाश पर्वत का नमूना है। प्रेम ने बरफ को पिघला दिया है और उससे माथे पर मानसरोवर बन गया है और चारों ओर नदियाँ बह चली हैं। हाथी अपनी किस्म का आप ही है, इसके साथ का दूसरा और कोई नहीं, मिलता। राजा के मन में उमाह

है कि इस पर मेरे मन के राजा सवारी करेंगे, मैं उन्हें देखूंगा और अपने धन्य भाग्य समझूँगा। राजा को इस दर्शन को देखने का चाव है। अपनी आयु उमंग भरी है जवानी है, राजा को आप इस हाथी पर सवार होकर और प्रजा को दिखाकर प्रसन्न करने का चाव नहीं चढ़ा और न ही इस बात का कोई ध्यान है कि प्रजा को दिखाकर वह अपनी बड़ाई पर प्रसन्न होवे। इस स्फुरण का न फुरना इस चाव का न चढ़ना, यह एक वैराग्य है जो अनजाने ही, बिना दर्द लिए राजा के भीतर निवास कर गया है। यह दुखी होकर रोने और उदासी के कारण मन पर गिरावट लाने वाले असर वाला वैराग्य नहीं है। यह वैराग्य नींव की भाँति नीचा बे-मालूम है और इस पर चाव के उस मन्दिर का निर्माण हो रहा है, जो इस आशा के रूप में प्रगट हो रहा है कि वह घड़ी कितनी सौभाग्यवान होगी, जब मैं इन नैनों द्वारा देख रहा हूँगा और इस पर मेरे साहब चढ़े होंगे और उस सौभाग्यपूर्ण दर्शन से मेरा रोम-रोम खिल रहा होगा। इसी चाव में हाथी का पालन पोषण हो रहा है। हाथी के श्रृंगार के लिए हौदा, अँभारी, झोल, मोतसिरियां बन रही हैं। उधर कारीगर हाथी को सिखाने में लगे हुए हैं। हाथी जलती हुई मशाल उठाकर प्रकाश करना सीख चुका है। यदि बाण चलायें तो सूँड से उठाकर ले आता है। यदि चँवर सूँड में पकड़ा दें तो आगे खड़े हुए व्यक्ति के सिर पर चँवर करता है।

फिर पता चला कि मेरे मन के आदर्श दाता जी शस्त्रों पर प्रसन्न होते हैं। तब राजा ने पंजकला नामक एक शस्त्र बनवाया। गात्रे में लगा हुआ एक छोटी कृपाण लगता था और पेंच दबाने से एक छोटा-सा तमंचा अथवा छोटी-सी बन्दूक कुछ इस तरह का सा था जिस तरह की आजकल की पिस्तौल होती है, फिर छोटा गुर्ज़ और फिर कटार बन जाता था। फिर राजा ने एक चन्दन की चौकी बनवाई। इसमें इस तरह की कला रखी कि एक स्थान पर से दबाने से चौपड़ बिछ जाती थी और चार पुतलियाँ चारों ओर खेलने के लिए आकर बैठ जाती थीं। इस तरह की कीमती कटोरा बनवाया। पांच बड़े फुर्तीले घोड़ों की खोज की। बन्दूकें तथा अन्य शस्त्र बनवाये। ढाके से मलमल और रेशम, जिगा, कल्ग़ी, मोतियों की मालाएं तथा दूसरे सामान तैयार करवाये। इन सभी तैयारियों में सबसे पहली बात जो राजा ने की वह यह थी कि मन्त्रियों के साथ सलाह करके राज्य प्रबन्ध उनके सुपुर्द कर दिया। मन्त्री पुराने थे और सारे गुरू तेग़ बहादुर जी से नाम मन्त्र ले चुके थे। अतः सबने धन्य भाग्य समझे कि राजा अपने पिता के रास्ते चल रहा है और पिता की इच्छा पूरी कर रहा है। सत्संगी हो जायेगा तो प्रजा के सौभाग्य से धर्म से राज्य करेगा।

राजा ने माता के साथ सलाह करके बड़े मन्त्री को भी साथ ले जाने की बात ठहराई। बाकी के मन्त्री, दीवान और औहदेदारों के सिर राज्य प्रबन्ध रखकर तैयारी के दिनों में देख लिया कि मेरे प्रेम में बींधे जाने पर भी मेरे कर्मचारियों के प्रबन्ध से मेरी प्रजा सुखी है और सुखी रहेगी। यह प्रबन्ध करके राजा ने काफी समय तुहफे और सौगातों की तैयारी में लगाया।

मन की विशेष दशा प्रेम वाली होती गई। राज्य और जवानी और ऊपर से स्वर्णमति स्यानी माता और प्रेम ने अति नीरोग और सुख वाला रास्ता पकड़े रखा। चाव और वैराग्य,

आकर्षण और शुक्र, सत्कार और उल्लास सूब हिलमिलकर चलते रहे। पर प्रेम 'प्रेम' है, कई बार बाढ़ की भांति उमड़ आता और उछल पड़ता। स्यानी मां ने पुत्र को अपना वह रहस्य भी बताया, जिसका उसे पहले पता नहीं था। घर में गुरू ग्रन्थ साहब का एक सुन्दर ग्रन्थ था, जिसका पाठ माता अपने एकान्त समय में किया करती थी। पुत्र को पाठ करने की बात बताई, उसे पंजाबी पढ़ाई और पाठ करने का ढंग बताया।

अब क्या था? गुरुवाणी के पाठ ने प्रेम को बहुत बढ़ाया, पर नेक और गुरुमुख मां की सच्ची संगत ने ऐसे मार्ग पर चलाया और ऐसी सुमति देकर रखा कि बच्चे पर 'परवान गृहसत उदास' का ही प्रभाव पड़ा।

एक दिन राजकुमार सारी तैयारी कर चुकने के पश्चात् माता के पास आया। उसके नैने भरे हुये थे, पर गाल लाल सूहे थे। आकर कहने लगा गुरुवाणी कहती है 'अहं का त्याग कर' और मैंने जो कुछ अपने सुन्दर सतगुरू जी के लिए तैयार करवाया है और बड़े चाव से करवाया है, यह हे अम्मां! रजोगुण है। पण्डित जी कहते थे, सभी चाव रजोगुण होते हैं और रजोगुण अहं है और अहं निम्न दशा है। गुरुवाणी भी कहती है कि तीनों गुणों से पार होकर चौथे पद में पहुँच। अतः अम्माँ! मेरे रजोगुण में तैयार की गई वस्तुओं को उस अन्तर्यामी ने स्वीकार न किया और मुझे परे ढकेल दिया तो मैं क्या करूँगा? तुम कहती हो कि उस द्वार पर "राजा और घास छीलने वाला एक समान है।" यह कहते-कहते राजा के नैन भरने लगे, पर उसने आँसूओं को रोकने के लिए होंठ काटे। उसका रंग लाल होता जाता, कण्ठ भर-भर आता और फिर दांतों में जिह्वा देकर दबाता, पर नैनों का भर-भरकर आना अम्माँ से छिपा न सका।

यह देखकर माँ बोली—पुत्र सुनो! तेरे पिता जी जितना समय दर्शन पाकर जिये, सत्संग में रहे, उन्होंने अपने सत्संग के लिए पांच मुखी सिक्ख सतगुरू जी से लेकर अपने पास रख लिये थे, जो हमें सिक्ख बनाकर, हमें सारी शिक्षा में जानकार बनाकर और हम में 'नाम रस' की परिपक्वता को देखकर और फिर यहाँ से गए थे। गुरू की अनुकम्पा और सत्संग द्वारा जो कुछ हमें मिला उसका सार यह है कि जो उमाह तुम्हारे भीतर है, यह पुण्यरूप है और तुम इसे अपने आपके सुखों के लिए नहीं कर रहे हो, पर तुम जिस प्रीतम के प्रेमी हो उसकी प्रसन्नता के लिए कर रहे हो। जो उमाह अपने लिए नहीं होता, वह वाहिगुरू अथवा उस वाहिगुरू के प्रीतम के लिए होता है, वह उमाह 'अनुकम्मा' है। पुत्र! वह उमाह प्रभु के द्वारा से आया है, यही प्रेम का उछाला है। प्रेम में अपनी पकड़ नहीं होती, प्रेम का बाहरी रूप पकड़ वाला भासता है, पर प्रेम तो वैराग्य होता है। अतः तू यह चिन्ता मत कर। पण्डित पढ़े हुए होते हैं, इन्होंने कोई भजन और बन्दगी तो नहीं की हुई होती, ये पण्डित नाम के रसिक नहीं होते, इनका मन तेज हुआ होता है, समझदार और चतुर होता है, ये समझा सकते हैं, पर इनके मनों का पर्दा फटकर इन्हें कभी अनुभव नहीं हुआ होता। ये समझते तो हैं पर प्रतीति नहीं करते। ये जानते हैं, पर इनके अन्दर घटती नहीं। ये गणना तो करते हैं पर भाव से खाली होते हैं। जिस प्रकार नमक की व्यथा को उस देश का पण्डित जहाँ पर नमक नहीं होता, पोथियों से पढ़कर बता तो सकता है, पर यदि उसने नमक चखा नहीं अथवा उसके घावों पर कभी एक मुट्ठी भर नमक नहीं पड़ा,

तो उसके नमक के ज्ञान की जो दशा है, वह शुष्क ज्ञान मात्र है। वही परमार्थ के पण्डितों की दशा है। जिसे पण्डित रजोगुण की दशा कहता है, उसमें सुरति वाहिगुरू के रास्ते से भूल में होती है। जो पुरुष वाहिगुरू जी की स्मृति में नहीं जगा, जिसे वाहिगुरू, गुरुमुख का आकर्षण नहीं लगा, जिसके अंदर प्यार का प्रवाह नहीं चला, बेटा जी! निश्चय ही उसके चाव रजोगुणी हैं। पण्डित ठीक है पर जहाँ पर प्रेम की बूँदें बरस पड़ीं, जिस मन में प्यारे की स्मृति आ गई, जहाँ पर 'दर्शन की लालसा' विह्वल करती है, जहाँ पर 'आपे को–प्यारे लगने वाले सामानों को' स्वयं भोगने को जी नहीं चाहता, पर प्यारे के अर्पण करके आपा सुखी होता है, वहाँ पर प्यारे की सेवा में जो चाव है, वह रजोगुणी नहीं, वह बन्धन नहीं, वह अंधेरा नहीं, वह तो अदेश का दूत आया है जो पथ-प्रदर्शन करके हमें प्यारे के देश में ले जाएगा। उसे तो 'चाव-बैरागीआ' कहा जाता है–

"मनि चाउ भइआ बैरागीआ।"

बेटा जी! चाव वैरागीआ यही है जिसका पता न होने के कारण कच्चों ने राजाओं से राज्य छुड़ा दिए, गृहस्थियों से गृहस्थ छुड़वाये, अच्छे और भले पुरुषों को जंगलों में भेजा और घरों के दिये बुझाए और देश के प्रकाश कम हो गए।—हाँ, लाल जी! एक और बात समझो!

तुम्हें याद होगा कि एक दिन हकीम जी ने कहा था कि शरीर यदि नीरोग हो तो इसका स्वभाव गर्मतर होता है और अपने कविराज (वैद्य जी) भी कहते थे कि ठीक है, वैसे ही मुझे गुरू जी के सिक्ख ने बताया था कि मनुष्य का मन यदि मनुष्यता से न तो गिरे और न ही ऊँचा उठे और अपने आप में हो, पर हो नीरोग, तो वह शुद्ध रजोगुण में होता है और यदि नीचे गिर जाये तो तमो, यदि ऊँचा उठे तो सतो और यदि लौलीन हो जाये तो गुणों से ऊपर और परे होता है। अत: रजोगुण अपने आप में कोई बुरी वस्तु नहीं है, तमो से अच्छी वस्तु है, सतो से नीची है, पर रजोगुणी स्वभाव वाले तमोगुणियों की अपेक्षा शीघ्र ही प्रभु के मार्ग पर साधे जाते हैं। ईश्वर के प्यारे जो जगत का उद्धार करते हैं, वे रजोगुणियों का आसानी से उद्धार करते हैं। तमोगुणियों पर बहुत मेहनत करनी पड़ती है। अत: गुरू से मांगो कि वह हमें तीन गुणों से अतीत करके प्रभु के स्वरूप में स्पर्श और निवास प्रदान कर, पर यदि हमको नीचे भी उतरना हो तो हमें कभी भी तमोगुण आकर न दबाये। रजोगुण हमारा सबसे निचला डंडा हो, इससे नीचे कभी न जायें। पर पुत्र! पण्डित को इस बात की सूझ नहीं, उसके साथ कभी कुछ नहीं घटा, इसलिए जो कुछ पढ़ा-लिखा है, वही बोलता है और जब गुनेगा तब कोई आप बीती भी बता सकेगा।

लाल जीउ! गुरुमुख, गुरू, परमेश्वर जी के प्यार में हम कामना रहित होकर जितना प्यार करेंगे, उतने ही हम गुणों से ऊँचे रहेंगे। तुम्हारे मन में सतगुरू जी का प्यार और सतगुरू ज़ी प्यारे लगने के कारण उनके दर्शनों की तथा उनको प्रसन्न करने की इच्छा है, अभी तक मेरे विचारानुसार तो जगत के सुख की कामना नहीं है। यह हमारे मन के रजोगुण से ऊँचे होने की एक और निशानी है। हमें चाहिए कि हम पण्डितों के लेखे से पड़ने की

भाँति परमार्थ के लेखे न करें, पर प्यारे के मार्ग पर, प्यार के उसूलों पर चलें। सच्चे दाता के प्यार में चित प्रसन्न होता है और प्यार बस प्यार की खातिर है और विशुद्ध प्यार है उससे यदि निश्चय ही जान लें कि हम नीरोग हैं और ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। यदि कुछ बनावट है, कामना है तो यह एक कमी है और कमी को उड़ा दो, इस पर मेहनत करो। पण्डितों के लेखों और गणना में न पड़ो, वे केवल जानने मात्र के ज्ञाता हैं, वह 'अनुभव' जैसे कि वह वास्तव में है, उसके ज्ञाता नहीं हैं। जानकारी रखने वालों की बातों को पढ़कर वे कथा करते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कई अपाहिज लोग शूरवीरों की कथाएँ सुनाते हैं, पर वे स्वये शूरमे नहीं होते और कभी रण में नहीं गये होते।

राजा–अम्माँ जी! मेरे भीतर मनोकामना है। मै कभी-कभी तो केवल प्यार में विह्वल होता हूँ, पर कभी-कभी मुझे मौत का डर लगता है, मौत के पश्चात् की बातें मुझे उदास करती हैं, तब संकल्प उठता है कि मैं जल्दी से जाकर गुरू जी से मिलूं, उन्हें प्रसन्न करूँ, वे तुष्ट हों और मुझे जन्म और मरण से मुक्त कराकर अमर कर दें। यह अपने आपकी कामना है, अतः पण्डित और तुम दोनों ही ठीक हो, मैं गर्ज़ भरी और कामना वाली प्रीत कर रहा हूँ। यह तो माँ जी! कभी पड़ गई है कुछ इसकी भी कोई दवाई.....।

यह कहकर फिर नैन भर आये, पर उसी तरह उसके होंट बन्द रहे और चेहरा लाल होकर रह गया।

अम्माँ (मुस्कराकर)–लाल! यही कामना वास्तव में 'अ+कामना' है। यह गरज़ वास्तविक 'बेगरज़' हैं अपनी आत्मा का इस मायाजाल से कल्याण की इच्छा करना वास्तविक निष्काम भावना है। भावना तो यह है, पर है निष्काम भावना।

हमारी आत्मा उस स्वामी की देन और अंश है, इसे 'साईं चरणों' में पहुँचाना, इसे फन्दे से मुक्त करना, यह रजोगुणी नहीं है, यह अन्धकार नहीं है, यह खुदगरज़ी नहीं है, यह भूल मत करना, यह तो अन्धकार की नींद का खुलना है। यह तो जागृति है जो माया में खोये हुए मन को किसी की अनुकम्पा द्वारा प्राप्त होती है।

राजा–फिर क्या अम्माँ जी! मेरा प्यार और चाव ठीक हैं?

अम्माँ–वह जो कुछ है, वह उसकी, प्रभु की कृपा है। प्रभु तुष्ट होता है तो सतगुरू जी के चरणों में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है।

इस तरह के वार्तालाप कई बार हुये, फिर कुछ दिनों के पश्चात राजा जी पंजाब की ओर चल दिये।

: ३ :

"पिर रतिअड़े मैडे लोइण मेरे पिआरे चात्रिक बूँद जिवै"॥

चलने की तैयारी इस प्रकार हुई :–

रतन राय ने अपने राज्य का कार्य मन्त्रियों को सम्भाल दिया। सफर का प्रबन्ध करवा लिया। दीवान तथा दूसरे मंत्री पीछे रहे। मुख्य मंत्री तथा कुछ मुसाहिब साथ लिए। माता

जी तथा कुछ दासियां साथ ले लीं। रास्ते में रक्षा के लिए कुछ सेना साथ ले ली। माता के लिये पालकी, अपने लिये घोड़े और 'सतगुरू जी के लिये तैयार करवाई गई भेटों, सौगातों' का ठीक प्रबन्ध करके आसाम से कूच कर दिया। चित में चाव है कि अदेशी दाता–अपने आप के प्रीतम–जी के दर्शनों को चला हूँ। आकर्षक होता है प्यार का, कलेजा मुठी में आ जाता है, अभिलाषा उठती है कि कब वह सौभाग्यवान समय आयेगा जब वह माथा सतगुरू जी के चरणा कमलों को परसेगा। हाय! मेरे इस उमड़ते हुये माथे में कितने नमस्कार उछल रहे हैं, कब ये चरणों का स्पर्श प्राप्त करेंगे? मेरे कानों में उल्लास के चातिक चोंच खोले बैठे हैं कि कब गुरू वाक्य स्वाति छींटे आ आकर लगेंगे? मेरे इन नैनों में दर्शन की तमन्नाएँ तड़प रही हैं, कि कब मोहिनी मूर्ति के दर्शन आकर इन्हें निहाल करेंगे।'

एक निशान है अब राजा के दिमाग में और उसी ओर मन का रुख है। उस रुख में प्रेम के उछाले आते हैं, आकर्षण होता है, चाव चढ़ता है, वैराग्य उठता है। कभी कभी विनती, कभी-कभी शुक्राने आकर शादियाने बजाते हैं। रात को सोते समय अम्मा कोई 'गुरू यश' सुनाती है, किसी गुरू के सिक्ख की वार्ता कानों में डालती है। राजा का 'हंस मन' उज्जवल कीर्ति के मोतियों का दाना चरता है। यदि रात को किसी दिन अम्मां 'गुरू यश' सुनाती, तो राजा को नींद नहीं आती। अमृत वेला में उठकर गुरू-गुरू करता है, फिर गुरुवाणी का पाठ करता है। सफर पर जाने से पहले आगे के सारे पते इकट्ठे कर लेता है कि अमुक गाँव, अमुक ठिकाने पर कोई गुरू का सिक्ख रहता है, कोई गुरू का स्थान अथवा यादगार है, जहाँ पर सतगुरू का संवारा हुआ कोई मिलेगा, कोई सुन्दर बात बतायेगा, तन-मन को शीतल करेगा। जहाँ-जहाँ पर कोई ऐसा ठिकाना आ जाता है, वहाँ पर सारे प्रेमी श्रद्धा धारण करके कड़ाह प्रसाद भेंट करते, कीर्तन सुनते, प्यार का सुख स्वाद लेते और फिर आगे को चलते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दिन सफर करके पटने पहुँचे। जिस स्थान पर सतगुरू जी का जन्म हुआ था और बाल्यकाल में रहे थे, वहाँ पर पहुँचे, दर्शन किये, धूल मस्तक पर लगाई, मस्तक सफल हुये। सारी संगति आकर जुड़ी। सारे सिक्ख राजा के और माता के प्रेम को देखकर प्रसन्न हुये। रतन राय ने सिक्खों से सतगुरू जी की बाल लीला के सारे कौतुक सुने चाव और प्यार धारण करके सतगुरू जी द्वारा तारे गये प्यारे सिक्खों के दर्शन किये, उनकी जबानी उनके साथ घटी घटनाओं के समाचार, उन पर हुई अनुकंपा के समाचार सुनकर चाव और बढ़ा। इतनां चाव चढ़ा कि दस दिन तक वहाँ पर डेरा रखा। जिस घाटों पर सतगुरू जी जल क्रीड़ा किया करते थे, वहाँ पर जा जाकर जल में डुबकियाँ लगाईं। सत्गुरू जी के तीरों से छेदी हुई गागरें देखीं। चलते समय गुरू जी के अवतार धारण करने वाले मन्दिर को पक्का करवाने के लिये कुछ धन भेंट किया और फिर कूच कर दिया। इस तरह सारे रास्ते में गुरू जी के धामों को परसते हुये यमुना पार आकर ठहरे, जहाँ से कि मानों पंजाब का आरम्भ हो जाता है।

इस तरह चलते-चलते शनैः शनैः सतलुज की ठण्डी धारा के दर्शन हुये, फिर आनन्दपुर निकट आ गया। ठण्डी छाया दिखाई पडीं, इस सुहावने स्थान पर शामियाने

लगाकर डेरे लगा लिये। उधर सतगुरू जी के पास खबर पहुँची कि गुरू घर का सिक्ख आसाम का राजा आया है। सतगुरू जी की आयु भी इस समय चढ़ती जवानी की थी, उनके रोम-रोम में धुर से ईश्वरीय रौ चलती थी, वह उस जवानी के लहर को आश्चर्यजनक रंगों की दैवी सुन्दरता चढ़ा रही थी जो जिज्ञासु मनों को मोह लेती थी और आपका 'दाता मन' जगत के निस्तार के उच्छाल में रहता था।

आपने राजा के आने का समाचार सुनकर स्वागत के लिये दास भेजे और आज्ञा दी कि "राजा गुरू घर का अतिथि है, उसके ठहरने के लिये स्थान अन्न, जल, लशकर आदि के लिये रसद, घोड़ों, आदि सवारी के लिये सामान सब कुछ पहुँचाया जाये और पहुनाई का सारा सामान पूरा किया जाये।" मामा कृपाल चन्द जी ने अपनी देख-रेख में सारा प्रबन्ध सिरे चढ़ाया और स्वयं जाकर राजा का सत्कार किया, और गुरू घर की रीति समझाई। राजा का सारा डेरा सतगुरू जी के कर्मचारियों की ओर से मिले प्यार से बहुत प्रसन्न हुआ। रात सुख से गुज़ारी। अमृत वेला में दर्शनों के लिये मन्त्री ने स्वयं हाज़िर होकर मामा जी के पास जाकर विनती की। उन्होंने श्री गुरू जी के पास विनती पहुँचाई। चोज़ी पातशाह ने आज्ञा दी कि तीसरे पहर दीवान में मिलेंगे।

यह समाचार सुनकर राजा का चित प्रसन्न हुआ, कलेजा खुशी से उछला कि अपने दाता जी के दर्शन होंगे। वह सिदक वाली घड़ी आ गई, जिसके लिये मुद्दतों से प्रतीक्षा की जा रही थी, वह समय निकट आ गया जिसके लिये चित को काफी समय से चाव लग रहा था। 'दर्शन होंगे और आज होंगे', यह संदेश 'जीवन-रस देन देने' का असर रखता है, इसे वही हृदय समझ सकते हैं, जिनके मन में कभी श्री प्रेम राज जी ने चरण डालकर सारे अंतम को झंझोड दिया हो। प्यार की आशा की पूर्ति करने वाले इस संदेश का पता बींधे हुये कलेजों को ही होता है।

अम्माँ आज देख रही है कि उसके पुत्र की तो एक ही मुराद पूरी हुई है पर उसकी दो। पुत्र तो गुरू जी के दर्शन करके कृत कृत्य होगा और माँ सतगुरू के चरणों पर न्योछावर होते देखकर दूसरा सुख यह लेगी कि सतगुरू जी की बख़शीश, यह बेटा, सतगुरू जी के चरणों का ही भौंरा बनकर गुन्जार कर रहा है और फला-फूला कृत-कृत्य हुआ है। हां, माँ का हृदय अपने सुख की अपेक्षा सन्तान के सुख को देखकर अधिक सुखी होता है। अम्मां देख रही है कि पुत्र इस समाचार को सुनकर कि आज तीसरे पहर दर्शनों की देन प्राप्त होगी' किसी चाव और प्रेम में भर आया है? एक और एक हाथी को स्नान कराया जा रहा है, दूसरी ओर घोड़े तैयार हो रहे हैं। राजा स्वयं बार-बार डेरे से आकर देखता कि तैयारी ठीक ढंग से हो रही है अथवा नहीं। तीसरे पहर तक हाथी सज गया, सोने की जरी वाला झोल, माथे पर ज़री और मोतियों की सरियों की झालर दाँतों पर सोने के बंद, पैरों में चाँदी की पाजेबें आदि सारे श्रृंगार में सजा खड़ा झूम रहा है। पास ही पाँचों घोड़े काठियों और गहनों के साथ सजे हुये इस तरह मद भरे खड़े हैं कि अपने ऊपर मक्खी तक भी नहीं बैठने देते। इस तरह चलने के लिये दूसरे सामान तैयार करके सजा लिये गये। ठीक इसी समय अम्माँ जी–रानी स्वर्णमति ने अपने रतन राय को अंदर बुला भेजा और कहा

"लाल जी! देखो तुम्हारी सौगातें कितनी सुन्दर और अमूल्य हैं? तुम प्रसन्न होवो कि वाहिगुरू ने तुम्हें इस योग्य बनाया कि तुम दाता जी के चरणों में ये कुछ भेंट कर सको, पर लाल जी! माया बड़ी विचित्र है और बड़े नाजुक समय पर आ पड़ती है। पण्डित ने जो कुछ कहा था, इस समय उस सावधानी की जरूरत है। देखना कहीं यह संकल्प न उठे कि 'मैं' सुन्दर सौगातें लेकर चला हूँ, यही माया का आना होगा। यह भाव धारण करके चलना कि मेरे जैसे राज्यपद में पैदा हुये अनाधिकारी पर कितनी अनुकंपा हुई है कि दर्शन की देन प्राप्त होने लगी है। अंतरात्मा में अरदास में रहो कि तुम्हारी तुच्छ भेंटें सतगुरू जी स्वीकार करें। जो कुछ तुम लेकर चले हो वह सब कुछ भेंट हैं। अपनी ओर से नहीं, सब कुछ गुरू का है, हमारा कुछ नहीं, हम भी गुरू के हैं। जैसे कि बाग़ का माली बाग़ में सैर करने के लिये आये हुए मालिक के आगे उसी के बाग़ में से दो फूल तोड़कर भेंट करता है। मालिक माली के इस आदर से प्रसन्न हो जाता है। वैसे ही दाता जी की देन में से तुच्छ भेंट आगे रखकर हमको प्रसन्न होना चाहिए और यह कामना करनी चाहिये कि दाता अपनी वस्तु हमारी श्रद्धा तथा नम्रता पर रीझेंगे। सो यह श्रद्धा, यह चाव, जो सतगुरू जी की अनुकंपा द्वारा तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे सम्भाल कर रखना, यही भाव भीतर रहे, और कोई भाव न आवै। दूसरा भाव निकट भी न आवै" अम्माँ इस प्रकार का उपदेश देती गई। राजा आगे से नहीं बोला, सिर झुकाये सुनता रहा और उसके नैनों में मोती उमड़ कर भर आते रहे। जब माँ कह चुकी तब राजा के रुके कण्ठ में "अ-र-दा-स" बस इतने ही थिरकते हुये अक्षर निकले। तब स्यानी माँ ने उठकर गले में पल्ला डालकर अरदास की :-

"हे अदेशी वाहिगुरू! तेरे बख्शे हुये बाहरी नैन तुझे देख नहीं सके, हम निम्न जीवों को उनको उलटाकर अंदर की ओर करके तेरे रूप रंग रेखा से रहित रूप को देखने का ढंग हमें नहीं आया। तैने द्वार पर गिरे हुओं को, मोटी दृष्टि वालों को, बाहरी दृष्टि वालों को पहले दर्शन प्रदान किए थे। हां अपने द्वारा अनुग्रहीत सतगुरू जी के रूप में हमें प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे, हमें हमारे मण्डल में तुम स्वयं आकर मिले थे, हम जैसे होकर हमें अगम्य रूप की झलक दिखाई थी। हे दाता! हमारा तेरे द्वारा उस समय उद्धार हुआ तब से हम फिर तेरे दर्शनों को चाहते रहे, यह लोभी मन दोबारा तेरे उस दीदार के लिए रीझता रहा, बार-बार रीझता रहा, तू धन्य है कि तैंने वही अवसर प्रदान किया, फिर वह समय बनाया कि इन तरसते हुये, तड़पते हुये, व्याकुल नैनों को फिर से आपके गुरू रूप के दर्शन हों, फिर से आपके रूप की प्यारी झलक सतगुरू जी के दर्शनों द्वारा हमारे नयनों में पड़े, जिससे हम सफल हों। मेहर कर कि दर्शन में समा जायें, तू होवें और हम न होवें। तू ही तू ही दीखें। हे दाता! इन नैनों से जो आप दीखने लगे हैं, यह तो असीम अनुकंपा है, पर तुम ही दीखना, तुम ही दीखना। हम निमाने हैं, भूल करने वाले हैं। अपने बख्शे हुये लाल को इन नेत्रों द्वारा आपके दर्शन हों, अमृत रूप होकर दर्शन हों, पर हे दाता! जिस अनुकंपा द्वारा आप अपने दर्शन प्रदान करने लगे हैं, उसी अनुकंपा द्वारा लाल के अंतस के नैन भी खोल दीजिये, जिससे आपके स्वरूप की पहचान फिर न भूले। यदि आप तुष्ठ हुये हैं तो तुष्ठ ही रहो, यदि आप देने लगे हैं तो देते ही रहना। 'द्वार की शरण' प्रदान किये रखना। आपने

अब अपनाया है, अपनाए ही रखना। हममें शक्ति नहीं है, शक्ति का हमें घमण्ड नहीं। आप हमें आश्रय दिये रखना। हे क्षमा करने वाले! द्वार पर पड़े हुओं को क्षमा करते रहना।"

अम्माँ इस प्रकार की अरदास करती रही, नैनों में से मोती ढलकते रहे, चेहरा संगमरमर की भांति ईश्वरीय सफेदी से दमकता रहा। नैन मुँदे हुऐ थे, पर किसी अत्यन्त लीनता का पता देते थे। 'पिर रतिअड़े मैंडे लोइण' छम-छम बरसते रहे।

अब चलने का समय आ गया। रतन राय ने माँ के पैरों पर सीस धरा, पर माँ ने थामकर गले से लगा लिया और कहा, 'पुत्र! अब यह मस्तक गुरू के चरणों से लगेगा, इसे अब और कहीं मत लगाओ।' रतन राय इस समय अत्यन्त ऊँचे प्यार में था, उसके भीतर शुक्र उछल रहा था कि जो कुछ मुझे अब प्राप्त होने वाला है, वह सारा इस माँ का ही प्रताप है इसी के चरणों से लग जाऊँ। माताएं पुत्रों को सत्संग से रोकती हैं; यह माँ धन्य है जिसने मुझे वाहिगुरू के मार्ग पर चलाया है और सुमति देकर सदैव भूल करने से बचाया है। सो इस तरह कुछ समय के बाद माता और पुत्र प्रेम भरे हृदय से चलने की तैयारी करने लगे। इतने में दास पता लेकर आया कि 'दीवान सज रहा है और महाराज जी शोभायमान हो रहे हैं।' राजा जी अब मन्त्री तथा दूसरे कर्मचारियों सहित चले और शनैः शनै उस द्वार पर पहुँच गये, जो द्वार कि योगी, जपी, तपी को भी नहीं मिलता, उस द्वार पर पहुँचकर दहलीज़ पर सीस झुकाया। राजा के होंठ घुटे जा रहे थे और नैन भर रहे थे। श्रद्धा तथा प्रेम थर फाड़कर निकलना चाहता था, पर आपे पर नियंत्रण रखने वाले स्वभाव के राजा जी गुद-गुद कण्ठ और प्रेम भरे नैनों से भीतर गये, ड्योढ़ी में से गुज़र कर फिर सीस झुकाया। दूर से ही गुरू मूर्ति के दर्शन हो गये, व सुन्दरता दिखाई दी जिसे पहले कभी नहीं देखा था, ऐसा झटका आया कि अब आपे पर नियत्रन्ण की रस्सियां टूट गईं। शीघ्रता से बढ़कर चरणों पर जा गिरा। पर क्या पता था कि इन चरणों का स्पर्श क्या वस्तु है? जैसे ही माथा चरणों को छुआ बिजली की झन्नाहट की भाँति राजा के सारे शरीर में झन्नाहटें फ़िर गईं। सारी शरीर कांप गया और एक जादू की सी थर्राहट की भाँति कांप गया और जादू की सी थर्राट की भाँति थर्राकर अंतस की कायापलट गई। अंतस में एक सुहाव छा गया, उज्जवलता और सफाई आ गई, एक ऊँचेपन की प्रतीति होकर भासी कि आपा नहा धोकर किसी स्वाद रंग में रांता हुआ और आ ओर हो गया। शरीर हल्का फूल तो मानो साथ है ही नहीं, स्वाद रूप आपा ही आप रह गया है। कोई ऐसा क्षण गुज़रा कि मानो पता ही नहीं रहा कि कहां पर हैं, हैं भी कि नहीं, कौन हैं और नहीं हैं। और फिर यदि 'हां' भासी है, तो स्वाद ही स्वाद है। जब होश आया तो पता चला कि मैं हल्का फुल हूँ, सुखी हूँ, ऐसे स्वाद में हूँ कि जैसा कि पहले कभी नहीं देखा, कभी चखा नहीं, कभी उसका आनन्द नहीं लिया। अंतस का इस प्रकार यह लिपटना था कि चरणों से उठने को जी नहीं चाहता, एक बार 'लिपटा हुआ मन' अब इस लिपटने को छोड़ने के लिए तैयार नहीं। पता नहीं कितना समय इस 'आपा रस लीनता' में व्यतीत हुआ कि अब राजा को यह भासा कि सतगुरू जी का शुभ हाथ सिर पर फिर रहा है, शीतलता प्रदान कर रहा है, और झन्नाहट छेड़ रहा है और यह आवाज़ चाँदी के तार की भाँति थर्राती हुई कानों में पड़ी :-

उठो राजा! इहलोक और परलोक सुधर गये!
उठो सिक्ख! कल्याण!!
उठो रतन राय! निहाल!!!

आज्ञा सुनकर राजा न छोड़े जाने वाले प्यारे चरणों को छोड़कर उठकर बैठ गया। कुछ समय तक इसी स्वाद में मग्न रहा। फिर नैन झुक गये। फिर देखा, फिर झुक गये। इस तरह धीरे-धीरे सावधान हुआ तो सतगुरू जी ने कुशलता पूछी। राजा ने सत्कार सहित उत्तर दिये। फिर मन्त्री ने बड़े सतगुरू गुरू तेग़ बहादुर जी के आसाम में जाने की कथा सुनाई। फिर रतन राय के पिता राजा रामराय[1] के गुरू के सिक्ख होने के नाते पुत्र के लिये विनय करने की कथा सुनाई। शनैः शनैः वे भेटें पेश कीं जो राजा बड़े चाव से बनवाकर साथ लाया था। ज़री, बादले, मलमल, रेशमी थान, गहने, वस्त्र, कटोरा, चौकी, पंचकला आदि सारे आगे पीछे बिछाकर रखे, हाथी और सजाये हुये घोड़े, जरी बादले से सजे हुये दीवान से बाहर खड़े थे। मन्त्री ने राजा द्वारा प्रेम भावना सहित तैयार करवाई गई भेटों के सारे समाचार सुनाये और श्री सतगुरू जी बड़े ध्यान से सुनते और बातें करते रहे। छः घड़ियां इस तरह व्यतीत हो गईं। घोड़ों और हाथी के गुण बताए गए; चौकी और पंचकला के हाल और गुण बताये गये। इनसे प्रसंग को बदलकर फिर माता स्वर्णमति जी के इस पुत्र के पालन-पोषण और गुरू के सिक्ख धर्म में प्रेमी बनाने की वार्ता सुनाई। किस प्रकार माता अपने पति के स्वर्गवास होने के पश्चात स्वयं राज्य के कार्य को सम्भालती रही, किस प्रकार भजन, बन्दगी, दान और उपकार में तगड़ी रही और किस प्रकार अपने पुत्र को प्रेमी बना लिया और नेक, दानी, प्रजा पालक और फिर परमेश्वर जी का प्यारा बनाया। यह वार्ता सुनकर सतगुरू जी ने माई के बारे में पूछा तो मन्त्री ने कहा कि श्री जी से आज्ञा न लेने के कारण वे प्रतीक्षा में ही डेरे पर दर्शनों की चाह कर रही है तक्षण सतगुरू जी ने आज्ञा दी, तो माई आ गई। जिन नेत्रों ने 'पिता गुरू' जी की मोहनी मूरत के दर्शन किये थे, अब वह ज्योति उनके आत्मज में देखकर माई उस स्वरूप में आई कि जिसमें से आत्मा से माया की काई उतरने से आत्मा सहज में आकर झूमती है। उस झूम में माई ने जगदाधार के चरण कमलों पर सीस रखा। माई को 'आत्म लीनता' का एक झोंका आया। आया थर्राकर 'अन आपे' से उछलकर ऊँचा उठकर लहराया और आनन्द में आनन्द की बेखबर पर खबरों के साथ-सरोवर में डुबकी लगाई, पर देखिये, 'उसी आत्मा में वाहिगुरू के स्पर्श के निवास के रस' ने जो कि नवें गुरू के जीवन दान प्रदान करने से लेकर आज तक नाम के सहारे पलकर सिरे चढ़ रहा था, हाँ उस रस ने—कल्ग़ीधर पर प्रभाव डाला। उनके आपे ने 'माई के मस्तक के चरणों के स्पर्श से उसमें आत्मरस के निवास का पता प्रतीत किया और बोले :—"माई निहाल तेरा इहलोक और परलोक से उद्धार हुआ। स्वर्णमति! सचमुच आत्मस्वर्ण है।" फिर वरदान दिया: "माई इस जगत में तेरा पुनर्जन्म नहीं होगा, सदैव सच्चे के देश में रहो।"

१. औरंगजेब का जरनैल कामरूप को फतह करने गया था, उसका नाम भी राजा राम सिंघ था और आसाम का राजा, जो रतन राय का पिता था और जिसने गुरू जी से सिक्ख धर्म धारण किया था, उसका नाम भी राजा राम अथवा राम राय था। इससे भूल हो गई लगती है और कवि संतोख सिंघ जी ने राजा राम सिंघ राजपूत को बिशन सिंघ लिखा है।

माता की यह आत्म आरूढ़ता सिक्ख धर्म के गुलजार का एक अदभुत कौतुक था कि किस प्रकार 'राज अखाड़ों' में भी गुरू ज्योति ने सच्चा जीवन, उच्च जीवन दान' प्रदान किया था। माता जी पर अनुकम्पा के बाद राजा ने विनती की, "सच्चे पातशाह! इस आपके द्वार के कीट पर सिक्ख धर्म के दान प्रदान करने की अनुकम्पा हो।" सतगुरू जी ने कहा, "निहाल"।

: ४ :

'गुर नानकु तुठा मेरे पिआरे मेले हरे'। [आसा म: ४]

दर्शन करके–हाँ उस प्रियतम को जिसे कभी राजा ने सुना था, और जिसके रास्ते पर राजा चला था: जी हाँ, जिसके सुन्दर रास्ते पर कभी चला था, उसे राजा ने आज देखा है; बलिहारी उस सुन्दर सूरत, मोहिनी मूर्ति पर, जिसे आज देखा था, हां, उसका दर्शन करके राजा अपने डेरे पर गया। अब राजा किस रंग में है? कम बोलता है, मुँह बन्द है, दांत जुडें हैं। नैनों में एक अनोखा प्रभाव है, मस्तक में चमक है। रोमों में एक शीतलता है, मानो ये रोम रूपी कूप कभी बन्द थे, आज सारे खुल गये हैं। मन यों प्रतीत करता है, जैसे कि अभी-अभी जगा है। एक जागृत की प्रतीति अन्दर आ गई है, इस प्रतीति में एक तरावट, ताज़गी, एक सावधानता है। हां जी, अभी जगा हूँ, यों लगता है। तन का बोझ घट गया लगता है। आज राजा ने क्या प्राप्त किया है? पता नहीं, पर इस तरह का प्रभाव छा गया है जैसा कि ऊपर कहा है। माँ पहचानती है कि वह जागृत और जीवित गुरू ज्योति पुत्र के अंदर अपना अध्यात्मिक स्पर्श लगा गई है और अब पुत्र जीवित व्यक्तियों में से है:–यों वह आप जीवित हुई माँ पुत्र की दशा को समझती है। घर में जाकर अब कोई बात नहीं छेड़ी, कोई गुरू यश नहीं सुनाया; बल्कि यह यत्न किया कि राजा भोजन करे और सो जाये, किसी से बातें न करे और किसी फिक्र, काम, व्यस्तता की बात को न सुने। भोजन करे और सोवे और फिर 'गुरू चरणों' को सवेरे प्राप्त हो, इस समय के दौरान दूरी वाली कोई तनिक सी भी बात उसके कानों अथवा आँखों में प्रवेश न करे। अत: राजा भोजन करके सो गया। सोये राजा के पास बैठकर माता के 'कीर्तन सोहिला' नामक बाणी का पाठ किया, फिर चतुर्थ गुरू जी के 'छके छन्त' पढ़े और फिर तीसरे गुरू की बाणी 'आनन्द साहब' का सारा पाठ सुनाया। फिर आप सो गई। अमृत वेला में उठी, अपने नित्यनेम के इलावा अपने पुत्र के पास बैठकर सुखमनी साहब का पाठ बड़े लय से किया। ऐसी मीठी-मीठी ध्वनि में बँधा और रसीला पाठ किया कि मानो उस कमरे में वाहिगुरू के देश का मधुर-मधुर कीर्तन हो रहा है। जब समाप्त कर चुकी तब लाल जी के नैन खुले, नैन खुलते ही पहली आवाज़ उस अम्माँ के लाडले के मुखड़े से आई :–

वाहिगुरू!

यह आवाज़ ऐसी मीठी और रसभरी थी कि माँ को स्वाद आ गया। अपना लगाया प्रेम का पौधा पुत्र के मन में पनपता देखकर माँ का हृदय शीतल हो गया। शुक्र है कि पुत्र का आत्मरस आया है। इस रस के आसरे अब यह झूठे रसों में नहीं फँसेगा। यह जगत

के लोगों की भाँति 'बेनिशाने'–'एक' निशाने पर सीध बाँधे बिना ही–'बेरुख ही'–उस निशाने पर मन की सीध बाँधे बिना ही–और भटकता हुआ शारीरिक खुशियों की खोज नहीं करेगा और न ही भूलेगा।

मनुष्य की साधारण दशा तो यही है कि आज एक बात से प्यार किया, उसे मन का लक्ष्य बताया, उसके पीछे सारा बल लगा दिया, कल को उसे प्राप्त किया, भोगा, बरता, फिर उससे ऊब गया और परसों उसको छोड़ दिया। अब फिर नई खोज के पीछे लग पड़ा, फिर वही यत्न, प्राप्ति, भोग और तृप्ति, फिर नई खोज, यों करते हुये उम्र बीत गई। अंत के समय भटकन, थकान, ऊबता और उदासी के बिना कुछ न बना। अम्माँ सोचती है कि इस कटी हुई पतंग की दशा की भाँति जिसमें कि जगत खो जाता है, उसमें मेरा लाल अब नहीं खोवेगा। इसे एक निशाना, एक ठिकाना, एक ध्रुव मिल गया है। यों सोचती और शुक्र करती हुई माँ ने पुत्र को उठाया। राजा जी स्नान करके तैयार हुये, वस्त्र-शस्त्र लगाये और मन्त्रियों को साथ लेकर गुरू के दरबार में पहुँचे। आगे गुरू जी ध्यानमग्न विराज रहे थे, यों लगता था कि ध्यान ने स्वयं मूर्ति धारण की है। राजा थोड़ी दूरी पर सीस झुकाकर बैठ गया। रागी सिंघ इस समय रामकली राग का मीठा-मीठा अलाप कर रहे थे, दीवान में खामोशी छा रही थी। अलाप भी अति मधुर और जमी हुई लय वाला था। तबले वाला भी इतने नरम हाथ लगाता था कि वह भी सितार जैसा कोई साज़ बजता हुआ लगता था, तबले की टुंकार नहीं लगती थी। रागी सिंघ रसिक थे, वे समझ रहे थे कि सतगुरू जी इस समय किस घर में हैं। वे भी अपने संगीत को अति कोमल, रसीला और मुधर बना रहे थे। वे इतना भी साहस नहीं करते थे कि कण्ठ से कुछ कहें अथवा साज़ों को तनिक सा तेज़ करें। साज़ों का कोमल अलाप मानों स्वरों का पानी भी चुपचाप लहरों पर नृत्य सा हो रहा था, जो कानों में पड़कर आपे को आपे के देश में लिये जा रहा था। जितना समय सतगुरू जी ने नैन नही खोले, रसिक रागी सिंघों ने अपने राग को भी मानो ध्यान मग्न रास्ते पर चलाया, जैसे कि ऊँचे पर्वतों के ऊपर, रुई के गोलों की भांति, बर्फ धीरे से पड़ती है, यों ही इनका अलाप कानों में धीरे-धीरे पड़ता था।

उधर सूरज ने किरण निकाली, इधर सतगुरू जी ने नैन खोले; उधर रागी सिंघों ने बिलावल राग का स्वर छेड़ दिया, इधर संगत के भी नैन खुल गये। सारे दीवान में एक रस, एक प्रभाव आश्चर्य बँधे हुये रंग का छा रहा था कि अब एक और आनन्द हिलोर वाला रस छा गया। शनैः शनै आसा की वार की समाप्ति हुई। अब दिन भी बढ़ आया था।

आज दीवान घास वाले एक खुले मैदान में लगा था। समाप्ति के पश्चात अरदास हुई और संगतों का मेल होकर कड़ाह प्रसाद बाँटा गया। श्री गुरू जी ने राजा की ओर देखा। अब राजा के तोहफे मंगवाये गये, एक-एक करके सारी वस्तुएं खोली गईं और प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में सारी बात समझाई गई। जैसे कि पंचकला शस्त्र जब खोला गया, राजा ने उसके पाँचों ही रूप बदल-बदलकर दिखाये। चौकी की कला दबाकर चौपड़ का खेल निकलता हुआ और पुतलियां खेल करने के लिये आकर बैठ गई दीख पड़ीं। दूसरी कला

दबाई तब बैठने के लिये उसका तख्त बन गया। इसी तरह उन घोड़ों के करतब दिखाये गये। फिर दूसरे शस्त्र और जंग के सामान दिखाये गए। अंत में हाथी के दर्शन हुये। उसने सूँड में मशाल पकड़कर प्रकाश पर दिखाने का करतब दिखाया, फिर चलाये हुए तीरों को चुन चुनकर ले आया। फिर हाथी ने सूँड में चँवर लेकर और उसे झुलाकर दिखाया। सतगुरू ने यह देखकर हाथी को प्यार दिया। इस समय हाथी ने सूँड से जूता उठाकर सतगुरू के आगे कर दिया। इस तरह के कौतुक देखकर सतगुरू जी ने प्रसन्न होकर हाथी का नाम 'प्रसादी हाथी' रखा। आज्ञा की कि इसे 'गजशाल में ले जाओ' और एक खास महावत को इसकी सेवा में लगाया जाये जो राजा जी के महावत से इसका ढंग सीख ले।

फिर कृपालु सतगुरू जी बैठ गये। दासों ने सारी वस्तुएं सम्भाल लीं और अब कुछ एकान्त हो गई। सतगुरू जी काफी समय तक निजानन्द में बैठे रहे। फिर नैन खोले और बोले, 'रतन राय! तुम पिता गुरू जी के आशीर्वाद से जगत में आये हो, तुम अपने वंश से सिक्ख हो, पिताजी ने तुम्हें गुरू नानक के द्वार से बुलाकर तुम्हारे पिता राजा को दिया था, अब तुम्हें फिर सिक्ख धर्म प्राप्त हुआ है।' यह कहकर उसे गुरू के सिक्ख-धर्म का संस्कार किया, अति प्यार से देखा और कहा :-

"वाहिगुरू"

यह कहना था कि राजा के रोमों में से झन्नाहट 'वाहिगुरू' की निकली। उसके मन में नाम का निवास हुआ। राजा नाम धारण करने वाला हो गया, राजा 'राम प्राप्त' हो गया।

नाम को राजा जानता था। जैसे तीर को ही हर कोई देखता है, हाथ में पकड़कर अथवा तरकस में रखे हुये को पर वह तीर तो किसी एकाध ने ही देखा है जो कमान पर चढ़ाकर किसी शक्तिशाली हाथों द्वारा चलाए जाने पर कलेजे में आकर लगे।

"कबीर साचा सतिगुरु मै मिलिआ सबदु जु बाहिआ एकु।।
लागत ही भुइ मिलि गइआ परिआ कलेजे छेकु"।। [सलोक कबीर]

राजा जिस रंग में पहली रात को गया था, जिस रंग में उसकी सोने की भांति शुद्ध बुद्धि वाली माता ने उसे पालने में झुलाया था, उस रंग के ऊपर नाम का अंतिम रंग चढ़ गया था। नाम न केवल हृदय में ही बैठ गया था अपितु राजा अंतस में अनुभव करता है कि उसकी जिह्वा और सारे रोम ही नाम के श्रोत हो गये हैं। आकाश की ओर, पृथ्वी की ओर, वृक्षों की ओर देखता है तो नाम की लहरों के कई आश्चर्यजनक कौतुक दीखते हैं, सारे मानो नाम स्मरण के लिए जिह्वा बन रहे हैं :-

इक दू जीभौ लख होहि, लख होवहि लख वीस।।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि, एकु नामु जगदीस।।
एतु राहि पति पवड़ीआ, चड़ीऐ होइ इकीस।। [जपुजी]

हों, जी, यह दशा हो गई। देखिए सतगुरू दाता ने अनुकंपा की। 'नानक लेखै इक गल' बता दी, कह दिया:-

'गुरा इक देहि बुझाई सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई। [जपुजी]
अब राजा को 'सो' नहीं बिसरेगा।

राजा के मन में अब टेक टिक गई और एक ऊँचाई आ गई। उनमना हो गया। जो जागृति आई थी उसमें एक रस भर गया। मन में स्वाद, जिह्वा पर स्वाद, रोम-रोम में स्वाद, यह था पूरे तीरंदाज़ के धनुष से निकला तीर :-

"वाहिगुरू निज मन्त्र द्रिढ़ाइयो, भोग मोख दा भले बताइओ" [सूरज प्रकाश]

अब राजा आनन्दपुर में ही ठहर गया। आया था आनन्दपुर में, पर आनन्द उसके भीतर चला गया। शरीर तथा मन में एक अन्य शक्ति फिर आई। चढ़ती कला का रंग जग गया, आनंदमय :-

"अनन्दु भइआ मेरी माए, सतिगुरू मै पाइआ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ॥" [अनंद साहब]

यह सतगुरू की प्राप्ति और नाम की प्राप्ति के लक्षण हैं।

कहा जाता है कि राजा दीपमाला पर आनन्दपुर पहुँचा था और यहां पर पाँच महीने रहा था। अमृत वेला में आसा की वार का कीर्तन सुनता, भोजन करके कुछ समय विश्राम करके कई बार स्वर्णमति के साथ महलों में जाकर सतगुरू जी के दर्शन करता। वृद्ध माता गुरू जी के पवित्र वाक्य सुनता। जब कभी सतगुरू जी शिकार को जाते तो राजा को साथ लेकर जाते। कई बार जंगलों में हाथी के करतबों के खेल तमाशे होते। श्री गुरू जी और राजा दोनों युवावस्था में थे और दोनों ओर से राजसाज, वीरता बहादुरी के सामान थे, अतः पांच महीने परस्पर बड़ा आनन्द बना रहा। कई बार सतलुज में स्नान के लिए इकट्ठे हो जाते और जल में तैरते और खेलों में लगे रहते। कभी-कभी दूर-दूर पैदल ही शिकार के पीछे जाते, कभी प्रसादी हाथी पर सवार होकर सैर करते। पर एक बड़ी भारी खूबी यह रही कि ज्यों-ज्यों सतगुरू जी ने प्यार किया, राजा के साथ खुले, राजा के साथ बराबरी का व्यवहार किया। मानों सिक्ख नहीं है, पर सखा है और बाल सखाई मित्र हैं, त्यों-त्यों राजा की श्रद्धा, प्रेम और सत्कार बढ़ा। मनुष्य के मन का कुदरती स्वभाव है कि ज्यों-ज्यों उसे बराबरी का प्यार मिलता है, ज्यों-ज्यों छूट मिलती है, त्यों-त्यों मन के सत्कार और लिहाज में कमी होती जाती है, अनुचित लाभ उठाता है और धीरे-धीरे इतना सिर चढ़ाता है कि सम्भालना कठिन हो जाता है, पर कोई एकाध ही ऐसा पात्र होता है कि उसे ज्यों-ज्यों सम्मान और सत्कार उसमें बढ़ता है, प्यार उनके भीतर पैदा करता है। कुपात्रों के भीतर प्यार निज के लाभ की भावना पैदा करता है, अंतस में तृष्णा की जलन के कारण। पर सुपात्र के मन में प्रेम होता है और वह कहता है, 'हैं' मुझ जैसे बुरे के साथ इतना स्नेह? वह यह सोचकर क़दर करता है और सत्कार उसमें बढ़ता है। यही कारण है कि दाता जी को जितना कोई प्यार करता है, वे उतना ही लाभ दान करते हैं। सुपात्र के बिना स्वयं उमड़ने वाला प्यार नहीं करते। सुपात्र प्यार को सहन करता है, कुपात्र अधिक प्यार के कारण बिगड़ जाता है।

स्वर्णमति को ज्यों-ज्यों सतगुरू जी का उसके पुत्र के साथ बढ़ता हुआ प्रेम दीखता और उनका व्यवहार मित्रों की भाँति खुला होता दिखाई पड़ता, वह त्यों-त्यों उदास हो

जाती, और प्रार्थना करती, 'हे दाता! हम नालायक हैं, तेरे प्यार को नहीं समझते। तू उतना प्यार हमें दे, जितना कि हम पचा सकें, उतना न दे कि हम फट जायें।' पर सतगुरू को सुपात्र की पहचान है। माता की सहन शक्ति और राजा की सहन शक्ति को पहचानता है, इसीलिए तुष्ठ हो रहा है। दोनों ने अनुकम्पा सहन की।

अब विदा होने का समय आया। कई बार तैयारी करके और दिन निश्चित करके समय सिर राजा के मन को ऐसा आकर्षण होता कि वह चलने की तिथि बदल देता।

अधिक प्रेम ते नृप नहिं चहै।
हुइकर तियार बहुर पुन रहै। [सूरज प्रकाश]

हाँ, कई बार तैयारी हुई और सतगुरू ने भी अपने प्रेम डोरों से और अपने मुख से रसीले वचनों को रोक लिया और कहा कि दस दिन और ठहरो, अभी क्या जाना है? अतः कभी सतगुरू जी की अनुकम्पा और कभी राजा के अपने प्रेम ने उसे जाने से रोक लिया, और अन्त में पाँच महीनों के बाद जाना निश्चित हुआ। योगी अथवा संन्यासी तो था नहीं कि राज्य के कार्य से टूटकर कटी हुई पतंग की भाँति हठों, तपों में भटकता रहता। मार्ग तो प्रेम का है, भक्ति का है, वाहिगुरू के साथ स्नेह का है। स्नेह लगे, स्नेह की गाँठ पक्की हो, स्नेह निरंतर हो, असावधानी, भूल और विस्मृति न हो। फिर क्या त्याग और क्या गृहस्थ, क्या घर और क्या बाहर, क्या राजगद्दी और क्या बन का मठ, क्या माया में लेटना और क्या टुकड़े माँगकर खाना, सभी शरीर की दशाएं हैं और भाग्य के कौतुक हैं। सारी गौण बातें हैं। मुख्य बात है प्रभु के साथ स्नेह, प्रभु के साथ संयोग! मनुष्य के रुख को सदैव, उस जगत के केन्द्र, जगदाधार और जगत के मूल से प्रत्येक समय संयोग से रहना। सदैव उसके स्पर्श में निवास करना, जिसके स्पर्श से छूटकर, जिससे सम्बन्ध टूट जाने से हम गल-सड़ जाते हैं। उसके चरणों की शरण में सदैव रहना है, उससे दूरी हो जाने पर आत्मिक मौत है।

'ते नर काल फास ते बाचें जो हरि सरण सिधाए'॥ [पा: १०]

हरि (वाहिगुरू) की अंतस में निरंतर लगन लगे बिना मन 'मन के मण्डल' में है और फिर दुख इसका भोग होते हैं; अथवा दुख इसे भोगते हैं, क्योंकि मन की अपनी शक्ति कम है। यदि अंतस में मूल के साथ लगन लगी रहे तो शक्ति बनी रहती है, अंतस में उस समर्थ की शक्ति, वह दुखों का नाश करने में समर्थ है, इसीलिए तो गुरू जी ने कहा है :-

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले॥
हरि नालि रहु तू मन मेरे दूख सभि विसारणा॥
अंगीकार ओह करे तेरा कारज सभि सवारणा॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किऊ मनहु विसारे॥

[अनंद साहब]

हां, भाई सब बातों में समर्थ को तू क्यों मन में से भुलाये? यदि तू न भुलाये और सदैव अंतस में से उनके साथ लगा रहे तो वह मेरे दुख दूर करेगा, क्योंकि एक तो उसका विरद है कि उसके साथ लगने वालों को अंगीकार करता है, वह शरणपालक है,

प्रतिपालक है। दूसरा उसका स्वभाव है दुखों को दूर करना, मानो वह आप सुखों की आग की लपट है, सो जिस प्रकार आग के निकट जाने से शीत, जाड़ा, कम्पन दूर करना आग का स्वभाव है। वैसे ही उसका स्वभाव है दुख के जाड़े को दूर करना। तीसरा वह सर्व समर्थ है, जो माँगें, वही देने की शक्ति, ताकत, बल रखता है, जो चाहे सब कुछ उसके बस में है। चौथा जैसे संगत करे वैसा ही फल मिलता है। प्रभु सर्व समर्थ है, तुम्हारा मन उस समर्थ में लगकर समर्थ वाला हो जायेगा।

इसलिए:–'ऐ मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले।।' अतः राजा को यह 'सदा रहु हरि नाले' की देन प्राप्त हो गई है। उसके मन की अब यह अवस्था–दशा, हालत अब सर्व समर्थ वाले के साथ लगे रहने वाली हो रही है। अब राज्य में रहे अथवा द्वार-द्वार पर मांगता फिरे, उसके लिये कोई भी बात विशेषता नहीं रखती। राज्य का त्याग करके भिखारी बनना जगत में आश्चर्य तो पैदा करेगा, पर उसे लाभ नहीं होगा, उसे महा पवित्र और प्रयोजनीय दशाः

'सदा रहु हरि नाले'

की मिल चुकी है। यही बात थी, यही थी जरुरत। यही थी मनुष्य जीवन का सुफल। जब सुफल प्राप्त हो गया है तो अब शरीर का निर्वाह शेष है, अब क्यों न निर्वाह करे, जहां पर प्रभु ने रखा है वह उस दशा में अब क्यों न रहे:–

१. नानक नाम

२. चढ़ती कला

३. तेरे भाणे सरबत्त का भला।

उसे नाम प्राप्त हो चुका है, 'सदा रहु हरि नाले' हो चुका है, अतः जीव का जो सम्बन्ध प्रभ के साथ है, वह मिल गया है। एक बात खत्म हुई। 'नानक नाम' अब नाम के कारण मन चढ़ती कला में रहता है। यह दशा आपे को संवारने की हो गई, यह समाप्त हुआ दूसरा काम चढ़ती कला। अब प्रभु चेते हैं, और चित्त चढ़ती कला में है, जब वह लोगों की ओर देखेगा तो सब का भला सोचेगा, यह हो गया तीसरा काम।

'प्रभु के साथ', 'आपे के साथ', 'जगत के साथ' मनुष्य के तीन ही सम्बन्ध हैं, चौथा कोई नहीं। १. प्रभु के साथ हो गया 'सदा रहु हरि नाले' का सम्बन्ध, २. आपा 'चढ़ती कला में' चला गया, ३. जगत का सदैव 'भला सोचता' है। जो सबके भले को सोचेगा, वह भला करेगा भी और करेगा उसकी आज्ञा में रहकर। मनुष्य जन्म सफल हो गया। अतः राजा अब क्यों कान फड़वाये? क्यों द्वार-द्वार पर भटके? तख्त पर बैठकर सबका भला करे। अपने लोभ रहित और जगे मन से राज्य करे जिससे प्रजा सुख से बसे। काम कठिन है, पर जब अंतस जाग उठा है तो तीनों काम करने हैं, दो तो नाम से ही हो रहे हैं तीसरा करे राजगद्दी पर बैठकर।

राजा को अब अपने देश जाना है, यही सतगुरू जी की शिक्षा है। यही सिक्ख मार्ग है कि:–

विचे गिृह सदा रहै उदासी जिऊ कमलु रहै विचि पाणी हे। [मारू सोलः मः ४]

अंत में चलने का दिन आया। माँ और पुत्र पहले महलों में गये। माता गुजरी जी के चरण परसे। उन्होंने अति सत्कार और भीतरी अनुकंपा से विदा किया। फिर श्री सतगुरू जी से मिले और चरणों को आँसुओं से धोकर आपा सफल किया। अब हाथी, घोड़े आदि भेंट करने के स्थान पर ये खारी पानी की बूँदें हैं, जो भीतर से आपा रूप धारण करके बारह आकर भेंट हो रहा है। हाँ, यही एक भेंट है, जो स्वयं भेंट हुए जा रही है। यों सतगुरू जी के गृह से विदा हुए।

फिर चलते समय दीवान में हाज़िर हुए। फिर वहीं भेंट, वही दशा, सतगुरू जी राजा को कण्ठ से लगाकर प्यार देकर मिले। मामा जी ने कई दोशाले, कई ज़री के सामान और शस्त्र प्रसाद लाकर आगे रखे, जिन्हें सतगुरू जी ने बख्शा और निहाल किया। नित्यनेम के लिये गुरुवाणी का एक गुटका प्रदान किया। अपने दस्तूर और तरीके के उलट गुरू जी राजा को विदा करते समय प्यार की बेसुधी में कुछ कदम साथ चले, पर राजा ने चरण पकड़कर विनय की:–

सभि विधि ते मुझे कियो निहाल।
हलत भले, लिहु पलत संभाल। [सूरज प्रकाश]

यह कहकर आगे से:–

कहयो न जाए गरो भरि गयो।
चरन कमल पर सिर धरि द्यो।
'दृग-जल' संग पखारन करे।
गुरु धीरज दीनसि मुद भरे।
'भगत' 'ज्ञान' 'गुरु सिक्खी' साथ।
बर्खशिश करी तबहि गुरु नाथ।
जननी सहज सचिव गन सभे।
करि करि नमो पिआने तबै।
नीठ नीठ कर बिछरयो राजा।
चढ़ि कर चलियो समेत समाजा। [सूरज प्रकाश]

राजा जी चले जा रहे हैं और पीनस में बैठी हुई रानी सहजे गा रही थी श्री गुरू रामदास जी के प्रेम भरे छन्द। गाती है और गद-गद होती है। पतला-पतला रसभीना स्वर बिछ़ता है, नैन भर-भर आते हैं, राज दुलारा पैदल ही साथ-साथ चल रहा है, छन्द सुनता है और गद-गद होता है:–

मेरे मन प्रदेसी वे पिआरे आउ घरे॥
हरि गुरू मिलावहु मेरे पिआरे घरि वसै हरे।
रंग रलीआ माणँहु मेरे पिआरे हरि किरपा करे॥
गुरू नानक तुठा मेरे पिआरे मेले हरे॥१॥
मैं प्रेम न चाखिआ मेरे पिआरे भाउ करे॥
मनि तृसना न बुझी मेरे पिआरे नित आस करे॥
निज जोबनु जावै मेरे पिआरे जमु सास हिरे॥

भाग मणी सोहागणि मेरे पिआरे चात्रिक बूँद जिवै॥
मनु सीतलु होआ मेरे पिआरे हरि बूँद पीवै।
तनि बिरहु जगावै मेरे पिआरे नीद न पवं किवै॥
हरि सजणु लधा मेरे पिआरे नानक गुरू लिवै॥३॥
चड़ि चेतु बसंतु मेरे पिआरे भली अरुते॥
फिर बाझड़िअहु मेरे पिआरे आगणि धूड़ लुते।
मनि आस उड़ीणी मरे पिआरे दुइ नैन जुते।
गुरु नानक देखि विगसी मेरे पिआरे जिऊ मात सुते॥४॥
हरि कीआ कथा कहाणीआ मेरे पिआरे सतिगुरू सुणाईआ॥
गुरु विटड़िअहु हऊ घोली मेरे पिआरे जिनि हरि मेलाईआ॥
सभि आसा हरि पूरीआ मेरे पिआरे मनि चिंदिअड़ा फलु पाइआ॥
हरि तुठड़ा मेरे पिआरे जनु नानक नामि समाइया॥
पिआरे हरि बिनु प्रेमु न खेलसा॥
किऊ पाई गुरू जितु लगि पियारा देखसा॥
हरि दातड़े मेलि गुरू मुखि गुरुमुखि मेलसा॥
गुरू नानक पाइआ मेरे पिआरे धुरि मसतकि लेखुसा॥६॥१॥१४॥

[आसा म: ४ छन्त घर ५]

सूचना:—राजा भीमचन्द द्वारा खडे किये हुये झगड़े, गुरू जी का उन लोगों को देश के कल्याण के लिये प्रेरणा करना, उनके यत्न प्रयत्न, इस प्रकार रतन राय के जाने के बाद आनन्दपुर में कई घटनायें घटीं, जिनके कारण आनन्दपुर का निवास कुछ चर्चा का विषय बन चुका था। उधर नाहन का राजा गढ़वालिये फतहशाह द्वारा कुछ इलाका खोये जाने के कारण दुखी हो रहा था। यमुना के पार दून में राम राय जी का काफी प्रभाव था और वह मसंदों के घेरे में अपनी दशा को दुखी बना रहे थे। कई एक साधु, तपस्वी श्री गुरू जी कृपा द्वारा अपने तपों की पूर्णता और मुक्ति की प्राप्ति के लिए तड़प रहे थे। ये सब बातें मानो गुरू जी को प्रेरणा करके यमुना के किनारे पर ले आने का कारण बनीं। इस सफर में कई कौतुक हुए, पर इन दिनों में सफर आरंभ करने से पहले प्रेम को सफल बनाने की एक वार्ता घटी जो आगामी लेख में है। कीरतपुर में बुड्ढन शाह नामक एक फकीर था, गुरू नानक देव जी ने इसका उद्धार किया था, फिर छटे गुरू जी मिले थे और अब दशम गुरू जी मिले हैं।



८ मेरा दूध (बुड्ढ़णशाह)

कल्गियों वाला श्री गुरू नानक

समय चलता ही रहता है, सो चलता ही गया। लगभग आधी शताब्दी और व्यतीत हो गई। खड़गों वाले गुरू नानक जी अब दसवें जामे में आ गये। कीरतपुर के पास से गुज़र गये, आगे चले गए, दून की पहाड़ियों में जाकर आनन्द खिलाया, जहाँ पर नवे सतगुरू जी का बसाया हुआ आनन्दपुर बस रहा था।

दसों ही जामों में दिल तो निरंतर ईश्वरीय ही था, और रूहानी रंग का विस्मय, तथा इलाही तेज, सदा अंदर प्रफुल्लित था, गले में माला ओर कमर में खड़ग थी और अब सीस पर कल्ग़ी आ लगी। अर्थात शान्ति, उत्साह और चढ़ती कला का इकट्ठा प्रकाश हो गया। शान्त रूप पंथ में धर्म की रक्षा के हेतु वीररस आया था और वीररस में रहते हुए न डरने के लिए सुरति ने चढ़ती कला का रंग पकड़ा था।

जब आनन्दपुर से नाहन जाने की तैयारी हो रही थी, तब एक दिन सवेरे ही दसवें सतगुरू नानक जी सतलुज के किनारे पर अमृत वेला से ही बैठे थे। एकान्त था और आप अकेले थे; नैन इलाही जलवे वाले नैन बन्द हो गये। डेढ़ पौने दो सौ वर्ष का पिछला समय भीतरी नैनों के आगे बिछ गया। विरद पालने की उमंग आई। जंगल में तब से बुड्डे फक़ीर को हठी, तपी, निराश और दुखी दशा में देखा, उसे पहचाना। 'हाँ' इसे इसी उदास दशा में प्यार किया था। गिनतियों में से निकालकर, लेखों में से उठाकर, सोचों से ऊँचा करके वाहिगुरू की सदा हुजूरी के चबूतरे पर चढ़ाया था, मस्त किया था, बेखुदी का झूला झुलाया था और कहा था–"दूध छटे जामे में आकर पियेंगे" और छटे जामे में अपने हाथों से लगाये हुये पौधे को पनपते हुये देखा था, दूध पिया था और कहा था "फिर पियेंगे भाई फिर पियेंगे" वह प्यारा अब पक्का फल है, आयु के अनुसार वृक्ष अब जच रहा है पर फल तरोताजा रस से भरा हुआ पातशाह के महलों के लिये तैयार है।

जैसे पहले जामे में लगाया था और छटे जामे में पाला था, वैसे ही अब बिना कांप खाए पके फल को अपने मालिक वाहिगुरू की भेंट करें, विरद की लाज रखें।

कभी न भूलने वाले, यादों के साईं सतगुरू जी अपने प्यारे को चितारकर वहां से ही तैयारी करके फकीर साईं की ओर चल दिये।

बुड्णढ़शाह ने आज लौलीनता से जब आंख खोली तब ऊपर की ओर देखा, प्यार के हिलार में आकर कहा–"विस्मय ही विस्मय है। अपने आप में ही कसा सुख है,

---

१. कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आँब।।
जाइ पहुँचहि खसम कउ जउ बीचि न खाही कांब।।१३४।। [सलोक कबीर]

आश्चर्यजनक मौज है, वाह वाह! वाह वाह! केवल वाह वाह? हे वाह वाह? तू वाह वाह? तुझे वाह वाह? यह 'वाह वाह' 'गुरू' है, जिसने लेखों में से निकालकर विस्मय रस चढ़ाया, जिसने सोचों में से निकलकर रस में डाला, जिसने चिंता में से उठाकर आनन्द में पहुँचाया, जिसने अकल में से उछाल कर सिद्धि में डाला, यह वाहिगुरू है। हे वाह वाह गुरू! हे वाहिगुरू तू धन्य है, तेरे दिये हुये रसों को पाकर 'वाह वाह' और 'हे गुरू दाता तू' 'वाह वाह तू वाहिगुरू' यही तेरा नाम है। जब मन को उस रस का भाग मिलता है, जो इसके देश से ऊँचा है, तो जैसे रस का नाम 'विस्मय' रखता है, वैसे ही तेरा नाम 'वाहिगुरू' रखता है। हे वाह वाह के रंग 'विस्मय' में ले जाने वाला दाता! तेरा दिया हुआ प्राप्त करके तुझे मिलने को जी चाहता है। तू आ जा और किसी के सदके आ जा। तेरे बख्शे हुये स्वतंत्र रस की अपेक्षा तू स्वयं आ जा और दर्शन का रस दे जा। मुक्ति¹ मैं मुक्त न होवूँ, हाय! मैं रस से भी उचाट होकर तुझे लोचता हूं, हे रस दाता! तू स्वयं आ और मेरी आखों में समा जा। मैं होवूँ, यह शरीर होवे, तेरे शरीर वाले चरण हों, मैं उन्हें धोऊँ नैनों के नीर से, आखों में लगाऊँ, कलेजे से लगाऊँ, हे ऊँचे दाता! आ और इन मुंदे जा रहे नेत्रों में आ जा। आ जा प्रीतम! प्राण जी! आ जा! मैंने तेरे दिये हुये सब सुख पाये हैं, पर हे सुखदाता! तू स्वयं आ और आकर प्रत्यक्ष दर्शन का सुख दिया और चरणों से लगा। यदि तूने मेरी सुरति को अपनी सुरति में समाया है, तो शरीर को भी चरणों में समा ले, शरीर को भी दर्शन की भिक्षा दे। मेरा दिल फिर से अनजान बालक बन गया है। तुझे मुक्ति की ज़रूरत नहीं, आज तो इस लालसा भरे मन में रस की जरूरत भी खत्म कर दी है, आ और दर्शन दिखा। आ और अपने कोमल चरण, दीखते चरण, हाथों से मुझे बुड्ढे के हाथों से पकड़े जाने वाले चरण, मेरे नैनों पर रख, मेरे सीने से लगा। यह तड़पता हुआ हृदय सुन्दर चरणों की ठंडक को मांगता है, यह तड़पता हुआ माथा चरणों के स्पर्श के लिए तरस रहा है। मुझ शरीरधारी को शरीर के दर्शन दे। हे अरूप और अगम्य। मैं अरूप और अगम्य नहीं, मैं मनुष्य हूं और मनुष्यों वाले वलबले वाला हूं, मनुष्यों वाले प्यार से कहता हूं मेरे लिये मनुष्य होकर आ। मौला, मेरे मौला! आदमी बनकर आ। सेली वाले! खड़गों वाले, कल्ग़ी वाला रूप दिखा, आकर चरणों से लगा और अपना बना। बुड्ढे में मति नहीं होती। मुझ सत्तर बहत्तर के बूढ़े ने अदेशों के सुखों और मुक्ति के रसों का त्याग किया। मुझे अपने चरणों का सुख प्रदान कर, दर्शनों की भिक्षा दे। आ दाता! देहधारी होकर आ। समय पलट चुके हैं, कई रंग आये और कई रंग गए। नदी में सैकड़ों बार नए पानी आये, चढ़े और बह गए, कई बहारें खिलीं और झड़ गईं, मैं पुराने बड़ की भाँति बाहें फैला-फैलाकर मिलने की लालसा में खड़ा हूँ। आ हे अरूप से रूपवान होने वाले! रूप की झलक दे। —दाता! मैं वहां पर रहूं जहां पर तेरा निवास हो। तू देह धारण करे और मैं

१. कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई।।१।। [गउड़ी कबीर]
पुनः तिथै घड़ीअै सुरा सिधा की सुधि।। [जपुजी]

तेरी सेवा करूं, मुझे अपने साथ ही रखें। मैं देहधारी आखें मूँदकर अदेशी सुखों को क्या करूं? मुझे आकर मिल और चरणों से लगा ले।"

इस तरह भक्ति और प्यार के अकथनीय और अत्यन्त ऊँचे भाव में बुड्ढणशाह दाता जी के चरणों के लिये तड़प रहा था कि अचानक प्रकाश हो गया। फकीर को तड़के के अंधेरे में भारी चमक दिखाई पड़ी, ऐसा तेज जो कि असह था, आंखों से देख-देखकर और पवन की सूंघ-सूँघ कर कहता है:-हां, पवन प्यारे नानक निरंकारी की सुगन्धि वाली हो गयी, उसके पवित्र शरीर की लपट ला रही है। आकाश में उसके नूरी शरीर का प्रकाश है। नदी की ओर से मलयगिरि की शीतल सुगन्धि आती है।.....ऊपर से आ रहे हैं। स्वागतम्! आओ और चरणों से लगाओ। इतने में मरदाना की झलक पड़ी; सामने आकर बैठा, रबाब छिड़ा। वन ईश्वरीय राग से भर गया:-

तुधु बाझु इकु तिलु रहि न साका कहणि सुनणि न धीजए।
नानका प्रिउ-प्रिउ पुकारे रसन रसि मनु भीजए॥२॥
सखीहो सहेलड़ीहो मेरा पिर वणजारा राम।
हरनामो वणंजड़िआ रसि मोलि अपारा राम॥
मोलि अमोलो सच धरि ढोलो प्रभ भावै ता मुंध भली॥
इकि संगि हरिकै करहि रलीआ हउ पुकारी दरि खली॥
करण कारण समरथ श्रीधर आपि कारजु सारए।
नानक नदरी धन सोहागणि सबदु अभसाधारए॥३॥ [आसा छंत मः १]

इस शब्द ने और ही रंग बांधा। वृद्ध प्रेमी का कलेजा फट गया कि कब दर्शन होंगे, सतलुज नदी की भाँति हज़ारों धारा बनकर बह चला कि कब प्रीतम के दर्शन हों। इतने में श्री गुरू नानक देव जी सचमुच दीखने लगे, देखिए जिन शरीर की टांगें, 'फरीदा इनी निकी जंधीऐ थल डूगर भविओम॥ अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि॥' की भांति निर्बल थे, कैसे उठकर सिर चरण पर जा झुका है और कैसे शरीर प्यारे के अंगों में समा गया है। हाँ जी, प्रीतम के चरण कमलों के भँवरे प्रीतम से कैसे लिपट रहे हैं? किस प्रकार वृद्ध का सीस अनजान बच्चे के सीस की भांति प्यारे के शरीर से लगा हुआ उस द्वारा प्यार किया जा रहा है, कैसे प्यारे के मेल में मिल रहा है। उच्च अध्यात्मिक सुखों को तो ज्ञानी लोगों ने बताया है, पर इस 'गुरू सिख गुरू प्रीत' को कौन दरसाये? रसिक को रस लेने का भी चेता नहीं। आकर्षण और धावा, हां आकर्षण, प्यार और खिचे हुये प्यार ने प्रीतम से भेंट करवाई। प्रीतम के चरणों से लगे प्रीतम के हो गये, समा गये अथवा रह गये, कुछ पता नहीं, यह प्रीत-तार है, यह प्रीत है। यह मुक्तों अमुक्त है, मुक्ति से परे की प्रीत है। न जाने यह क्या है, अकथनीय है। सिख ही गुरू में नहीं समा रहा, बल्कि गुरू को भी प्यार ने बाँधकर अपना कर लिया है, और सिख के प्यार में मग्न कर लिया है। सारे संसार

१. जह अबिगतु भगतु तह आपि॥
जह पसरै पासारु संत परतापि॥ [सुखमनी]

के ज्ञान वाले को अब कुछ पता नहीं, सिख की गुरू प्यार में निमग्नता है। निमग्नता में काल की चाल गुम है। हां बाहर जो काल की चाल जारी है, दीखती है कि कितना ही समय व्यतीत हो गया है, अब चोज़ी प्यारे ने कान में आवाज़ दीः–

"मेरा दूध"

हां जी! अब सिख को होश फिरा, सिख ने नैन खोले। सेली वाले की गोद में सिर रखा था, जब उठाया तब कलग़ी वाले की गोद में देखा[१]। वह अनुपम चेहरा जो सेलीयों से मोहित करता था। अब कल्ग़ियों से मन भरता है। धन्य तेरे चोज़ हैं, तेरे रंग अपार हैं, सारे रूप तेरे हैं, सभी आयु तेरी है। हे सुन्दर! तू धन्य हैं! नये रूप, नये रंग ने एक नई मस्ती में सिक्ख को मग्न किया, आंखों के छप्पर भर-भरकर, झुक-झुककर और फिर मूँदे गये। वह सिर फिर गोदी में जा पड़ा है और प्यार के मेले में फिर, हाँ दोनों बाहों से घुटकर, 'मिलु मेरे बीठुला लै बाहड़ी वलाइ"। की अंतस की कूक से गुरू-प्रीत में सिख लीन हो गया। प्रीतम ने जो कहा था वह सिख से सुना ही नहीं गया, जिसके साथ अटूट प्यार है वह दूध माँग रहा है, पर सिख को मिलाप में, गुरू संगम में कुछ याद नहीं, चुंबक उड़-उड़कर प्रीतम को चिमट रहा है। अब याद शक्ति भी नहीं रही। चित्त में चित्त समा रहा है। कैसा प्यार वाला, लीन कर लेने वाला 'गुरू सिख-संधि' का दर्शन है। गुरू 'सिख रस' लीन है। सिख 'गुरू रस' लीन है।......कुछ समय के पश्चात सदा जागृत ज्योति सतगुरू जी ने फिर कहा:–

"मैं भूखा हूँ"

हे त्रिलोकी के पालक! हे गोपाल! हे धरानाथ! हे 'विचि उपाए साइरा तिना भि सार करेइ' वाले दाता! हे तू दाता! हे विश्वंभर! ये तेरे क्या चोज़ हैं, तू भूखा है? हे तू सदैव रजे हुये! सदैव अधाए हुये, "प्रीत के आखाड़े" के रसिक खिलाड़ी! हे 'सिरि सिरि रजुक

---

१. सतिगुरू नानक देऊ है परमेसर सोई।।
गुर अंगद गुर अंग ते जोती जोत समोई।।
अमरापद गुरु अंगदहु होहि जाण जणोई।।
गुरु अमरहु गुरु रामदास अंमरत रस भोई।।
रामदासहु अरजन गुरू गुर शबद सथोई।।
हरि गोविंद गुरु अरजनहुं गुरु गोविंद होई।।
गुरमुख सुख फल मिरम रस सतिसंग अलोई।।
गुरु गोविंदहु बाहिरा दूजा नहीं कोई।।२०।।	[भाई गुरुदास ३८]
श्री गुरू नानक अंगद करि माना।।
अंगद अमरदास पहिचाना।
अमरदास रामदास कहायो।।
साधन लखा मूड़ नहिं पायो।।९।।
भिन्न भिन्न सभहू करि जाना।।
एक रूप किनहूं पहचाना।।
जिंनि जाना तिनही सिधि पाई।।
बिन समझे सिधि हाथ न आई।।१०।।	[बचित्र नाटक]

संबाहे ठाकुर"! क्या तू भूखा है? हाँ सतगुरू कहता है 'मैं भूखा हूँ' फिर कहता है "मेरा दूध"!

'मेरा दूध' सुनकर सिख काँप उठा, क्या देखता है, कि सिर रखा तो कल्गी वाले की गोद में था, पर जब उठाया तब वह सेलियाँ वाले की गोद थी। प्रीतम तो वही है, सिक्ख कब भूल सकता है। अब तो सिख ने ठीक पहचाना है, खूब पहचाना है। मन भँवरा है, नीले, लाल, गुलाबी रंगों में नहीं भूलता, प्रत्येक रंग में कमल को पहचानता है। इसी मस्ती में फिर आवाज आई:–

"मेरा दूध"?

फकीर उठा, पैर नहीं चलते, नैन प्यारे से परे नहीं जाते, मुड़-मुड़कर देखते हैं, फिर कल्गियों वाली झलक पड़ी, फिर आकर्षण हुआ, फिर सिर झुका ओर गोद में, फिर गुरू संगत में सिख लीन हो गया और गुरू को दूध देने की सुध ही न रही, ऐसी लीनता छाई कि कुछ मत पूछिये। जी हाँ:–

गुर सिक्ख संगत मिलाप को प्रताप अति प्रेम कै परस्पर बिसम स्थान है।
दृष्टि दरस कै दरस कै दृष्टि हरि, हेरत हिरात सुधि रहत न ध्यान है।
सबद कै सुरति, सुरति कै सबद हरे, कहत सुनत गति रहित न गिआन है।
असन बसन तन मन बिसिमरन होइ देह कै बिदेह उनमत मधु पान है।

[कबित सवैये भाः गुरुदास]

कुछ समय के पश्चात् अब फिर आवाज़ आई,

मेरा दूध?

सिर चौंक कर उठा, संभला, कदम उठाने से पहले फिर चेहरे को देखा, कल्गी की दमक पड़ी, फिर मग्न होकर गोदी में ही गिर पड़ा।

हे कल्गी वाले प्रीतम! अब सिख तो एक कदम भी बिछुड़ नहीं सकता, अब इस पौधे को सदैव अपनी हरी गोदी में समा ले, यह सिख अब चेहरा देखने की शक्ति नहीं रखता। हे विरद पालनहार! रख ले अब न बिछोड़ और अपने ही सदके न बिछोड़।

अचरज नो अचरज है अचरज होवंदा॥
विसमादै विसमाद है विसमाद रहंदा॥
हैराणे हैराण है, हैराण करंदा।
अबिगतहु अबगती है नहिं अलख लखंदा॥
अकथहु अकथ अलेख है, नित नेति सुणंदा॥
गुरुमुख सुख फल पिरम रस वाहु वाहु चवंदा॥ [वारां भाई गुरुदास ३८]

सतगुरू जी ने फिर कहा, "मेरा दूध"?

अब और खेल हुआ। प्रिय रस में पिरोई हुई सुरति ने पलटा खाया, हां, उसी दाता की आवाज़ ने पलटा खाया–

लोचन अनूप रूप देखि मूरछात भए,
सोई मुखि बहिरिओ बिलोक ध्यान धारि है।

अंमृत बचन सुनि श्रवन बिमोहे आली!
ताही मुख बैन सुन सुरत समारि है।
जा पै बेनती बखानि जिव्हा थकत भई,
ताही के बुलाए पुन बेनती उचारि है।
जैसे मद पीए ज्ञान ध्यान बिसरन होए
ताही मद अचवत चेतन प्रकार है।।६६६।। [कबित भाई गुरुदास]

बाबा बुड्ढ़ण जी जब उठे, क्या देखते हैं कि बकरी पास आई खड़ी है और कुदरत के रंग, प्रेम के तरंग देखिये, कटोरा भी पास ही पड़ा है। मस्ती के रंग में ही उठकर सिक्ख ने दूध निकाला। न जाने दूध उसने निकाला अथवा स्वयं निकल आया। सिख ने केवल इतना ही देखा कि कटोरा भरकर उछलने लगा है, कटोरा उछल पड़ा है, लबालब होकर उछल-छलक रहा है। सिख के हाथ हैं, उन हाथों में कटोरा है। गुरू के होंठ गुलाब से भी कोमल हैं जो कटोरे से लग रहे हैं। इसी 'ध्यान योग' 'गुरू-सिख संधि' मूर्ति के दर्शन हो रहे हैं, इसी रंग में सिख और गुरू प्रेम रसों में मस्त अलमस्त है।

इसी रंग की अनुपम झांकी कीरतपुर में है। कीरतपुर में 'गुरू सिख संधि' का यही दर्शन है। 'मेरा दूध' 'मेरा दूध' का प्यार वाला नक्शा है। कलम से कौन नक्शा खींच सकता है? कौन मूर्ति उतार सकता है? हां, अदेश में इस प्रेम का नक्शा उतारा जा रहा है। वहाँ पर प्रतिबिम्ब पड़ रहा है और मूर्ति बन रही है।

सदा जीउ! सिख! गुरू प्रीति में गुरू के साथ पेवंद हुए सिख! गुरू नौनिहाल की डाली बने सिख! सदैव झूलो, सदैव झूमो, सदैव फूलो, सदैव प्रफुल्लित रहो, सदैव लपटें दो, सदैव खिलो; वाह वाह 'मेरे दूध' का नक्शा। वाह दूध पीने वाले प्रीतम! वाह पिलाने वाले न्योछावर हुए प्रेमी! पीओ और पिलाओ। कोई घूंट, कोई कतरा, कोई बूँद, कोई छींट, कोई कण, कोई कण का कण।

हम ग़रीबों की ओर भी।

हे सिख? गुरू के सिर के सदके, हे सिख गुरू के चरणों के सदके! कोई एक ब्रूँद की बूँद, हम अनाथों को भी मिल जाये, हम प्रेम मूर्ति के सदके! हाँ कोई एक बूँद सुहाविनी हम अनजानों को भी मिल जाए। हम तेरे द्वार के भिखारी हैं, हमें इस प्यार के कटोरे में एक बूँद दे प्रेम प्याले में से एक बूँद की देन मिल जाये, भिखारी को भिक्षा मिल जाये।

हम गुस्ताख भिखारी हैं, तेरे प्रेम रंग के बंधे नक्शे में भिक्षा की आवाज़ तेरे कानों में डाल रहे हैं, मूर्ख भिखारी, पर दाता! भिखारी क्या और अक्ल क्या? हां दाता भिक्षा दे दे, अपने विरद के कारण देन प्रदान कर, तेरा प्रेम राज्य युगों पर्यत कायम रहे, हमें भी एक बूँद दे।

---

१. लबालब बुनो दम बदम नोश कुन।।
गमें हर दो आलम फरामोश कुन। [पातशाही १०]

२. मतवाले अमली हुए पी पी चढ़े सहिज घर जाए।
सूफी मारन टक्करां पूज निवाजे सीस निवाये।।८।। [वा: भाई गुरुदास ३९]

हे साई हमें अपनी सुराही में से एक बूँद दे दे! आधी अथवा आधी से भी आधी एवं इससे भी छोटी बूँद दे दे! हे गोसाईं! एक बार एक बूँद दिलवा दे जिससे हम भी सूफी न बने रहें। हे साईं! द्वार पर खड़े हुओं को एक बार स्वाद चखा दे।

गीत[1]—यमुना और राही

गुरू जी के यमुना के किनारे पर आने की खुशी में—

राही—यमुना री सुन्दर यमुना, तेरी नदी में शोख हिलोरे हैं। उमड़-उमड़ कर ते चल रही है, तेरे सारे तौर बदल गये हैं। हे यमुना! तू नीचे पैर नहीं टिकाती, तेरा यौवन ठाठें मार रहा है। हे यमुना! तू सौभाग्यवान दीख रही है, तुझमें कैसे करारे भँवर पड़ रहे हैं?

यमुना—हे राही! हे सुन्दर राही! तेरे वचन प्यारे लगते हैं। हे राही! तू मेरी विनती सुन, तेरे नैन तारों की भांति चमकते हैं! अदेश और पृथ्वी का सौन्दर्य, हे राही! जिसके भय में सारे मण्डल हैं; जिसके सौंदर्य से ही सूरज चमकता है, जिससे चाँद और तारे रोशन हैं—वह आज मुझ निमानी को मान देने के लिये यहाँ पर आया है, इसीलिये आज मेरे किनारे चाव से उछलते रहे हैं। हे राही! मंगल खुशियाँ और चाव, मेरे लिये चाव मलार बन गये हैं जिसके पास उसका प्रिय आ गया है उसी का ही भाव है। यह राही! मेरा प्रिय जो अब मेरे द्वार पर आ गया है, वह अब कभी न बिछुड़े। जिसके धोने से यह बिजली बनी है, जिसके तेज से ही सारे तेज का प्रसार है। जिसके नैनों से ये नैन जगे हैं, वह आज मेरे किनारे पर आयेगा। हे राही! मैं उसके चरणों को यहाँ पर टिकाऊँगी, जिसके फेरने से ही सभी फिरते हैं। हे राही! वह इस स्थान पर 'पाउंटा' का निर्माण करेगा और यहां पर अद्‌भूत कौतुक करेगा।

सूचना—बूडढ़णशाह का उद्धार करते हुये श्री गुरू जी सिरमौर की दून की ओर चल दिये, और शनैः शनैः सफर करते हुये जगत का उद्धार करते हुये नाहन के राज्य में जा पहुँचे। इधर नाहन सिरमौर की दून है, जिसमें गुरू जी जाकर टिके थे और यमुना से पार वह दून है ज़िसे उस समय राम राय की दून कहा जाता था और अब उसे देहरादून कहा जाता है। गुरू जी ने यमुना के किनारे पर एक कच्चा मिला, मंदिर तथा रिहायश के लिये स्थान बनवाया। मन्दिर तो अब भी है; किला नहीं है। ठिकाना अत्यन्त रमणीक स्थान है, पर सिक्खों ने इसे रौनक नहीं दी। इस ठिकाने पर सतगुरू जी बहुत प्रसन्न रहे हैं यहाँ पर कविता का काफी रंग खुलता रहा है और अनेकों चोज़ यहाँ पर हुये। इस ठिकाने पर जगत के उद्धार के कार्य का बानगी मात्र दर्शन अगले प्रसंगों से हो जाता है।



१. यहाँ पर पंजाबी गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

९ चमेली की बगिया

सतगुरू कलगियों वाले नाहन आये, नाहन से पहले वनों में फिर कर फिर यमुना के किनारे पर आये। इस स्थान को पसंद किया और किसी रमणीक स्थान पर पैर टिकाये। यहाँ पर रहने के लिए स्थान बनवा लिया और जगह का नाम 'पाऊँटा'[१] पड़ गया। जिस दिन इस सुहावनी 'जूह' में सतगुरू जी पहले आये थे, उस समय एक बगिया और कुटिया थी। आप इस ग़रीब की कुटिया में जाकर टिके थे। जो स्थान तंबुओं, खेमों और कनातों से सज रहा था वहाँ पर नहीं गये, सीधे इस ग़रीबनी की कुटिया में गये। यह यमुना के किनारे पर थी। इसके आसपास चमेली की बगिया भरपूर फूल रही थी, बीच में कुटिया थी, एक ओर गऊओं के लिये छप्पर था। यह माई कृष्णा और इसका पति गोपाल श्री गुरू हरिकृष्ण के समय सिक्ख बने थे। ये सढ़ौरा के रहने वाले थे, यहाँ पर आकर टिक गये थे और भजन करते रहे। गोपाल तो सौ वर्षों के होकर चल बसे थे और कृष्णा ९० वर्ष की थी और भजन करती हुई सतगुरू जी के दर्शनों की इच्छुक थी। जिस दिन सतगुरू जी मन की खींच से खिचे हुये नन्द चन्द सहिन इस वृद्धा के घर गये तब आगे से इसने बगिया की सुगन्धि ही भेंट की और बगिया अर्पण की, जिसे सतगुरू जी ने रमणीक बाग बनाया था। नीचे लिखे हुये गीत[२] में इस वृद्ध प्रेमिन के हृदय का उत्साह दर्ज है:–

यमुना के किनारे मेरी चमेली की बगिया में कलग़ी वाला आया है। मेरी निमानी झोंपड़ी को शूरवीर सतगुरू जी ने भाग्यवान बना दिया है। मेरी चमेली की बगिया ने महक मचाई है, जब चोज़ी सतगुरू मेरे यहाँ चलकर आया था। मेरी चमेली की बगिया रूपी चाँदी के तख्त पर सतगुरू आकर सुशोभित हुआ है। दीन और दुनिया का मालिक प्यारा कलग़ियों वाला आया है। मेरी चमेली की बगिया को सतगुरू जी के दर्शन करके चाव उमड़ आया था और सतगुरू ने इसे सौभाग्यवान बना दिया है। मेरी चमेली की बगिया सुगंधि हो उठी थी और उसकी सुगन्धित ने सारे जंगल को सुगन्धित कर दिया था। मेरी चमेली की बगिया को, जिसकी पालना यमुना ने की थी, सतगुरू देखने के लिये आया है। देश में फिरते-फिरते कलग़ी वाले ने यहाँ पर चरण टिकाये थे[३]। मेरी चमेली की बगिया एक नगरी बन जायेगी क्योंकि गुरू जी ने यहाँ पर पाँव टिकाया है। मेरा कलिगयों वाला गुरू धन्य है जिसने आकर जंगल को भी बसा दिया है। मेरी चमेली की बगिया में बैठे

---

१. इस इलाके में आज तक कई स्थानों पर सिक्खों के घर हैं। पाउंटे में भी सिक्ख हैं। भंगाणी में भी सिक्ख बसते हैं।

२. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

३. वनों पहाड़ों में फिरते हुए जहाँ पर चरण टिकाए थे, वह पौंटा।

हुये सतगुरू जी का दर्शन करने के लिये सूरज भी आया है। यमुना भी गुरू जी के चरणों को चूमने के लिये आई है, उसने आपा सफल करवाया है, जिस स्थान पर कलग़ियों वाले ने चरण रखे, वही स्थान सुहावना बन गया। मेरी चमेली की बेल ने सुगन्धि फैला दी है और उस सुगन्धि का आनन्द लेने के लिये सतगुरू आया है। यही महक जो चमेली में से आ रही है, गुरू जी इसी को स्वीकार करें। मेरे पास और कोई भेंट नहीं है, हे गुरू जी मेरा आप पर मान है। हे सतगुरू, यह निमानी बाड़ी हो भेंट स्वीकार कीजिये जहाँ पर आपने पाँव आकर टिकाया है। मेरा सतगुरू चमेली की बगिया में संगतों को साथ लेकर आया है सतगुरू ईश्वरीय कीर्तन नाद लाया है मानो अपने साथ हंसों का झुण्ड लाया है। मेरे बन, किनारे, जंगल सब गूँज उठे हैं और जंगल मंगल गा रहा है। हर ओर कोलाहल मच रहा है, सतगुरू जी ने रंग जमा दिया है। मेरा कल्ग़ियों वाला गुरू धन्य है, जिसने मेरी बगिया को सौभाग्यवान बना दिया है। मेरा कल्ग़ियों वाला नीचों को मान देता है, वह कंगालों की झोंपड़ी में आया है। चमेली की बगिया सौभाग्यवान हो गई है क्योंकि कल्ग़ियों वाला आया है। मेरा कल्ग़ियों वाला ग़रीबों का मित्र है, वह आज हमारे यहाँ आया है। आओ हे लोगो!! मेरी चमेली की बगिया में गुरू आया है आकर उसके दर्शन करो, कल्ग़ियों वाला आया और अब घर, बाग सुहावने हो गये हैं।



१० कालसी का ऋषि

: १ :

नाहन का राजा मेदनी प्रकाश अपने आराम कमरे में बैठा था कि उसका मन्त्री हरजी आ गया और दोनों में इस प्रकार बातचीत छिड़ी:–

राजा–हरजी, क्या कोई नया समाचार है?

मन्त्री–महाराज! समाचार अच्छे नहीं हैं, फतहशाह की लड़की का रिश्ता भीमचन्द के लड़के के साथ हो गया है।

राजा–हो गया! यह तो दीख ही रहा था। (आकाश की ओर देखकर और ठंडी सांस लेकर) पहले तो पुत्र का अभाव बावला बनाता था और अब राज्य के काज का भी संशय पड़ गया।

हरजी–मुझे भी बहुत चिंता हुई है कि पहले तो फतहचन्द जीने नहीं देता था अब तो वह और ही बोझल हो गया।

राजा–फिर है कोई तदबीर?

मन्त्री–इन्सानी तदबीर तो अभी कोई नहीं मुझे सूझी, हाँ! यदि ईश्वर की ओर से कोई सहायता मिल जाये तो अलग बात है।

राजा–ईश्वरीय सहायता किसी देवी-देवता की तो कुछ बनाती नहीं, पुत्र के लिये सब की पूजा प्रतिष्ठा, पाठपूजा, यज्ञ, आदि करके देख चुके हैं, कोई नहीं सुनता और जैसे कि कई कहते हैं कि देवता है ही नहीं, भ्रम ही है। शेष रही किसी पीर फकीर की सहायता। सढ़ौरे में बुद्धूशाह नामक एक फकीर सुना जाता है, वह मुसलमान है और दून में राम राय सुना जाता है जिसकी करामातों के सामने औरंगजेब भी झुका है, वह हमारे शत्रु फतहशाह का मित्र और पूज्य है। इसलिये हमारे लिये सारे रास्ते बंद हैं, अब एक ही बात मन में आती है कि और सेना को भरती करें और युद्ध के लिये तैयार रहें। जब समय आ पड़े मैदान में सम्मुख जूझते हुये लड़कर मरें। इहलोक तो हाथ से जायेगा ही स्वर्ग तो मिले।

मन्त्री–युद्ध के लिये तैयार रहना सदैव सुखदाई है, बल्कि ऐसे समय में तो प्रत्येक क्षण शस्त्र बाँधकर तैयार रहना ही राजनीति है। मैदान में सम्मुख झूझकर मरना भी तो शूरवीरों का धर्म है, पर उदासी और निराशा नहीं होनी चाहिये, कुछ और भी करना चाहिये।

राजा–क्या कुछ?

मन्त्री–हमारे राज्य की सरहद में यमुना के किनारे पर एक बहुत बृद्ध ब्राह्मण तप कर रहा है, क्यों न उसकी सहायता ली जाये। मेरे विचारानुसार तो वह योगी है और सिद्धियों का मालिक है, निर्जन वन में रहता है, दिन रात तप में लीन है, किसी के साथ उसका

कोई सम्बन्ध नहीं है। एक चेला उसकी सेवा कराता है, दूधाधारी है। दो-चार गऊएं हैं जो बन में चर लेती हैं और महात्मा को दूध दे देती हैं। उसका आर्शीवाद अवश्य ही कोई न कोई सहायता करेगा, इधर अपनी सेना भी और बढ़ानी चाहिये। आप माता जी को मनाओ कि अब समय आ गया है कि वे बड़े पुरातन खज़ाने की कुंजियां आपको दे दें, जिसे संकट के लिये पिछले राजा जमा करके गये हैं। इससे अधिक संकट का समय और कौन-सा है।

राजा–ठीक है, पर स्त्रियां और वे भी वृद्ध, कम ही कहा मानती हैं। अच्छा देखते हैं, यत्न ही करना है, करते हैं, मां है, मान जायेगी। हाँ, हाँ मन्त्री! फिर ब्राह्मण के पास कब?

मन्त्री–आप आज माता जी से बातचीत कर लें; मैं बख्शी जी के साथ सेना बढ़ाने की योजना बनाता हूँ। कल तड़के उधर को चल दें। शिकार के बहाने से चलेंगे और फिर शिकार में ही उसे मिलने का अवकाश निकाल लेंगे। बताकार जाना तो ठीक नहीं।

राजा–कहाँ पर है?

मन्त्री–कोई २५, २६ कोस की दूरी पर हमारे शहर के पूर्व-उत्तर की ओर यमुना के किनारे पर थोड़ी-सी चढ़ाई चढ़कर कालसी नामक गाँव है, उससे कोस डेड़-कोस इधर को, पर हमारी ओर के किनारे पर; जहाँ पर कि पहाड़ी नदी टौंसा और यमुना का संगम है, वहां पर थोड़ा-सा समतल स्थान है, वहां पर वन में एक कुटी है और इर्द-गिर्द कांटों का एक बड़ा तगड़ा बाड़ा है, उसके बीच एक खुला आंगन है।

राजा–ठीक! बहुत दूर नहीं है।

इस प्रकार बातें करके मन्त्री राजा से विदा हुआ और बख्शीखाने में जाकर अपनी रियासत की रक्षा के अधिक सामान की योजना बनाता रहा। उधर राजा जी ने अपनी माता जी से काफी प्रयत्न करके रियासत की रक्षा के लिये नई योजना पर खर्च करने के लिये पुराने भण्डार में से खर्चा निकाल लेने की बात मनवा ली।

: २ :

अगले दिन राजा मेदनी प्रकाश शिकार को गया, उसके साथ मन्त्री और कुछ सिपाही भी गये। मार्ग में बख्शी के साथ नई योजनाओं पर विचार विमर्श होता रहा। मन्त्री ने उस ठिकाने से कोई एक कोस की दूरी पर डेरा करवाया। जब तीसरा पहर आया तब राजा और मन्त्री घोड़े पर चढ़कर सैर को निकले और शनैः-शनैः ब्राह्मण की कुटी के पास जा निकले। राजा थोड़ी दूरी पर ठहर गया और मन्त्री घोड़े को वृक्ष के साथ बाँधकर अंदर गया। ब्राह्मण जी उस समय बाड़े के आंगन में पत्थर की एक शिला पर घास की चटाई बिछाकर बैठे हुये थे। उनकी आयु कोई एक सौ वर्ष से ऊपर थी, शरीर केवल हड्डियाँ ही लगता था, मांस तो मानो था ही नहीं, पर चेहरे पर अच्छी आभा थी। कमर सीधी नहीं थी, झुककर उसमें बल पड़ गया था और पूर्ण रूप से निर्बलता के डेरे लगे हुये थे।

मन्त्री ने आगे बढ़कर प्रणाम की; ब्राह्मण ने पहचाना, आशीर्वाद दिया और कहा, "आओ बैठो"। मन्त्री ने विनय की कि "बाहर राजा जी हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो वे भीतर आ जायें"। यह सुनकर ब्राह्मण काँपता हुआ उठने लगा और कहने लगा, "श्री कृष्ण जी का वाक्य है: मनुष्यों में मैं राजा हूँ"! अहो भाग्य! राजा ही होकर आओ, आओ सही। पर मन्त्री ने बांह पकड़कर बिठा दिया और कहा, 'आप विराजिये, राजा जी स्वयं आ जायेंगे। वे आपके द्वार पर राजा बनकर नहीं आये, आर्शीवाद लेने के लिये आये हैं, आप धर्म मूर्ति हैं, बड़े हैं।'

मन्त्री यह कहकर बाहर गया और राजा को साथ लेकर अंदर आया। दोनों ने दूर से ही सीस झुकाया और बुड्ढे पर अंदरले साहस वाले ब्राह्मण ने कहा, "अहो भाग्य! धन्य भाग्य! राजा ही होकर आओ, स्वागतम्"।

कुछ समय आपसी आदर-सत्कार कुशल आनन्द पूछकर मतलब की बातचीत छिड़ी ब्राह्मण ने सारी बात सुनकर कहा, "हे राजन्! मैंने इस राज्य में बैठकर तप किया है मैं तेरी राज्यहानि नहीं देख सकता। भगवान कृपा करें और राज्य अटल हो। पर संसार में फतहशाह और भीम चन्द दोनों मिलकर तुम्हारे लिये भारी हैं और सिद्ध मण्डल में राम राय योगी है, सिद्धियों और विभूतियों पर उसका पूर्ण अधिकार है। मैं तो गरीब 'दर्शन' की आशा में बुड्ढा हो गया हूं, मेरे गुरू ने मुझे विभूतियों के लिये मना लिया था और मैंने स्वयं भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। मेरा सारा बल इसी ओर लगा रहा कि प्रत्यक्ष चाहे अंतरात्मा में ही दर्शन करूँ, चाहे वैसे दर्शन देखूँ, चाहे दर्शन में समा जाऊँ। पर मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई"। (यह कहकर नेत्र भर आये)।

मन्त्री-क्षमा करना, हमने आपके केवल 'ब्रह्म दर्शन' में लगे समय में बाधा डाली है। हम जरूरतमन्द हैं, व्यथा वाला तो अपने लिये अधीर होता ही है।

ब्राह्मण-आप कुछ कहें। राजा तो प्रजा का रक्षक है, राज्य में रहते हुये राज्य की रक्षा करना तो सब का धर्म है। मैंने इस राज्य में सुख पाया है, इसलिये आपका आना विघ्नकारी नहीं है। भगवान सहायता करे, मेरा आशीर्वाद है, पर हाँ...।

यह कहकर बुड्ढे का चेहरा चमक आया। ढरकते हुये मांस की झुरियों में एक प्रकाश का कौंध गया, सिर हिलाया और आँखें मूंद ली, इन आँखों में अब एक चमक आ गई थी। फिर नैन भर आये और फिर कुछ समय चुप रहकर कहने लगा: "राजन्! यह कालियुग है और कलि के भी तीन पाँव खिसक चुके हैं, इस समय एक भारी अवतार का आगमन हुआ है, हाँ वह आया है और विचर रहा है, पर मुझे पता नहीं, यदि कभी तू उसके दर्शन करे तो निश्चय ही तेरा कल्याण हो।"

राजा-बिना पते के कैसे प्राप्त करें?

ब्राह्मण-हे राजन! मुझे वैसे कोई पता नहीं, मैं पहले आयु में मूर्ति का ध्यान करता रहा हूँ। फिर मुझे मार्ग बताने वाला मिला, मैं उसके ध्यान में मग्न रहा। फिर उसने मुझे चतुर्भुज मूर्ति के ध्यान में लगाया। मेरी आयु तो इसी तरह से गुज़री है। लालसा यही बनी रही कि जिस मूर्ति को मैं अपने ख्याल में बांधता हूँ, वह कभी जीवित होकर मिले, चाहे

मनुष्य की भाँति, चाहे किसी आध्यात्मिक ढंग से; पर मेरी आशा की पूर्ति नहीं हुई। अब कुछ दिन हुये हैं कि मैंने बैठे-बैठे एक स्वप्न देखा, कोई एक दिव्य मूर्ति है, उन्होंने मुझे कहा कि क्यों मूर्ति बाँधकर खप रहा है। मनुष्य के रूप में जगत में आये हुये हैं और जगत के रक्षक बन रहे हैं। युद्ध, जंग मचाने के प्रयत्नों में हैं, जोधा और रजोगुणी दीखते हैं, पर हैं धुर से आये हुये आप, अवतार और जगत रक्षक। हे राजन्! यदि मैं उन्हें देख लूँ तो अवश्य ही पहचान लूं, उनकी आयु नई है, दिव्य मूर्ति है, प्रकाश का रस है, पर शस्त्रधारी है और राजसी ठाठ है।

राजा–उनका नाम?

ब्राह्मण–यह पता नहीं, मुझे उस दिन से यही झलक पड़ती है और हर रोज़ पड़ती है। मैं तो एक दिन भी यहाँ पर न ठहरता, खोज करने चल पड़ता, पर मेरी टाँगों में शक्ति नहीं है, चेला कंधे से लगाकर ले चलता है अथवा प्राय: उठाकर ही ले चलता है तब कहीं नदी पर जाकर स्नान करता हूँ। यदि मुझ में शक्ति होती तो मैं कभी भी चैन से न बैठता? अब यदि मेरी आशा पूरी हुई है तो बल नहीं रहा। अब तो मेरे पास केवल मन का आराधन है कि किसी तरह नैन बन्द होने से पहले दर्शन कर लूँ और वह कुछ अनुभव कर लूँ जिसे 'परमानन्द परमरस' कहते हैं और जो केवल मिलाप से, दर्शन से, ही प्राप्त होता है। राजा! तेरे पास बल है, पदार्थ हैं, तू खोज कर। यदि खोज ले तो तेरा भी कारज संवर जाये और देखो (ठहरकर) अहो भाग्य! मेरे भी भाग्य जाग उठें। न जाने भगवन्त जी तुम्हें ही प्रेरणा करके ले आये हों कि मैं पता दूँ और तुम खोज करो; खोजकर ले आओ, या इस बुड्ढ़े ब्राह्मण को पालकी में बिठाकर उसके चरण कमलों में डाल दो, जिससे यह भी परम परमार्थ को प्राप्त कर ले; 'मंगता दास' जो हुआ।

ब्राह्मण की प्यार भरी और लालसा भरी आशा पर वैसे 'निराशा वाली आशा' की दशा पर राजा और मन्त्री दोनों द्रवित हो गये और अधिक चाव से होकर पूछने लगे: कोई अता-पता दो?

ब्राह्मण–अस्सी साल के तप के बाद ध्यान और त्याग बैराग के जीवन में रहकर यह झलक ही पड़ी है, और कया बताऊँ? नव आयु वाले हैं, सुन्दर हैं, मृगनेत्र हैं, बाहें घुटनों तक लम्बी हैं, शरीर लम्बा और पतला-सा है, असह्य तेज है, शस्त्रधारी है, रजोगुणी समान है, हैं पूर्ण, पूर्ण धुर से आये हुये, हमारे बुलाये हुए आये हैं और बन्धन मुक्त ज्योति ने भेजा है, आप हैं पूर्ण अवतार।

यह सुनकर राजा और मन्त्री दोनों की आखों एक दूसरे से मिलीं, कोई संकेत हुआ।

राजा–यह कहलूर वाले स्थान पर तो नहीं हैं, भीमचन्द के शत्रु।

ब्राह्मण–शत्रु, वे नहीं शत्रु, वे सबके प्यारे, सबके प्रेमी। शत्रुओं को अवतार भी शत्रु ही लगता है। अपने ही कर्म शत्रु होते हैं, आप किया और आप भुगता। धुर से आया तो विशुद्ध प्रेम होता है।

राजा–महाराज! भला अवतार आये तो आप जैसी ब्रह्म देह से आये, शस्त्रधारियों में ब्रह्म ज्योति कैसे?

ब्राह्मण (ठण्डा साँस भर कर)–भाई मोटी-सी बात है, राम जी खत्री शस्त्रधारी, कृष्ण जी खत्री शस्त्रधारी। न जाने अवतार क्यों इस रूप में आता है? और सुनिये, हम ब्राह्मणों के पास तो कर्मकांड है, हम तो वेद की ऋचाएँ गाते हुये यज्ञ ही करते करवाते रहे, यह ब्रह्म विद्या तो तब भी खत्री महाराजाओं पर उतरती रही। राम पर उतरी, हमने तो वेदपाठी रावण बनकर बैर ही किया।

भाई तुमने संस्कृत नहीं पढ़ी। आदि समय में जो वास्तविक ब्रह्म विद्या थी वह गुप्त रही, हम तो कर्मकांडी ही रहे। गूढ़ विद्या, ब्रह्म विद्या, रस विद्या, देखो न भाई, हमारे पूर्वजों को भनक पड़ी कि यह सब खत्रियों के पास है, ये एक तो राज्य करते हैं और दूसरा जीवन मुक्ति का आनन्द लेते हैं। फिर देखिये न! हमारे पूर्वजों ने इस खत्री महाराजाओं के द्वार पर जिज्ञासा धारण करके यह गूढ़ विद्या सीखी थी। तुमने सुना होगा कि सुखेदव ब्राह्मण जी ने राजा जनक के–जोकि खत्री थे–द्वार पर जाकर यह विद्या ली थी।

फिर देखिये पांच ब्राह्मण उदालक अरूणी[१] के पास वैश्वानर आत्मा की विद्या के लिए गये। उदालक अपनी सामर्थ और संशय बताता था, फिर वह अश्वपति कैकेय के पास गये, वहाँ पर उन्हें ब्रह्म विद्या प्राप्त हुई। पर कैकेय ने उन्हें उनकी पहली विद्या के बारे में यह सिद्ध कर दिया था कि वह अज्ञानमय थी[२]। फिर देखिये काशी के राजा अजातशत्रु को गारगेबलाकी ने ब्रह्म की १२ व्याख्या सुनाई, पर राजा जोकि खत्री है यह सिद्ध कर देता है कि वह ब्राह्मण भूल पर है। फिर आप ब्राह्मण का सही निरूपण करता है और उस समय यह कह देता है कि देख! मैं खत्री हूँ और ब्राह्मण को ब्रह्म विद्या देने लगा हूँ[३]। यहाँ पर स्पष्ट रूप से बताया है कि ब्रह्म (आत्मा) की विद्या राजा के पास है जोकि खत्री है, ब्राह्मण के पास नहीं है। फिर देखिए राजा परिवाहिन जेवली ने, जो खत्री रजोगुणी कामों वाला था, दो ब्राह्मणों को आकाश निरूपण किया है, जिस विद्या का उन्हें पता नहीं था। इससे पहले अति धनवान नामक खत्री ने उदरशान्डल्य ब्राह्मण को यह विद्या दी थी। फिर नारद को, जोकि बड़ा ब्राह्मण और प्रसिद्ध ऋषि था, सनत कुमार ने, जो युद्ध का देवता है, ब्रह्म विद्या सुनाई[४]। ब्राह्मण अरूणी को राजा परिवाहन जैवली ने जब शिक्षा दी तब राजा ने ब्राह्मण से कहा, हे गोतम! जिस तरह तैने मुझ से कहा है कि यह विद्या आज तक ब्राह्मणों में प्रचुर नहीं है, इसलिये त्रिलोकी का राज्य युद्ध करने वाली जाति के पास ही रहा है[५]। यही बात किसी अन्य स्थान पर यों लिखी है: 'इसी तरह यह बात निर्श्चय है कि आज दिन तक यह विद्या (ब्रह्म विद्या) किसी ब्राह्मण के हाथ में नही आई थी[६]। गीता जो

१. छंत ५. ११. २४।
२. ब्रि : २. १ और कौशी ४।
३. कौशी : १६।
४. छंत २. ८. ९।
५. छंत : ७।
६. छंत : ५. ३. ७.।

कि सर्व शास्त्रों का तत्त्व और वेद का दर्जा रखती है, युद्ध करने वाले कृष्ण देव ने युद्ध भूमि में युद्ध कर रहे अर्जुन को उपदेश दिया था और महाभारत के ब्राह्मण लेखक ने अपनी पुस्तक में लिखा था। अत: हे राजा! ये बातें धर्म पुस्तकों में दर्ज हैं, जिनसे पता चलता है कि युद्ध करने वाले रजोगुण कामों वाले मनुष्य अथवा देवता खत्री राजा-महाराजा इन ब्रह्म विद्या के ज्ञाता और रसिक ब्राह्मणों को दाता हुये थे। चाहे मूल रूप में यह आकाशवानी खत्री को हुई हो, अथवा ब्राह्मण को, पर धर्म पुस्तकें बताती हैं कि खत्री इस विद्या के अगुआ थे। प्राय: इस विद्या का नाम उपनिषद करके आया है। चाहे इस पद के कई अर्थ हैं, पर पुराने लेखक उपनिषद को रहस्य कहते हैं, जिसका अर्थ है भेद की बात, गूढ़ बात। चूँकि यह बात केवल अधिकारी को ही बताई जाती थी और अनाधिकारियों को बताने की मनाही थी इसलिये यह गूढ़ बात ही रही, जोकि ज्ञाता अपने पुत्र और पूर्ण विश्‍वास योग्य चेलों को लिखकर देते थे। अत: राजा! ब्रह्म का ज्ञान और ब्रह्म का प्रकाश रजो रंग वाला शरीर लेकर उसका प्रकाश होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। तू हिन्दू है, वेद शास्त्र पर भरोसा रखता है और इस बात का भ्रम मत कर कि अवतार आया है तो वह शस्त्रधारी क्यों है? और भी सुन ले! मुझे बताया गया है कि यह अवतार पिछले सब अवतारों से बड़ा है, वज़नदार है, भारी है, उनका गुरू है, श्रेष्ठ है।

ब्राह्मण तपी के मुँह से 'गुरू' स्वाभाविक ही 'बड़े' होने के अर्थ में निकला था कि राजे और मन्त्री, दोनों के मन पर फिर वही संकेत हुआ कि उसे सारे 'गुरू' कहते हैं, और इसे वैसे कुछ भी पता नहीं पर पते वही देता है और अब अक्षर भी शुद्ध बोल गया है।

ब्राह्मण—अत: भाई तुम जाओ और खोज करो, यदि मिल जाये तो मुझ बुड्ढ़े को भी याद कर लेना, दर्शन करवा देना। भगवान तुम्हारी मनोकामना पूरी करे।

मन्त्री—ऋषि जी! क्या अवतार के केश भी हुआ करते हैं?

ब्राह्मण—केश तो सारे ऋषि और अवतार रखते थे। वेद में तो परमेश्‍वर को भी लम्बे केशों वाला और सुन्दर दाड़ी वाला लिखा है। बुद्ध जी के समय तक उनके सहित सभी केशाधारी थे, यह केश न रखने की कुरीति तो बाद में चली थी।

मन्त्री (राजा की ओर संकेत करके और धीरे से)—केशों का पता भी चलता है।

ब्राह्मण—अवतार के साथ हमेशा सखागण आते हैं, उसके साथ जो-जो आये हैं, वे भी केशों वाले होंगे, मैंने झलक भी देखी है।

राजा—अच्छा जी; जिधर हमारा अनुमान चल रहा है वह आप तो केशों वाला है, पर उसके सारे साथी केशों वाले नहीं हैं।

ब्राह्मण—यदि नहीं है तो हो जायेंगे, झलक यह थी कि वह सत्युगी काम करेगा और फिर मैंने देखा है कि वह एक है, पर एक रूप वाला नहीं है, उसके दस रूप झलकते हैं, दसों ही अनुपम केश (शमशय-केश-दाढ़ी) वाले हैं।

अब दोनों का रुख उस ओर और अधिक बढ़ा। इस दस रूप वाली बात ने और पता लगा दिया।

राजा–ऋषि जी! हमने अनुमान लगा लिया है और अब हम चलते हैं और यत्न करते हैं। यदि कुछ पता चल गया तो अपनी पीड़ा भी बतायेंगे और यत्न करेंगे कि वे यहाँ पर भी आयें, फिर तुम स्वयं पहचान कर लेना।

ब्राह्मण–आयु के ध्यान और अब की दिखाई पड़ने वाली झलकों ने मेरे अंदर कोई ऐसी सूझ लगाई है कि यदि दर्शन हो जायें तो मैं उन्हें पहचान लूँगा। कभी अवतार भी छिपा रहता है? हाँ, पर जो आँख तृष्णा के कारण मलिन है, उस पर पर्दा होता है, ऐसे लोग तो अवतारों से युद्ध करते हैं, अन्यथा रावन क्यों भूल करता।

राजा–क्या ये राम-कृष्ण का अवतार हैं?

ब्राह्मण–इसकी मुझे झलक नहीं पड़ी, पर यह आवाज़ सुनाई पड़ती थी कि ये उनसे भारी हैं। 'गुरू अवतार' मैंने सुना था, लोगों से नहीं, अपने ध्यान से ही सुना था।

राजा–हे ऋषि! क्या यह अवतार सिद्धियों में राम राय से भारी होगा? क्या उसके आर्शीर्वाद से मेरे शत्रु दब जायेंगे? क्या उसके आशीर्वाद से मेरे घर पुत्र का जन्म हो जायेगा?

ब्राह्मण–हे राजा! अवतार योगियों की भाँति संयम[१] सिद्धि करके, यत्न लगाकर ध्यान बाँधकर करामात नहीं दिखाते, उनका तो वाक्य ही स्वाभाविक रूप से पूरा उतरता है। वे आजन्म सिद्ध होते हैं और उनकी वाक्य शक्ति सफल होती है, वे जो कुछ मुँह से निकालते हैं, अथवा चित से चाहते हैं, वह सब कुछ हो जाता है। यदि कहें कि करामात दिखाओ तो वे नहीं दिखाते, परमेश्वर की इच्छा में ही अपनी इच्छा रखते हैं, पर स्वाभाविक रूप से जो कुछ उनके मुँह से निकलता है, वह हो जाता है। राम राय, हाँ मैं जानता हूँ, एक बार पार वाले गाँव में आये थे, इधर भी आये थे, मैंने देखा था, हाँ वे विभूतियों को बस में किये हुये हैं और सिद्ध योगी हैं, पर वे, जिनका कि मैंने ज़िक्र किया है, धुर से आये हुये अवतार हैं। वे करामात नहीं करते और नहीं दिखाते, पर उनसे स्वयं स्वाभाविक ही जो कुछ हो जाता है वह करामातों से कहीं अधिक होता है। हे राजा! यह अहंकार ही है न! पर उनमें नहीं होता, उनमें शुद्ध कला होती है। दूसरे हम जैसे तपियों में अहंकार और एकाग्रता से उत्पन्न हुई ऋिद्धियाँ सिद्धियाँ होती हैं। ध्यान ही हैं न राजा! जहाँ पर लगाया, वहाँ पर लग गया, और जहाँ पर लग गया वहाँ पर सिद्धि हो गई।

इस प्रकार बातें करते हुये इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि यदि ऋषि जी को पड़ने वाली झलकें ठीक हैं, तो वे आनन्दपुर वाले गुरू जी अवतार हैं और पते भी सारे मिलते हैं और यदि नहीं तो हमें रास्ता मिल गया है। वे शस्त्रधारी हैं, शूरवीर हैं, उनके वीरों की बहादुरी की धाक है; यदि हमारे मित्र बन जायें तो हमारा पासा भारी हो जायेगा। जिस गद्दी का राम

१. धारण, ध्यान, समाधि, योग के तीन आंतरिक अंग।

राय है वे खुद उस गद्दी के मालिक हैं। इनके पीछे माझा, मालवा, दड़प, नक्का, धन्नी, पोठोहार; उधर सिंघ और इधर दक्षिण तक ऐश्वर्य है, उनको अपने राज्य में लाया जाये, यह चाल अवश्य ही सुन्दर है जोकि आज ऋषि जी के दर्शनों से सूझी है।

नाहन पहुँचकर राजा ने अपने एक छोटे मन्त्री शोभू को गुरू जी के लिये कई भेंटें देकर चुपके से आनन्दपुर को भेज दिया। जहाँ पर मन्त्री को यथा योग्य आदर आराम मिला। मन्त्री की इच्छा तो अपना संदेश गुप्त ढंग से देने की थी, पर निर्भय सतगुरू जी ने अगले दिन दीवान में पत्रिका ली और आप सुनी और सारे दरबार ने सुनी। मन्त्री को अगले दिन उत्तर देने के लिये कहा गया और सतगुरू जी ने मामा कृपाल चंद, मुन्शी साहब चन्द तथा दूसरे निकटवर्तियों से मन्त्रणा की। माता जी से सलाह पूछी, सबकी यही राय हुई कि चलना ही ठीक रहेगा। सलाहकार और मन्त्रणा देने वाले तो इस नुक्ते से चलने की बात करते थे कि भीमसेन के साथ युद्ध छिड़ने वाला है, जाने से वह टल जायेगा। पर गुरू जी कोई अगम्य का आकर्षक खा रहे हैं, जिसे उनका बिरद ही पहचानता है। उन्हें हृदय की तड़पन झन्नाहटें छेड़ती थी, किसी प्यार वलवले का आकर्षण पड़ता था। अत: हर प्रकार हर ओर से पक्की सलाह बन गई। मौसम भी अब अच्छा था, बरसात हो चुकी थी, और ऊँची दूनों में यह मौसम टिकाव भरा होता है। गुरू जी ने आश्विन के महीने संवत् १७४१ में कूच कर दिया, ५०० शस्त्रधारी जवान साथ ले लिये, शेष सेना आनन्दपुर की रक्षा के लिये रखी। माता गुजरी जी और पत्नी भी साथ चलीं। दूसरे प्रेमी और दिली सेवक भी साथ चले। पहले कीरतपुर आये, गुरू हरिगोबिन्द साहब के स्थान पर कड़ाह प्रसाद चढ़ाया और रोपड़ की ओर कूच किया। मन्त्री सिरोपाव और उचित उत्तर लेकर पहले विदा हो गया था कि राजा को जाकर खुशखबरी सुनाये और स्वागत की तैयारी हो जाये। इधर से सतगुरू जी भी जल्दी ही पहुँच गये। गुरू जी का आना सुनकर मेदनी प्रकाश आगे से स्वागत के लिये आया। सतगुरू जी को आगे से लेने के लिये अपने साथ रियासत के उच्च कर्मचारी लेकर शहर के बाहर आया। अब गुरू जी के दर्शन हुये, तब राजा ने दरबारियों सहित चरणों पर सीस रखा, आशीर्वाद लेकर प्रसन्न हुआ और रकाब के साथ-साथ चलकर अपने नगर में ले आया। नगर के दरवाज़े के आगे शहर के साधु, ब्राह्मण, पुजारी और चौधरी तथा बड़े व्यापारी सभी खड़े थे। बड़े पुरोहित ने आप गुरू जी की आरती उतारी और सबने गुरू नानक की गद्दी के मालिक जानकर आदर सत्कार, चरण बन्दना करके शहर में प्रवेश करवाया और उस स्थान पर डेरा करवाया जहाँ पर अब गुरुद्वारा मौजूद है।

सतगुरू जी के नाहन में आने और राजा द्वारा इस तरह से श्रद्धा भरी खातरदारी और नगर निवासियों की प्रजा द्वारा सत्कार की ख़बर यमुना के दोनों ओर की दून में इस तरह गूँजी जिस तरह के दूनों, वादियों में ऊँची आवाज गूँजती है। रामराय जी के पास भी यह खबर पहुंची। उसने भी नगर के राजा फतह शाह को कहला भेजा कि भाई अब उस गद्दी के मालिक आ गये हैं जिस गद्दी का मैं सेवक हूँ। चाहे मेरा विरोध हो रहा है, पर सच्च तो सच्च ही है और सच्च यह है कि वे चश्में के सामान अगंमी शक्ति वाले हैं और मैं सरोवर की भांति उस चश्मे के जल के दान से जल वाला हुआ हूँ। सो मैं अब राजा मेदनी

प्रकाश के विरुद्ध कोई आध्यात्मिक अथवा शारीरिक बल नहीं लगा सकता। दूसरा, तू मेरा हितु हैं, मैं तुझे सुमति दूँगा कि तू अब विरोध का त्याग कर दे और तैने राजा नाहन का जितना इलाका ज़बरदस्ती मार लिया है, उसे लौटा दे, अन्यथा तुझे उसे छोड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि दूसरी ओर से वे आ गये हैं, जिनका विरद दीनबन्धु और शरणागतों का पालनकर्ता है। राजा फतह चन्द भी सुन चुका था कि गुरू महाराज जी सेना सहित नाहन आ गये हैं, और उनके ऐश्वर्य की धूम सुन चुका था। राम राय का संदेश भी सुना था। यह भी जानता था कि मेरा सारा इलाका, बल्कि टेहरी का खास इलाका सारे ही राम राय के पीछे हैं, यदि राम राय की राय बदल दी गई तो मेरी प्रजा में और आसपास में सुख नहीं रहेगा। सो उसने मेदनी प्रकाश के ज़बर्दस्ती दबाये हुये इलाके को छोड़ दिया। मेदनी प्रकाश इस प्रत्यक्ष करामात को देखकर और न केवल अपने खोये हुए इलाके की वापसी के कारण अपितु सारे राज्य के चले जाने के भय की निवृत्ति के कारण और अधिक प्रसन्न हुआ और अधिक चाव से सतगुरू जी की सेवा करने लगा। फतह शाह की ओर से भी गुरू जी के पास एक दूत आया और कुछ भेंटें लाया और एक प्रेम भरी पत्रिका भी लाया, जिसमें अपने मन की शुद्ध भावना और गुरू जी के साथ प्यार का इकरार था। इस दूत के आदर सहित विदा होने के पश्चात सतगुरू जी ने मामा कृपाल चन्द जी को फतह शाह के पास भेजा। मामा जी ने राजा जी को गुरू जी का आशय बहुत अच्छी तरह समझाया कि वे राजाओं की परस्पर लड़ाई को पसंद नहीं करते, तुम्हारा आपस में मिल बैठना और मिलकर रहना देश और प्रजा के लिये स्वतन्त्रता की आज्ञा रखता है। देश में तुम जैसे कई हज़ार ऐसे लोग हैं, जो राजा, महाराजा राणा और राव कहलाते हैं, शस्त्र और सेना रखते हैं, आपसी फूट के कारण एक-दूसरे से दूर हैं और सभी दासता में फँसे हुए कर दे रहे हैं। तुम प्यार से क्यों नहीं रहते, जिससे सबका बल बढ़े और साझा बल सारे देश को स्वतन्त्र करे। इस उपदेश से फतह शाह गुरू जी का प्रेमी बन गया। उधर गुरू जी ने मेदनी प्रकाश को तैयार कर रखा था और जब फतह शाह आपके दर्शन करने के लिये आया तब मिलाप कराने वाले सतगुरू जी ने मामा जी को बीच में डालकर सुलह करवा दी। दोनों आपस में मित्र बन गये और दोनों ही अपनी शक्ति को बढ़ा हुआ देखकर सतगुरू जी की सेवा करने लगे।

अब राजा मेदनी प्रकाश ने अपने देश में सतगुरू जी के पक्के निवास की इच्छा प्रकट की और पक्का डेरा करवाने के लिये शेर का शिकार करते-करते सुन्दर ठिकाने दिखाने लगा। एक दिन सैर करते समय सतगुरू जी ने यमुना के किनारे पर एक स्थान को पसंद किया, जोकि अति रमणीक था। इस जगह पर सतगुरू जी के निवास के लिये एक मकान और संगतों के लिये डेरे और रक्षा के लिये एक कोट की शकल का किला बनवाने की सलाह बनी। राजा मेदनी प्रकाश ने इस कार्य के लिये अपने देश के मिस्त्री मज़दूर लगा दिये और भवन बनने लगे और सतगुरू जी अब अपनी सेना और संगत का डेरा यहाँ पर ले आये। इस ठिकाने का नाम सतगुरू जी ने 'पाउंटा' रखा। मग्घर के महीने में संक्रांति को इसकी नींव रखी जो कि गुरुद्वारा अब तक है और कुछ-कुछ बाकी निशान भी मिलते हैं। यह स्थान काफी रमणीक होने के सिवाय, ठिकाने के लिये भी बहुत उत्तम था। नीचे से आने वाली देश की और देहरादून की सड़कें यहाँ पर ही आकर मिलती हैं। इधर इमारतों

के निर्माण का कार्य जारी था, उधर देश-देश की संगतें गुरू जी का वहाँ पर आना सुनकर उमड़ आईं। कथा कीर्तन होते, आसा जी की वार के दीवान सजते, शूरवीर, फौजी खेलों के रंग जमाते, कविजन कवि सम्मेलन करते, जंगल में मंगल हो गया। दूर-दूर तक डेरे तंबू, फूस के छप्पर, शामियाने, खेमे सज गये। सिख धर्म के उपदेश, प्रचार के आनन्द के प्रवाह चल पड़े। सतगुरू जी ने यमुना मे स्नान, तैरना, खेल, जंगलों में शिकार, कसरतें, शेरों को मारना और सिखों को तैयार बर तैयार रखना आदि अनेकों ही रंग लगा दिये। कलग़ीधर जी के 'मनुष्य नाट्य' के जीवन में पाऊँटे के ये दिन जिस रंग में गुज़रे हैं वे बड़े ही मज़ेदार गुज़रे हैं। आपने अधिकतर कविता भी यहीं यमुना के किनारे पर रची है। चुने हुये शूरवीर और कवि तथा विद्वान भी यहाँ पर इकट्ठे किये थे। सिलहखाना भी बनवाया था।[१] असुज में सतगुरू जी आये थे और मग्धर में यों लगता था कि आनन्दपुर यही है और सदैव यहाँ पर ही भाग्य लग रहे हैं। आपके लिये किले की भाँति जो गुरुद्वारा बन रहा था, वह इतनी तेज़ी से बन रहा था कि पौष में आपने जन्म दिन पर इससे प्रवेश करने का विचार भी पक्का हो रहा था। पास के साधू महात्मा भी आ जा रहे थे। जीवनदान और जीवों के उद्धार का आत्मिक व्यापार भी बड़े यौवन पर था।

एक दिन बड़े सवेरे ही सतगुरू जी उठे तो आप कुछ अधीर से लगते थे। अब पौष का महीना आ गया था, सर्दी भी बढ़ रही थी। चाहे अभी पहाड़ों पर बर्फ नहीं पड़ी थी और पाला नहीं चमका था, पर सर्दी पहले से कुछ अधिक थी और ज़ोर से कह रहे थे, 'बहुत जाड़ा लगता है हाड टूटते हैं'। कभी-कभी यह कह देते कि 'बुढ़ापा आ गया है।' सिख आपके इस चोज़ को समझ नहीं रहे थे, पर किसी नए कौतुक की प्रतीक्षा अवश्य हो रही थी कि आपने दीवान में उठते ही मन्त्री को नाहन से बुलवा भेजा और जब वह आया तब उससे कहा कि राजा से कहो कि पाँच-छः दिनों के लिये हमारे साथ शिकार को चले, पहाड़ की ओर चलना है और आठ कहार और एक पीनस भी साथ ले जानी है।

: ४ :

यमुना ऊपर की पर्वतधारा से निकलती है, इसके सोते को यमनोत्री कहते हैं, पर यहा वहाँ से चलकर अजीब चक्कर खाती हुई पर्वतों की खाइयों में से गुज़रती हुई अंत में दून में आ निकलती है। जिस ठिकाने पर यह पर्वतों से बाहर आती है, वह आजकल के मैसूरी के पहाड़ों से पन्द्रह कोस पश्चिम को है। उस ठिकाने पर इधर के पहाड़ों में से तो इस कालिन्द्री (यमुना) की सुन्दर, स्वच्छ, निर्मल धारा निकलती है और उत्तर की ओर से एक दूसरी इसी तरह की टौंस नाम नदी आती है।[२] एक स्थान पर दोनों का संगम हो जाता है। टौंस तो अपना नाम यहाँ पर समाप्त कर देती है और यमुना में

१. उस सिलहखाने के कारीगरों के वंशज यमुना के आसपास अब भी मिलते हैं।

२. नीचे भी एक और नदी का नाम टौंस है।

मिलकर यमुना का रूप होकर आगे चलती है। यहाँ पर यह धारा छोटी-छोटी पहाड़ियों टीलों के चरणों के साथ-साथ जाती हुई पाऊँटे से गुज़र कर फैज़ाबाद के पास खुले मैदानों में जा निकलती है।

जिस स्थान पर हमने यमुना और टौंस का संगम बताया है, उसके ऊपर एक कोस की दूरी पर चकराते की ओर से आती हुई नदी के किनारे एक नगर है, उसे कालसी कहते हैं। यह संगम वाली जगह बड़ी सुन्दर है। ऊँचे खड़े पहाड़ों में से निर्मल सोतों के मेल की झाँकी आश्चर्यजनक है। इस स्थान पर अब पुल बनवाया गया है। चकराता पहाड़ की सड़क इस पुल पर से गुज़रती है। यहाँ से सहारनपुर ५२ मील की दूरी पर है और चकराता २५ मील पर है। किसी समय यहाँ पर राजा अशोक का बनवाया हुआ लकड़ी का पुल था। यहाँ पर बौद्ध भिक्षुओं के मठ और विहार थे। तब यह स्थान काफी रौनक वाला था। यहाँ से ही वह सड़क गुज़रती थी जो पहाड़ों के पैरों के साथ-साथ होकर होती मरदान के पास गढ़ी शाहबाज़ के पास जा निकलती है। यही शाहराह था, क्योंकि पहाड़ों के पैरों में नदियों के प्रवाह छोटे होने के कारण राजाओं की सेनाओं को पार करने का कम कष्ट होता था। इसलिये प्राय: सेनाएँ इधर से ही गुज़रती थीं। इस स्थान पर बौद्ध राजा अशोक का एक चिन्ह अब तक मौजूद है। नदी के किनारे और पास ही पुल के ऊपर की तरफ एक चट्टान है, जिस पर अशोक का हुक्मनामा लिखा है। इस चट्टान पर पुरा लेख संरक्षण विभाग ने अब गुंबद बनवाकर जंगलेदार दरवाज़े लगा दिये हैं। इसी तरह की या इससे छोटी चट्टान राजा अशोक के शिलालेख वाली होती मरदान के निकट गढ़ी शाहबाज़ के पास है। इस प्रकार ये ठिकाने किसी समय शाही सड़क के महत्वपूर्ण ठिकाने थे, पर अब वे मन्दिर, मठ, गुम्बद सभी लोप हो चुके हैं, हाँ कुदरती जलवा जो इन स्थानों को रमणीक बनाता है, वह उसी तरह सुन्दरता की दमक दे रहा है। इसी एकाकीपन, स्वतन्त्रता, स्वच्छता, जल की निर्मलता, वन की हरियाली और सुहावनेपन ने ऋषि ब्राह्मण को यहाँ पर टिका रखा था। हम पहले बता चुके हैं कि राजा और मंत्री इस स्थान पर ऋषि ब्राह्मण से मिलने के लिये आये थे। ये तपस्वी ब्राह्मण जी अपनी कुटी में कुदरत के साथ बातें करके दिन व्यतीत करते थे, दूध पी लेते थे और किसी की राह देखते रहते थे। आप ब्रह्म विचार जानते थे, इसका रास्ता आप 'ध्यान' समझते थे, 'त्याग' के पूरे और 'हठ तप' के तगड़े थे। तृष्णा नहीं थी, थी तो केवल दर्शन की भूख थी। कभी-कभी आप ख्याल करते थे कि मैं प्यार करता हूँ, पर आगे से मुझे कोई प्यार नहीं करता, पर फिर अपने अंदर कुछ खुश्कपन देखकर निराश हो जाते थे, रस, महारस का पता नहीं चलता था, न लीन कर लेने वाले और न लीन होकर बीच में रख लेने वाले दर्शन ही होते थे। अब कुछ समय से कुछ झलक पड़ती थी, कोई आवाज़ सुनाई देती थी, जिसका हाल हम पीछे पढ़ आये हैं कि राजा और मन्त्री को आपने बताया था। राजा और मन्त्री तो अपना काम निकाल चुके थे, उनकी प्यास, जोकि अपनी तबाही के भय से उत्पन्न हुई थी, भय के हट जाने से हट गई थी। उनकी स्मृति में से ऋषि जी की उत्कँठा भूल चुकी थी। हाँ, मनुष्य भूलता है। ठीक

ही तो है आवश्यकता पड़ने पर इन्सान की स्मरण शक्ति 'सान' पर चढ़ जाती है, पर ज़रूरत निकल जाने पर कुन्द हो जाती है। राजा को अपना वचन याद ही नहीं रहा और ऋषि का संदेश भूल गया। राजा को ऋषि द्वारा बताया गया 'गुरू अवतार' तो मिल गया था, राज्य सम्बन्धी आवश्यकता पूरी हो गई थी, उन्हें गुरू जी ताकतवर, शक्तिवान, और पूज्यनीय भी दीख पड़े थे। उन्होंने यह निश्चय भी कर लिया था कि आप अवतार हैं, आप जितने योद्धा और बली दीखते हैं, उतने ही आप कोमल तथा दयालु भी हैं, विशाल हृदय वाले भी हैं, प्यार के आगे झन्नाहट खाते और प्यार की झन्नाहट छेड़ते हैं, जगत का अंधेरा हटाते हैं, सुमार्ग पर चलाते हैं, गिरे हुए हृदयों को सहारा देकर उठाते हैं, मुरदा दिलों को जीवित करते हैं। हाँ जी, हैं तो ये ईश्वर के भेजे हुए ईश्वरीय सौंदर्य-ईश्वरीय प्रवाह और ईश्वरीय झन्नाहट लगा देने वाले, पर इस सब कुछ को एक झलक मात्र ही समझा था और झलक की भाँति ही यह गुज़र चुका था। उन्हें तो सहायक शक्ति की ज़रूरत थी अतः वह शक्ति मिल गई थी। सच है संसार तो शारीरिक अथवा मानसिक शक्ति का इच्छुक है, वह शक्ति मिल गई तो तृप्त हो गये; आत्मिक खेल को तो वे नैन देखते हैं जो तृष्णालु न हों, अथवा जो प्यार में विह्वल हों, अथवा जिन्हें ईश्वर खोले। 'मापिरी' (मेरा प्रियतम) की पहचान पर टिकने वाले नैन और ही हैं। सो राजा और मन्त्री के दिमाग़ में स्वाभाविक रूप से ही कोई परोपकारी आकर्षण शेष नहीं था, जिससे कि ऋषि की याद आती; अपनी आवश्यकता तो पूरी हो ही गई थी, सब कुछ भूल गये थे। पर हाय लगी हुई प्रीति! जिसकी एक सौ वर्ष से कहीं अधिक उम्र हो, जिसने सारी उम्र मोह माया का त्याग करके गहबर बन में और नदी के किनारे सचमुच के तप तथा साधनों में गुज़ारी हो, जिसे अब कोई झलक पड़ी हो, कोई सुख स्वप्न आया हो, उसकी लालसा कितनी तीव्र होगी। सच है गृहस्थ में ग्रसे हुये लोग त्याग से मज़ाक तो कर लेते हैं और सतगुरू के 'गृहस्थ में उदास' वाले आदर्श के आगे उसके बाहरी लिये त्याग की जरूरत है भी नहीं, पर गृहस्थ में, माया के मोह में और मैं मेरी में फँसे हुये और ग्रसित लंपट लोग ज़रा त्याग करके देखें तो सही कि त्याग का क्या अर्थ है और सच्चा त्याग कितना कठिन होता है?

राजा भूल चुका था वज़ीर भी भूल चुका था, पर ऋषि को, जोकि नदी के किनारे वृक्ष की भांति खड़ा मौत के कटाव दिन गिन रहा था, बहुत ही उत्कंठा लग रही थी। ऋषि सोचता था: 'राजा भूल गया, अपना मतलब पूरा करके भूल गया, अथवा उसकी खोज और जो ठिकाना वह बताता था, खंडित निकला? अथवा राजा अभी स्वयं खोज में पड़ा हुआ है! ईश्वर जाने क्या घटा है।' ऋषि निर्जन स्थान पर आबादी से दूर बैठा है, कौन जाकर पता दे? एक गऊएं चराने वाला लड़का है जो सेवा करता है, वह कभी वन में चला जाता है और कभी किसी दूसरे काम में लग जाता है। ऋषि जी कभी-कभी ख्याल करते हैं: हे भगवान! मैं वृद्ध हो गया हूँ, अंदर से शरीर के रस सूख रहे हैं, मेरी बुद्धि भी अब मोटी हो गई है, न जाने जिसे मैं झलक कहता हूँ, वह कोई वास्तविक संकेत न हो, यह दिमाग की एक कमी-सी हो, केवल एक झलक-सी, परछाई, भुलावा ही हो, मैं बेकार ही अंत समय बावलेपन के पैर चूम रहा हूँ।' पर फिर अंदर से एक आवाज़ आती, 'नहीं मेरी झलक किसी सत्य की एक झलक है, किसी दिव्यता की झलक है, जिसका वास्तविक

रंग, रूप देखने की सामर्थ मुझ में नहीं है।' अहो दैव क्या दैव! भी मज़ाक करता है? हे सिरजनहार विश्वंभर! अपने बूढ़े सेवक के साथ अंत समय कोई प्यार कर, कोई ढाढ़स दे, जिससे कि चित्त को ठिकाने करके चलूँ–'निश्चिंत होकर मरूं। इस तरह की बातें करके रोने लगता, उसके आंसू देखकर कई बार बालक पूछता, "महाराज! क्या आपको मुझ से कोई दुख हुआ है कि आप रो पड़ते हैं।" उसके भोलेपन पर तरस खाकर ऋषि जी प्यार देकर दिलासा दिया करते और कहा करते, "बेटा! नहीं, मेरे अंदर तो कोई अगम्य से लगी है, जिस तरह कोई जवानी के वेग में प्यार के हाथ बह जाता है, उस तरह मैं किसी अदृष्ट प्यार में बूढ़ा होकर बह रहा हूँ, तू चिंता मत कर।"

कभी-कभी बुड्ढ़ा चौंक उठता और 'वे आ गये' कह देता, पर वह किसी पत्थर के गिरने की सी अथवा वन के किसी पशु की आहट ही निकलती। कभी-कभी उसको वह आवाज़ सुनाई देती, जो उसने ध्यान मग्न होकर सुनी थी। कभी-कभी वह स्वप्न दिन में आ जाता और फिर कभी-कभी निराशा आती कभी उत्कंठा तीव्र होकर निर्बल कर देती। ज्ञान, ध्यान, पढ़ा सुना सब कुछ भूल जाता, मौत से भय लगता कि क्या मैं बिना देखे ही चला जाऊँगा? इस प्रकार के सुरति के टिकाव और हिलाव में एक अडोलता आती फिर एक कमज़ोरी आ जाती जिस से कुछ सुख और शीतलता सी लगती, पद दुर्बलता कई बार निढाल कर देती। एक दिन उदास होकर ऋषि ने बालक से कहा : 'बेटा! मेरे शरीर का अब कुछ पता नहीं, आयु पूरी हो गई है, किसी भी समय चल बसेंगे। मेरी मृत्यृ के पश्चात मेरे शरीर को यमुना में बहा देना। इन गऊओं को लेकर अपने गाँव को चले जाना। यदि कभी तू सुने कि कोई अवतार प्रकट हुआ है तो चरणों में जाकर मेरा यह संदेश देना कि विह्वल तपस्वी यमुना के किनारे पर दर्शनों की चाह में ही चल बसा है। उसके पाँव चल नहीं सकते थे कि वह आपकी खोज करता, उसके पास धन नहीं था कि वह खोज करवाता, उसके पास मनुष्य नहीं थे कि वह कोई पता निकलवाता। उसे झलक दिखाई पड़ती थी, आवाज़ सुनाई देती थी, वह तड़पता था और लालसा करता था, पर पहुँच नहीं सकता था। यों व्याकुल होता-होता, रहा देखता-देखता, आशाओं से भरा हुआ चला गया है, उसकी सहायता करें।"

बालक सुनकर उदास होकर रोता था, पर ऋषि जी के हुकम से इतना बंधा हुआ था कि सारे अक्षर याद करता और पकाता रहता था, फिर उन्हें सुनाता था कि कहीं बीच में कुछ भूल न जाए। कभी बालक स्वयं उदास हो जाता था, रो पड़ता था और कह देता था 'ऋषि जी! मैं क्या करूँगा?" तो ऋषि जी कहा करते थे, "तू उनकी खोज करना। मेरे भाग्य तो नहीं, पर न जाने तेरे भाग्य हों और जब तू मेरा संदेश उनको देगा तो वे तुझ पर तुष्ट हो जायेंगे।" बालक पूछता, "जी कोई पता दो तो मैं अब जाकर रात को सोये हुये को उठाकर ले आऊँ, खाट समेत उठाकर ले आऊँ"। ऋषि जी हँस पड़ते और कहते: "यों मत कह, वे ईश्वरीय रौ वाले ईश्वर रूप हैं।" बालक कहता, "फिर स्वयं आते क्यों नहीं?" ऋषि कहता: "मेरे कर्म! मेरे भाग्य!!" फिर बालक निशानियाँ पूछने लगा, तब आपने बताया: 'लम्बे हैं, पतले हैं, खूब तगड़े हैं, आयु में युवावस्था के कुमार हैं, शस्त्रधारी हैं, केशों वाले हैं, सुन्दर छोटी-छोटी कुंडलाकार दाढ़ी निकल रही है, तेज वाले हैं, क्रान्ति

वाले हैं, प्यार वाले हैं, मीठे-मीठे रसभीने हैं।" बालक कहता "मैं इतनी बातों की परख कैसे करूँगा?" तो ऋषि ने कहा, "उनके हाथ जब सीधे होते हैं तब घुटनों तक जाते हैं।" इस निशानी पर बालक प्रसन्न हुआ और उसने उठकर अपने हाथ लम्बे करके देखे; ऋषि के हाथ लम्बे करके देखे, अब उसे तसल्ली हो गई कि वह परख कर लेगा। कहने लगा, "ऋषि जी! क्या किसी दूसरे व्यक्ति के बाजू इतने लम्बे नहीं होते?" ऋषि ने कहा, "और किसी के नहीं होते।" बालक ने कहा, "क्या मेरे कहने से वे बाहें लम्बी करेंगे?" इस भोलेपन पर कृषि हंस पड़ा और कहने लगा: "तू उनके साथ रहना, ध्यान रखना और कुछ मत कहना। जब कभी बाहें अपने आप लम्बी हों और तुझे निश्चय हो जाय तो चरणों पर झुककर क्षमा मांगकर मेरा सन्देश दे देना।" बालक ने कहा "उनका कोई नाम भी है?" ऋषि ने कहा, "नाम तो होगा, मगर मुझे पता नहीं। पर लोग उसे बड़ा अवतार अथवा 'गुरू अवतार' कहते होंगे।" बालक सोच में पड़कर कि 'गुरू' 'गुरू' अच्छा 'गुरू' कहने लगा। बालक–"यदि आप मुझे इसी समय ही भेज दें तो मैं नीचे जाकर पूछकर आपको बताऊँ और यदि पता चल जाये तो आप भी दर्शन कर लें। पर हाँ, यदि मैं चला गया तो आपको स्नान कौन करायेगा? आपको दूध कौन निकाल कर देगा? गऊओं को कौन चरायेगा, उन्हें कौन बांधे खोलेगा हाँ? भला जी अब बताइए क्या करूँ? कुछ नहीं सूझता, यदि मेरा कोई भाई होता तो उसे आपके पास छोड़कर खोज करने के लिए चला जाता। पर अच्छा अब दोपहर को मैं दो घड़ी दूर निकट जाया करूँगा। यदि कोई व्यक्ति मेरा कहना मान जाये और महीना दस दिन आप के पास ठहरे तो मैं नीचे जाकर खोज करूं।" ऋषि ने कहा, 'बेटा चन्दा! बुड्ढ़े और कमज़ोर व्यक्ति के पास कौन ठहरेगा? जहाँ से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा उसकी सेवा कौन करेगा? तू और कुछ मत कर, दोपहर को दो-चार कोस नीचे जाया कर और आने जाने वाले मुसाफिरों से पूछ लिया कर कि कोई अवतार तो प्रकट नहीं हुआ है, कोई साधु-संत महात्मा तो प्रकट नहीं हुआ है? यदि कोई पता चले तो आकर बता देना।" बालक जो कि काफी चिंता में था, अब कुछ प्रसन्न हो गया, उसे दो बातें अच्छी मिल गईं, एक पता पूछने की और दूसरी बाहें पहचानने की।

: ५ :

बालक चान्दो ने अब अपना प्रतिदिन का काम और ढंग से करना आरम्भ कर दिया। प्रात:काल में ऋषि जी को स्नान कराकर धूप से तखत बिछाकर, मृगछाला पर बैठाकर, ऊपर कम्बल ओढ़ाकर गऊओं की सफाई आदि से मुक्त होकर दूध निकालकर और ऋषि जी को पिलाकर, आप नहा धोकर, दूध पीकर गऊओं को वन में पहले की भांति चराने के लिये न ले जाता; अब गऊओं को छप्परों में से निकालकर खुले बाड़े में बांध देता आप आप घास छीलने के लिये चला जाता। कुछ घास बरसात के बाद सुखाकर रखी हुई थी, उसमें से कुछ गऊओं को पाँच-सात घड़ियों के लिये डालकर चला जाता। कभी तो ऊपर ग्राम की ओर चक्कर लगाता। प्रत्येक व्यक्ति की बाहें देखता कि जब लटकती हैं तो घुटने तक जाती हैं अथवा नहीं, कभी नीचे गाँव की ओर जाकर चक्कर लगाता। फिर कभी-कभी किसी से पूछ भी लेता; "क्या कोई अवतार तो प्रकट नहीं हुआ है?" ग्रामों से निराश होकर अब दो-चार-पाँच कोस तक भी कभी यमुना के इस किनारे पर और कभी

उस किनारे पर और कभी-कभी सड़क पर वैसे ही जाकर चक्कर लगाता। काम वही, जो कोई मिलता उसकी बाहें देखता, कभी किसी की बाहों पर शक हो जाता तो काफी समय वहाँ पर ही खड़ा रहता और इस बात की प्रतीक्षा करता रहता कि कब बाहें लटकती हैं और वह इस बात का पता लगा सके कि घुटनों तक जाती हैं अथवा नहीं? इस समय यह बालक, जो पहले से ही बड़ा सीधा था, बावला सा दीखने लगता। पहले यह ग्रामों और सड़कों की ओर कम ही जाया करता था, वन में ही इसका समय व्यतीत हो जाता था, पर अब उसके बावलों की भाँति चक्कर को दूर-दूर की आबादी वाले लोग आश्चर्य से देखा करते और इसकी पूछताछ पर चकित हुआ करते।

चान्दो ने अपने स्वामी की इस इच्छा की पूर्ति के लिये इस प्रकार आवारा फिर कर कुछ दिन व्यतीत किये, पर कुछ पता न चला। ऋषि जी अब कमज़ोर हो रहे थे, जाड़ा हड्डियाँ तोड़ता था, कम्बल और मृगछाला तो थे, पर कमज़ोर को काफी जाड़ा लगता है। अंत में घटते-घटते वह दिन भी आ गया जब ऋषि जी सवेरे स्नान भी न कर सके और न ही उठ सके, लेटे हुये ही चान्दो से कहने लगे, 'बेटा! मेरा समय आ गया लगता है, तेरे हाथ-पाँव ठण्डे हैं; प्यारे बेटा! मेरे पश्चात तुम्हें मेरा काम अवश्य ही करना होगा।" चान्दो ने आगे होकर हाथ पैर देखे, तो सचमुच ही ठंडे थे, ठण्डे देखकर उसके अंदर सर्दी की लहर फिर गई; उदासी और निराशा का एक चक्कर आया। दो वर्ष हुए जब चान्दो की माँ मर गई थी, उसके भी हाथ-पाँव ठण्डे हुये थे, माँ के अन्तिम स्वासों का और सदैव के वियोग का वही समय आंखों के आगे आ गया। माँ इसी कालसी नामक ग्राम में रहती थी और आप पीसकर पेट भरती थी। वह काफी वृद्ध और निर्बल थी, पर आखिर चान्दो का मोह था, चान्दो का जगत दो पर ही खत्म हो जाता था, एक माँ, और दूसरा इन अपरस महात्मा ऋषि जी पर। आज बिचारे को जगत पर शेष रह गये अपने एक से मित्र के बिछड़ने का दिन आ गया। चक्कर खाकर चान्दो बाहर आया, आँसू आये, जिन्हें उसने पोंछा, फिर आग जलाकर, अंगीठी जलाकर अंदर ले आया, एक दो कम्बल और लपेट दिये और बाहर टीले पर चढ़-चढ़ाकर देखने लगा कि कहीं अब आ जायें। फिर जब अंदर आता तो ऋषि जी के हाथ-पाँव देख जाता अंत में जब दिन सात-आठ घड़ी बीत गया तो ऋषि जी ने अब बोलना भी बन्द कर दिया और हाथ पाँव हिलाने भी बन्द कर दिये। अब चान्दो ने देख कि उनके हाथ पाँव अब घुटनों और कुहनी तक ठण्डे हो गये हैं, तब अपने आप उसकी एक जगली चीस निकल गई, चौककर ऋषि के नैन खुल गये और धीमे स्वर में बोले: "आ गये।" चान्दो ने 'आ गये' का शब्द सुना, ऋषि जी के नैन बन्द हो गये, पर चान्दो के कानों ने फिर से सुना 'आ गये'। चान्दो चौंककर बाहर आया, उसने फिर सुना 'आ गये' फिर एक आवाज़ 'आ गये' की चान्दो के अपने मुँह से भी निकली जो पत्थरों से टकराकर बड़ी होकर वापिस आई 'आ गये'। अब चान्दो यमुना के पश्चिमी किनारे से पश्चिम की ओर बेतहासा वनों की ओर भाग गया, इधर-उधर देखा, पत्थरों के साथ पानी के टकराने के सिवाय और कोई आवाज़ न आई। वहशत की सी दशा में चान्दो न चारों ओर देखा और फिर उठ भागा। कोई थोड़ी-सी दूरी पर मनुष्यों की बोलचाल की आवाज़ आई, आगे बढ़ा तो समतल स्थान पर कुछ घोड़े बन्धे हुये थे, जिन्हें पानी पिलाया जा रहा

था और थोड़ी दूर पर कई मनुष्य थे, कोई भोजन बना रहा था, दो आदमी दरी बिछाकर चौपड़ खेल रहे थे। इन जैसे चेहरे उसने पहले क़भी नहीं देखे थे। उनमें से एक के चेहरे पर ऐसा प्रभाव और तेज देखा कि उसे शक हो गया कि न जाने यही है, पर वह अब बार-बार बाहों की ओर देखता और वे बैठे खेल रहे थे। उसे ऋषि जी की यह आज्ञा नहीं थी कि आगे बढ़कर कह दे कि मुझे बांहें लम्बी करके दिखाओ। इतने में एक बन्दूकची आगे बढ़ा और चान्दो से कहने लगा, परे हट जा यहाँ पर मत खड़ा हो। यह चान्दो के लिये नई बात थी, उसने यह कभी नहीं सुना था कि खड़े हुये को भी कभी परे हटाया जाता है। हट तो गया, पर नज़र वहीं पर रही और नज़र बंधती-बंधती उधर को ही बँध गई, पल-पल के पश्चात उस खिलाड़ी की ओर देखता। इतने में बाज़ी ख़त्म हो गई और वह उठ खड़ा हुआ, हाथ लम्बे हुये पर रानो तक ही रहे; चान्दो, ग़रीब चान्दो का मानो सर्वस्व लुट गया। अब अत्यन्त निराशा में उसे होश आया कि ऋषि जी का मेरी ग़रीब माँ की भाँति देहान्त हो गया होगा, न जाने उसकी भाँति प्रकाश-प्रकाश माँगते हों, यदि मैं पास होता तो दिया अथवा आग जला देता। मैं क्यों आ गया? यह कहते ही चान्दो को अंधेरे का एक चक्कर आ गया और फिर एक जंगली चीख निकली "आ गये", फिर और पश्चिम की ओर होकर खिलाड़ियों से दूर होकर आगे बढ़ा। इस समय कुछ सवार दक्षिण-पश्चिम की ओर से आ रहे थे। चार सवार तनिक पीछे थे, एक आगे था, चान्दो पीछे हटने लगा था, उसके ख्याल माँ की भाँति ऋषि जी की अंतिम हिचकियों की ओर लग रहे थे, कदम पीछे पड़ रहा था और नज़र आगे जा रही थी। सवार निकट आते गये, चान्दो के कदम ठठक गये, अगले सवार पर नज़र पड़ी तो कदम भागने लगे और दोनों हाथों से ताली सी बज गई "आ गए" की आवाज़ संगीत की लहर की भाँति अपने आप चान्दो के मुँह से निकली, पर एक पल के पश्चात फिर काला सा बादल उसकी भौंहों पर फिर गया, ठठक गया, सोच में पड़ गया, न जाने कौन हैं? मैंने अभी बांहें नहीं देखीं, न जाने ये भी कहेंगे 'परे हट जा', अपने आप ही परे हट जाऊँ। तनिक सा परे होकर दृष्टि जमाकर बैठ गया, इतने में वे आ पहुँचे, आगे बढ़ गये। घोड़े पर से उतरे और पहले बैठे हुए व्यक्तियों ने शतरंजी के ऊपर गद्दी सी बिछाकर आदर सहित सीस झुकाकर बिठा लिया। चान्दो भी पीछे ही आ रहा था, आकर खड़ा हो गया और बाँहों की ओर देखने लगा, नज़र के साथ अंदाजा लगाए, कभी अपने कंधे और कंधे से बाँहों की लंबाई देखे, फिर उनके कंधे से अंगुलियों तक की लम्बाई देखी, कभी-कभी अनजाने ही में कूदने लगता, कभी फिर निराशा की घटा उसकी भौहों में बल डाल जातीं, कभी एक कदम पीछे हट जाता कि कहीं कोई कह न दे कि 'परे हटा जा' और कभी अत्यन्त चिन्ता में पड़कर बांहें उछालकर गर्दन झुकाकर पीछे चल पड़ता, "ऋषि जी हिचकियाँ लेते होंगे, चलूँ, चलकर प्रकाश करूँ, कहीं वे चीख न रहें हों: "प्रकाश, प्रकाश हाय अंधेरा, हाय अंधेरा"। पर फिर किसी आकर्षण वश घर को जाता-जाता कदम पीछे हटाता और मन ही मन में कहता: हाय कब उठेंगे। कैसे ही उठें, पर मुझे तो हुकुम नहीं है कि कह दूँ खड़े हो जाओ, मुझे बांहें देखनी हैं। इतने में किसी ने उनसे आकर कहा कि जल तैयार है। आप उठकर हाथ धोने लगे। चान्दो कल

लालसा अब चान्दो को बुत बना रही है, नैन बांहों पर लगे हुये थे, मुँह खुलता और गोल होता जाता है। दोनों हाथ नीचे से उठते धीरे-धीरे ऊपर को कुछ गोलाई से आ रहे हैं, गालों से कुछ दूरी पर आकर खड़े हो गये हैं, नीचे से एड़ी तनिक-सी ऊँची उठ रही हैं, नैन नहीं झपकते, सारे शरीर का उठान उठा सा हुआ है, स्वास धीमा, मानो आ ही नहीं रहा है। उधर हाथ धोये गये, खड़े-खड़े ही मुँह धुल गया, तौलिया आया, मुँह पोंछा गया, अभी हाथ लम्बे नहीं हुये, चान्दो उसी तरह लालसा किये हुये आशा कि मूर्ति बना खड़ा है कि इतने में हाथ लम्बे हो गये। ओह! हैं, हाथ सचमुच घुटनों तक जा पहुँचे। चान्दो की जंगली चीख एकदम निकली, 'आ गये' और दो चार चक्कर, खाकर नाच उठा और हाथों से ताली बज गई। अब चान्दो होश भूल चुका था कि ऋषि ने क्या कहा था और ऋषि की अब क्या दशा होगी। अंदर आनन्द आया, बेबस आगे बढ़ा, परे हटाये जाने का डर, भय, अथवा संशय कोई न रहा। आगे बढ़ा एक प्यार, एक आनन्द, एक प्रसन्नता चेहरे पर थी, आगे बढ़ा और घुटने टेककर आपके दाएँ हाथ की भली भाँति पकड़कर उनके घुटने से लगाकर, तनिक खींचकर और फिर लगाकर, मानो मिनकर, देखकर कहने लगा 'ठीक है जी ठीक है।' फिर गर्दन ऊँची करके किसी चाह भरी आवाज़ में बोला, 'आप हैं न जी, आप हैं? है न जी'। 'आप बोलते नहीं हो जी, जी हाँ! हमने पहचान लिया है जी, आप ही हैं न जी, वे जी अ अ अ अ, आप ही न जी, वे जी आप।' 'हैं जी अ अ अ अ आप? 'हैं जी अ अ अ अ आप आप हैं न आप, बड़े-बड़े जी नहीं आप ही हैं न' (आँखें नीची करके बन्द कर करके) आप ही हैं न औतार, अतार, जी बड़े हैं न जी (आंखो में फिर प्यार भरकर और ऊपर देखकर) जी आप हैं न गु गु गुरू जी, जी हाँ हाँ हाँ, गुरू हैं न आप, उतार···नहीं जी! हाँ सच जी गुरू अवतार आप ही हैं न जी, बताइए न जी गुरू अवतार आप हैं न जी?"

वह मृदुल मूर्ति जिसके साथ यह स्वतन्त्रता ली जा रही है, जिसके साथ मानवीय कुदरती वास्तविक भोलेपन में यह प्यार हो रहा है, तनिक सा सिर झुकाये हुए सीधी खड़ी, हाथ को उन हाथों में ढीले-ढीले छोड़ कर खड़ी है, आँखों में एक हल्की सी मस्ती और प्यार है, चेहरे पर मन्द गुलाबी दमक है, होंठ अधमुँठे हैं और उन पर एक छोटी-सी मुस्कान है। भौहें बता रही हैं कि भोले चान्दो के प्यार और लालसा के रस का अनुभव कर रही हैं।

चान्दो—जी, बताइए न जी! आप ही न बड़े अवतार? जी मैं भूल गया हूँ, फिर भी बताइए न जी, बताइए न, बताइए जी मैंने पहचान लिया है। वह·····(ताली बजाकर और उठकर) हां जी हां यही हैं।

अब एकाएक चान्दो का चेहरा ढीला पड़ गया, भौहों पर काली घटायें छा गईं, फिर घुटने टेककर, बृद्ध होकर आवाज़ सहमभरी धीमी करके, "लीजिए जी, सन्देश ले लीजिये, कालसी वाले ऋषि जी का सन्देश है जी, जी वे आपको जानते थे जी, दर्शनों के लिये तरसते थे जी, वे (आंसू बहाकर) जी वे अब अवश्य ही मर गए होंगे, जी इतने ही समय में मेरी माँ भी मर गई थी। वे मुझे कह गये थे कि जिसकी लम्बी बाहें घुटनों तक लम्बी चली जायें, जिसका कद लम्बा, शरीर पतला, नई-नई आई हुई दाढ़ी और सिर पर केश

और नाम बड़ा 'गुरू अवातार' जी हो, उनकी खोज करके तलाश करूँ, उन्हें मेरा संदेश दे देना। सन्देश ले लीजिये जी।" एक क्षण के लिये आँखे मूँदकर चान्दो ने सन्देश का एक-एक अक्षर याद किया। इस समय शतरंज खेलने वाले तथा दो चार अन्य व्यक्ति पास आ गये। चान्दो ने दोनो हाथ निकाले और मुट्ठी बंद कर ली और ठोड़ी उन पर टिका ली, दृष्टि चेहरे पर जमा ली और कहने लगा:

"एक लालसा भरा तपस्वी, यमुना के किनारे पर दर्शन की खोज में ही चल बसा हे, उसके घुटने चल नहीं सकते थे कि वह स्वयं खोज करवाता। उसके पास धन नहीं था (ठहरकर) कि आपकी खोज करवाता। उसके पास मनुष्य नहीं थे जिनके द्वारा वह पता लगवाता–जी जी जी हां उसे झलक पड़ती थी और आवाज सुनाई देती थी, वह तड़पता था, लालसा करता था, व्याकुल होता था, यों व्याकुल होता, राह देखता, आशाएँ भरकर चला गया है, उसकी सहायता करना।"

मृदुल मूर्ति के नैन बंद हो गये, चान्दो के दोनों हाथ उन्होंने अपने हाथों में दबा लिये, चेहरा शान्त और सफेद हो गया, त्रिपुटी में एक अदृष्ट सा बल पड़ा, चान्दो के शरीर में एक झन्नाहट सी आई, कुछ पलों के पश्चात नैन खुले और साथ 'संगीत की लहर' वाले होंठ खुले:–

बेटा! क्या ऋषि जी की मृत्यु हो गई है?

चान्दो–और नहीं तो क्या जीवित हैं?

मृदुल मूर्ति–ठीक?

चान्दो–जी मेरी माँ तो इतने समय में कभी की मर चुकी थी।

मृदुल मूर्ति–ठीक?

चान्दो हाथ छुड़ाकर धूप में जा खड़ा हुआ, अपने आपको सूर्य के नीचे करके ऊपर की ओर फिर अपनी परछाई की ओर देखकर मानो गिनती कर रहा है, फिर निकट आ गया, जी अब देखिए दोपहर ढल गई है, तीसरे पहर का भी आधा पहर गुज़र गया है, हाथ पाँव ठण्डे होने के बाद मेरी माँ ने एक पहर ही लिया था, और यह समय तो कभी का व्यतीत हो गया है। हो जी ऋषि जी की मृत्यु हो गई, लो मैं जाता हूँ, मुझे जाकर उनके शरीर का जल में बहाना है, उनकी आज्ञा थी, सन्देश तो आपने ले लिया है जी, कहिए न आप ही हैं न जी, हैं जी?

मृदुल मूर्ति (उत्तर की ओर देखकर)–नहीं रे भोले। ऋषि जी नहीं मरे हैं। (पीछे को देखकर) राजा जी! चलो तुम्हारे सिर पर ऋण है, चलो, भोजन को आज रहने दीजिए, दूध पीएंगे।

कूच।

राजा जी तो तैयार होते ही थे, अपने घोड़े पर सवारी की, जिसे दास सदैव तैयार करके खड़ा रखता था, दूसरे सवार को संकेत किया, उसने चान्दो को अपने आगे बैठा लिया और उससे रास्ता पूछते हुए तेज चाल से चल दिये।

: ६ :

वन का मार्ग तय करके अंत में कुटिया के पास जा पहुँचे। चान्दो घोड़े से उतर गया, काटों के बाड़े का जंगला खोला, आगे कुटिया में तख्तपोश की भाँति एक लकड़ी का

तख्ता बिछा था, जिसके ऊपर पुरानी, किसी भयंकर सिंह की खाल बिछी हुई थी, इसी के ऊपर ऋषि जी लेटे हुये थे, उनके ऊपर कम्बल पड़े थे, धूप चाहे सर्दी की थी, पर बंधी हुई पड़ रही थी, मृदुल मूर्ति ने आगे होकर कम्बल उठाया, कलाइयों को और पिंडलियों को हाथ लगाया, ठण्डी हो रही थीं, माथा भी ठण्डा था, स्वांस आता नहीं लगता था, मुर्दनी छा रही थी। चान्दो (आगे बढ़कर और आँखे मूँदकर) बस वैसे ही मेरी माँ की भाँति मर गये। (रोकर) मैंने ऋषि जी के लिए प्रकाश भी न किया, तुम प्रकाश मांगते होंगे, पर जी मैंने सन्देश पहुँचा दिया है। फिर रोने लगा।

इस भोली, निश्छल, दिली लच्छों, और टेढ़ी चालों से खाली प्रीति को देखकर मृदुल मूर्ति जी सजल नेत्र हो गये, पर अभी आपके माथे पर एक बल था और हाथ अब ऋषि जी की छाती पर था जोकि अभी गरम थी। इस गर्मी को देखते ही आप तखत पर चढ़ गये और सिर की ओर बैठकर अपनी अंगुलियों से ऋषि जी के तालू को दबाने लगे। इतने में बाकी के साथी भी पहुँच गये। चान्दो बहुत ही चकित हुआ। कोहनियों को छाती के साथ लगाकर, मुट्ठी बन्द करके ठोड़ी के नीचे देकर खड़ा देख रहा था।

बाहर से आया व्यक्ति–गुज़र गये, आह! बहुत ही भले थे।

मृदुल मूर्ति–राजा जी! नहीं, अभी प्राण नहीं गये, चरणों की ओर बैठ जाओ, एक चरण को पकड़कर रगड़ो साहब चन्द! तुम सब दूसरा चरण और दोनों हथेलियों को एक-एक व्यक्ति पकड़ लो और गरम कपड़े के साथ धीरे-धीरे रगड़ो।

जब यह सेवा होने लगी तब थोड़ी देर के पश्चात धीरे से ऋषि जी की आंखें खुलीं पर अपने आप बन्द हो गईं।

चान्दो–मेरी माँ ने इसी तरह एक बार आँखे खोली थीं और फिर नहीं खोली थीं।

थोड़ी देर के पश्चात आँखें फिर खुलीं और होंठ भी हिले। तीसरी बार फिर खुलीं और आवाज आई 'आ गये'।

पैरों और हाथों को रगड़ने वालों ने बताया कि कलाईयाँ और पिंडलियाँ गर्म हो गई हैं, हाथ अभी ठण्डे हैं। मृदुल मूर्ति ने ऋषि जी के सिर के नीचे वाले घास के तकिये को निकाल दिया और अपनी रान सिर के नीचे देकर सिर को गोद में ले लिया। अब फिर आँखें खुलीं, आवाज़ आई, "चांदो बेटा! क्या कोई आया है? हैं, मेरे सिर में यह प्यार का आकर्षण कैसे हो रहा है? हैं, मेरे शरीर में यह कैसी रौ रुमक रही है। रगों में पतली लहरें, छातीं में पतली लहरें कहां से उठकर हर ओर फैल रही हैं? यह क्या हो रहा है?" पैरों और हाथों वालों की ओर देखकर, "तुम कौन हो? क्या करते हो, चांदो कहाँ है?"

चान्दो (आगे होकर)–ऋषि जी! वहीं हैं, मिल गए हैं, मैंने खोज लिये हैं (ताली बजाकर)।

पर ऋषि के कान अभी सुनते नहीं थे।

थोड़ी देर के बाद एक आसान सा लम्बा स्वास लेकर ऋषि ने आँखें उठाकर ऊपर को देखा, इस समय मृदुल मूर्ति ने झुककर उसके मस्तक को चूम लिया।

वाह तेरे बलिहारी, अदेश के दाता! नीचे उतारे हुये, मौत की मुर्दनी छाया वाले माथे को तेरे बिना कौन चूमे? जिस समय माँ तथा पिता को चूमते हुये घृणा आए उस समय

तेरा ही एक असीम प्यार है जो उछलता है, तेरा ही प्यार है जो रूहों को चूमता और माथे को चूमता है। हाँ जी, मर रहे ऋषि के अन्दर, स्वांसहीन देह के अंदर कोई प्यार का उछाल आया, सारी उम्र प्रतीक्षा की, क़ुदरत से रुष्ट हुए ऋषि के अन्दर जो प्यार की शहनाई में फूँक मार दी गई थी उसका उछाल आया, मृदुल मूर्ति का बांया हाथ जो उनके अपने ही घुटने पर पड़ा था, उसे उसने अब अपने गरम हुये हाथ से पकड़ लिया, हां जी, चूम लिया, आँखों पर रख लिया, फिर माथे पर रख लिया, फिर छाती पर रखकर हाथों में जितना बल आ गया था, उतना बल लगाकर हाथ को अपने हाथों से छाती पर रखकर दबा लिया।

अरे प्यार–दैवी प्यार–में आए ऋषि! तेरा तो पिंजड़ ही बाकी है, मृदुल हाथों को सख्त हड्डियों से क्यों दबाता है? पर नहीं, उस मृदुल मूर्ति को, इस वलवले का, जो उसने बुझ रहे दिये में जला दिया है, स्वाद आ रहा है। आप प्यार झन्नाहट छेड़ता है, आप ही उनका लोभी बनकर आनन्द में आता है और अधिक दया करता है। धन्य है यह स्वरूप, यह दयालु स्वरूप, यह रक्षा करने वाला स्वरूप, यह तुष्ट होने वाला दीनों का मित्र, दर्द से दुखी हो रहे लोगों का दाता, दुखियों का मित्र स्वरूप, धन्य है, धन्य है, धन्य है, सदैव टिके रहो, सदैव टिके रहो प्यार करने वाले हृदयों में।

ऋषि जी को स्वाद आ गया। होश आ गया। शक्ति लौट आई। हाँ, रस आ गया, ऐसा रस जो सारी आयु के हठों तपों में नहीं आया था, ऐसा रस तो विद्या पढ़ने और पढ़ाने में भी नहीं चखा था। वह घुटनों तक पहुँचने वाला हाथ एक ऋषि जी के सीस पर रखा है और तालू वाले स्थान पर प्यार कर रहा है, एक हाथ छाती पर रखा हुआ है और उसे ऋषि जी प्यार कर रहे हैं, वह हाथ 'प्यार रूह' फूंक रहा है। वाह–वाह प्यार का नज़ारा, वाह–वाह भक्ति का नक्शा! सारे इसका रस ले रहे हैं, पर चान्दो जितनी खुशी तो किसी को भी नहीं है कि आह हा! कि वे घुटनों तक लम्बे हाथ दोनों हाथ ऋषि जी के सिर और उनकी छाती पर प्यार दे रहे हैं, दोनों हाथ ऋषि जी के पास हैं, ऋषि जी ने देख भी लिया है, जीवित भी हो उठे हैं। दो चार बार उसका जी अधीर होकर उछला, कि वह इन्हें चूम ले, पर फिर रुक जाता रहा कि ये हाथ ऋषि जी में प्राण भर रहे हैं, भर लें मुझे अधीर नहीं होना चाहिये, पर अपने इस अधीरपन को रोकता हुआ चान्दो थरथर कांपने लगता।

अब ऋषि जी के मुँह से 'शुक्र' का शब्द निकला, फिर आँखें ऊँची करके देखा जो रूप उसने देखा उसे सहन न करके आंखें फिर बन्द कर लीं, पर मुँह ने फिर कहा 'शुक्र! 'शुक्र!! शुक्र!!!' मृदुल मूर्ति ने आवाज़ दी–निहाल! निहाल! कहो 'वाहिगुरू'।

बेबस होकर स्वाद में और इस दर्शन के ईश्वरीय स्वरूप में साथ वाले पाँच सिक्ख मधुर ध्वानि में गा उठे:–

मिरतक कउ जीवालनहार॥
भूखे कउ देवत आधार॥
सबर निधान जाकी द्रिसटी माहि॥

पुरब लिखे का लहण पाहि॥
सभु किछु तिसका ओहु करनै जोगु॥
तिसु बिनु दूसर होआ न होगु॥
जपि जन सदा सदा दिनु रैणी॥
सब ते ऊच निरमल इह करणी॥
करि किरपा जिस कउ नामु दीआ।
नानक सो जनु निरमलु थीआ॥७॥ [सुखमनी अ: १५]

ऋषि जी के रोम-रोम में वाहिगुरू जी की ध्वनि टंकार दे रही है, रस और खींच स्वाद और उमाह उछाले मारते हैं, एक ऊँचाई का प्रवाह चलता है, कहता है 'सचमुच आ गया, यह अवतार ठीक ही गुरू अवतार है, यह कोई झलक नहीं थी, सच था, अरे भिखारी! तू धन्य हो गया है, वाहिगुरू"। हाँ जी अब ब्राह्मण को होश आया कि मेरी कुटिया में अवतार आये और मैं प्रणाम भी न करूँ? साहस बाँधकर उठा, पर मृदुल मूर्ति ने रोक लिया, थाम लिया, गले से लगाकर कहा: "अभी ठहरो, शक्ति भरने दो, प्यार में समाए रहो।"

ऋषि जी के अंदरले उमाह और उछाल, रस और आनन्द, स्मरण के प्रवाह और रंग: अंतस में एक आपे में आपें। गुम सी दशा में पड़ गये। आप बेसुध नहीं हो गये, डूब नहीं गये, पर गुमता लीनता के आपे में समा गये। कुछ काल के बाद फिर आपको मानो होश आया। अब क्या रंग था? यह कि मैं किसी अत्यन्त सुन्दर स्वाद में डूब गया था, जिसमें डूबने के बाद पता भी नहीं चला कि वह क्या था। उसका क्या नाम रखूँ? पर अब पता चलता है कि वह सदैव रहता और मैं उससे वापिस न लौटता, यह जो दोबारा उसी दशा में जाने की इच्छा है, इससे पता चलता है कि वह परमानन्द था, वह द्वन्द्वातीत रस था, वह, हां, वह जहाँ पर था, वहां पर बस वाह वाह वाह वाह तू गुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाह वाह।

इस समय उस कृपालु के ईश्वरीय कण्ठ से दैवी नाद हुआ, जिससे सारा स्थान गूँज उठा:—

एक चित जिह इक छिन धिआइओ।
काल फास के बीच न आइओ।

यह सुनकर ऋषि अब उल्टा होकर चरणों पर झुक ही गया, दाता ने, हाँ जी कल्ग़ियों वाले प्यारे दाता ने माथा अपने एक हाथ पर लेकर दूसरे के साथ सिर पर प्यार किया और कहा: "ऋषि जी! जागो, जीवित होवो, जीवन मुक्ति का रस लो।"

वह दाता! तेरी मेहर! इस समय राजा का डेरा भी आ पहुँचा था। रसोइये के पास एक डिबिया थी, जिसमें अंबर, केशर और कस्तूरी मिला कर रखे हुये थे। राजा ने विनती की कि एक रत्ती भर यह दे दें, जिससे कि बल भर आये।

'गुरू अवतार' जी, 'मृदुल मूर्ति' जी, 'मिरतक कउ जीवालनहार' जी बोले:—

"सुरति लौट आई है, कष्टों के नीचे से निकलकर और खिलकर गरम हो रही है ज्यादा गरम वस्तुओं की ज़रूरत नहीं है, दूध का एक घूँट दे दो, अब यह प्यार की गरमी

में है।" दूध का नाम सुनकर चान्दो को चाँद चढ़ गया, वह तो कब का हाथों को देख रहा था कि वे जब भी खाली होंगे, उन्हें चूम लेगा, पर ऋषि जी के लिये 'दूध' की आवाज़ उसकी सारी सुध को एक उछाल देकर उठाकर ले गई, पलों क्षणों में काली गऊ का दूध निकालकर ले आया। कटोरी में डालकर आगे बढ़ाया, उस 'आजान बाहु' (घुटनों तक लम्बे हाथों वाले) प्यार स्वरूप ने आप ही कटोरी को ऋषि जी के मुँह के साथ लगाकर कहा 'पीओ मेरे ईश्वर के प्यारे'! ऋषि ने, सौ वर्ष के बुड्ढे ने, कुमारावस्था के जवान, पर मां से भी अधिक प्यारे हाथों से दूध पीना शुरू किया। एक-एक घूँट अमृत का घूँट था, एक-एक घूँट रस का घूँट था, जो धीरे-धीरे कण्ठ से नीचे उतरता हुआ जीवन जड़ी की भाँति चला गया। गरम-गरम, ताज़ा-ताज़ा प्यारे चान्दो द्वारा निकाला गया दूध, ईश्वरीय प्रवाह वाले हाथों का प्यारा दूध, ऋषि के शरीर में प्राण डाल गया। दूध पीकर कुछ समय के पश्चात ऋषि उठकर बैठ गया। शुक्र, शुक्र, शुक्र, अरदास, प्यार और आकर्षण से गर्दन झुक-झुक जाती है और स्वाद पर स्वाद आ रहा है। राजा जी ने तकिया मँगवाकर सहारा देकर बैठा दिया। कल्ग़ीधर महाराज जी अब तखत से उठ बैठे, चान्दो की ओर देखकर बोले, "बेटा! हमें भी दूध पिलाओ, हम ऋषि के घर में मेहमान आये हैं। वे निर्बल हैं, तू उनके स्थान पर हमारी पहुनाई कर, ला मेरे बेटे! दूध ला।"

चान्दो तो किसी और प्रतीक्षा में खड़ा था, उसकी दृष्टि हाथों पर जमी खड़ी थी। उसने आज्ञा सुन ली थी और प्रसन्न भी हुआ था 'दूध भी लाता हूँ' का विचार भी था, पर पहले से बाँध रखे मन के लक्ष्य से न हिला, चौंककर दाईं ओर को जा पड़ा, जैसे कोई जंगली पशु उछल पड़ता है। दोनों हाथों में हाथ लेकर चूम लिया। चान्दो ने भूमि पर घुटने टेक रखे हैं, गर्दन उठी है और आंखें ऊपर को देखती हैं। किसी लालसा, किसी चाह, किसी अरूक स्तुति के भाव से बावला हो-होकर बार-बार चूमता है, फिर उसी स्तुति, उसी कीर्तन के रस प्यार के उछाल में आँखें उठाकर देखता है।

कृपालु गुरू जी ने भी अपनी नज़र उसकी नज़र में गाड़ी, चान्दो नहीं समझता कि उसके अंदर क्या है और वह किसकी चाह कर रहा है, पर दाता समझ रहा है कि इस भोले की आत्मा मूकता में क्या माँग रही है और उसी मूक बोली में दाता दे रहा है। बावला हुआ चान्दो, "आजान बाहु" हाथों को चूमता है, और फिर आंखों की ओर देखता है और ज़्यादा-से-ज़्यादा स्तुति श्लाघा में प्यारे के हाथों को नहीं छोड़ता।

इस दीन बन्धु मूर्ति के दर्शन करना। हाँ, इस प्यार मूर्ति के दर्शन करना, किनारे, ग़रीब, कंगाल, ग्वाले के पुत्र, सीधे-सादे नीम पागल, पर किसी स्तुति श्लाघा के रंग में आ गये ग़रीब पर किस तरह तुष्ट हो रहे हैं? जो अक्षर उस ईश्वरीय दृष्टि न पाये, जो शब्द उन ईश्वरीय ज्योति वाली आँखों ने पढ़ाए, उनको चान्दो की सादा दिल तख्ती, चान्दो की स्वच्छ और नवीन आत्मा पढ़ गई, उसके अंदर कोई झन्नाहट आई, कोई रस भर गया, रोमों में गुद्गुदी हुई, जिह्वा को कोई फरकन सी लगी, होंठ हिलने लगे:—वाह! वाह! वाह! की ध्वनि उठी, चान्दो के नैन बन्द हो गए, सिर अचल खड़ा हो गया, हाथ सुन्दर हाथों से चिमटे रहे।

'वाह-वाह' की ध्वनि गूँज रही है। राजा, मन्त्री, पांचों सिक्ख जो साथ आये थे, सभी कौतुक देख रहे हैं, चान्दो कह रहा है, 'वाह! वाह! वाह!'

चान्दो चुप हो गया, फिर होंट हिले:-

'वाहिगुरू! वाहिगुरू! वाहिगुरू!'

अब दाता ने सिर पर हाथ फेरा, ऊँचा उठाया, छाती से लगाया। कहा, "निहाल मेरे चान्दो राय!" इस समय सारे सत्कार सहित खड़े थे। बेबस ही सिक्खों के मन एकाग्र हो गये और प्यारे मीठे स्वर में यह शब्द गया:-

मोहि निरगुन सभ गुणह बिहूना।
दइआ धारि अपुना करि लीना॥१॥
मेरा मनु तनु हरि गोपालि सुहाइआ॥
करि किरपा प्रभ घरि महि आइआ॥१॥
भगत वछल मै काटनहारे॥
संसार सागर अब उतरे पारे॥२॥
पतित पावन प्रभ बिरदु बेदि लेखिआ॥
पारब्रहमु सो नैनहु पेखिआ॥३॥
साध संगि प्रगटे नाराइण॥
नानक दास सभि दूख पलाइण॥४॥

अब चान्दो राय के नैन खुले, हाथ जुड़े, सत्कार सहित खड़ा है और दाता कह रहा है-"बेटा! दूध पिलाओ।"

मटका लेकर किसी रस के रंग में झूमता और लहराता हुआ, कभी अंदर से उछलता, कभी रस रंग भरे नैन भर लाता हुआ अपनी लाड़ली गऊ के पास गया, तीन गऊओं का दूध निकाला, लाकर आगे रखा। सृष्टि के अन्नदाता ने, सवेरे से भूखे रह रहे तृप्तावनहार ने दूध लिया, कटोरे भरे, सिखों को, राजे को, मन्त्री को-सबको दूध बाँटा, आप पिया, चान्दो राय को पिलाया, दो घूँट ऋषि जी को भी दिया।

अब सूरज लटपटा रहा था, ऋषि अब स्वस्थ हो रहा था। साँझ हो गई। राजा ने तो रात अपने तंबू में गुज़ारी, पर सच्चे पातशाह जी ने मृग चर्म पर कुटिया में ऋषि और चान्दो राय के साथ काटी। दिन चढ़ने पर उतरी हुई यमुना के निर्मल नीर में स्नान किया, राजा अशोक की चट्टान के दर्शन किये, आसपास के बौद्ध मठों के निशान, टूटे-फूटे पत्थर देखे, फिर कूच की आज्ञा की। ऋषि जी को आज्ञा हुई कि उन्हें साथ लेकर चलेंगे हमने पाँवटा का निर्माण किया है, उन्हें वहाँ पर रखेंगे"।

ऋषि-हे दाता! आज्ञा में रस है, पर मैं बुड्ढ़ा आपके द्वार पर सेवा करने की अपेक्षा एक बोझ बन जाऊँगा।

गुरू जी-परसों हमारी वर्षगांठ है। सिखों ने यह पर्व मनाना है, संगत हमें कोई सौग़ात देगी और हम साधु संगत को एक सौग़ात दिखाएँगे और वह सौग़ात तू होगा। तू बोझ नहीं,

अपित सौग़ात होगा। तेरा अंत हमारी आंखों के सामने होगा, तेरे अन्त को हमारे हाथ संवारेंगे, तू मिला है और अब बिछड़ेगा नहीं।

चरणों पर सिर रखकर रोम-रोम में शुक्र-शुक्र भरकर साथ लाई हुई पीनस में ऋषि को सवार किया गया। कुटिया को विदा दी और पांवटे को कूच कर दिया।

चान्दो, सतगुरू जी का चान्दो राय खड़ा है, हुकुम की प्रतीक्षा कर रहा है। दाता जी ने मुस्कारकर कहा "चान्दो तू यहीं पर रह दूध पी और आनन्द ले"। चान्दो के नैन झुक गये, छम-छम बरसने लगे, हाथ अपने आप लम्बे होकर बँध गये, सिर झुक गया। उसकी भावना जो जिह्वा द्वारा निकलना नहीं जानती थी, उसे सतगुरू जी समझते थे, फिर कहने लगे, 'बोल चान्दो बेटा तू क्या चाहता है?'

चान्दो को एकाएक पहले की भाँति एक जंगली उछाल आया, जाकर फिर से हाथों से लिपट गया और छोटे से लाड़ले बालक की भाँति अत्यन्त लाड़ में बोला, "आप चलिए मैं गऊएँ लेकर पीछे-पीछे आता हूँ, पाऊँटे में गऊएँ चराया करूँगा, दोनो समय दूध निकालकर आप जी को पिलाया करूँगा और ऋषि जी को पिलाया करूँगा, और इन हाथों के दर्शन किया करूँगा। (महाराज के हाथों को अपने हाथों में पकड़कर और चूम कर) जी देखा करूँगा, क्यों जी हैं जी?"

सतगुरू हंस पड़े और कहने लगे, "सत्य वचन! दूध तेरे से ही पियेंगे।"

सतगुरू जी ने गऊओं की रक्षा के लिये दो सवार साथ दिये और कालसी के ऋाष जी की और उस स्थान के शायद अन्तिम ऋषि जी की कुटिया से कूच कर दिया।

सतगुरू जी वर्षगांठ पर पहुँचने की चाह रखते थे, बेअन्त संगत आई थी, माता जी की लालसा का भी ध्यान था, पर ऋषि जी के कारण और मार्ग विषम होने के कारण एक रात रास्ते में रहे और अगले दिन पहुँचे। आगे सप्तमी का दिन व्यतीत हो चुका था, संगतें निराश हो रही थीं, पाँवटे के दुर्ग में प्रवेश का भी यही दिन था सारे उत्साह पर उदासी छा रही थी कि सूरज के प्रकाश की भाँति कृपालु गुरू जी पहुँच गये, वही सप्तमी का दिन बना दिया गया, संगतों से कहने लगे-"थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई"-जिस दाता द्वारा वार और तिथियाँ बनी हैं, वह दाता हमें अपने कार्य के लिये ले गया था, सप्तमी हो तब, जब सप्तमी की कोई सौग़ात हो। अत: सौग़ात हमें वाहिगुरू ने परसों दी थी और हम उसे लेकर आज पहुँचे हैं। ईश्वर की ओर से सप्तमी आज हुई है, जब अकाल पुरुष के लिये, नौ गुरुओं के लिये, साधु-संगत के लिये सौग़ात लेकर एक तड़पती हुई आत्मा को चरण कमलों के साथ जोड़कर हम ला सके हैं।" महाराज के इस उच्च प्यार वलवले पर संगतें और परिवार निहाल हो गये और पाँवटे मन्दिर का प्रवेश वाहिगुरू की कीर्तन रंग में उस दिन मनाया गया।



११ शेर और इन्सान दोनों पर भारी

शारीरिक और मानसिक बल का कमाल

कालसी के ऋषि का उधार करके जब गुरू जी पाँवटे पहुँचे और गुरू का पर्व मनाया जा चुका, तब महाराज जी के उपदेश, प्यार, नाम दान की धूम दूर निकट दोनों दूनों और पहाड़ी देशों में फैल गई। आपके ऐश्वर्य, प्रताप और वीरता की कथाएँ चल पड़ीं। सतगुरू जी ने पाँवटा नया नगर बसाया था, इसके निकट जंगल में एक मारू शेर रहा करता था, यह शेर बड़ा भंयकर और आदमखोर था, कहते हैं कि इसका रंग सफ़ेद[१] और क़द बड़ा था। जब यह पशुओं और मनुष्यों पर एकाएक आकर पड़ता था तब ऐसे लगता था कि मानो धरती में से निकल कर आया है, इलाके के यात्री और ग्रामों के लोग बहुत दुखी थे, इसलिये राजाओं के पास पुकार होती थी कि इससे रक्षा की जाये। एक बार जब श्री नगर (जो गंगा के किनारे पर है) का राजा फतह शाह आया हुआ था, तब यह पुकार गुरू जी के पास आई थी। गुरू जी ने झट ही तैयारी कर ली और नाहन के राजा मेदनी प्रकाश और फतह शाह को साथ ले लिया, नन्द चन्द आदि शूरवीर भी साथ ले लिये और वन में, जहाँ पर टोह लगाने वालों ने शेर का ठिकाना बताया था, वहाँ पर जा पहुँचे। शेर इस समय अपने ठिकाने पर था। इसकी भंयकर सूरत को देखकर दूर से ही कम्पन छिड़ जाता था। सतगुरू जी ने फतह शाह को चुनौती दी, पर उसने कहा कि आप ही इसको मार सकते हैं, पहले कई लोग इसको मारते-मारते आप मर चुके हैं, यह बुड्ढा जयद्रथ है, मारता है पर मरता नहीं है। मेदनी प्रकाश ने कहा, "गुरू जी! आप क्यों आगे होकर इस निर्लज्ज पशु के साथ जूझें। मचानों का ठिकाना बना पड़ा है, या हाथियों पर बैठकर चारों ओर से गोलियों, तीरों से मार दिया जाये तो अच्छा है", पर सतगुरू जी ने कहा, "नहीं हम इसे हाथों हाथ लेते हैं"। यह कहकर घोड़े पर से उतरकर गैंडे की एक ढाल और एक तेज तलवार लेकर निहथे (अकेले) ही आगे बढ़े और शेर को चुनौती दी। शेर एक भयंकर गर्ज देकर और एक टेढ़ा चक्कर देकर उछलकर पड़ा, जिसे सतगुरू जी ने टेढ़े होकर आगे बढ़कर अपनी ढाल पर ले लिया ओर नीचे से तलवार फेरकर उसका पेट चीरकर धरती प्र दे मारा। इस शूरवीरता, जान को खतरे में डालकर दिखाई गई बहादुरी पर राजे और वीरों में एक हैरानी और प्रसन्नता का तहलका मच गया। एक ओर इस प्रकार की बहादुरी की और दूसरी ओर ऋषियों के सुधार की कथाएँ दूर-दूर तक पहुंचीं।

---

१. इसकी मूर्ति नाहन के गुरुद्वारे में रखी बताई जाती है।

२. जयद्रथ महाभारत का एक शूरवीर था जिसने पांडवों के कुल के अभिमन्यु आदि पुत्रों को मार दिया था। कहावत है कि यह शेर मरकर बीच में से वही जयद्रथ निकला था और इसका कल्याण हुआ था। इसे अर्जुन ने मारा था।

पाऊँटे से सात आठ कोस की दूरी पर एक पुराना नगर, जिसका नाम सढ़ौरा है, जिसका पुराना नाम साधावर है, और किसी समय साधुओं का ठिकाना था[१]। इस जगह पर एक खानदानी फकीर रहता था, जो जागीदार भी था और बड़े ऐश्वर्य वाला भी था। मुरीदों के गण के गण उसके द्वार पर आते थे। यह सज्जन गुरू घर के नाम, पते से जानकारी रखता था, गुरू नानक देव जी की गद्दी को भी जानता था, गुरू तेग़ बहादुर जी के बलिदान के बारे में भी सुन चुका था उसे इस बात का भी पता था कि उस ईश्वरीय सौंदर्य गुरू नानक देव जी की गद्दी पर एक अठारह वर्ष का ईश्वरीय सौंदर्य कुमार है। जब से गुरू जी पाऊँटे में आये थे, तब से निकट आ जाने के कारण प्रतिदिन की खबरें उसके कानों में पड़ती थीं। एक ओर उसने यह सुना कि राजा मेदनी प्रकाश और फतह शाह के बीच में आपकी ही कृपा से युद्ध होते-होते रह गया है, दूसरी ओर आपको दिन रात युद्ध की तैयारी में लगे रहने की खबर भी सुनी। एक ओर प्रसिद्ध शेर जयद्रथ को मार देने की बात सुनी, दूसरी ओर एक सौ वर्ष से पुराने वृद्ध तपी पर प्रसन्न होने, उस भारी पण्डित और तत्ववेत्ता को वाहिगुरू के रंग में रंग देने का हाल सुना। इस प्रकार यह फकीर जिसका नाम बुधुशाह करके प्रसिद्ध था, ऐसी बातें सुन-सुनकर चकित हो जाता। उसे इन बातों का पता लोगों के मनो से और जिहवों से चलकर ही नहीं होता था, अपितु उसके खास-खास मिलने वाले उसे आँखों देखी बातें आकर बताया करते थे, जिन पर संशय करना तो कोई अर्थ नहीं रखता था। उसकी अपनी मानसिक दशा यह थी: पीरी का ऐश्वर्य पाकर भी उसने अभिमान धारण नहीं किया बल्कि नेकी, तप हठ में लगा रहता था। पूर्वजों की ओर से भी कुछ प्राप्त हुआ था, पर आप भी सूफियों की संगत करता रहा और चिल्ले आदि काटकर तप करता रहा था। उसे ध्यान की एकाग्रता प्राप्त थी और वह ध्यान एकाग्र होकर चेलों की सहायता और कई करिश्मों पर व्यय होता था। इसके पास भी आये-गये फकीर, योगी आकर ठहरा करते थे, पर इसके अंदर एक बात यह खटकती थी "कि इन्द्रियों को तो शक्ति मन देता है और मन दृष्टमान में लगता है, इन्द्रियों मन की शक्ति के बिना जड़ हैं और मन एक और इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध रखता है पर दूसरी ओर कोई शक्ति है, जिसके साथ इसका मेल है। यह वह शक्ति मन ही है बस, और यदि वह कुछ और है तो मन पर वह एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालकर ऐसे अभेद हैं कि वह दोनों का ब्योरा खुलता ही नहीं और अलग प्रतीत नहीं होता और शायद इस गाँठ के खुले बिना--जिसका नाम मराकबा अथवा समाधि सुनते हैं--वह प्राप्त नहीं हो सकती, और वह समय अपने पर आता ही नहीं।" इस प्रकार अंदर की उधेड़बुन इसे 'कोई मिले' की लोचा लगाए रखते थे। इसलिये इसने मुसलमानी कट्टरता इतनी कम कर रखी थी कि हिन्दुओं के लिए एक लंगर में ब्राह्मण अलग भोजन बनाया करते थे और हिन्दू साधु भी इसके पास आकर उतरते थे। उनके ब्रह्म ज्ञान, अध्यात्मिक विद्या, आत्मा ही ब्रह्म है के ज्ञान को यह बड़ी अच्छी तरह सुना करता था, पर सुन सुनाकर फिर गाँठ के खुलने की सूझ नहीं हुआ करती थी। यह लालसा अब इसे गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दीदार के लिये तैयार कर रही थी। मन कहता था कि न जाने वे कोई ऐसे महा ज्योति जी हों जो मेरी मुश्किल को हल कर दें।

१. बौद्धों के समय यहाँ पर उनके मन्दिर और ठिकाने थे।

इस प्रकार कुछ विचारों के पश्चात् बुधुशाह सढ़ौरे से चलकर पाऊँटे में आया। दरबार लग रहा था, शाही ठाट था, एक ओर योद्धा खड़े थे, एक ओर विद्वान सुशोभित हो रहे थे, संगतों के ठट जुड़े बैठे थे, बुधूशाह भी आगे बढ़े। पहले दर्शन से कुछ खींच पड़ी पर शाही ठाट को देखकर कुछ सोच आई। मसनद के पास पहुँचकर जब सिर झुकाने लगे तब अपनी पीरी की याद आ गई। सिर को झुकते-झुकते रोक लिया और हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ाया। गुरू जी ने भी तनिक सा हाथ आगे बढ़ाकर और हाथ मिलाकर पास बैठा लिया। बुधूशाह ने तनिक दम लेकर पूछाः–जी अल्लाह का मिलाप?

गुरू जी–जैसे रात को दिन का मिलाप।

बुधूशाह सोच में पड़ गया कि यह रात का मिलाप दिन के साथ हो जाये तो रात तो रहती ही नहीं, मिलाप कैसे हुआ?

गुरू जी उसके संशय को समझते थे, फिर कहने लगे– हाँ, वैसे ही शाह जी ठीक है।

शाह जी–कैसे?

गुरू जी–जैसे आपने समझा है।

शाह जी के साथ अपने कुछ चेले थे, इसलिये आप यह कहने में झिझकते थे कि मैंने नहीं समझा। पर अब कहना ही पड़ा कि मैं नहीं समझा, दिन के आने से तो रात मर जाती है।

गुरू जी–सच के प्रकाश से 'मैं' मर जाती है, सच रहता है 'मैं' नहीं रहती।

पीर–फिर मिलाप कैसे?

गुरू जी–'मैं' जो सच नहीं है, जो सच का बल प्राप्त करके बनी खड़ी है, जो इन्द्रियों के अपने भोगों के स्पर्श से बलवान होती है, वह झूठी है। जब सच आता है, तब मानो वह नहीं रहती, बाकी जो कुछ रहता है, वह सच है, सच से सच का मिलाप है।

पीर–फिर क्या हम रूह नहीं हैं, वैसे ही कोई मायक मिलाप की वस्तु हैं?

गुरू जी– रूह के बिना और है–झूठी 'मैं' और इसकी 'मेरी', यह मूल से उठकर नश्वर भोगों और रसों में लग जाती है। पुनः-पुनः के अभ्यास से यह मूल जैसी बन जाती है, सच आच्छादन हो जाता है, फिर झूठ की प्रवृत्ति, झूठ के प्यार, झूठ के बंधन झूठ का छुटकारा झूठ की नेकी, झूठ के कर्म, झूठ के मज़हब, झूठ के बन्धन और झूठ की मोक्ष की इच्छा।

पीर–दवाई?

गुरू जी–सच।

पीर–सच किस तरह आये?

गुरू जी–जैसे सूरज चढ़ता है और चढ़ते ही अंधेरा बिना बिलंब के उड़ता है।

पीर–आये कैसे?

गुरू जी–झूठ का त्याग करने से।

पीर–छूटता नहीं, बहुत चिल्ले काटे, बहुत पढ़े, हठ तप साधे।

गुरू जी–इसी प्रकार तो झूठ बढ़ता है, तृष्णा जो बीच में है; 'सूरज चढ़ने की गति', बस यही एक विचार है।

पीर–उसका चढ़ना अपने बस में नहीं।

गुरू जी– क्या झूठ का त्याग करना अपने बस में है?

पीर–है तो सही, पर छूटता नहीं, बेड़ियाँ कसी जाती हैं।

गुरू जी–जितना छूटे, छोड़ दे। फिर सत्संग में आये।

पीर–सत्संग में तो आया हूँ।

गुरू जी–पर झूठ का कवच पहनकर।

पीर–नहीं जी।

गुरू जी–ज़रूर! चेले साथ हैं, इनके मन में एक सम्मान है कि यह पीर है, पीर को झूठा मान है कि मेरी यह बात बनी रहे, यह कोई मत कहे कि यह किसी के आगे झूठा है। सत्संग का प्रवेश भी झूठ के कोट में ही होता है। क्योंकि अंदर के 'सच' को झूठी 'मैं' ने ढक लिया है, झूठ की "मैं" के सारे कर्तव्य झूठे हैं।

पीर अब गहरी सोच में उतर चुका था, अपने दिल की कमज़ोरी समझ चुका था, देखता था कि गुरू जी सच कह रहे हैं, बोला:–

आप सच कह रहे हैं, झूठ की यह दीवार कैसे टूटे, झूठ का पड़ा हुआ यह पर्दा कैसे फटे; झूठ का अंधेरा कैसे हटे, सच कैसे चढ़े, अंतस कैसे सचा हो। 'सच्च' अंदर का सच कैसे बने? बने न, बनावट तो झूठी होती है, सच का सूरज कैसे चढ़े[1]?

गुरू जी– हुकुम, सच चढ़ाता है।

बुधूशाह–हुकुम, हुकुम?

गुरू जी–हाँ, हुकुम, उसकी आज्ञा।

पीर–हुकुम, हुकमी का, हाकिम का, झूठा क्या करे हुकुम की खोज करने के लिए? झूठे के बस की बात नहीं।

गुरू जी–हुकुम, हुकुमी का पहचाने झूठा, जिसे कि ज़रूरत है, जिसको उद्धार करवाना है, वह हुकुम पर चले।

पीर–कैसे पहचान करे? हुकुम तो हुकुमी (हुकुम करने वाले) के पास है?

गुरू जी–मनुष्य के स्वभाव में, मनुष्य की आत्मा में, मनुष्य की प्रकृति में, मन में, अंतस में, हां। हां! जो कुछ भी शरीर के अन्दर है, जो जीवन है, वहां पर हुकुम साथ-साथ लिखा है। जहां पर साईं ने 'तू' का निर्माण किया, वहां पर हुकुम लिखा गया। यों हर आपे में हुकुम का नक्श है[2]।

पीर–कैसे? मैं नही समझा।

गुरू जी–शाह जी! समझाते तो जगत को रहे हो और आप नहीं समझे? देखो! जो तुम्हारी आज्ञा में चले, उस पर तुम्हारी कृपा का प्रकाश होता है। है कि नहीं?

पीर– जी हां।

गुरू जी–फिर "हुकुम के अनुसार चलने से हम पर अनुकंपा" होती है, यह रहस्य यदि अंदर जीव के साथ नहीं लिखा, तो कहां से सीखा? बच्चा, जवान, मूर्ख, बुद्धिमान,

१. किव सचिआरा होवीऐ किव कूड़ै तूटै पालि।। [जपुजी]

२. हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। [जपुजी]

प्रत्येक व्यक्ति अपना हुकुम मनवाकर तुष्ट होता है। यह नियम प्रत्येक व्यक्ति की फितरत में लिखा पड़ा है। "यदि हुकुम की पहचान करे तो अनुकंपा" फिर तो अपने हुकुम करने वाले के हुकुम की पहचान करे, अनुकंपा तो आई ही पड़ी है।

पीर (ठंडा श्वास भरकर)–सच, मेरे स्वभाव में यह अमूल ठीक ही था, पर मैं न समझ सका। मैंने कुरान, हदीस, तौरेत, जबूर, इंजील, वेद, शास्त्र को खोजा, पर हुकुम मेरी प्रकृति में लिखा था, मेरे जी के साथ था (गुरू जी की ओर देखकर) पर यह बताइए मेरे अन्दर तो एक "मैं" है, मैं आज्ञा मनवाकर उस "मैं" को चारा डालता हूं, पर आज्ञा देने वाला तो 'सच' ही है, उसे 'हुकुम' मनवाकर तुष्ट होने की आदत क्यों है?

गुरू जी–उसे कोई आदत नहीं, वह निरबंध है, उसका हुकुम कोई तृष्णा का कर्म नहीं है, क्योंकि वह तृष्णा रहित है। वह आप सच है, उसका हुकुम भी 'सच' है। तुम जब तृष्णा धारकर झूठ की क्रिया करते हो, हुकुम के उल्ट चलते हो, क्योंकि हुकुम 'सच' है। जितना ही कोई आगे से दूर भागेगा, उतना उसे जाड़ा लगेगा। जितना कोई दिये के इर्द गिर्द पर्दा डालेगा, उतना ही वह अंधेरे मे जायेगा। जब जरूरत सच के साथ मिलाप करने की है, तब चतुरता, सयानापन, जोकि झूठ की पैदा की हुई हैं, उनका त्याग करना चाहिये[१]। जैसे झूठ का त्याग करोगे, सच निकट आता जायेगा। मनुष्य को चाहिये कि हुकुम की पहचान करे, ज्यों-ज्यों हुकुम की पहचान करेगा, त्यों-त्यों क्या देखेगा कि अहं दूर हो रहा है और सच आ रहा है[२], ज्यों-ज्यों देखेगा कि सच आ रहा है, त्यों-त्यों देखेगा कि मिलाप आ रहा है।

पीर–'सच बोलने' को आप सच कह रहे हैं?

गुरू जी–हां, पर सच इससे भी आगे तथा और आगे हैं।

सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ॥
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ॥
सच ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु॥
नाऊ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु॥
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ॥
धरति काइआ साधिकै विचि देइ करता बीउ॥
सच ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ॥
दइआ जाणै जीअ की किछु पुन्नु दानु करेइ॥
सच ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथ करे निवासु॥
सतिगुरु नो पुछिकै बहि रहै करे निवासु॥
सच सभना होइ दारू पाप कढै धोइ॥
नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ॥२॥ [वार आसा महला १]

---

१. सहस सिआणपा लख होइ त इक न चलै नालि॥ [जपुजी]
पुनः ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ॥ [अनंद साहब]

२. नानक हुकमै जे बुझै त हऊमै कहै न कोइ। [जपुजी]

यह है धुर अंदर का रहस्यमय सच।

पीर–सच दर सच, ईश्वरीय सच। ठीक। हां फिर कोई रास्ता दिखा दीजिये नं।

गुरू जी–सच? घूँघट का त्याग करके नाचो।

यह सुनकर पीर सचमुच ही उठकर नाचने लगा था, पर तत्काल उसे पता चल गया कि उसके स्वभाव में जो बनावट या झूठ पड़ रहा है, उसकी ओर संकेत किया है। समझते सार पीर को एक उत्साह उठा, एक चक्कर आकर भय, संशय दूर हो गया। गुरू जी की ओर देखा तो जैसे सच की एक जलती हुई मशाल होती है, उसी तरह गुरू जी की क्रान्ति एक सच की मशाल भासी। निर्भय होकर चरणों पर गिरा, गुरू जी ने दायें हाथ को अपने हाथों में लेकर दबाया, प्यार से दबाया। पीर जी के अन्दर से कोई अंधेरा सा, कोई मैल सा, कोई तंगी सी निकलती हुई लगी, आपा स्वच्छ और निर्मल हो गया। आपे में एक उज्जवलता, उज्जवल उच्चता आ गई। आज तक जो कुछ अपना दीखता था वह यों लगा कि कुछ दूरी पर जा खड़ा है, पर यों लगा कि यह मुझे मैला कर रहा था। उस उज्जवलता की प्रतीति में पीर ने उरे-परे जाकर खड़े हुये सारे समाज को, जिसे 'मेरा' कहा करता था–फिर ख्याल किया कि 'मेरा' है, तो क्या देखता है कि वह उज्जवलता कम हो रही है, आपा मैला हो रहा है। फिर पीर ने ख्याल किया कि यह मेरी नहीं, मैं इससे अलग हूँ और उज्जवलता हूँ तब पीर को उसी तरह आपा उज्जवल लगता और मैल परे जाकर खड़ा होता दीखता।

उधर किसी प्रेमी ने बड़े प्यार से श्री गुरू ग्रंथ जी की यह तुक पढ़ी।

रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार॥
पारस मानो तावो छुए कनक होते नहीं बार॥ [गउड़ी रविदास]

काफी समय तक इसी रंग में रहकर पीर जी ने देखा कि गुरू जी ने सिर उठाया है और कह रहे हैं मेरे ठाट, मेरें न देख, हुकुम में कविता हो रही है, हुकुम में पीरी हो रही है। राज्य भाग्य मेरा नहीं है, फकीरी मेरी नहीं है, न ही कालसी के ऋषि का उद्धार, न जयद्रथ से प्रजा की रक्षा, न यमुना में तारी, न किनारे पर बीना की ध्वनि, न कवि समाज और न सैर और शिकार मेरा है। हाँ, मेरा कुछ नहीं। जो कुछ है वह हुकुम है, हुकुम का ही खेल है, सब का प्रकाश है, मनों में से झूठ की दीवारों को टूटना है और जगत को सच्चा बनना है। प्रजा दुखी है, दर्द और जुल्म के नीचे है, हुकुम के खेल सुखी करना है। जो कुछ आज है इसे नहीं रहना, जो रंग अब है उसे और बनना है, दोनों हुकुम के खेल हैं। मैं हूं, सो मैं नहीं।

होंदा फड़ीअगु नानक जाणु॥
ना हऊ ना मैं जूनी पाण॥ [मलार वार म: १]

जाग हे पीर! दिन रात अंदर में नाम[१] का प्रवाह चलता रहे और प्रत्येक स्थान पर नामी ही दीखे, जो सच है और व्यापक है, सारे हैं। अंदर से हिलोर में रह, बाहर दीदार में रह,

१. तिसका हुकमु बूझि सुख होइ॥ तिसका नामु रखु कंठि परोइ॥ [सुखमनी]

झूठी मैं के दाव में न आ, हुकुम की पहचान कर। कह वाह, वाहि, वाह, वाहिगुरू। पीर ने कहा: वाह, वाह, वाहिगुरू, वाहिगुरू।

अब सिर पर प्यार देखकर सतगुरू जी ने पीर को बिठा लिया। उसे, जिसे पीर अंदर में जड़ चेतन की गांठ समझता था, देखता है कि मानो है ही नहीं। धन, दौलत, समाज, मान, सब अपरिचित से लगते हैं। वैराग है, पर वह वैराग नहीं जिसे झुरना, रोना और त्याग कहा जाता है। नहीं, अब तो बुद्धिमान और प्रबुद्ध वैराग है! आपा आपे में है, न "मैं" कहता है, न 'मेरी' में अपनापन देखता है। उच्च है, स्वच्छ है, अंतस की सुन्दरता में है। आपा प्रकाशमान है, आपा आपे के केन्द्र वाहिगुरू के मिलाप में है, कंत के साथ धन मिली है और मायके अथवा मायके घर के खेल सारे दूर हो गये हैं। विवाह होते ही मायके घर से स्वाभाविक ही वैराग हो गया है, हाँ अंदर सच के साथ राग आया है, जगत के साथ वैराग हो गया है। जो पहला जीवन था, वह हर घड़ी, हर क्षण मर रहा था, अब प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घड़ी जीवित हो रहा है।

सूचना:—रियासत नाहन में यमुना के इस किनारे नामक एक ठिकाना है, दूसरी ओर चूहड़पुर नामक ग्राम है जो चकराता को जाने वाली सड़क पर कालसी से कुछ मील इधर को है। चूहड़पुर और भंगाणी यमुना का राज्य घाट है। इस भंगाणी वाले ठिकाने पर साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के साथ पहाड़ी राजाओं ने जबरदस्ती युद्ध किया था जो कि गढ़वाल से विवाह के बाद लौट रहे थे। युद्ध का समाचार अगले प्रसंग में है।



१२ युद्ध भंगाणी

हिमालय के पहाड़ों को छोड़कर यमुना, सिरमौर और देहरादून के बीच में से बहती हुई शिवालक के पैरों को आकर चूमती है और इसके पैरों की मानो परिक्रमा करके मैदानों में जाकर निकलती है। इस चक्कर वाले स्थान पर पश्चिम की ओर नया बसा ठिकाना पाऊँटा है। नया है, पर है रौनक वाला। कुदरत ने पहले से ही रमणीक बनाया है, अब कुदरत के रसिक ने इसे चार चाँद लगा दिये हैं। इस मोड़ पर हरे-हरे घास के रंग का सा पानी का निर्मल प्रवाह, आश्चर्यजनक तेजी के साथ बहता हुआ मन को मोहित करता है। आज यमुना के पार पूर्वी किनारे पर पत्थर बिछे मैदान में गुरू गोबिन्द सिंघ साहब की जंगी सभा लग रही है। गिने चुने मुखिया बैठे हैं और विचार हो रहा है। पहले विचार होता रहा कि आक्रमण क्यों होने लगा है[१], फिर विचार चला कि राजाओं की ओर से आ रहे आक्रमण का मुकाबला कैसे करना है, ऐसा ढंग लगाया जाये जिसमें विजय हो और अपना नुकसान कम हो। सबसे पहली बात युद्ध भूमि का ठिकाना चुनने की थी, सो यह विचार सभा में दयाराम ब्राह्मण, जो कि गुरू जी के शूरवीरों में से एक था, कहने लगा, हे प्रभु! हम पाऊँटे को युद्धभूमि न बनायें, जिससे कि अपना और अपने ही बसाये हुये नगरवासियों की हानि न हो। तब मामा कृपाल चन्द जी कहने लगे–इस स्थान से कोई छः कोस ऊपर को भंगाणी के स्थान पर, जहां पर दूसरी ओर चूहड़पुर नामक ग्राम है, वहाँ पर युद्ध मचाया जाये। वह बड़ा घाट है, वहां से शत्रु इस पार आकर हमारे पाऊँटे पर धावा बोलेगा, हमें चाहिये कि हम वहां पर ही उन्हें रोकें। यमुना के किनारे पर खुला लम्बा मैदान है, फिर कुछ चढ़ाई है, उसे पार करके खुला मैदान है। हमें चाहिये कि हम शत्रु को इस मैदान पर चढ़ने न दें। हमें इसी समय जाकर इस मैदान को घेर लेना चाहिये और वे निचले मैदान में ही रहें। मोर्चा बना लें और ऊपर से गोलियां और तीर चलायें; फिर मोर्चे से नीच जाकर

---

१. भंगाणी का युद्ध गुरू जी का पहला युद्ध है। यह युद्ध क्यों हुआ? इसके बारे में गुरू जी लिखते हैं–'फतह शाह कोपा बड़ राजा। लोह परा हम सो बिन काजा'। अर्थात् बिना किसी कारण उसने हम पर धावा बोल दिया। सूरज प्रकाश बताता है कि भीम चन्द कहलूरीये ने फतह शाह को बहकाया तथा दूसरे राजाओं को चुनौती दी और युद्ध हुआ। पर एक पुरातन वस्तु 'जंग नामा गुरू गोविन्द सिंघ' है। यह एक योद्धा वृतान्त है। इससे पता चलता है कि औरंगज़ेब गुरू गोबिन्द सिंघ जी को मारना चाहता था राजाओं को लड़ाने की योजना इसी की थी। हयात खां को भी औरंगज़ेब ने ही भेजा था। जब शाह के घर में खबर हुई, शाहज़ादी ज़ेबुलनिसा ने मना किया कि गुरू जी के साथ न लड़ो। इस जंगनामे में भंगाणी के युद्ध के ही समाचार हैं। सो राजाओं को भड़काने का वास्तविक कारण तो औरंगज़ेब ही है:–यथा:–"मैं लिख घलां वल राजियां जो हैं सिरकरदा"।।१३।। गुरू जी के साथ औरंगज़ेब की पाऊँटे में आने से पहले की खटपट का पता भी सूरज प्रकाश से चल जाता है। यथा:–'उत हज़रत बिगरियो इन संगा'। [सूरज प्रकाश]

यह स्थान अब तक है, जहां से गुरू जी ने तीर चलाए थे, वहाँ पर वृक्ष भी खड़ा है। धावा बोल दें और इसी मार्ग से ही कुमक भेजें।

मामा जी की इस योजना की श्लाघा गुरू जी ने की और यह दूसरे जत्थेदारों के भी पसंद आई। इसके उपरान्त टुकड़ियों को बाँटने तथा सामान की जाँच पड़ताल पर विचार हुआ। इस समय नन्द चन्द ने बताया कि एक सिख आपके लिये बहुत से घोड़े इकट्ठे करके ला रहा था। भीम चन्द को जब इस बात का पता चला तब उसकी ओर से उनके रोकने का कुछ विचार हुआ मगर हम अपने सवारों सहित पहुँच गये और उन्हें शीघ्रता से भगाकर हम अपने साथ ले आये हैं। इस बात पर सतगुरू जी प्रसन्न हुये और आज्ञा दी कि ये घोड़े सौदागार से ले लिये जायें और कल को इन्हें शूरवीरों के प्रति बांटेंगे। फिर शत्रु की सेना और उनके पास सामान पर विचार हुआ। चाहे यह अनुमान अपनी सेना से बहुत अधिक था, पर अपनी वीरता और युद्ध कला की प्रबलता और ईश्वर के भरोसे के आश्रय निश्चित जीत पर किसी को कोई संशय नहीं था और न ही इस प्रकार की भावना और मद ही था कि जिसमें बुद्धि और बल बेपरवाह होकर मनोरथ ही खो बैठते हैं। सभी इस मामले पर विचार करने के बाद उठे, किनारे पर आये; आगे किश्तियाँ तैयार थीं, सारे चढ़कर इस पार पाऊँटे में आ गये। जब किले में पहुँचे, जो कच्ची गढ़ी की भांति वहाँ पर बना लिया गया था, तब दूसरा गुप्तचर आ गया, जिसने बताया कि फतहशाह के ठिकाने पर ज़ोर शोर से तैयारी हो रही है। इससे शत्रु के सामान का अनुमान और भी लग गया। इसने यह भी बताया कि सेना के इलावा गांवों के लोग भी इकट्ठे हो रहे हैं, जिससे संख्या और भी बढ़ेगी।

यह सुनकर गुरू जी समझ गये कि यह अनजान भीड़ भी प्रायः हार का कारण बन जाया करती है। जिस समय लूट मार होती है उस समय ये सबसे आगे होते हैं और जब पैर खिसकने लगते हैं तब भागने में भी ये सबसे आगे होते हैं। फिर आप जी ने पूछा कि उधर कौन-कौन सेना के अगुआ सामने आये हैं? तब उसने बताया कि हैं तो कई, पर मुखिया ये हैं—फतह शाह आप लड़ेगा, हरी चन्द, ग़ाज़ी चन्द, कुल्लूपति, रामसिंघ जंमू, साहब चन्द मधुकर, जसवारिया, डढ़वारिया और कटोचिया कृपाल[१], इनके अतिरिक्त गुलेर का भूपाल कोटलेहर आदि के और कई राजा थे।

: २ :

बनी योजना के अनुसार एक छोटी सी टुकड़ी तो पार चली गई, जो शत्रु का पूरा पता लेकर भेजती रही। कुछ टुकड़ियाँ भंगाणी को चली गई जिन्होंने स्थान को देखकर डेरा डालने और रसद सामान आदि घोड़ों को बाँधते और सिलहखाना जमाने के प्रबन्ध करने थे। जब सारे दल में तैयारी का हुकुम पहुँच गया तब आज्ञानुसार तैयारी शुरू हो गई। गुरू जी की सेना में पाँच सौ जवान पठान थे, इन्हें गुरू जी ने नौकर रख लिया था। लगता है कि इस विवाह पर भीमचन्द की ओर से युद्ध छिड़ जाने का अनुमान गुरू जी को पहले से ही हो गया था, जिसके कारण युद्ध का सामान और मनुष्य, दोनों को बढ़ाया जा रहा

१. गुरू बिलास भाई मः सिंघां।

था। इन पठानों की जो कथा है सो इस प्रकार है:–ये औरंगज़ेब के नौकर थे और किसी भूल के कारण उसने इन्हें नौकरी से हटा दिया था। इनकी जन्मभूमि दामला (कर्नाल के जिले में) थी, नौकरी से हटाये जाने पर ये सढ़ौरे पहुँचे और अपने पीर बुधुशाह से मिले। उसकी सिफारश से ये पाऊँटे पहुँचे और गुरू जी ने इन्हें नौकर रख लिया।[१] इन पाँच सौ पठानों के सरदारों के नाम ये थे:–भीखन खाँ, काले खाँ, निजाबत खाँ, हय्यात खाँ[२] और पाँचवे का नाम जवाहर खाँ था।[३] ये सरदार अपने सवारों सहित वेतन लेते रहे और युद्ध के करतब करते रहे। आज जब दलों में तैयारी का हुकुम हुआ तब इन्होंने मिलकर सलाह की कि हम युद्ध में न रलें और खिसक चलें। अत: षड़यन्त्र करके अगले दिन गुरू जी की सेवा में हाज़िर हुए और छुट्टी मांगने लगे। इस समय यह खबर किसी तरह भी सुखदाई नहीं हो सकती थी, पर गुरू जी की ओर से इन्हें समझाया गया और वेतन बढ़ाने का भरोसा दिया गया, यहाँ तक वेतन पांच गुणा बढ़ा देने को कहा गया पर उन्होंने एक न मानी। संगोशाह के अंत में यह भी कह दिया कि यदि जीतकर आ गये तो मोहरों की एक एक ढाल भरकर देंगे, तब भी न माने। तब संगोशाह ने आकर गुरू जी से कहा कि अब इन्हें रखना ठीक नहीं, यदि आप की आज्ञा हो तो इन्हें लूट पीटकर निकाल दें। तब सतगुरू जी ने कहा, इन्हें लूटो पीटो नहीं और वैसे ही जाने दो। अत: यों वे चले गये। यहाँ से तो यह कह कर चले थे कि घरों को जा रहे हैं, पर थोड़ी दूर जाकर यमुना के पार चले गये और गढ़वाल के मार्ग पर पड़ गये और राजाओं से जाकर मिले।[४] इनमें से एक काले खाँ ही अपनी टुकड़ी सहित रह गया। यह अपने साथियों को भी नमक हराम बनने से रोकता रहा, जब वे न माने, तब यह उनके साथ न गया और स्वामीभक्ति के लिये गुरू जी की शरण में ही रहा।[५] जब गुरू जी ने यह बात सुनी, तब उसे भी चले जाने का सन्देश भेजा, पर वह न गया, तब गुरू जी ने सम्मुख बुलाकर उसे कुछ इनाम दिया और कहा कि तुझे प्रसन्नता से भेज रहे हैं तुझ पर किसी तरह भी नाराजी नहीं है। सो वह गुरू जी की आज्ञा मानकर किसी दूसरे स्थान पर चला गया, पर शत्रु की सेना के साथ जाकर वह नहीं मिला। जो पठान फतहशाह की सेना में जाकर मिल गये थे, उनके साथ फतहशाह ने वायदा कर लिया था कि वेतन तथा दूसरे इनाम के इलावा, यदि फतह हो गई तो तुम्हें लूट का माल भी दे दिया जायेगा। इस तरह लूटमार का लालच प्राय: संसार के इतिहास में जंगी जोरावरों ने बरता है, जिससे निम्न भावों से जोश में वृद्धि होती है। पठानों को अब तक गुरू घर का सारा पता चल चुका था और वे खुश थे कि वे जाते ही सारे खज़ाने को दबा लेंगे और आजीवन धनी बनकर घरों को लौटेंगे।

१. जंगनामा गुरू गोबिन्द सिंघ जी से पता चलता है कि हय्यात खाँ इन पठानों का सरदार औरंगज़ेब के लिखने पर गुरू जी के विरुद्ध लड़ने के लिये आया था। न जाने ये धोखा देने के लिये ही नौकर हुये हों। अथवा इस युद्ध के समय शाही संकेत मिलने पर बेईमान होकर शत्रु की सेना के साथ जा मिले हों।

२. गुरू प्रताप सू: पन्ना ४७००।

३. यह पाँचवा नाम बूटेशाह ने दिया है। गु: प: सू: में नहीं है।

४. तवारीख खालसा में लिखा है कि पठानों को राजाओं ने बहका लिया था।

५. गु: प्र: सू: में इस तरह ही लिखा है और बूटेशाह लिखता है कि सारे बेईमान हो गये थे।

इधर तो ये विदा हुये, उधर जो गुरू जी के पास उदासी महंत कृपाल जो चंगा तपी पुरुष था, और पाँच सौ उदासी साधुओं के साथ गुरू जी के पास रहता था उस समय ये उदासी साधु कभी कभी कसरत भी करते थे और लड़ाई के करतब भी जानते थे। साधुओं के डेरों का नाम 'अखाड़ा' भी इन कसरत करने वाले अखाड़ों से ही पड़ा है। ये पाँच सौ जवान तगड़े लड़ने वाले थे। पर जब इन्होंने देखा कि पाँच सौ पठान चलकर दूसरी ओर जा मिले हैं, और शेष जातियों के लोग जिन्हें युद्ध विद्या सिखाई गई है, नये हैं और निश्चय ही हार होगी क्योंकि उधर पहले ही बहुत ताकत है और अब इतने योद्धा और जाकर मिल गये हैं, तब वे भी रात में खिसक गये। सवेरे जब आप जी के पास खबर पहुँची कि उदासी साधू भी रात को चले गये हैं तब आप जी ने पूछाः क्या सारे ही चले गये हैं कोई रह भी गया है? तब किसी ने बताया कि मण्डली तो चली गई है, पर महंत जी बैठे हैं। तब सतगुरू जी मुस्कराये और बोलेः वाहवा, यदि जड़ रह गई तो सब कुछ रह गया। यदि प्राण बच रहे हैं तो सब कुछ बच रहा है। यदि महंत भी चला जाता तो गुरू के घर से इनका सम्बन्ध टूट जाता, अब संबंध बना रहेगा। ऐसे चेलों का क्या है जो अपने मंहत को छोड़कर चले गये हैं, चेले और बन जायेंगे। जाओ कृपाल को बुला लाओ। जब मंहत जी आये और सीस झुकाकर बैठ गये, तब गुरू जी ने मुस्कराकर पूछाः–

महंत जी! चेले कहां है? तब आप बोलेः–

गुर चेले सभि शरणि तुमारी॥४॥
भले बुरे संभारन वारे।
तुम हो गुर पूरन बल भारे।
बड़े भाग कै प्रापत होवा।
संकट जनम मरन को खोवा॥५॥
ब्रहमादिक सनकादिक सारे।
शंख शारदा पाएं न पारे।
धयान बिखै जोगीश्वर ध्यावैं॥
रिखि नारद ते आदिकै गावैं॥६॥
चरन कंवल तुव करहिं अराधन॥
तप आदिक साधै गन साधन॥७॥
हम लोकन के भाग बडेरे॥
लोचन गोचर तुम को हेरे।
मन बानी को बिशे न होई॥
भाखत शुत सिंमृत सभि कोई॥८॥
अस प्रभु पाइ कौन तज सकै॥
जिसके पद सरोज सुर तकैं।
भूल चूक दासन ते होइ!
बखशनहार प्रभु तुम सोइ॥९॥ [गुः प्रः सूरज रूतः २–२४]

सोचने की बात यह है कि जिस सेना में से प्रसिद्ध पाँच सौ यौद्धा पीठ दिखाकर चले जायें और शत्रु की सेना से जाकर मिल जायें, उसका असर शेष सेना पर कितना दिल ढाने वाला तथा निराशा वाला होता है। फिर जिसमें से पांच सौ और चले जायें तो साहस और उत्साह को और आघात पहुँचता है। एक हजार की कमी और वह भी बिल्कुल युद्ध के समय कोई छोटी बात नहीं, पर गुरू जी का अपना न झुकने वाला मन उत्साह में है और अपने सेनानियों में ऐसा उत्साह भर रखा है कि उन्होंने दिल नहीं छोड़ा। सभी कमर कसकर तैयार हैं। हरी भरी भंगाणी को जा रहे हैं, मोर्चे बांधकर ठिकानों की सम्भाल कर रहे हैं। सच की नींव की नीति पर टेक रखने वाले नीतिज्ञ और नेता गुरू जी ने एक चिट्ठी बुधूशाह को लिखी। उसमें लिखा कि जो पठान औरंगज़ेब की ओर से हटाये जाने पर हमारे यहां नौकर हुये थे, वे अब पहाड़ी राजाओं से जा मिले हैं। इस तरह की चिट्ठी भेजकर आप भंगाणी को जाने की तैयारी पर विचार करने लगे। कुछ सेना और जत्थेदार किले में रखे और उन्हें वहां की भली-भाँति रक्षा करने की आज्ञा दी। उधर भंगाणी में जो प्रबन्ध पहले भेजी गई सेना की टुकड़ी ने करने थे, उनके मुकम्मल हो जाने की खबर आ गई। श्री गुरू जी की बुआ के पुत्र पाँच भाई बड़े शूरवीर थे और गुरू जी की सेना में सेनानी जत्थेदार बनकर रहते थे। पांचों ही बड़े शूरवीर और युद्ध विद्या में निपुण्य थे। पांचों का ही श्री गुरू जी के साथ अत्यंत प्यार था। सबसे बड़ा संगोशाह था, जो कि आयुद्ध विद्या का निपुण्य उस्ताद था, दूसरा जीतमल तीसरा गुलाबचन्द, चौथा गंगाराम और पांचवा माहरी चन्द था; ये बड़े उत्साह में थे और इनकी सेना बड़े चाव में थी। अब ये सारे तैयार थे कि खबर मिली कि फतहशाह की सेना निकट आ रही है। गुरू जी की आज्ञा पाकर पांचों भाई अपनी अपनी सेना को लेकर भंगाणी की ओर चल दिये। इस तरह सारा सामान करके श्री गुरू जी आप भी घोड़े पर चढ़कर चल दिये और पीछे पीछे आपकी अपनी सेना भी चल पड़ी। कवि संतोख सिंघ जी लिखते हैं:–

उठी बंब ऊची गणं सैल गाजे।
महाबीर बंके सभै शस्त्र साजे॥२॥
रिदै उतसाहं तुरंगी अरोहे।
गुरू संग चाले महां जंग सौहे।
उठी धूर पूरं नभं छाइ लीना।
प्रकाशं न दीसै खं ढांप लीना॥३॥
बंधे चुंग चौंपे चलाकी दिखावैं।
चले गोल आगे किकानं कुदावैं॥
बकैं वीर ऊचे सु मारा बकारा।
प्रभु को सुनावहिं 'पहारी संधारा'॥४॥
बडे बेग सों बायु जैसे बहंती।
तथा सैंन सारी सु शीध्रं चलती।
तथा मेघ वुठे हड़ं नीर चाले।
परा बंधि तैसे चमूं बेग नाले॥५॥

भंगाणी पहुँचकर श्री गुरू जी ने सारी तैयारी देखी और अपनी सेना की योजना बांधी और टुकड़ियां बांटकर मोर्चों पर टिका दिये। कवि सैनापति ने लिखा है:–

भये असवार संग्राम को आप ही सिंध गोविन्द तहिं ठऊर आये।
डंक की घोर जैसे भई ठऊर तहि बजत नीसान मोहरे सुहाए।
आनके खेत पै देख चतुरंग सभ मोरचे बाँट के मिसल लाये।
बजी है भेरि करनाइ सरनाइ सभ सुनेते सूर होइ लाल आए॥१॥

: ३ :

शत्रु के दलों में युद्ध का मूल आक्रमणकारी इस समय फतहशाह था, जो धनवान और नीतिज्ञ तथा खूब बलशाली राजा था और भीम चन्द युद्ध का प्रेरक था, जो कि तीरंदाजी तथा अन्य विद्याओं में प्रवीन अपने समय का बली योद्धा था। राजा हरीचन्द भी उस समय तीरंदाजी का उस्ताद था। शत्रु की सेना में उस समय ऐसे ऐसे शूरवीर थे, जिनके साथ युद्ध करना कोई खेल नहीं था। गुरू साहब इस समय चढ़ती हुई जवानी में लगभग बीस वर्ष की आयु के थे, पर आप में युद्ध का उत्साह असीम था। धनुषविद्या में कमाल की प्रवीणता थी और अपनी सेना में, जो शरीर के साथ साथ 'दिल का बल' भरा था, वह उनकी एक अनोखी सफलता थी।

शत्रु की सेनाएं अब यमुना के पार पहुँच चुकी थीं और इस पार आकर मोरचे बांधे खड़ी थीं। गुरू जी ने दयाराम को साथ लेकर शत्रु की सेना की व्यूह रचना को जांचा। बाईं ओर पठानी सेना थी, दाईं ओर राजाओं की सेना थी। फतहशाह पीछे था जो सारा प्रबन्ध कर रहा था। हरीचन्द हंडूरिया सबसे आगे वाली टुकड़ी में खड़ा था। इस तरह की पड़ताल अभी समाप्त हुई ही थी कि दक्षिण दिशा की ओर कुछ दूरी पर धूल उड़ती हुई दिखाई दी। इसे देखकर नन्दचन्द ने आकर खबर दी कि एक सेना आ रही लगती है। पहले तो मैं सोच में पड़ गया था, पर एक दूत खबर लाया है कि बुधूशाह चार पुत्र और सात सौ जवान लेकर आया है। आप यह खबर सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और संगोशाह को हुकम दिया गया कि अपनी बाँट में नई सेना के प्रबन्ध का विचार करके बुधूशाह को इसका व्योरा बता दे। बुधूशाह की कुमक की खबर सारे सिख दल में झटपट फैल गई, इससे सबके दिलों में दुगनी उमंग भर गई। संगोशाह ने गुरू जी की राय से अपने दाब घाब के प्रबन्ध कर रखे थे। रणस्तम्भ गाड़ दिया था। अब इस बात पर विचार हो रहा था कि पहले हम चढ़ाई करें अथवा शत्रु का पहला वार देखें। इतने में उधर से अचानक वार हो गया। अब संगोशाह की ओर से बन्दूकों की भरमार हुई, पर वे बड़े वेग से उमड़े आ रहे थे, और हवा उनकी ओर वेग से जा रही थी, इधर की बन्दूकों और जंबूरों के धूएं उन्हें अन्धेरा कर रहे थे। उनके तीर और गोलियां निशाने पर बहुत कम बैठते थे। इधर से बहुत निशाने बैठते थे, पर वे बढ़ते-बढ़ते एक ऐसे ठिकाने पर आ गये जहाँ पर एक नीचे स्थान पर संगोशाह के बंदूकची छिपे बैठे थे। इनकी भरी हुई तोड़ेदार बन्दूकों ने एक बार झड़ी लगा दी। तीन चार सौ पहाड़िये उसी स्थान पर हताहत हो गये। इससे जो सैनिक बढ़े आ रहे

थे वे ठिठक गये और इधर से फिर गोलियां चलने लगीं। इस तरह दो तीन सौ और पहाड़िये हताहत हो गये। तब हरीचन्द ने सेना को पीछे हटा दिया और बाईं ओर को चला गया। फतहशाह ने पूछा: हरीचन्द! गुरू के पास ऐसी सीखी हुई सेना कहां से आ गई है? पठान तो उन्हें छोड़कर इधर आ गये हैं। हरीचन्द ने कहा, इन पठानों को सारे भेद का पता है इन्हें आगे किया जाये। सो फतहशाह ने भीखनशाह को बुलाकर कहा, कि तुम्हें सारी सिख सेना का पता है, तुम आगे बढ़ो और उन्हें हाथों हाथ ले लो। गुरू के खज़ाने की सारी लूट जो तुम्हारी होगी, यह बात तो पहले ही कही जा चुकी है, हम उसमें से भाग नहीं मागेंगे। इस तरह का लोभ देकर वह पठानों को आगे बढ़ाकर ले आया और संगोशाह की टुकड़ी पर आ झपटा। पठानों की सेना अब संगोशाह की टुकड़ी पर बढ़े जोश और वेग के साथ झपटी। आगे संगोशाह भी एक महान शूरवीर था, पठानों के आते ही उसने गोलियों की बौछार से मुँह तोड़कर उनकी खातिर की। पठान जिस तेज़ी से आकर पैर हिला देने की सोच रहे थे, वे हिला न सके। अब दोनों ओर से घमासान का युद्ध मच गया। इसे देखकर गुरू जी ने नन्दचन्द और दयाराम को कुछ सेना देकर संगोशाह की कुमक के लिये भेज दिया। इन्होंने ऐसे तीर चलाये कि जो तीर जिसे लगा, वह नहीं बचा। इस स्थान पर संग्राम का बहुत सख्त ज़ोर हो गया। गुरू जी के पास लाल चन्द माही खड़ा था, यह बड़ा पहलवान और बलवान व्यक्ति था; सतगुरू जी से आज्ञा लेकर वह भी संगोशाह वाले स्थान पर जा पहुँचा। इसने पहलवानी बल से तीर चलाकर बड़े जवानों को मारा। इसके तीरों की मार देखकर दोनों पक्ष के लोग वाह वाह करने लगे। सेनापति जी जोकि गुरू जी के ५२ कवियों में से थे, वे लिखते हैं:–

लाल चन्द आन कै, कमान बान तान कै,
कीओ सु जुध जान कै, भली भई भली भई।
कीओ सु लोह लोहई, न जीव रख सोहई।
सूचाल सूर सोहई; विमोहई विमोहई॥६३॥

यह भी लिखा है कि लाल चन्द का युद्ध देखकर एक लाल चन्द नामक हलवाई भी शस्त्र लेकर उसी ठिकाने पर जा पहुँचा। पठानों को यह पता था कि पहला तो मछुआ है और दूसरा हलवाई है, फिर यह शूरवीर कैसे हो गये हैं[१]। अब माहरी चन्द आगे बढ़ा, इस तेज़ी से कि शत्रु की सेना में घिर गया। इसने अपने बल और क्रोध में कितने ही पठानों का वध कर दिया। अब घोड़ा घायल हो गया था और आप भी मारा जाने वाला ही था, पर संगोशाह ने देखा कि भाई घेरे में फँस गया है, वह एक दम सवारों का दस्ता लेकर जा पहुँचा और जिस तेज़ी से गया था उसी तेज़ी से भाई को घेरे से निकालकर ले आया। इस तरह उसके बचकर निकल जाने पर पठान चकित हो रहे थे। इस बात को दोनों ओर से सिक्खों की विजय का पहला कदम समझा गया। इस समय के युद्ध के शूरवीरों के नाम और युद्ध का संक्षिप्त वर्णन श्री गुरू जी ने स्वयं इस प्रकार किया है:–

भुजंग प्रयात छंद
तहा साह श्री शाह संग्राम कोपे।
पंचो बीर बंके पुथी पाए रोपे।

१. तवारीख खालसा।

हठी जीत मलं सु गाजी गुलाबं॥
रणं देखीअै रंग रूपं सहाबं॥४॥
हठियं माहरी चंदयं गंगरामं॥
जिनै कितीयं जितीयं फौज तामं।
कुपे लालचदं कीए लाल रूपं॥
जिनै गंजीयं गरब सिंधं अनूपं॥५॥
कुपियो माहरू काहरू रूप धारे॥
जिनै खान खावीनीयं खेत मारे।
कुपियो देवतेसं दयाराम जुधं॥
कीयो द्रोण की जिऊं महाजुध सुधं॥६॥ [बचित्र नाटक]

: ४ :

युद्ध क्षेत्र के बीचों बीच जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है घमासान युद्ध हो रहा था। नीचे की ओर से बुधूशाह उन्हें रोककर खड़ा था। नदी के किनारे-किनारे इस मैदान की लम्बाई काफी दूर तक थी। कुछ पहाड़ी राजाओं, सेना और दूसरे लोगों का भारी जमघट इधर था, इसलिये इस नीच की ओर का रोकना ज़रूरी था। अत: इस ओर को बुधूशाह ने रोक रखा था कि इधर से शत्रु बीच के युद्ध की ओर सहायता के लिये पहुँच न सके। अंत में इन्होंने एक गोलाई में होकर इकट्ठा धावा बोल दिया, जिसे बुधूशाह ने अपने बल और वीरता से रोका। पीर के चारों पुत्र अपनी सेना को चतुराई से लड़वा रहे थे। इस धावे को इन्होंने इस वीरता से रोका कि बढ़ती आ रही सेना के सैकड़ों जवानों को मार दिया। गुरू साहब, स्वयं सारे मोर्चे का पता रख रहे थे और आवश्यकता पड़ने पर जगह-जगह पर चक्कर लगाकर सारी स्थिति को देख रहे थे। वे बुधूशाह और उसके सुपुत्रों की वीरता को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। जब आप आगे बढ़े, तब पहाड़िये कट गये और जब भारी रोक पड़ी तब सारे पीछे हट गये। इस समय बुधूशाह ने दूसरी टुकड़ी से धावा बोल दिया। जिसे सहन न कर सकने पर आसपास के और आगे बढ़े हुये पहाड़िये घबराकर उठ भागे। इन्हें भागते हुये देखकर गुलेरिया 'गोपाल' घबड़ाया कि इनके भागने से कहीं सब ओर भगदड़ न मच जाये। वह आप आगे बढ़ा, भागते हुये ने जो जगह खाली की थी, वहाँ पर पहुँच कर उसने बढ़े आ रेहे बुधूशाह की सेना को रोका। इसी तीरंदाज़ी और इसके सिपाहियों की वीरता ने बुधूशाह को बढ़ती हुई टुकड़ी के तीर और बन्दूकें रोक दीं और तलवारों से हाथों हाथ लड़ाई होने लगी। पीर के मुरीद बड़ी वीरता से लड़े और जूझे। घोर गुत्थमगुत्था हो गया। दोनों ओर से अत्यन्त वीरता दिखाई गई। किसी का भी पैर पीछे न पड़ा। घमासान युद्ध हो रहा था कि गुरू जी ने इस ओर रुख किया। मामा कृपाल जी को बुधूशाह की सहायता के लिये भेजा। यह अपने साथियों सहित राजा गोपाल की सेना पर तीरों की वर्षा करता हुआ कुमक पर जा पहुँचे। इन तीरों की भरमार और उनके निशाने पर बैठने के कारण गोपाल की सेना को पीछे हटने पर विवश कर दिया, पर वैसे इस तरह से पीछे हटना एक दाव था, पर मुरीदों को भी तीरंदाजी का समय मिल गया। तीरों की

दोहरी मार ने गोपाल की कोई भी चाल न चलने दी। साथियों को निराश देखकर गोपाल ने निशाना बाँधकर मामा जी पर तीर छोड़ा, जो निशाने पर तो बैठा मगर लगा उनके घोड़े को। गोपाल ने आगे बढ़कर तीर मारकर पीछे हटना चाहा, मगर मामा जी ने पुकारकर कहा—तैंने वार किया है और बदला लेकर जा और एक तीर देखकर मारा। गोपाल काफी लड़ाका था, घोड़े को चपला रहा था, आप तो बच गया, पर मामा जी का तीर घोड़े के कानफूल पर जा लगा और वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। गोपाल शीघ्रता से अपने आपको सम्भालकर पीछे सेना में जा घुसा और वहां पर टिककर खड़ा हो गया। इस संग्राम में बुधूशाह का एक पुत्र शहीद हो गया था। इधर जहां पर संग्राम था, वह स्थान खाली था। मामा जी आगे बढ़े और बूधूशाह के पुत्र के शव को खोजकर ले आये। यों गोपाल की सेना को हल्का करके पीछे हटाकर मामा जी फिर श्री दश्मेश जी के पास जा पहुँचे और सारी वार्ता जा सुनाई।

: ५ :

फतहशाह ने, जो, कि सारे संग्राम का प्रबन्धक था, स्थान-स्थान पर जाकर अपनी सेना के जमे हुए पैर देखे कि आगे नहीं बढ़ रहे हैं, बल्कि पीछे पड़ रहे हैं, तब उसने हयात खाँ आदि पठान सरदारों को संदेश भेजा।

"तन किऊँ रणखेतहिं देत नहीं।
किस कारन आप वचावत हो?
गुल्कां सर किऊं न चलावत हो...।
कर हेल मिलो दल किऊँ न अबै।
लूट माफ करी धन लेहु सबै"। [सूरज प्रकाश]

यह सुनकर हैयात खां और निजाबत खाँ आदि ने अपनी टुकड़ियों को सँभालकर धावा बोल दिया और बड़ी तेज़ी से तीर बरसाने शुरू कर दिये?—

इत ते उत धाए प्रहारत हैं।
पिख अग्र वधयो तिस मारत हैं।...
मुख मारहिं मार उचारत हैं।
बरख गुलकान सु डारत हैं।
हंडिया सम सीस फूटे सु गिरे।
करछी जनु हाथ कटंत परे। [सूरज प्रकाश]

उन्होंने सिख सेनाओं की यह दशा की, मगर उधर से भी तीरों की ऐसी भरमार हुई कि अनेकों खान धरती पर लेट गये। हैयात खां बड़े ज़ोर से ललकारता, दाव बचाता, तीर चलाता और सारा ज़ोर लगाता। यह देखकर उदासी संत कृपाल जी गुस्से में आकर गुरू जी से पूछने लगे—साहब जी हैयात खाँ बड़ा बल लगा रहा है, इसके तीर भय पैदा कर रहें हैं यदि आप की आज्ञा हो तो नमक हरामियों को दण्ड दिया जाये। साहब जी ने मुस्कराकर पूछा, 'तुम्हारे पास तो कोई शस्त्र नहीं है, कैसे मारोगे'? तब संत ने विनती की:—

'कुतका[1] इह कांधे मोहि रहयो।
मम आयुध दीरध हाथ गहयो।
इह संग हयात प्रहार करों।
तुमरो बल पाए रती न डरों।
जहिं लौ चलि जाए न छोरहुगे।
एक वार करों सिर फोरहुँगे'।
मुस्कराये प्रभु तब बाक कहयोः—
'हत खान हयात रिदै जु चहयो।
बिदती जग मैं जिम भीम गदा।
कुतका तिम जानहिं लोक सदा।'

यह सुनकर साधु ने अपने घोड़े को एड़ लगाई और हवा की भांति उड़ता हुआ हैयात खां के पास जा खड़ा हुआ और ललकार कर बोला—आ जा, यदि तुझ में वीरता है तो आ मुझसे लड़। पीठ न मोड़, सम्मुख होकर दो हाथ देख लेः—

सुन खान मुरयो ललकारत ही।
जिऊं नाग कि पूछहिं दाबत ही।
तरवार निकारिय कोप भरे।
हुए सनमुख दोनहु बीर खरे।

यह नज़ारा देखकर हर ओर से तीर और तलवारें खड़ी हो गईं और चकित होकर देखने लगे कि हैयात जैसे शूरवीर के साथ लड़ने के लिये कुतके वाला कौन आया है। इतने में हैयात एक दाव देखकर बाज़ की फुरती से घोड़े को नचाकर साधु पर जा झपटा और बिजली की भांति तलवार का वार किया, पर साधु ने कुतके को ढाल के स्थान पर इस तरह से तलवार के आगे किया कि उस पर वार झेल लिया गया। तलवार टूटकर गिर पड़ी और खां अपने आपको संभालने की चिंता में पड़ गया। अब साधु ने बड़ी फुरती से काम लिया। दोनों रकाबों में दोनों हाथों से कुतका उभारकर आसन से तनिक सा उछलकर पूरी सीध बांधकर हैयात के सिर पर दे मारा। यह इस जोर से जाकर लगा कि हैयात का सिर फूट गया। इस समय का हाल गुरू साहब जी ने स्वयं यों लिखा है।

कृपाल कोपीयं कुतको संभारी।
हठी खान हयात के सीस झारी।
उठी छिछ इच्छं, कढ़ा मेझ जोरं।
मनो माखन मट्टकी कान फोरं।

सिर टुकड़े हो जाने से हैयात खां घोड़े से उलटकर ज़मीन पर गिर पड़ा और घोड़ा उठकर भागा तथा अन्य पठान दौड़कर साधु को घेरने लगे। इधर जीतमल ने सवारों सहित आगे बढ़कर साधु को अपने घेरे में लेकर बचा लिया।

१. सेनापति लिखता है कि साधु ने हैयात खां के बाद एक और को भी कुतके से मार दियाः—एक दई सु दई उहके फिर दूसरी सों एक और सिंघारियो।

: ६ :

इस समय ज़ोर की लड़ाई हो रही थी कि हैयात खां मारा गया। इसकी मौत से पठानों के छक्के छूट जाते, पर भीखन खां ने समय को संभाला और घबराहट के कारण हिली हुई सेना को जाकर चुनौती दी कि शूरवीर बनों, हार खाकर क्या यही कहोंगे कि साधुओं और नीच जाति के लोगों से पठान हार गये? आओ, बढ़ो, मैं तो खड़ा हूँ, मुझे आज अवश्य ही विजय प्राप्त करनी है। इस प्रकार की चुनौती भरी बातें सुनकर हारे हुये पठान सावधान हो गये। भीखन खां आगे बढ़ा और उसके साथ ही बढ़ा निजाबत खां। उधर से हैयात की मृत्यु को देखकर फतहशाह ने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। अब फिर शत्रु की सेना का बहुत ज़ोर हो गया। हरीचन्द्र हंडूरिया बड़े क्रोध में आया। यह अपने समय का प्रसिद्ध तीरंदाज था। उसके तीरों से गुरू जी की सेना का काफी नुकसान हुआ, जिससे गुरू जी की सेना में हलचल मच गई। गुरू साहब ने जब यह देखा कि साहब चन्द जो कि एक ओर से बड़े हठ के साथ जम रहा है और बड़े बल के साथ युद्ध कर रहा है पर अब उसका वश नहीं चल रहा, तब उन्होंने नन्दचन्द को कुमक के लिये भेजा और साथ ही दयाराम अपना तुमुल 'बढ़े चले आ रहे निजाबत' को रोकने के लिये ले गया। इन्होंने और इनके जत्थे ने ऐसे बाण मारे कि बढ़े चले आ रहे अनेकों सैनिक गिर गये।

नन्दचन्द और दयाराम के बढ़त चले आने पर अपनी सेना में उत्साह बढ़ गया और फिर सारे जमकर लड़ने लगे। नन्दचन्द ने अब धावा बोलकर एक पठान पर बरछी चलाई और उसे उसमें पिरोकर गिरा लिया, फिर एक और बरछी चलाई, पर वह घोड़े को लगी और वह वहीं पर ही रही। नन्दचन्द ने अब तलवार सम्भाली, सम्मुख होकर लड़ा और पीछे न हटा।

इस कोप भरी लड़ाई को लड़ते समय दो पठानों को मारकर, तीसरे के साथ लड़ते हुये इसकी तलवार भी टूट गई। शीघ्रता से इसने छाती के साथ से जमधर निकाला और उसे मार लिया इसके हठ ने एक तहलका मचा दिया। अब इसका घेरे में आ जाने अथवा तीर का निशाना बन जाने में कोई देर नहीं थी कि दयाराम आगे बढ़कर इसके पास जा पहुँचा। इधर से गुरू जी ने अपने मामा कृपाल चन्द जी को, जो कि खत्रीपन की शान से भर रहे थे, सहायता के लिये भेज दिया, जिसने आगे बढ़कर घमासान युद्ध मचाया। मामा जी को कई तीर लगे घाव आए पर प्रभु ने उनके प्राणों की रक्षा की। चोट खा खाकर भी मामा जी पीछे नहीं हटे आगे बढ़ बढ़कर लड़े। कितने ही खानों को घोड़ों से नीचे गिराया और कितने ही मार दिये। अत: साहब चन्द जो कि बड़े हठ से इस ठिकाने पर जमा हुआ था, इन कुमकों के पुहँच जाने पर जमा रहा। इस तरह इन्होंने बहुत से पठानों का वध किया, केवल वही सिपाही बच रहे जो पीछे हट गये थे। इस स्थान पर भी युद्ध में सिक्खों ने अपना पासा भारी कर लिया। अनेकों शत्रुओं को मारा। जो बढ़कर आये थे वे अब पीछे हट गये। हरीचन्द्र इस ओर से थोड़ा सा पीछे हटकर भीखन खां को टिकाकर और हौसला देकर संगोशाह की ओर शीघ्रता से चला गया। गुरू साहब ने स्वयं युद्ध के इस दृश्य का

१. एक सिरे से छोटा और दूसरे सिरे से मोटा एक डंडा, जो कि भारी होता है, मगर लम्बाई में छोटा होता है, अथवा भांग पीसने का डंडा।

इस प्रकार वर्णन किया है:–

तहा मन्द चन्दं कियो कोप भारो।
लगाई बरछी कृपाणं संभारो।
तुटी तेग तृखी कढ़े जमदडढं।
हठी राखयं लज बंसं सनडढ़ं॥८॥
तहां मातुलेयं कृपालं क्रुधं।
छकियो छोभ छत्री करयो जुध सुधं।
सहे देह आपं महां बीर बाणं।
करे खान बानीन खाली पलाणं॥९॥
हठियो साहबंचंद खेतं खत्रिआणं।
हने खान खूनी खुराम्रान भानं।
तहां बीर बंके-भली मांत मारे।
बचे प्रान लै के सिपाही सिधारे॥१०॥

मैदान बहुत लम्बा था। जगह-जगह पर मार-मार हो रही थी, फतहशाह उस पार से इधर को आ गया था, पर लड़ रही टुकड़ियों के पीछे खड़ा था। हताश होकर भागने वालों को दोबारा आगे भेजता, कुमकें भेजता और युद्ध को सभी ओर से संभालता था। जिस ठिकाने पर संगोशाह लड़ रहा था, अब उधर ज़ोर बढ़ रहा था। जिस ओर बुधूशाह था, उस ओर भी युद्ध जारी था, और पीर जी का एक और पुत्र भी शहीद हो चुका था। पर पीर ने साहस नहीं खोया था और उनकी टुकड़ी उस ओर मैदान में डटकर युद्ध कर रही थी।

: ७ :

इस युद्ध में कुछ ऐसी घटनायें घटीं जो कि पठानों और राजाओं को चकित करने वाली थीं। वे लोग जो कभी जंग में नहीं गये थे, उन्होंने भी वीरता दिखाई। गुरू जी के वीरता भरे जोश का यह प्रभाव था कि दयाराम ब्राह्मण शूरवीर बन गया था। खैर, यह तो शस्त्र विद्या में निपुण्य हो चुका था। चरवाहे तक भी युद्ध करने में अगुआ बन गये थे। एक साधु ने उठकर मुख्य पठान सरदार को मार लिया था। पुस्तकों में लालचन्द नामक एक हलवाई का ज़िकर आया है जो युद्ध का रंग देखकर मैदान में कूद पड़ा था। इसने अमीर खाँ नामक एक पठान को जाकर चुनौती दी और और हाथों हाथ लड़ाई करके उसे मार लिया था।

हरीचन्द, नजाबत आदि पठानों को एक ठिकाने पर खड़ा करके संगोशाह की ओर जा झपटा। इसे यह दीख रहा था कि यदि इस ओर ज़ोर पड़ गया तो निश्चय ही हमारी हार हो जायेगी। संगोशाह यहां पर बड़े जोर का युद्ध कर रहा था और शत्रुओं को मार रहा था। राजा गोपाल अभी तक शूरवीरता से जमा खड़ा था। यह हाल देखकर ही हरीचन्द इस ओर लपका था। उधर से मधुकर शाह चन्देल भी इधर को ही आ लपका था। हरीचन्द

ने आकर बड़ी वीरता से तीर चलाए, जिसे ये तीर लगे, वह मर गया इसने गुरू जी की सेना के अनेकों वीर हताहत किये। तब इधर से जीतमल जी हरीचन्द को बढ़ते हुए देखकर उससे जूझ पड़े और आमने-सामने दाव-घाव और वार होने लगे। अब फतहशाह का संकेत पाकर नजाबत खाँ भी इधर आ गया और आते ही संगोशाह के साथ टक्कर लेने लगा।

जीतमल ने हरीचन्द को तीर मारा, पर वह तत्काल ही घोड़े का पैंतरा बदलकर बच गया। फिर दाव-घाव लगाते हुए, चलते टालते हुए दोनों के तीर चले, दोनों के घोड़ों को लगे और दोनों गिर पड़े, फिर सँभले। फिर तीर चले, दोनों घायल हुए, पर थोड़े फिर दोनों के तीर चले, हरीचन्द का तीर ऐसा सख्त लगा कि जीतमल जी का अंत हो गया, पर हरीचन्द को ऐसे स्थान पर लगा कि वह मूर्च्छित होकर गिरा और उसके साथी उसे उठाकर ले गये। इधर गुरू जी के योद्धा जीतमल जी के शव को उठाकर गुरू जी के पास ले आये, जिसकी शूरवीरता को गुरू जी ने बहुत ही सराहा और आशीर्वाद दिया।

उधर जब हरीचन्द को मूर्च्छित दशा में उठाकर ले गए तो उसे देखकर फतहशाह बहुत दुखी हुआ। बहुत से शस्त्रधारी लोगों ने इसे चारों ओर से घेर लिया। भीमचन्द भी यहीं कहीं था, कि गुरू जी के एक गोलंदाज़ राम सिंघ ने एक तोप चलाई, जो कि उसने लकड़ी के एक टुकड़े में मोरी करके बनाई थी। उसके गोले से कुछ लोग हताहत हुए और बाकी के भय के कारण भाग गये। फतहशाह भी पीछे हट गया और नदी से पार होकर घोड़े पर चढ़कर भाग गया। इसे युद्धभूमि से भागते हुए देखकर मधुकर शाह डढ़वालिया और जमवालिया भी अपनी सेना लेकर भाग गये। इस समय का हाल श्री गुरू जी ने संक्षिप्त में यों लिखा है:-

तहां साह संग्राम कीने अखारे।
घणे खेत में खान खूनी लतारे।
नृपं गोपालयं खरो खेत गाजै।
मृगा झुंड मध्यं मनो सिंघ राजै॥११॥
तहाँ एक बीरं हरीचन्द कोपयो।
भली भाँति सों खेत मों पांव रोपयो।
महांक्रोध कै तीर तीखे प्रहारे।
लगे जौन के ताहिं पारै पधारे॥१२॥

रसावल छन्द

हरीचन्द क्रुधं। हने सूर सुधं।
भले बान बाहे। बडे सैन गाहे॥१३॥
रसं रुद्र राचे। महां लोच्च माचे।
हने शस्त्रधारी। लिटे भूप भारी॥१४॥
तबै जीत मल्लं। हरीचन्द भल्लं।
हृदय ऐंचि मारयो। सु खेतं उतारयो॥१५॥
लगे बीर बाणं। रिस्यो तेज माणं।
समूह बाज डारे। सु सुरगं सिधारे॥१६॥

भुजंग प्रयात छन्द॥

खुले खान खूनी खुरासान खग्गं।
परे शस्त्रधारं उठी झाल अग्गं।
भई तीर भीरं कमाणं कड़क्के।
गिर बाज ताजी लगे धीर धक्के॥१७॥
बजी भेरि भुंकार धुंके नगारे।
दुहहूं ओर ते बीर बंके बकारे।
कहे बाहु आघात शस्त्रं प्रहारं।
डकी डाकणी चावडी चीत कारं॥१८॥

दोहरा

कहां लगे बरनन करौं मचिओ जुध अपार॥
जे लुझे जुझे सभै भज्जे सूग हजार॥१९॥

भुयंगप्रयात छन्द॥

भजयो साह पाहाड़ ताजी त्रिपायं।
चलयो बीरिया तीरिया न चलायं।
भजयो डढ़वालन मधुकर सु साहं।
भजे संग लैके सु सारी सिपाहं॥२०॥ [बचित्र नाटक]

: ८ :

ये तो कायर बनकर भाग गये, पर हरीचन्द जिस को अब होश आ गया था वह और ग़ाज़ीचन्द चन्देल ये नहीं भागे थे बल्कि शूरवीरता से मरना ही सफल समझकर अड़ गये। उधर पठान भी न भागे, वे भी रणभूमि में अड़कर खड़े रहे। अब उन्होंने इकट्ठे मिलकर एक आक्रमण किया। इधर से दयाराम, नन्दचन्द, गुलाबराय, गंगाराम आदि योद्धा अब बढ़े हौंसले के साथ खूब अड़े और घमासान युद्ध हुआ। ग़ाज़ीचन्द चन्देल इतने क्रोध में था कि आगे-आगे बढ़ता गया। इसके साथ में सेला था, जिससे इसने अनेकों शूरवीरों को पिरोया और उन्हें घायल करके पछाड़ दिया। इस तरह बढ़ते-बढ़ते यह संगोशाह पर आ झपटा, पर उस शूरवीर के आगे इसका कोई वश न चला, टुकड़े होकर धरती पर आ गिरा और अपने स्वामी धर्म को पूरा कर गया। ग़ाज़ीचन्द की मृत्यु ने नजाबत खाँ के मन में अत्यन्त क्रोध भर दिया। यह थोड़े से पठानों को लेकर तेज़ी से आगे बढ़ा और सीधा संगोशाह पर, जो गुरू जी की आज्ञानुसार आज के युद्ध का सेनापति था, जाकर झपटा। नजाबत खाँ और संगोशाह गुरू जी के पास किसी समय इकट्ठे रहते थे, एक दूसरे को पहचानते थे, इकट्ठे ही कसरतें किया करते थे। दोनों खूब लड़े। इतनी वीरता से युद्ध हुआ कि दोनों के लिए वाह-वाह हो गई। अन्त में नजाबत खाँ का शस्त्र ठिकाने पर जा लगा, संगोजी के सख्त चोट आई, पर वे इतने जोश में थे कि बदले का वार किया और नजाबत खाँ मारा गया

और उधर संगोशाह भी गिरा और वीरगति को प्राप्त हुआ। इस युद्ध का वर्णन संक्षिप्त गुरू जी ने इस प्रकार किया है:–

चकित चौपिओ चन्द गाजी चन्देलं।
हठी हरी चन्दं गहे हाथ सेलं।
करयो स्वामि धरमं महा रोस रुझयं।
गिरियो टूक टूक ह्वै किधो सुर जुझयं[१]॥२१॥
तहां खान नैजाबतो आन कैकै।
हनयो शाह संग्राम को शस्त्र लैकै।
किते खान बानीन हूँ अस्त्र झारे॥
सही शाह संग्राम सुरगं सिधारे॥२२॥

दोहरा।

मार निजाबत खान को संगो जुझे जुझार।
हा हा इह लोकै भयो सुरग लोक जैकार॥२३॥

संगोशाह आज जिस वीरता से लड़ा था, फतह का काफी भाग उसकी दूरदर्शिता और फिर अचूक वीरता का फल था। उस पर प्रसन्न होकर गुरू साहब ने उसे 'शाह संग्राम' का नाम प्रदान किया था–

यथा–

संगो का प्रभु ने धरियो नाम शाह संग्राम।
तिह ने प्राक्रम अस कीयो तब पाइओ यह नाम॥३९॥ [कवि सेनापति]

शाह संग्राम की मृत्यु के पश्चात् अब युद्ध का नेतृत्व सारा गुरू साहब ने स्वयं सम्भाल लिया ओर तीर कमान लेकर आगे बढ़े। उधर से संगोशाह के मारे जाने के कारण पठानों का हौसला बढ़ा और नजाबत की मौत के कारण गुस्सा भी बढ़ा। वे आगे बढ़े आ रहे थे। घाट से अभी दूरी पर ही थे कि ऊपर के मैदान की, इस युद्ध भूमि की बढ़ी हुई एक नक्कड़ पर जाकर गुरू जी ने तीर चलाया, जो आगे बढ़े हुए एक पठान सेनापति को जाकर लगा और वह मर गया। फिर दूसरा तीर सम्भालकर आपने सीध बाँधी और भीखन खाँ के मुँह को ताक कर मारा। यह तीर खां को घायल करके उसके घोड़े को जा लगा। घोड़ा गिर पड़ा और खाँ पीछे को भाग गया। तीसरा तीर फिर चला, इससे भी एक और गिर पड़ा और घोड़ा भी गिर पड़ा, इतने में हरीचन्द की बेहोशी हट गई थी। उसे कोई सख्त घाव नहीं लगा था, सिर में धमक के कारण बेहोश हो गया था, पर वैसे घायल था। जब उसे होश आया तो उसने देखा कि इस ओर हार हो रही है, फतहशाह चला गया है, कलह का मूल भीमचन्द बिल्कुल ही आगे नहीं आता, दूसरे राजा पीछे पैर रख रहे हैं, दो-तीन पठान सरदार मारे गये हैं और भीखन खां घायल होकर भागकर आ गया है, तब इसे शूरवीरता वाला क्रोध आया और अपने सवारों को लेकर आगे बढ़ा। इसने तीरों की इतनी वर्षा की कि जिसे भी इसका तीर लगा वह नहीं बच सका। इसने एक बार दो-दो बाण

१. यह चन्देल के गिरने का जिकर है, हरी चन्द का नहीं, उसे अभी जंग करना है।

कस-कसकर मारे। शूरवीर को लगते अथवा घोड़े को, जिसे भी लगते, उसके शरीर से पार हो जाते। इस लड़ाई में दोनों ओर से फिर जमकर युद्ध हो रहा था। यों मारता हुआ और बढ़ता हुआ हरीचन्द अब उस स्थान पर आ गया जहाँ पर से उसका तीर गुरू जी को लग सकता, अतः उसने निशाना बाँधकर तीर मारा, यह गुरू जी के घोड़े को जाकर लगा। उसका दूसरा तीर आया, यह प्रभु की दया से गुरू जी के कान को छूकर निकल गया, उन्हें लगा नहीं। अब फुर्तीले हरीचन्द ने तीसरा बाण तनकर और निशाना बाँधकर मारा। यह पेटी में जा चुभा, उसके अन्दर से शरीर को जा छुआ; पर उसकी नोक ही थोड़ी-सी चुभी, बड़ा घाव नहीं लगा। हरीचन्द को जीवन में आज पहली बार अपनी तीरन्दाजी पर गुस्सा आया कि उसने तीन अचूक तीर मारे, पर गुरू जी के दाव बचाने की चपलता किस कमाल की है कि बाल-बाल बच गए हैं। गुरू जी लिखते हैं कि जब उन्हें तीसरा बाण आकर लगा तब उनका गुस्सा भी जगा[१]। शत्रु के तीन वार झेलना बड़ी विशाल हृदयता की वीरता है। अब आपने भी कस-कसकर तीर मारे। इस समय शूरवीर आगे बढ़े और इकट्ठे होकर बाणों की वर्षा की। फिर सीध बाँधकर आपने एक तीर मारा, जो हरीचन्द को जाकर लगा और वह जवान मारा गया[२]। हरीचन्द की मृत्यु को देखकर उसके साथी और शेष खान आदि सभी उठकर भागे। कोट लेहर का राजा भी मारा गया और गुरू जी की फतह हो गई। यह सारा हाल गुरू जी ने स्वयं इस प्रकार संक्षिप्त रूप में लिखा है–

भुजंग छन्द

लखे शाह संग्राम जुझे जुझारं। (युद्ध में शहीद हो गए)
तवं कीट बाणं कमाणं सभारं॥ (अर्थात् मैंने फिर तीर कमान उठा लिए)
हनयो एक खानं खयालं खतंगं।
डस्यो शत्रु को जान स्यामं भुजंगं॥२४॥
गिरयो भूम सो, बाण दूजो संभारयो।
मुखं भीखनं खान के ताक मारयो।

---

१. "जबै बान लागयो। तबै रोस जागयो" गुरू जी का यह वाक्य अब एक आम कहावत बन गया है।
२. (गुरू जी के तीर से) 'ढ़ठा विच मैदान दे राजियाँ दा धानी।..........
हरी चन्द रण मारिआ राजिया दा सानी।। [जंगनामा गुरू गोबिन्द सिंघ]
तिसै ताक बाणं।
हनयो एक जुआणं।
हरी चन्द मारे।
सु जोधा लतारे। [गुरू विलास मनी सिंघ]
हरी चन्द हेरा।
रिसानो बडेरा।
रिदे ताक आछौं।
रिपू नास बाछे।
तजयो शीघ्र धारी।
गयो बेग पारी।
डसियो नाग मानो।
गिरिओ प्राण हानो। [सूः प्रः]

भजयो खान खूनी रहयो खेत ताजी॥
तजे प्रान तीजे लगे बान बाजी॥२५॥
छुटी मूरछना हरीचंद संभारे॥
गहे बाण कामाण भे ऐंच मारे॥
लगे अंग जाँके रहे न संभारं॥
तनं त्यागते देवलोकं पधारं॥२६॥
दुयं बाण खैंचे इकं वार मारे॥
बली बीर बाजीन ताजी बिदारे॥
जिसै बाण लागै रहै न संभारं॥
तनं बेधिकै तांहि पारं सिधारं॥२७॥
सभै स्वामि धरमं सुबीरं सभारे॥
डकी डाकणी भूत प्रेतं बकारे॥
हसे बीर बैताल औ सुध सिधं॥
चवी चावड़ीयं उडी गृद्ध बृद्धं॥२८॥
हरीचन्द कोपे कमाणं संभारं॥
पृथम बाजीयं ताण बाणं प्रहारं।
दुतिय ताक कै तीर मो को चलायं॥
रखयो दईव मैं कान छुवै कै सिधायं॥२९॥
तृतीय बान मारयो सु पेटी मझारं॥
बिध्यं चिलकतं दुआलपारं पधारं॥
चुभी चिंच चरमं कछू घाय न आयं।
कलं केवलं जान दासं बचायं॥३०॥

रसावल छन्द॥

जबै बान लागयो॥ तबै रोस जागयो॥
करं लै कमाणं॥ हनं बाण ताणं॥३१॥
सभै बीर धाये॥ सरोघं चलाये॥
तबै ताकि बाणं॥ हनयो एक जवाणं॥३२॥
हरीचन्द मारे॥ सु जोधा लतारे॥
सुकारोड़ रायं[1]॥ वहै काल घायं॥३३॥
रणं त्याग भागे॥ सभै त्रास पागे॥
भई जीत मेरी॥ कृपा काल केरी॥३४॥
रणं जीत आये॥ जयं गीत गाये॥
धनंधार बरखे॥ सभै सूर हरखे॥३५॥

---

१. सुकारोड़ रायं–कारोड़ का राजा, कारोड़ कोटलेहर की रियासत का नाम है, जो बाईस धारों में से एक थी।

अब भगदड़ मच गई, सारे राजपूत, पठान, गांवों के अहीर, गूजर और प्रजा के लोग जो कि काफी संख्या में आये हुए थे सभी भागे जा रहे हैं। किश्तियों पर सवार होकर, नदी को पार करके, लकड़ियाँ नदी के बीच डाल-डाल कर उसका आश्रय ले लेकर, मटकों पर तैर कर, तुलहों के आश्रय ले लेकर, नदी के पार जा रहे हैं। सिख सेना अब खुशी से उमड़कर उनका पीछा करने के लिये उठी कि उनकी राजधानी तक मार की जाये, पर गुरू जी ने पीछा करने वालों को वापस बुलवा लिया।

अब सबसे पहला काम संगोशाह, जीतमल तथा दूसरे शहीद हुए योद्धाओं की अन्त्येष्टि करने का था। बुद्धूशाह के पुत्रों को दफनाना था और शेष सभी शहीदों की अन्त्येष्टि करनी थी। अतः गुरू की आज्ञा के अन्तर्गत आपके कृपालु नैनों के सामने और आपके आशीर्वाद से यह सारा कार्य किया गया। ये सारे कार्य करवाकर गुरू जी अपनी विजय सेना और पीर बुदूशाह तथा अपने शूरवीरों सहित पाऊँटे आ गये, सभी घायलों को भी लाया गया और उनके इलाज शुरू किये गये।

: ९ :

पाऊँटे में एक दिन विश्राम करके फिर दीवान सजा। इसमें श्री गुरू जी ने अपने उच्च आदर्श का, शत्रु की सेना का, अकारण टूटकर आक्रमण करने का और आगे से शरण न लेने की वीरता का व्योरा आदि बताकर वीररस और शान्तरस का सम्मेलन समझाया। अन्तरात्मा में ज्योति के साथ एक-ज्योति होकर उच्च रहकर स्वच्छ आचरण में वीररस का व्योहार बताया। फिर उनके लिये आशीर्वाद दिये गये, जो शहीद हुये थे। यह भी लिखा है कि पहले आसा की वार का कीर्तन हुआ, फिर श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी के पाठ की समाप्ति हुई और कड़ाह प्रसाद बाँटा गया।

अब जो शूरवीर वीरता दिखाकर जीवित बचकर आ गये थे उस पर अनुकम्पा हुई, सिरोपाव दिये गये। सेना के सभी शूरवीरों को धन का दान दिया गया। बुआ जी के तीन पुत्रों पर, जो जीवित बच रहे थे और बहुत वीरता से लड़े थे, अनुकम्पा हुई। दो भाई जो कि शहीद हो गये थे उन्हें वरदान और 'शाह संग्राम' आदि नाम प्रदान किये गये।

पाऊँटे में ही बड़े साहबज़ादे का जन्म हुआ था, उसकी उम्र इस समय चार-पाँच महीने की थी। आज के दीवान में उनका नाम युद्ध की फतह पर अजीत सिंघ रखा गया।

तीसरे पहर श्री गुरू जी स्नान करके तैयार हो रहे थे कि बुधूशाह ने आकर विदा मांगी। बुधूशाह पर बहुत आध्यात्मिक कृपा हुई थी, उनके साथियों, मुरीदों को मिठाई के लिये पाँच हजार रुपये दिये गये। इस समय आप कंघा कर रहे थे कि बुद्धूशाह ने यह दान माँग लिया। तब सतगुरू जी ने वह दान काकरेजी दस्तार सहित दे दिया। एक पोशाक, एक हुकमनामा भी प्रदान किया[१]। फिर गुरू साहब सारे वीर बहादुरों की सम्भाल करके महंत

१. औरंगज़ेब बुधूशाह के साथ नाराज़ था। कुछ समय के पश्चात सढ़ौरा के हाकम उसमान खाँ ने बुधूशाह पर चढ़ाई करके उसे मार दिया था। उस समय उन्होंने इस दस्तार, कटार आदि को दीवार में चिनवा दिया था। यह दीवार संवत् १८७० में गिर गई और सभी वस्तुएं सही सलामत मिल गई थीं जो उनके वंश के पास बताई जाती हैं। बाबा बन्दा बहादुर ने बुधूशाह को कत्ल करने के कारण उसमान खाँ को फांसी लगवा दी थी।

कृपाल पर प्रसन्न हुये। आपने केशरी रंग की दूसरी दस्तार सिर पर बाँधने के लिये मंगवाई और उसमें से आधी महंत कृपाल जी को दे दी। महंत ने उसे अपनी टोपी के ऊपर बाँध लिया। इस प्रकार दयाराम को एक ढाल प्रदान की।

शूरवीरों में अब चाव भर रहा था और विजय के कारण साहस बढ़ चुके थे और सबके मन में उमाह था और स्वयं चढ़ाई करके फतहशाह पर विजय प्राप्त करने के लिये चढ़ाई करने का जोश था। पर लिखा है कि गुरू जी ने ऐसा करने से उन्हें मना कर दिया था।



१३ भंगाणी के दर्शन

सूचना–नीचे लिखी हुई पंक्तियाँ लेखक की भंगाणी की इस सुन्दर गुरू स्थान की यात्रा के समय अनुभव हुई। (यहाँ पर इनका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।)

मैंने सुना कि आप भंगाणी गये थे वहाँ पर लड़ाई छिड़ी थी। मैं भी दर्शनों की इच्छा लेकर हे कलग़ी वाले! आप के पीछे-पीछे चली आई। यमुना के किनारे हरी-हरी घास के मैदानों में हरे-हरे गेहूँ, पीली-पीली सरसों ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, जैसे किसी कपड़े पर रंगदार छपाई होती है। ठण्डा सुहावना पवन चल रहा है, यमुना कल-कल कर रही है, मीठी धूप गर्मी दे रही है और सर्दी भी ज्यादा नहीं है। मैं मार्ग पूछती हूँ, खोज करती हूँ, जी-जी करके मन में उसी की सम्भाल करती हूँ, उसके दर्शनों की खोज करती हूँ, बाँवलों की भाँति वन-वन फिरती हूँ, और अता-पता पूछती हूँ। न तो मुझे घोड़े की टाप ही सुनाई देती है, न तंबू ही दीखता है, न कोई पैदल ही दिखाई देते हैं और न घोड़े हाथी पर चढ़े हुये सवार ही, कोई रथ भी दिखाई नहीं पड़ता। न तो रणभेरी की आवाज ही सुनाई देती है और न बजता ढोल ही सुनाई देता है। रणजीत नगारा भी नहीं बज रहा है। न तो बजता हुआ शंख ही कानों में पड़ता है और न जै-जैकार ही सुनाई देती है। शत्रु की सेना भी कहीं नहीं दीखती, न ही फहरते हुए झंडे ही दीखते हैं। मुझे खोज करती हुई, व्याकुल हो गई को गुरू के झण्डे दीखे। हे सतगुरू! मैं मछली की भाँति तड़पकर पहुँची, मगर आप नज़र नहीं पड़े, हे सतगुरू! तेरा सफेद 'असिध्वज' झण्डा[1], हाव के साथ, लहराता है। कहते हैं कि यहीं झण्डे के पास तेरा डेरा लगा था। तैंने अपने पवित्र चरणों से उस स्थान को छूहा था। मेरे मस्तिष्क में नमस्कार का भाव जागृत हुआ, मैंने सिर को धरा पर रखा, आपके चरण कमलों को परसी हुई धूल परसी, और मस्तक पर लगाई। उस पवित्र धूल ने मेरे माथे को चूम लिया। द्वार पर आकर गिरे हुए और उसकी धूल को छुहे हुए मुझको उसने चूम-चूमकर पावन कर दिया। वहां पर एक तीर चलने की आवाज़ आई, मेरे कान उधर को लगे, मेरे पैर उसी ओर उठकर दौड़ चले और मोर्चे वाले स्थान तक बढ़ गये। जहां पर एक विशाल वृक्ष है, जिसकी छाया बड़ी सुहावनी है, जहां से कलग़ियों वाले ने बीरासन होकर तीर चलाए थे, रणभूमि में घमासान युद्ध किया था और अमोघबाण चलाकर युद्धभूमि के रंग बदल दिये थे, न तो वे तीर हैं और न वे तीरों के निशाने और न ही वे लोग हैं जो शत्रु बनकर आपके सुन्दर हाथों से मुक्ति को खरीदने के लिये आये थे। न ये बैरी हैं न वे सज्जन हैं, जो दीपक पर पतंगे की भांति जले थे और बसते हुये तीरों और गोलियों

---

१. सतगुरू जी के खेमे के स्थान पर एक चबूतरा अब तक है और तब से उस स्थान पर झण्डा फहराता है। यह कोई पक्का गुरुद्वारा नहीं है, यहाँ से थोड़ी दूरी पर पुजारी का घर और लंगर है।

के सामने प्राण दे देने से भी नहीं डरे थे। न ही बूद्धूशाह है, न उसके मुरीद और पुत्र, न ही उदासी महंत कृपाल, न ही मामा जी और पांच शूरवीर कहीं भी नज़र नहीं आते। मैं दर्शन की प्यासी फिर रही को दर्शन नहीं हो रहे, मैं प्रत्येक वन से विनती कर रही हूँ कि कहीं पर मुझे कल्ग़ी वाला नज़र आ जाये। मैं सभी स्थानों पर और झाड़ियों में घूम-घूमकर थकी हारी बैठ गई हूँ, नज़र थक गई, नैन मुँद गये, प्यारी नींद आ गई। नींद में क्या देखती हूँ कि एक पत्थर पर 'प्यार मूर्ति' जी विराजमान हो रहे हैं, उनके आगे धनुषबाण रखा है। उनकी नज़र तेजमय प्रकाशत है। जलाल वाली छबि बदल गई, एक प्यार फबन (छबि) सामने आई। इस तरह दया दृष्टि डाली जैसे कि चन्द्रमा से प्रकाश निकलता है। फिर आप उठकर वहां पर गये जहाँ पर मृतकों के शवों के ढेर लगे थे; वहां पर सिसकते घायल और अधमुए भूमि पर पड़े दिखाई दे रहे थे। उन घायलों और शहीदों में से प्यार ज्योति की लहर गुजर गई। मानों अदेश से पुत्रों को खेल खिलाने के लिये माँ चलकर आ गई है। आप उन के सिर गोदी में रखकर उनके मुँह पोंछने लगे और केशों को संवारने लगे। प्यार से कहते चलते जाते हैं "हे दूले! हे जाने वाले पुत्र! तुझे नरक की अग्नि नहीं जलायेगी, नरक के द्वार तेरे लिए बंद कर दिये हैं। तेरा वास ठण्डे स्थान पर होगा; जहां पर अनुग्रहीत व्यक्ति रहते हैं। तेरे नाम जपने के कारण तेरी लालिमा कायम रहेगी, तेरा डेरा प्रेम लोक में होगा, जहां पर सदा सुखों का निवास है, वहां पर तेरा डेरा होगा। तू अब मेरा हो गया है और मैं तेरा हो गया हूँ, हां मैं तेरा हूँ और तू मेरा है। हे लाल! तू मेरा है, मेरा है, तू मेरा है।" कहीं किसी सिसकते हुये के पास जाकर उसे अंतिम समय दर्शन देते और वे दर्शनों को नैनों में समाकर परलोक को चले जाते हैं। घायलों और तड़पने वालों को जाकर उठा लेते और कहते हैं: "हे प्यारे! तेरी कमाई धन्य है, तेरा सिख धर्म धन्य है, तेने सिख धर्म को सही रूप से पाया है।" साथ ही साथ प्रेमी जन पहुँच रहे हैं और वे उसका खून पोंछते ज़ख्मों पर मरहम लगाते और पट्टी बांध देते हैं। घायलों को डोलों में सवार कराकर डेरे की ओर भिजवाते, सब को दवा दारू मिलता और सभी घायल ठीक होते जाते। एक-एक की सम्भाल करते हैं और किसी को भी नहीं भुलाते। जिस प्रकार कुररी अपने बच्चों को नहीं भुलाती, इसी प्रकार सबको याद में रखा गया है। एक स्थान पर एक विशाल चिता बनाई गई और शव उसके ऊपर रखे गये। अदेश और पृथ्वी के दाता जी ने आकर उन्हें जीवन की आग लगा दी। प्यारे सिखों को आध्यात्मिकता की डोली पर बिठाकर, अगम के देश में भेज दिया। इधर से फारिग़ होकर दाता जी ने दूसरी ओर रुख किया। शत्रुओं की ओर भी वही दृष्टि डाली जो सज्जनों की ओर डाली जाती है, शत्रु के साथ मित्रों का सा प्यार किया। राजा, राणा, खां, सभी पीठ दिखाकर भाग गये थे और अपनी सेना के घायल और मुर्दों को वहीं पर छोड़कर चले गये थे। पर कृपालु गुरू जी ने शत्रु के घायल सैनिकों को भी जाकर सम्भाला। उनके घावों पर मरहम पट्टी करवाई, जीवन बूटी दे-देकर मृतकों को जीवित किया। हूरों से भी कहीं अधिक सुन्दर रानियां अब करबद्ध हाजिर हुईं, और साहस बटोरकर दौड़ती-दौड़ती हुई अर्ज़ करने को आईं। चरणों पर गिरकर कहतीं, "हे

कल्गीधर स्वामी! आप अवतार हैं, हमें इस बात का पता नहीं चला था, हम से बहुत भूल हुई है। हमारे पति राणा मर गये हैं आपके साथ लड़कर मरे हैं; आप गुरू हैं इसलिये आप उन्हें मुक्त कर दीजिये, चाहे इन्होंने आपका सामना किया है। आपका विरद उद्धार करने का है, आप दोस्तों और दुश्मनों दोनों का उद्धार करते हैं। फल तो किये करम का ही मिलता है, आप तो किसी के पापों की ओर नहीं देखते अब आप हमें हमारे पतियों के शव लौटा दें, जो आपके पास हैं, ताकि हम अपने-अपने धर्मानुसार इनकी अंत्येष्टि करें।" आप मुस्कराये, भौहें खींची, त्रिकुटी पर बल चढ़ाया; कल्गीधर ने शान्ति और शरण देने वाला हाथ उठाया। सुन्दर गुरू ने दया दृष्टि डालकर दया की वर्षा की। जिन्होंने वैर किया था उन्हें आशीर्वाद देकर दुलारा। उनके छल कपट को माफ कर दिया और मुख से कह दिया "इन्हें बख्श दिया है।" प्यार सहित सिर पर हाथ फेरे, प्यार दुलार किया। फिर आपने यह बचन कहा कि "मैंने प्रभु के द्वार तक पहुँचने के लिये इनकी बाधा हटा दी है" और रानियों से कहा "बेटियो! तुमको सती नहीं होना होगा", फिर यह बचन भी रानियों के प्रति कहा, "अब सभी शव सम्भाल लो, मेरी ओर से अब कोई रुकावट नहीं है।" तब रानियों ने नमस्कार करके सबके शव उठवा लिये, पर बाद में शवों को लेकर वे सभी सती हो गईं। उन सतियों के स्थान बने और जगत में उनकी निशानियां रह गईं। तब लोगों में इस बात की धाक जम गई कि ये कृपालु हैं, जिन्होंने विजय पाकर भी शत्रुओं के साथ प्रेम का व्यवहार किया है। विजयी और बलशाली सतगुरू जी ने अब इधर से निवृत होकर यमुना के किनारे एक ठिकाने पर आकर डेरे लगाए। अपने ईश्वरीय रंग में आपे में मग्न हो गये और युद्ध के सभी बखेड़े भूलकर आध्यात्मिक रंग में समा गये। आपकी एक टक समाधि ऐसे लगी जैसे जल महिं कमल निर्लिप्त होता है। इसी तरह ब्रह्म में मग्न हुए रात व्यतीत हो गई ओर न कोई माया की छाया थी और न ही कोई उपाधी थी। जब पूर्व से सूर्य की ज्योति का उदय हुआ, तब आपके प्यारे नैन खुले। मोहित करने वाले कटाक्ष छूटे, नैनों से अद्भूत तीर निकले। नैनों से प्यार वाली आभा और सुन्दरता वाली छवि बरसी वह रसभीनी और रसीली नज़र किरण की भांति लहराई, रोम-रोम में एक झन्नाहट छिड़ी, रंग-रंग थर्राई, अदेशी लहर की एक झूम-सी आई, स्वाद-स्वाद झरने लगा। जब इस झन्नाहट में मेरे नैन खुले तो मैंने क्या देखा कि वही हरे-हरे खेत, हरियाली थी और वह नज़ारा लोप हो चुका था। पर वहाँ का प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक डाली, प्यार की गुंजार कर रही थी और "धन्य कलग़ीधर, धन्य कलग़ीधर" का गुंजार होता था। इस स्थान पर सुन्दर गुरू ने चरण रखे थे, यहाँ पर अब तक प्यार की सुगन्धि फैल रही है और यहाँ पर प्यार की सन्धि मिलती है।



१४ बुधूशाह का संतोष

बुधूशाह साईं का फ़कीर, दशम गुरू का प्रेमी, सिदक भरोसे वाला आज्ञा को मानने वाला व्यक्ति, धन्यवाद के नियम वाला, आसन लगाकर ध्यान जमाये हुए, प्रभु के रंग में राँता हुआ एक दिन सढौरे में बैठा था। आध्यात्मिक रस में मस्त, मस्तक प्रसन्न, नेत्र नीचे, चेहरे पर लाली, मन मतवाला, जी सुखारा, रोम-रोम में खुशहाली थी। जब उनकी आँख खुली तो क्या देखता है कि एक मुरीद आया है, जिसका मन मुरझाया हुआ है, और चेहरा भी कुमलाया हुआ है। पीर जी ने कहा, "आ भाई! क्या बात है, तू प्रसन्न हैं न? तेरा चेहरा उतरा हुआ है, तेरी सुध-बुध ठीक नहीं लगती, तेरा तरकश गिर-गिर पड़ रहा है और तेरी तलवार भी ठिकाने सिर नहीं है, न तुझे अपनी बरछी की ही सूझ है और न तेरा हाल शूरवीरों जैसा दिखाई देता है। तेरी सूरत अच्छी नहीं दीखती।" यह सुनकर उसका स्वाँस भर आया, आँखों से जल टपका, तनिक-सा कण्ठ रुक गया। पर धैर्य बाँधकर साईं का मुरीद बात करने को झुका, "साईं जी! मैं विनती करने के लिए आपके पास आया हूँ। मैं एक बुरी खबर सुनकर आया हूँ, मुँह से बोलने को मन नहीं चाहता।" तब बुधूशाह ने कहा, "हे भाई! जो कुछ होना होता है, वह तो अवश्य हो ही जाता है। ईश्वर के प्यारे तो धुर से ही कमर कसकर आते हैं, वे न हँसते हैं और न रोते हैं। जो कुछ होना हो, बेशक हो जाये, जो दुख आये, सो आये, संसार के दुख से फकीरों का मन तनिक भी दुखी नहीं होता। जिस हृदय में प्रभु का निवास होता है वह हृदय दुखों से मुक्त होता है। वह दु:ख उसे नहीं छूता, वह पुण्य-पाप से परे होता है। ऐसा तो कोई क्लेश नज़र ही नहीं आता जो मुझे व्याकुल कर सके। तुझे जो कुछ कहना है, बेशक कह दे, जो कुछ होना है हो जाये।" मुरीद ने गर्दन झुकाई और आँखें नीचे कीं और करके बात करने से पहले दो-तीन आह भरीं। "मैंने सुना है कि आपके सुपुत्र जो लड़ाई में गए थे और जिन्हें आपने कलग़ीधर की कुमक के लिए भेजा था उन्होंने रण में जाकर लड़ाई की थी ओर अच्छे हाथ दिखाए तथा बहुत से शत्रुओं को मारा था, बहुत से भगा दिये थे, बहुत से घायल किये थे, पर शौक है, मैं कैसे कहूँ, मेरे मुँह से बात नहीं निकलती, कहते समय कलेजा मुँह को आता है और बोलना बन्द हो जाता है। हाय! लाडले, आँखों के तारे, दीन दुनिया के दिये, मैंने सुना है कि वे घमासान युद्ध में ज़्यादा देर तक जीवित नहीं रह सके। लड़कर, बहुत से शत्रुओं को मौत के घाट उतारकर, अन्त में उन्होंने वीरगति पाई है; और दुनिया से विदा होने में रत्ती भर देर नहीं लगाई है। वे जगते हुए दिये बुझ गये हैं घटाटोप अँधेरा हो गया है, वे आखों के दीपक, ज़िगर के टुकड़े दो घड़ियों में ठण्डे हो गये हैं। आप तो मर गये, पर माता-पिता

---

१. यहाँ पर लेखक की पंजाबी कविता का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।

को मार गये हैं, महान आघात कर गये हैं। हे शाह जी! पुत्रों का दु:ख जगत में थरथरी मचा देता है। पैदा होते समय की खुशी का कोई अन्त नहीं होता और मरते समय का सा और कोई दु:ख नहीं। पुत्रों के बिना मनुष्य जगत में निष्फल वृक्ष की भाँति होता है।"

साईं के लोग ने सारी बात सुनी, हँसे और फिर बोले: हे भोले! तू क्यों अफसोस करता है, रोता-चिल्लाता है। मेरे तो धन्य भाग्य हैं, मेरे बेटे गुरू की सेवा में काम आये हैं, जो आगे होकर जूझे हैं, उनका जीवन और मरन सफल है। वह माँ भी धन्य है जिसने ऐसे पुत्र पैदा किये और उनका पालन-पोषण करके बड़ा किया। वह पिता भी धन्य है जिसके कुल में ऐसे भाग्यवान पैदा होते हैं। इसलिए वे मरे नहीं, बल्कि जिये हैं। उन्हें जीवन का लाभ मिला है वे टूटे नहीं, बल्कि जोड़े गये हैं, वे मुक्ति के रास्ते पर चले गये हैं। उन्होंने नेत्र चाहे दुनिया की ओर से बन्द किये हैं, पर प्रभु की ओर खोल दिये हैं। वे चाहे दृष्टि से ओझल हो गऐ हैं पर वैसे वे प्रकट हो गये हैं। प्रभु धन्य है जिसने मुझ आजज पर ऐसी नेकी की है, जिसके पुत्रों ने गुरू जी के सामने वीरगति प्राप्त की है। प्रभु किसी ही आयु में बुला ले, यह उसकी आज्ञा है। उनका इस संसार में आना सफल हुआ है, वह नेक निशानी संसार के सामने रखकर गये हैं। मेरे देखते-देखते उन्होंने शहीदी शरबत पिया है। उन्होंने खुशी से, हँसते-हँसते यह शरबत पिया और स्वर्ग का रास्ता लिया। भला हुआ कि वे भलाई कर गये हैं, मेरा रोम-रोम प्रसन्न है। मैं तो समझता हूँ कि प्रभु ने मुझ पर अनुकम्पा की है। जगत में उसी व्यक्ति का आना सफल है, जो गुरू के लिए अपने सीस को लगा देता है, जो दुनिया का भला करने के लिए अपने प्राणों की बलि दे देता है। जो कोई जीवनकाल में नेकी नहीं करता उसका तो मरना ही अच्छा है: और जो नेकी करके मरता है, उसका जीवन भला होता है।



सूचना—युद्ध जीतने के बाद गुरू साहब फिर ज़्यादा समय तक पाऊँटे में नहीं रहे। कहलूर आकर फिर वापिस अपने आनन्दपुर आ गये। रास्ते का कुछ हाल आगामी प्रसंग में है।

१५ रायपुर की रानी

: १ :

"आश्चर्य है, देह के अन्दर दिल, और दिल के अन्दर कोई अत्यन्त गहरा स्थान है जहाँ पर सिदक का चमकता हुआ कणिका छिपाकर रखा, कितने परदे-दर-परदे में उसे सम्भाला, पैनी दृष्टि की खोज से कितनी दूर उसे छिपाया, पर शत्रु की आँखें और ईर्ष्यालूओं नज़रें बुरी! कैसे यहाँ पर से इस अमूल्य कणिके को इन फटी नज़र वालों ने झाँक लिया। फिर आश्चर्य की बात यह है कि वहाँ से इसे निकाल देने के लिए सुरंगें भी लगा लीं और अपने तोपखाने भी लगा दिये। कैसी चाँदमारी हो रही है। हाय! क्या यह मेरा दिल दीपक बुझ जायेगा? क्या मेरा मन, जिसे इस कणिके ने प्रकाशमय कर दिया था, अब अकेलेपन के अन्धेरे से भर जायेगा। आह! मेरे इस कणिके के अदृष्ट, पर अत्यन्त मीठे दाता! मेरे हाल पर तरस कर और इन ईर्ष्यालू शत्रुओं से बचा ले। यदि मेरा यह कणिका खो गया तो मैं जीवित ही मर जाऊँगी। हे साईं! रक्षा कर....!"

"आश्चर्य है! मेरे अंदर दृढ़ निश्चय था कि यह सिदक का कणिका मेरे अंदर शत्रुओं की मार से बचा हुआ है, पर मेरे कानों द्वारा मेरे मन में और मेरे मन में से नीचे की गहराइयों में मीठे-मीठे दर्द भरे और प्यार भरे स्वर से निन्दा का बाण शत्रुओं ने पहुँचा ही दिया। निन्दा और चुगली के गोले किसी रसभरे और मेरे लाभ की मिठास भरे ढंग से मेरे अंदर पहुँचाये गये। हा कष्ट! मेरे अंदर धुँआँधार है, गुबार है, पीड़ा है। न जाने वह कणिका 'है', अपने ठिकाने पर है अथवा उड़ गया है। अंदर झाँकती हूँ, पर दीखता कुछ नहीं, शोर और घमासान है।"

चालीस वर्ष की आयु वाली एक सुडौल, सुन्दर, गम्भीर, पसन्न माथे, पर विचारवान रेखा वाली स्त्री फूलों की एक बगिया में चन्दन की चौकी पर बैठी हुई अपने आपको यह कह रही है, माथे पर चुटकियाँ भरती है और उफ़-उफ़ करती है, कभी ऊपर को और कभी नीचे को देखती है, फिर चुप हो जाती हे, कुछ सोचती है और फिर कहती है–

"हा! कुटिल सज्जनों! मेरे शरीर के हितैषियों और मेरे प्राणों के शत्रुओ! तुम सज्जन नहीं हो। जिस तरह शरीर सुखों सहित प्राणों के बिना बदबूदार और मृतक है, इसी तरह सिदक के कणिके के बिना प्राण एक मृतक प्रवाह है और मुरदा कलाबाजी का एक खेल है। तुम मेरे सज्जन नहीं, जो तुम मेरे प्राणों के प्राणों को तोड़ते हो। तुम्हारे प्यार भरे वाक्य विषैले हैं। तुम्हारा दर्द, पीड़ा को हरने वाला दर्द नहीं है, पर पीड़ा भरने वाला दर्द है। तुम दर्द बाँटने वाले दर्दी नहीं, पर दर्द लगा देने वाले बेदर्द हो। मैं न जाने तुम्हारे प्यार के धोके में अपने कोटों की सफीलों के अन्दर छिपाकर रखे हुये खज़ाने को लुटा बैठी हूँ।"

"हे मैं, हे मेरे मन!" यह राज्य और सरदारी चार दिन के मेहमान हैं। कितने ही छत्रधारी हुये हैं और गर्द में मिल गये हैं। यदि उन सभी छत्रपतियों के सीस, जो आज तक धरती पर हुकुम चलाकर गये हैं, इकट्ठे किय जाए तो न जाने धरती पर एक तार फर्श बिछाने के बाद भी बच रहें। फिर तू किस गिनती में है? यदि तेरी रियासत चली गई तो क्या चला गया? यदि तू भिखारिन बन गई तो तेरा क्या कम हो गया? जीवित शरीर में सिदक से खाली मुरदा दिल लेकर आठों पहर अन्दर के मसानों को जलाये रखना, यह क्या राज्य है? हाँ, यदि जीवित शरीर के अंदर ज़िन्दगी वाला दिल लेकर चटाई पर बैठना पड़ जाये तो वह स्वर्गराज से कैसे कम है। यदि दिल शहंशाह है तो शहंशाही है यदि दिल भिखारी है तो शरीर की शहंशाही मुँह काला करने वाली स्याही है।... हे प्यारे सिदक चन्द! बाग मोड़, रुख मोड़! आ और आकर मेरे हृदय मण्डल में प्रकाश की, किरणों छोड़, किरणों भेजकर चमक प्रदान कर–

> "साँझ हो गई है, दशोदिशा में अँधेरा छा गया है। चारों और अन्धाधुन्ध मच गई है। मेरा जीव सहम खाकर तड़पता है, हाय एकाकीपन खा रहा है। हे सिदक के सुन्दर चन्द्रमा! तू चढ़ और अँधेरे को दूर कर। मीठा प्यारा प्रकाश कर और मुझ भटकी हुई को रास्ते पर चला दे।"

"हे सिदक! मेरे अन्दर के अँधेरे को तू ही दूर कर सकता है, कोई दूसरा प्रयत्न मेरे संशय, भ्रम और शक के कुहरे को दूर नहीं कर सकता। हे स्वर्ग के वासी, हे बैकुण्ठ के प्रकाश, हे सचखंड के प्रकाश! मैं इस भटकन में तेरा आँचल पकड़े बिना और कौन-सी टेक पकड़ूँ। तू ही आकर अपना आँचल पकड़ा और मुझे पार कर। मेरे पैर कीचड़ में फँसे हुये हैं, तू ही आकर उन्हें निकालेगा। हे सिदक! जब तू चमकता था, तब मैं तेरे रस में थी। मेरे बिना मेरे अंदर घबड़ाहट। मुझे अँधरे पक्ष में चन्द्रमा से बिछुड़ी हुई कुमुदिनी की भाँति तेरे दर्शनों की कमी कुमला रही है। हे सिदक के चन्द्रमा! यदि तू आप छिपा हुआ है तो अपनी आशा और आशा की टेक न छीन लेना। तेरी आशा की टेक के आश्रय ही से अँधेरे का यह समय व्यतीत हो जायेगा।....."

"हैं यह क्या ध्वनि है (कान लगाकर) कैसी प्यारी है?" साँझ छा रही है; अन्धकार पड़ रहा है, सूरज चला गया है, तारे अभी चढ़े नहीं हैं। बादल छा रहे हैं, मेरे अंदर भी साँझ पड़ रही है। वाह वाह निन्दा! वाह, वाह चुगली, वाह व़ाह बुराई! मेरा बसा हुआ घर उजाड़ दिया। हे चाँद तू अब चढ़ और प्रकाश कर (चौंककर और कान लगाकर)...यदि तू राज्य के प्यार का त्याग करे, तो सिदक का चाँद बादलों के पीछे क्यों आये। राज्य के छिन जाने के भय सिदक के आगे बादलों की घटा छा देते हैं। (कान लगाकर) हैं, कैसा प्यारा दरबारी कानड़े का अलाप हो रहा है। वाह, वाह, शीतलता मिलती है, सुख आता है। सुन हे मन! कान लगा और वाक्य सुन–आवाज़ आई:

जौ राजु देहि त कवन बड़ाई॥
जो भीख मँगावहि त किया घटि जाई॥१॥
तूं हरि भजु मनु मेरे पदु निरबानु॥
बहुरि न होइ तेरा आवन जानु॥१॥रहाउ॥

सभ तै उपाई भरम भुलाई॥
जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई॥२॥ [गुजरी नामदेव]

अब रानी उठी, आवाज़ की सीध पर चली, वाटिका के दूसरे सिरे पर एक वृद्ध माई निमग्न बैठी गा रही है। रानी ने उसे पहचाना और रोकर उसके पैरों में गिर पड़ी–

"हे सिदक राव की प्यारी हरावल! मेरी उजड़ रही खेती की रक्षा कर ले। मेरे कानों में उल्टी-उल्टी बातें कहकर मेरे निर्मल हृदय गगन में संशय और शक की घटाएँ चढ़ा दी गई हैं। हे समय पर आ पहुँची आकाश की देव रानी! मुझ पर दया कर।"

वृद्ध माई ने आँखें खोलकर, सिर उठाकर उसे छाती के साथ लगाया, पीठ पर हाथ फेरा। हाथ क्या था? एक जादू था। रानी का दिल एकदम संशय और वहम में से निकल आया, सिदक के हीरे के कण ने चमक मारी। सुरति के मण्डल में प्रकाश हो गया, शीतलता मिली, रस आ गया, रानी का समस्त शरीर सुख रूप हो गया। रोमों द्वारा सुख की झन्नाहट छिड़ी; मग्न हो गई। प्यारी के गले से लगी हुई मस्त है और मस्ती में शीतल, सुखी और रसझीनी मिठास में गर्क हो गई। अंग नहीं हिलते, शरीर अचल है। इस रसदायक गोदी में रसलीन हो रही है।

इस रंग में समय व्यतीत हो गया, तारे चमक उठे, चाँद चढ़ आया; मीठी चाँदनी की चादर बिछ गई। चाहे ठंडक है, पर शरद चाँदनी का रस, जलती हुई आग में से शीतल हुये हृदय को और शीतल कर रहा है। शरीर चाँद की शरद चांदनी में सुखी है, मन अंतस में चढ़े प्रेम भरे सिदक के चाँद की शीतल चाँदनी में सुखी है।

वृद्ध माई ने अब ज़्यादा ठण्डे को देखते हुए रानी को उठाया। रानी उठी पर आँखें बन्द हैं, चेहरे पर एक लाली है जो देखने वाले को पवित्रता और शीतलता प्रदान करती है। एक मस्ती है जोकि बताती है कि रानी किसी अकह सुख में ग़र्क है। वृद्ध माई उठ चली, पर रानी का सिर माई की छाती के आश्रय में पड़ा है। माई समझ रही है, इसलिये अपने अंक भरे, उसके सिर को छाती के साथ लगाये, थोड़ा सा सहारा देते हुये, बाग़ में से लेकर, पिछले रास्ते से महलों के अन्दर चली गई और अंतहपुर के कमरे में जा निकली। शमादान में मोमबत्तियाँ लट-लट जल रही थीं। दो दासियाँ मार्ग देख रही थीं। जब माई ने जाकर रानी को मसनद पर बैठाया और तकिये का सहारा दिया तो मग्न रानी उसी मग्नता में टिक गई। माई ने जब दासी से कहकर कुँअर को बुलवा भेजा जो साँझ से ही अत्यन्त उदास था और बार-बार प्यारी माता जी को बाग़ में रोते हुये देखकर लौट आता था कि बुलाने से कहीं उन्हें खेद न पहुँचे।

गुलाब जैसे सुन्दर खिले हुये पर सहमे हुये चेहरे ने जब माता के नैन मुन्दे हुये देखे तो कुछ घबड़ा-सा गया। माई जी की ओर देखा, पर उस सुखदाई और सयानी ने प्यार से कहा: "लाल जी! चिन्ता न करो, माता जी राजी हैं।"

घड़ियाल बजाने वाले अपने काम पर चौकस रहते हैं। उनका काम होता है–घड़ियां बजाते जाना और रात को घटाते जाना। जब आधी रात व्यतीत हो चुकी तब रानी ने आँख खोली। एक ठण्डा श्वास भरा, और कहा:–

"कमल नैन अंजन सिआम चन्द्र बदन चित चार॥
मूसन मगन मरंम सिउ खंड खंड करि हार॥"

यह सुनकर माई बोली:–

मित का चितु अनूपु मरंमु न जानीऐ॥
गाहक गुनी अपार सु ततु पछानीऐ॥
चितहि चितु समाइ त होवै रंगु घना॥
हरिहाँ चंचल चोरहि मारि त पावहि सचु धना॥१२॥

[फुनहे महला ५]

यह सुनकर रानी ने सिर झुकाया और अपने आपको तकिये के सहारे देखकर उठी और सत्कार के लिये नीचे होकर बैठ गई, फिर लाल जी का मुरझाया हुआ चेहरा देखकर पास बुलाया, गले से लगाकर प्यार किया और कहा: "हे तात! तेरी माता तो आज मर चली थी, पर यह जीवनाधार माई मौत के मुँह से निकाल कर ले आई है।"

यह सुनकर लाल जी की आँखों में आँसू आ गये, पर कुछ बोल न सके और सिर माँ की छाती पर रखकर चुप और मगन से हो गये। थोड़ा-सा समय इस तरह व्यतीत हो जाने पर वृद्ध माई ने प्यार देकर कहा–

'रात बहुत हो गई है, अब आराम करो'।

रानी–जन्म देने वाली माँ ने विशाल संसार समुद्र में बिना चप्पू के और बिना दिये के छोड़ दिया था; पर हे शिक्षा देने वाली माँ! तैने उस अगम्य समुद्र में से निकाल लिया है। हे माँ! मैं आज मर चली थी, मैं रोई थी, रोना कमज़ोरी है, पर सिदक के लिये रोना मन के मैल को धो देता है। क्यों माँ, वैराग मैल दूर करने की दवाई है कि नहीं?

माई–जिसके अन्दर वाहिगुरू की प्रीत एक बार स्वाद वाला चक्कर लगा जाती है, वह बचाने वालों की गिनती में आ जाता है, पर।

"डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥"

रानी–मैं डोल गई, मैं डोल गई थी, मेरे बस में क्या था। मेरे सिदक की छुपी बात किस तरह निकल गई और वह किस तरह सेंध लगाने वालों तक जा पहुँची कुछ दिनों से पहाड़ी राजाओं की ओर से धमकियाँ आ रही हैं कि यदि तैंने कलग़ियों वाले का सहारा लिया तो हम तेरी रियासत को छीन लेंगे। आज दीवान ने आकर सतगुरू जी के बारे में ऐसे-ऐसे संशय भरी बातें कहीं हैं कि जिनसे मेरा सिदक टूट जाय और जगत् का पावन करने के लिये आये हुये दुख हरता जी की शान में, मेरी जिह्वा ज़लजाय ऐसे ऐसे वाक्य कहे हैं, कि जिनके कारण दाता जी मुझे अच्छे न लगें। मैं क्या बताऊँ? जब मैं ये बातें सुर रही थी, तब मेरे कान जल क्यों न गये? माता! दासियाँ तब सखियाँ सभी आज मुझे निन्दा का बोझ उठवाती रहीं हैं। मेरे पास कटार थी, मैं निन्दा के तीरों से छलनी हो गई, मुझ कायर से यह न बन पड़ा कि पेट में कटार चुभो लेती और कानों को पवित्र रख कर इस संसार से चल बसती...अवगुणों वाली हूँ, छोटी सी सरदारी तो मेरे पास है, फिर राजयमद बड़ा है,...मैं किसी काम की नहीं। पर तेरी कृपा ने मेरे अंदर एक जीवत कणिका

बसा दिया है। वह कणिका हीरे की भांति चमक रहा था, जिसे शत्रुओं ने अंधेरे में डाल दिया है, उसके न मिलने की टोट के कारण मैं एक गुबार में झटकती रही और संसार मेरे लिये काला स्याह हो गया। चारों और सुनसान छा गया, मैं डर गई कि मैं अकेली हूँ। मेरा अपना आप ही राक्षस बनकर मुझे खाता हुआ लगे। मैं डोल गई, डोल क्या गई, मैं तो बह ही गई, डूब ही गई। मैंने बड़े प्रयत्न किये। मैं सोचती हूँ कि ऋण कर्ता, प्रेम अवतार, सृष्टि का भार उतारने वाले प्यारे सतगुरू मेरे निज के गुरू: हाँ, गुरू के चरणों में लगे रहने से ज़्यादा से ज़्यादा दुख यही हो सकता है कि राज्य छिन जाये, सो क्या बात है। यदि सिदक है, प्रेम है, टेक है, तो फिर राज्य और फ़कीरी के सुख अथवा दुख से क्या फर्क पड़ता है। मैं सोचती, मैं समझती, पर कलेजे की वीरानी और खालीपन ही कम न होता, पर हे अम्माँ! तेरी मधुर वाणी और तेरे प्यार भरे अंक मिलन ने मुझे खींचकर नरक से निकाल लिया। अम्माँ जी! मैंने निन्दा को क्यों सुना? यदि सुना तो सुनकर मैं पर्वत की भांति अचल क्यों न रही? मैंने क्यों न कहा कि ये सारे झख मारते हैं?

माई–बिटिया! सिदक बड़ी अमूल्य देन है। इसका आना कठिन, इसका पकना कठिन, और इसे कायम रखना कठिन है। गुरू वाक्य है:–"सहसा इहु संसारु है मरि जमै आइआ जाइआ।" इस संसार का रूप क्या है? संशय' और इस संसार में संशय से कौन बच सके हैं, जिनका "कहु नानक संसा भ्रम चूका पाइआ पद निरबाण" अर्थात् संसार ही संशय है और संशय तथा भ्रम का मिट जाना ही पूर्नपद की प्राप्ति है। अत: बिटिया! जब मन में सह संशय तथा भ्रम का सारा स्वभाव मिट जाये तब सिदक की अवस्था आती है। जब सिदक पूरा आ जाता है, तब तत्व ज्ञान आ जाता हे, सतगुरू जी का वाक्य है–"जाकै रिदै बिसवासु प्रभ आइआ।। ततु गिआनु तिसु मन प्रगटाइआ।" हमारी बुद्धि संशयों में रहती है। जब संशय मिट जाते हैं, तब सिदक आ जाता है, तब तत्व ज्ञान प्रकट होता है। बुद्धि के ज्ञान और तत्व ज्ञान के बीच सिदक का डेरा है। बल्कि सिदक का अपना ही तत्वज्ञान का आना होता है। विचार कर लीजिये कि सिदक कितनी उच्च वस्तु है।

रानी–माता से कहीं अधिक ममता से उद्धार करने वाली अम्माँ जी! यह संशय किस तरह दूर हो? मैंने आज संशय दूर करने के लिये कितना दान दिया, मैंने इस दुख में खाना नहीं खाया, मैं पश्चाताप में रो-रोकर व्याकुल हो गई, मैंने सोच-विचार से इसे अंदर से धकेलकर निकाला, पर इस पापी के साथ कोई पेश नहीं गई। मेरी तो समझ यह है कि तुम्हारे पास कोई जादू है जोकि संशय को दूर करता है।

माई (हंसकर)–बिटिया! हमारे सतगुरू जी ने इस रोग का और इसके इलाज का सारा पता अत्यन्त प्यार सहित बताया है:–

करमी सहजु न ऊपजै विणु सहजै सहसा न जाइ।।
नह जाइ सहसा कितै संजमि रहे करम कमाए।।
सहसै जीउ मलीणु है कितु संजमि धोता जाए।।
मंनु धोवहु सबदि लागहु हरि सिअ रहहु चितु लाइ।।
कहै नानकु गुर परसादी सहजु ऊपजै इह सहसा इव जाइ।।१८।।

[अनंद रामकली म: ३]

रानी–प्रिय माता जी! मैं पापात्मा शबद में कैसे लगूँ। सच में कैसे समाऊँ और गुरूप्रसाद को कैसे प्राप्त करूँ?

माई–प्यारी बिटिया! बाणी से जो दिन प्रतिदिन तेरा प्रेम बढ़ रहा है, यह तुझे शबद में लिये जा रहा है, सारी बाणी में शबद की महमा, शबद का लाभ, शबद की ओर प्रेरणा और शबद में समा जाने के प्रयत्न ही भरे पड़े हैं, वाणी का यह विरद है कि अपने प्रेमी को शबद में लगा देती है।–

साची बाणी मीठी अंमृत धार॥
जिनि पीती तिसु मोखु दुआर॥॥
नामु भै भाइ रिदै वसाही गुर करणी सचु बाणी॥
इन्दु वरसै धरति सुहावी घटि घटि जोति समाणी॥ [मलार महला १]

पुनः गुरबाणी सुनत मेरा मन द्रविआ मन भीना निज घरि आवैगो॥

[कानड़ा अः महला ४]

सो बिटिया! बाणी, भय, प्रेम, मन का द्रवित होना आदि असर पैदा करती है और शबद अर्थात् नाम का हृदय में निवास करा देती है। बाणी का अभ्यास शबद की प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। शब्द के मन में बस जाने से सच्च का निवास हो जाता है। सतगुरू जी की कृपा है कि तुझे इस ओर की लगन लगी है, सतसंग प्राप्त हो गया है और सतगुरू तेरे घर में आने वाले हैं।

रानी–अम्माँ, यह सब आपकी कृपा का फल है, अन्यथा मैं गुणहीन क्या थी, पर अम्माँ जी! बाणी ठीक ही मीठी लगती है और मन को शीतल करती है; मैंने भूल की, आज मुझे इस बात का भी चेता नहीं आया कि मैं बाणी का पाठ करूँ। यदि मैं बाणी का पाठ करती तो मुझे शीघ्र ही शीतलता मिल जाती।

माई–बिटिया! कर्मों के वेग प्रायः इस तरह की भूल करवा देते हैं। विचार कर देखिये कि अंत में बाणी की ध्वनि ने ही तुम्हें निकाला है।

रानी–सच्च है, गुरुवाणी की ध्वनि ने और सतसंग के प्यार ने रक्षा कर ली है। तुम निष्काम परोपकारी हो और पूज्य हो!

माई–फिर वही बात! इसे तो मैं केवल अपने प्रियतम जी की शान में ही सुन सकती हूँ। 'हम रुलते फिरते कोई बात न पूछता गुर सतिगुर संग कीरे हम थापे॥' हमारा तो इससे भी घटिया हाल है।

रानी–मैं भूल गई, माताजी! मैं बेबस ही शुक्र में कह जाती हूँ, मैं जानकर कुछ नहीं कहती। कृपा करके एक संशय दूर कीजिये। जब से आपके दर्शन हुये हैं, मैंने आपसे सुख पाया है और आप अपने आपको 'पूज्य' बनाना कहलाना पसंद नहीं करतीं, हम पापियों का उद्धार कैसे होगा।

माई–'उद्धार करना' उसका विरद है, जिसका कर्म 'रचयिता' है और 'रचयिता' होने के कर्म के कारण उसका धर्मपालक है।

वाहिगुरू का कर्म=रचयिता।

वाहिगुरू का धर्म=पालक।

वाहिगुरू का विरद=उद्धारकर्ता।

रानी–वाहिगुरू रूप, रेखा, रंग भेस से पृथक है, उससे उद्धार कैसे प्राप्त होता है?

माई–जिस प्रकार सृष्टि की रचना के लिये कर्तार को किसी की कोई ग़र्ज नहीं, उसी प्रकार पालन करने में उसे किसी के उपदेश अथवा सहायता की जरूरत नहीं, इसी तरह उद्धार करने के लिये वह हमारी किसी मन्त्रणा का मुहताज नहीं। वह स्वयं निर्माण करता है, आप ही पालन लालन करता है और आप ही उद्धार करता है।

रानी–पर जब हमें उसके प्यार, दान और रक्षा के गुनों का पता चलता है तब प्यार और आकर्षण पैदा होता है कि उस प्यारे को प्राप्त करें, फिर यह कठिनाई पैदा होती है कि उसे प्राप्त कैसे करें। वह अरूप है और हम अरूप को देखने में असमर्थ हैं।

भाई–इस आकर्षण का पैदा होना भी उसी की अनुकंपा है, जिसके मन में परमेश्वर अपने संयोग का आकर्षण[१] डाल देता है, तो समझ लीजिये कि वाहिगुरू अपने उद्धारकर्ता विरद को सम्भाल रहा है।

जिस जन कउ प्रभ दरस पिआसा॥
नानक ताकै बलि बलि जासा॥५॥

रानी–सच्च है, पर अम्माँ जी! दर्शन की प्यास टिकने नहीं देती। जब यह प्यास लगती है तब मिलाप की ओर खींचती है, एक दिन आपने ही तो पढ़ा था[२]:–

प्रभ मिलने की लालसा ताते आलसु कहा करउ री॥ [आसा म. ५]

इसलिये मेरे मन में दो संशय उठते हैं:–

(१) एक तो यह कि पहले वाहिगुरू जी '१ओअंकार सतिनाम' जी के स्वरूप वाले हैं, सबसे ऊँचे हैं, भय तथा वैर से रहित हैं, जागृत ज्योति हैं और अत्यन्त प्यार करने वाले हैं, प्यार के कारण ही सृजना करने वाले अथवा पालक और ऊँचे प्रेम के कारण उद्धारकर्ता भी हैं। इस तरह के यश और कीर्तन उसकी महमा और हमारे साथ प्यार के व्यवहार का पता हमें कौन बताये? हम इन बातों को कैसे जानें? मेरी विनय है कि यदि तुम ये बातें न सिखलाती, तो मेरे अन्दर लालसा कैसे पैदा होती।

(२) और जब लालसा हो आये, तब उद्यम जागता है कि किसी तरह उड़कर मिल मिलें कैसे? तुम कहती हो सब अनुकंपा है।

माई–उद्धारकर्ता बिरद वाले वाहिगुरू ने अपनी आज्ञा (रज़ा) को हमारी आत्मा में डाल लिया है, जिससे सारा कुछ अपने आप हो जाता है, पर हम उसकी आज्ञा को समझते नहीं, क्योंकि हुकमी (ईश्वर) की ओर से रुख मोड़कर हम संसार में मोह डालकर खचित हो चुके हैं। इसलिये उद्धारकर्ता वाहिगुरू अपने घर से अपना प्यारा–मनुष्य के रूप वाला,

---

१. जिन कउ प्रेम पिआरु तउ आपे लाइआ करम करि॥
पुनः नदरि करे जिसु आपणी तिसु लाए हेत पिआरु॥ [सलोक वारां ते वधीक महला ४]

२. जिना पिरी पिआरु बिनु दरसन किउ त्रिपतीऐ॥ [सलोक वारां ते वधीक मः ४]

पर गुण और स्वभाव में मनुष्यों से अलग, बल्कि परमेश्वर के अपने स्वरूप जैसा[1] ही संसार में भेजता है, जिसे 'गुरू नानक देव[2] जी' कहा जाता है[3]। गुरू नानक देव जी ने आकर हमें वाहिगुरू के गुणों, स्वभाव और प्रेम दया के हाल सुनाये, जिनसे हमारे अंदर लालसा पैदा हो गई कि हम सभी अवगुणों को मिटा दें, दृष्टमान संसार को बिनसनहार जानकर उस प्यारे से प्यार करें और प्यार से उसे प्राप्त करें। इस लालसा के लिये सतगुरू ने बाणी रची और कीर्तन और पाठ की उज्जवल सुमति प्रदान की। फिर प्यारे सतगुरू ने हमें शबद (नाम) का दान दिया :–

सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥ [रामकली अनन्द]

सो बिटिया! यह तरीका है, जिस प्रकार अकाल पुरुष अपने उद्धारकर्ता विरद को हमारे उद्धार के लिये प्रकाशमान करता है।

रानी–पर माई जी! क्षमा करना, मेरे मन में वहम नहीं, केवल मिलने की लालसा है, जोकि अब तीव्र हो रही है। मेरे मुँह से अस्तव्यस्त निकलवा रही है, आप दया करके बख्श लेना। आपकी कृपा से मैंने बाणी पढ़ी, पाठ किया, कीर्तन सुना, मेरे अंदर भय पैदा होता है, वाहिगुरू जी से मिलने के लिये जी भी उमगता है, और शबद की खोज में भी जी लगता है। आप कहती हैं कि शबद का यश, मंगल और खुशी भरा संदेश सतगुरू जी ने सुनाया है और मेरे मन में सतगुरू जी से मिलने का ऐसा ज़ोर आकर लगता है कि मैं कई बार निढाल हो जाती हूँ। वह प्यारा जिसे परमेश्वर जी ने हमारा गुरू बनाकर अपना सच्चा यश हम तक भेजकर बिछड़े हुओं को फिर अपने घर बुलाते हैं, वह दृष्टमान संसार में सबसे अच्छा और ऊँचा है और उसके दर्शन, उसके पग की धूल में मज्जन का चाव बाढ़ की भांति उमड़-उमड़कर आता है। पर माता! यदि तू कृपा न करती तो उस सतगुरू की कृपा कहां से मिलती?

माई–सतगुरू जी का विरद उद्धारकर्ता है और उसका वास्तविक स्वरूप उद्धार और कल्याण रूप शक्ति ही है। इसीलिये उसे शरीर में निवास करते हुये अथवा शरीर में निवास न करते हुये, दोनों दशाओं में एकदेशीय अथवा देशकाल की कैद में नहीं मानना चाहिये, सतगुरू जी तो जागृतदेव हैं, और उसे मिलने से अथवा उसके उद्धारकर्ता स्वरूप और कल्याण रूप शक्ति से प्रत्येक दशा में लाभ लेने का यही तरीका है:–

गुरु मेरै संगि सदा है नाले॥
सिमरि सिमरि तिसु सदा समाले॥ [आसा म: ५]

रानी–तनिक अधिक कृपा से समझाइए।

माई–सतगुरू जी को अपने से दूर अथवा कहीं गये हुये नहीं जानना, उसे संग साथ समझना और उसे चेता में रखना और संभालना। मोटे शब्दों में–सतगुरू जी को यह मत समझना कि वह नहीं है अथवा दूर है, ऐसी भावना मन में से निकालकर–यह समझना

---

१. गुर नानक देव गोबिन्द रूप॥ [बसंत म: ५]
२. धुरि मसतकि हरि प्रभ लिखिआ गुर नानक मिलिआ आइ। [स: वारां ते वधीक म: ४]
३. गुर नानक जपि जपि सद जीवा। [भैरउ महला ५]

कि सतगुरू 'है'। उस प्यारे को 'है' करके ही मन में समझना।

सति करे जिनि गुरू पछाता सो काहे कउ डरदा जीउ॥ [माझ म: ५]

जिसने सतगुरू को 'सत्य' अर्थात 'है' कहकर पहचान लिया है, उसे सतगुरू की टेक मिल गई, यह टेक निर्भयता का दान देती है। तुमने अभी तक सतगुरू जी के चरणों को परसा नहीं है, दर्शन नहीं किये हैं पर क्या तुम अपने आपको सतगुरू का और सतगुरू को अपना नहीं जान रही?

रानी—यदि यह भावना मेरे अंदर से अब निकल जाये तब मैं भटककर मर न जाऊँ? सतगुरू मेरा, सतगुरू मेरा, मैं सतगुरू जी की, मैं सतगुरू जी के चरणों की धूल।

हे माई जी! प्रार्थना करो:—मैं सतगुरू जी की दासी, तेरी हे सतगुरू तेरी, हे उद्धारकर्ता तेरी हूँ, हे प्यारे सतगुर! अपनी बना ले, मुझे चरणों की धूल बना ले, कह दे कि यह दासी मेरे द्वार की दासी है, हे सतगुरू! अपने घर की सेवा दे। अपनी बना ले, अपनी बना ले। हे कलगि़याँ वाले, हे उद्धारकर्ता विरद की कलगी़ वाले प्रियतम! अपनी बना ले, चरणों की धूल बना ले!

कहिये लाल जी! हे सतगुरू हम तेरे हैं। भले बुरे[१] तेरे हैं, भूले भटके तेरे हैं, तेरे हैं, हे प्यारे प्रियतम! तेरे हैं, तेरे।

यों कहकर आँखों से नीर के प्रवाह बहाती हुई अपने प्रेम से माता पुत्र को भी ले चली और ऐसी मस्त हुई कि घड़ी भर होश न रहा। फिर आंख खुली तो बोली: हां अम्माँ जी! फिर।"

माई—बस बिटिया! सतगुरू को अंग संग पहचानना, यही सतगुरू जी का मिलाप है, यह आकर्षण हमारे और सतगुरू के बीच में पुल बना देता है जिस पुल द्वारा सारी अनुकंपा का माल हमारे घर में आता है।

रानी—पर प्यार अम्माँ! सभी बातें तो तुमने बताई हैं, तू कहती थी कि तू कुछ है ही नहीं, पर मेरा तुझ से भी प्यार है।

माई—बिटिया! मैं कुछ किउं नहीं; सतगुरू के चरणों से प्यार करने वाली, उस द्वारा निर्मित सतसंग का ढंढोरा देने वाली, गुरू की सिख हूँ (पर मैं और कुछ नहीं हूँ)। सतगुरू जी के प्यारे सज्जन जिनके अंदर सतगुरू का निवास है, 'संत सहाई राम के करि किरपा दीआ मिलाइ,' वे आदरणीय होते हैं, पर बिटिया! मैं संत भी नहीं हूँ और न ही कोई पूज्य व्यक्ति हूँ। वैसे उसूल की बात यह है कि जैसे वाहिगुरू जी को संसार के उद्धार के लिये बनाया है, वैसे गुरू जी ने गुरुवाणी का ग्रन्थ और सत्संग का निर्माण किया है। वाहिगुरू ने जो ज्ञान उन्हें प्रदान किया, उसे गुरू जी ने श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में विशुद्ध रूप में लिख दिया है। उस सच्चे, स्वच्छ और अमूल्य ब्रह्म ज्ञान का अपने हृदय का स्वरूप बताकर, आपको पता ही है, कि गुरू अर्जुन देव जी जी ने शीस झुकाया था और दशम गुरू जी ने उसका सत्कार करते हुए हमारे नेतृत्व के लिये हमें दे रहे हैं और उस ब्रह्म-ज्ञान

१. अंतरि सतिगुरू गुरू सभ पूजे सतिगुर का दरस देखै सभ आइ॥ [सलोक वारां ते व: म: ४]

के प्रचार के लिये सतसंग बनाया है। सतसंग की सहायता से कल्याण और उद्धार का सारा काम हो रहा है:–

सतिगुर पुरखु धिआइदा सतसंगति सतिगुर भाइ॥
सतसंगति सतिगुर सेवदे हरि मेले गुर मेलाइ॥
एहु भउजलु जगतु संसारु है गुरु बोहिथु नामि तराइ॥
गुर सिखी भाणा मंनिआ गुरु पूरा पारि लंघाइ॥
गुर सिखां की हरि धूड़ि देहि हम पापी भी गति पांहि॥
धुरि मसतकि हरि प्रभ लिखिआ गुर नानक मिलिआ आइ॥
जम कंकर मारि बिदारिअनु हरि दरगह लए छडाइ॥
गुर सिखा नो साबासि है हरि तुठा मेलि मिलाइ॥२७॥

[सलोक वारां ते वधीक म: ४]

सतगुरू वाहिगुरू के प्रेम में प्रेम रूप है। उधर से वाहिगुरू उनसे प्रेम करता है और अपना रूप दिखाता है। इधर सतगुरू जिनका उद्धार करता है, उन्हें कहता है, ये मेरे हैं, मेरा रूप है।

रानी–धन्य प्यारा सतगुरू? धन्य हमारा चोजी सतगुरू!!

माई–अत: बिटिया! उद्धारकर्ता अकाल पुरुष आप सतगुरू है[१] और अपने गुरूत्व का काम हमारी स्थूल बुद्धि की खातिर गुरू साहब जी के स्वरूप में उन्हें सौंप रहा है। गुरू जी जीवों का उद्धार कर रहे हैं, उनके द्वारा उद्धारित लोगों का पंथ सतसंग है और सतसंग में 'नाम रसिक गुरुमुख' सतगुरू जी की आज्ञा में प्रचार करके जीवनदान और नामदान दे रहे हैं।

रानी–प्यारी अम्माँ! ऐसे सतगुरू का, ऐसे ऊँचे, बड़े, मेहर और दया से भरपूर प्रेम स्वरूप सतगुरू जी का ध्यान और उसके प्रेम का अंदर निवास होने से, आप जैसे पवित्र सतसंगियों के मण्डल में निवास करते हुए, आज इन हत्यारे कानों ने निन्दा सुनी, और दुख पाया, पर शुक्र है कि आप के जीवनदाता सतसंग ने रक्षा कर ली।

माई–बिटिया! संसार में निन्दा ने बड़े-बड़े दुख दिये हैं। सिदक के भरोसे के मन्दिर इसी ने गिराये हैं। सच्चे मित्रों के परस्पर विश्वास, एक जान स्त्री पति के परस्पर निश्चय इसने तोड़ दिये हैं। इसीलिये सतगुरू जी ने निन्दा को एक महान पाप बताया है और इससे रोका है। हमें कभी भी कान देकर निन्दा नहीं सुननी चाहिये। यदि कभी जबर्दस्ती कानों में पड़ जाये तो दृढ़ चट्टान की भांति अडोल रहें, यदि अन्दर कुछ हिलने लगे तो गुरुवाणी और सतसंग की शरण लें।

रानी–सत्य वचन! माताजी यदि आप इसे बेअदबी न समझें तो सतगुरू जी के दर्शनों को देन:।

माई–निकट है। प्रियतम जी आ रहे हैं।

---

१. गुरु पारब्रहम परमेसरु आपि।। [आसा म: ५]
पुन: आदि अंतु एकै अवतारा।
सोई गुरू समझीअहु हमारा।। [चौ: पा: १०]

रानी–मैं इस धन्य मुख से न्योछावर हूँ।

माई–बताइए अब हृदय निर्भय है न?

रानी–एक ही भय था कि पहाड़ी राजे, यह सुनकर कि हम सिख बन गये हैं, कहीं राज्य न छीन छिनवा दें; अतः वह भय आपने दो उपदेशों से ही काट दिया है। एक तो आपने जो शबद गायन किया है, "जो राजु देहि त कवन बडाई। जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥" जब सतगुरू ने नाम के रस में हमें रसिक बना देना है। (हमारे अन्दर नाम का निवास होना है) तब राज्य क्या और भीख कया। दूसरी जो तुक आपने अभी पढ़ी है–"सति करे जिनि गुरू पछाता सो काहे कउ डरदा जीउ॥" जब हमारा धर्म यह है कि सतगुरू जी को "है" करके पहचानें, तब तो डरना हमारा काम नहीं। हमें गुरू जी की शरण लेकर उसे अंग संग समझना चाहिये और उसकी टेक और प्यार भरी स्मृति में रहना चाहिये। तब डर और भय सतगुरू के सुपुर्द।

माई–जब सतगुरू की टेक अन्दर हो, नाम में निवास हो, तब सुरति अवश्य ही निर्भय पद में पहुँचती है–"जो हरि नामु धिआवहि तिन् डरु सटि घतिआ।" वाहिगुरू के आश्रय वाले निर्भय पुरुष "भय के नीचे दबे हुओं" से डरकर अपनी सुरति को क्यों नष्ट करें? जो निर्भय है, उसका भय दूसरों पर भी होता है। निर्भयता वाले पुरुष की पवित्रता की आग से भय वाले पुरुष के पापों के ढेर काँपते हैं।

रानी–ठीक है, आपके वाक्य सत्य हैं।

माई–मैं तो सतगुरू जी से सुने हुये वाक्य ही कह रही हूँ।

कुँअर–बड़ी अम्माँ जी! फिर हमें सतगुरू जी के दर्शन कब होंगे?

माई–सतगुरू जी पाउँटे से चल पड़े हैं और दस बारह दिनों से मेदनी प्रकाश द्वारा अटकाये हुये नाहन के इलाके में वनों में ठहरे हुये हैं। मेरे विचार से वे शीघ्र ही इस ओर से गुजरेंगे।

कुंअर–फिर माँ जी[१] तुम्हें पक्का पता है कि गुरू ज़ी इधर से गुजरेंगे? यदि संशय हो तो किसी अहलकार को विनय करने के लिये भेज दें।

माई–मेरे कुंअर जसराय जी! संदेशा भेजने की जरूरत नहीं और न ही पहले गुरू जी के आगे आपकी श्रद्धा की किसी ने कोई बात ही चलाई है, पर उनका बिरद शरणागतों के लिये शरणापाल है। इसलिये यह असंभव है कि तुम्हारे प्रेम की खींच के होते हुये किसी दूसरे रास्ते से निकल जायें और तुम्हें दर्शन न दें।

रानी–सच है माता जी! हमारा प्रेम तो अभी कुछ नहीं है, आपकी अनुकम्पा पर आशा है कि वे कृपालु हम पर अवश्य ही कृपा करेंगे। संदेश भेजना तो बेअदबी है। हम गुणहीन क्या हैं जो ऐसे पवित्र तेज को बुलवा भेजने का साहस करें। पर माई जी! यदि सतगुरू जी ने अपने दासों पर कृपा की, तब जन्म सफल हो जायेगा।

माई–जरूर आयेंगे, और जीवनदान प्रदान करेंगे, यह मेरा भरोसा है।

---

१. माई जी का नाम सुभरांव कौर था।

: २ :

यमुना का किनारा, जहाँ पर सतगुरू जी ने पाउँटे की नींव डाली थी, आजकल एक सुन्दर, छोटा-सा, पर ऊँचा गुरुद्वारा है, एक आश्चर्यजनक कुदरती नज़ारे का स्थान है। नदी का सुन्दर प्रवाह, ओर रमणीय कुदरती दृश्य मन को मोहित किये बिना नहीं छोड़ते। वास्तव में इस स्थान को देखकर इस बात का अनुमान होता है कि श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी कुदरती सुन्दरता के कितने महान कदरदान और प्रेमी थे और उनका चयन कितना अद्भुत हुआ करता था। हम पीछे बता आये हैं कि भंगाणी का युद्ध जीतकर जब गुरू जी पाउँटे आये तब सिखों में फतहशाह पर आक्रमण करने का चाव था, पर सतगुरू जी ने विजय प्राप्त कर चुकी सेना के उत्साह फतहशाह पर आक्रमण करने से रोका। रुक तो गये, पर उनके बढ़ चुके दिलों के उछाल बड़े असह्य देखे। तब आपने सोचा कि अब इनके पैर नहीं टिकेंगे। इन्हें रोकने, मना करने के स्थान पर आनन्दपुर को दोबारा बसाने और किलेबन्द करने की ओर लगा दें। आपने स्वयं भी यह बात कही है:-

"जुध जीत आये जबै, टिके न तिन पुर पाव।"

सो पाउँटे से तैयारी की गई और बोझ उठाने के प्रबन्ध कर लिये गये। सबसे पहले तो घायलों के सुख का सामान था, जिन्हें बहुत आराम से भेजा गया। उनकी रक्षा, सेवा, इलाज और खानपान के सामान आदि के प्रबन्ध किये गये। सारी तैयारी करके कूच किया गया। सतगुरू जी ने लाहड़ नामक एक गांव के पास आकर डेरा डाल दिया और यहाँ पर बारह-तेरह दिन तक ठहरे और सैर, शिकार करते रहे। यहाँ पर सिकन्दर लोदी की शिकारगाह थी। वह यहाँ पर आकर टिका था और शिकार किया करता था। मुखलस खाँ नामक एक अन्य मुग़ल सरदार ने यहाँ पर एक किला बनाया हुआ था, जिसे मुखलसगढ़ कहते थे। इसी पर अधिकार जमाकर बाबा बंदा बहादुर ने इसे लोहगढ़ बनाया था और आप यहाँ पर रहा था और काफी समय तक पातशाही फौजों के साथ मुकाबला करता रहा था। जहाँ पर सतगुरू जी का तम्बू लगा था, वहाँ पर अब टोका साहब नामक गुरुद्वारा है। यहाँ से एक कोस की दूरी पर एक गाँव है, जिसका नाम अब टोटा है। इस गाँव के रंघड़ों ने बोझ उठाने वाले गुरू जी के ऊँट चोरी कर लिये थे, जिन्हें पकड़ लिया गया था। सतगुरू जी ने तब इस गाँव का टोटा नाम दिया था। लोग अब तक उसे टोटा[१] ही कहते हैं। यह भी लिखा है कि लाहड़ में गुरू जी ने राजा मेदनी प्रकाश के संदेश आने पर दस बारह दिन डेरा रेखा था। बुद्धूशाह भी सढ़ौरे से आकर यहाँ पर सतसंग में सुख लेता रहा था। यहाँ पर दीवान सजते रहे, संगतें भी हाज़िर होती रहीं और लाभ उठाती रहीं। जब सतगुरू जी ने यहाँ पर कुछ दिन ठहरने की ठान ली, तो आपने मामा कृपाल चन्द को कहा कि आप सारा डेरा और सेना लेकर चलो, घायलों का खास प्रबन्ध करो और छोटे-छोटे पड़ाव करो, जिससे घायलों रोगियों को ज्यादा कष्ट न हो। गुरू साहब ने अपने पास चुने हुये

१. नाहन राज्य में यह टोटा नामक गाँव है। इस से लगभग एक कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर यह गुरुधाम 'टोका साहब' है। यह जिला अम्बाला की तहसील नारायणगढ़ के निकट है।

शूरीवीर, थोड़े से बुद्धिमान पुरुष और रणजीत नगारा रख लिया और बाकी सबको विदा कर दिया।

तेरहवें दिन सतगुरू जी ने दीवान की समाप्ति के समय तनिक आकाश की ओर देखा और फिर उत्तर-पश्चिम की ओर देखा। यों लगता था जैसे कि दिशा की कोरी पोथी में से कोई अक्षर वाच रहे हैं। फिर सजल नेत्र होकर काफी समय तक मुन्दे हुये नैनों में अखंड समाधि में निमग्न रहे, जब उठे तब आज्ञा दी कि सवेरे कूच हो जाये। जब रास्ते के अगुआ न रास्ते का व्यौरा पूछा तब आज्ञा दी कि रामगढ़िये के राज्य में टाबरे के पास से चल निकलो, और पहला पड़ाव टाबरा बताया। अगले पड़ाव के लिये यह कह दिया कि जहाँ पर कर्ता पुरुष आज्ञा होगी, वहाँ पर ही पड़ाव होगा।

चोजी सतगुरू जी, जो आत्मिक उल्लास से प्रति पल प्रसन्न रहते थे, एक सुन्दर घोड़े पर चढ़ कर जा रहे हैं। आपके साथ कुछ सिंघ हैं, बाकी सेना और सामान पीछे आ रहा है। रास्ते में एक स्थान पर एक ब्राह्मण सूरेज की ओर ध्यान जोड़कर सीस झुकाता हुआ देखा। सतगुरू जी ने हँसकर कहा कि कर्ता पुरुष ने मनुष्य के लिये सभी सामान बनाये हैं। धूप और प्रकाश, हवा और पानी, पृथ्वी और आकाश सारे ही इसके आराम के लिये हैं। इसे इस धरती की सरदारी[१] देकर शेष सारी रचना को इसका सुखदाई बनाया है, पर देखिए मनुष्य अपनी सरदारी को भूल गया है। इसकी सरदारी कर्ता पुरुष की सेवा और प्रेम में थी। इसने 'कर्ता पुरुष' से मुँह मोड़कर 'रचना' के साथ स्नेह लगाया है। इस रचना में जो इसके बस में आ जाने वाली सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनके साथ स्नेह जोड़कर बैठा है। इस भूल ने इसे और अधिक भूल में डाल दिया है कि रचना की जिन वस्तुओं पर इसका अधिकार नहीं है, उन रचित वस्तुओं को रचयिता करके जानने लगा है।[२] सो जिनसे इसने निर्भय होकर सुख लेने थे, उनसे डरता है और उनका भय रखता है और उनके त्रास में भटकता है और उनके आगे नाक रगड़ता है। जो सरदार था, वह खिदमतगार बन गया है।

तब आलम ने कहा: दीन रक्षक जी! कुछ अधिक कृपा कीजिये। तब सतगुरू जी बोले: मनुष्य अपने शरीर के झुकावों का स्वामी है, अपनी इन्द्रियों और मन का स्वामी है, पर यह इस घर के राज्य में ही मालिकी भुलाकर बैठा है। बाहर सृष्टि में यह प्रत्येक बलवान वस्तु से भय खाता है और मन को मोह लेने वाली प्रत्येक वस्तु के पीछे लोभी बनकर फिरता है। इस तरह निर्बल हो गया है। यदि कर्तार को पहचान लें और उसके प्यार में रहे, तब इस टेक के रंग में सारी धरती पर अपने आपको सरदार पहचानेगा। मैंने तुम्हें इन वहमों में से निकालकर बलवान बनाया है। धक्का करने के लिये नहीं, पर इसलिए कि तुम चौकस हो जाओ, जाग उठो। तुम धरती पर अकेले-अकेले ही सरदार हो, सरदार होने के कारण तुम एक-एक लाख के अगुआ हो जाओ। जो गिरे मनो वाले धरती पर पनिहार

---

१. अवर जोनि तेरी पनिहारी।।
इसु धरती महि तेरी सिकदारी।। [आसा म: ५]

२. करता पुरख न चेतिओ कीते नो करता करि जाणै।। [भाई गु. वार १५-७]

बन रहे हैं, वे इस रास्ते पर चलकर सरदार बन जायेंगे। हाँ, जिसके अन्दर ज्योति जगी है, जिसने अपने अंतस को टेक ले ली है और अपने आपको दृष्टमान से ऊँचा रखकर सुरति को चढ़ाकर चढ़ती कला धारण कर ली है, वह मेरा लखीअर लाखों पर भारी है। ऐसे बन जाने से तुम्हारा मन तुम्हारे हुकम में है, तुम्हारे इन्द्रय तुम्हारे हुकम में होंगे, तुम्हारे हुकम में शरीर के अंग हैं, तुम्हारे हुकम में शरीर के अवयव हैं और प्रत्येक कणिका मात्र है। तुम वायु, पवन, पानी, प्रकाश और धूप गर्मी पर भी एक प्रकार का अधिकार रखते हो, पर यदि आपे को 'दृष्टमान अभेदता' में और गिरे हुये झुकाव में रखोगे तो फिर तुम्हारा पतन हो जायेगा। दृष्टापद में मन को रखो और ऊँचा रखो। देखो! वह ब्राह्मण सूरज से थर थर काँप रहा है और उसके आगे नाक रगड़ रहा है, पर वास्तव में सूरज वाहिगुरू के भय में है। यदि आत्मा में हम वाहिगुरू के चरणों की शरण में निवास करते हैं तो फिर सूरज का भय क्यों माने[१]? आत्मा रचयिता के साथ अभेद सारी रचना का स्वामी है। चाहिये तो यह था कि यह ब्राह्मण सूरज से कहता कि हे प्रकाश पुंज! तुझ में जो प्रकाश, गर्मी और दामनिक रौ का भाग मुझे दे, जिससे मेरा शरीर कहीं अधिक काम देने वाला मेरा सेवक बना रहे।

लोग हवा से डरते हैं कि कहीं बीमार न कर दे, पर हवा तो तन्दुरुस्ती की चाकर है। पानी से डरते हैं और उसे वरुण समझकर अर्ध देते हैं, पर जल तो पालन लालन करने वाला है। इसी तरह प्रकाश और धूप सभी शरीर के सुख के लिये है। शरीर के अन्दर निवास करने वाला तब सरदार है, जब वह स्वामी की आज्ञा में चले[२]। जो आज्ञा को मानना जानता है, वह आज्ञा मनवाने में भी प्रवीन होता है, वह सारी रचना से अधिक से अधिक सुख ले सकता है। पर अंतस अंतर आतम में मेल प्राप्त किये बिना सुरति में सरदारी की भावना ही पैदा नहीं होती। स्वयं ही जो अपने आपको ऊँचा समझ बैठना है, वह तो अहंकार है[३], परमात्मा के साथ संयोग प्राप्त करके सुरति में जो उच्च भाव प्रकट होता है, वह उनमन अवस्था होती है; वही वास्तव में चढ़ती कला है।

इस तरह के विशुद्ध चढ़ती कला में उपदेश करते हुये अपने प्रेमियों के अध्यात्मिक बलों के बल खोलते हुये, श्री गुरू जी टाबरे पहुँच गये। वहाँ पर डेरे का कोई सामान नहीं था, पर श्री गुरू जी ने प्रेमियों को बताया था कि हमारे लिये कुदरत अपने आप सब सामान तैयार करेगी। हमें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है, हम तो प्रतिक्षण ईश्वर स्वामी की

---

१. डरपै धरति अकासु नखत्रा सिर ऊपरि अमरु करारा।
सगल समग्री डरहि विआपी बिनु डर करणैहारा।।
कहु नानक भगतन का संगी भगति सोहहि दरबारा।। [मारू म: ५]

पुनः भै विच सूरजु भै विचि चन्दु। [आसा वार म: १]

२. फरीदा जे तू मेरा हुहि रहहि सभु जगु तेरा होइ।।३५।।

३. नानक ते नर असलि खर जे बिन गुण गरबु करंत।।

4. अचिंत कंम करहि प्रभ तिनके जिन हरि का नामु पिआरा।। [सोरठ म: १]

चेत करना चाहिये[४]। 'नानक चिंता मति करहु चिंता तिसही हेइ'। जब हम मालिक के बन जाते हैं, तब मालिक अपने आप हमारा सब कुछ संवारता है[१]। वही बात हुई; जब टाबरे पहुँचे तब राव को पहले से ही पता चल चुका था। आपके डेरे के लिये स्वच्छ मैदान था। सेना के लिये तंबू, लंगर, घोड़ों के लिये घास तथा और सब कुछ तैयार था। राय ने आप आकर, दर्शन किये, सीस झुकाया, चरणों में तलवार भेंट रखी, एक घोड़ा और पांच सौ रुपये भेंट किये और पहाड़ी कम्बल, जिन्हें गुदमे कहा जाता है, बहुत से भेंट किये। श्री गुरू जी ने राजे को एक पेशकब्ज दी और वरदान दिया कि जब तक इसका सतकार करते रहोगे, धर्म और प्रताप बना रहेगा। शस्त्र का सम्मान दाता से अंतस में स्नेह का वसीला बना। भाई ज्ञान सिंघ जी लिखते हैं कि अब तक यह पेशकब्ज़ उनकी संतान ने सतकार से रखा हुआ है। तीसरे पहर सतगुरू जी अचानक ही अधीर होकर चल दिये, तब सारे डेरे में कूच हो गया।

: ३ :

एक दिन राजमहल में सारे बैठे थे, माई जी और कुँअर जी में कुछ बातचीत चल रही थी। अंतस के कोमल तथा श्रद्धा भरे प्रेम का ब्योरा चल रहा था कि रानी के दिल के तार काँप उठे, नैन मुँद गये; आपे में झन्नाहट सी उठी। नम्रता, वैराग अरदास और दर्शन की चाह के भाव अंदर से आकाश में इन्द्रधनुष के सात रंगों की भांति चक्राकार होकर चमक उठे। वे भाव नीचे लिखे छन्द में अंकित हैं[२]:-

मैंने दोनों दिशाओं में अच्छे कुल में वासा पाया है। मुझे धन-दौलत भी मिले हैं और मेरे पास काफी भूमि भी है। मैं रानी हूँ और राज्य भी कर रही हूँ, मेरा हुकम माना जाता है, जो कुछ सुख ब्रह्मा ने बनाया है, सारा सुख मुझे प्राप्त है। पर मुझे कोई भूल लगी हुई थी, मेरे अन्दर अन्धेरा छा रहा था। मैं जिसमें अचेत होकर लगी थी वह विनाशकारी माया थी। जिसने मैंने ठण्ड प्राप्त की है, जिसे सुख रूप समझकर आनन्द लिया, वह तो सूरज नहीं था, अपतु माया की ढलती हुई परछाईं थी। प्रेम वाला जो कणिका था, वह अन्दर में निवास करता था, मैंने इसे नहीं देखा था, यह तो धुर से ही मेरे साथ आया था। मैंने इसे नहीं पहचाना था, इसके पीछे का पता नहीं किया, यह तो प्रकाश करने वाला दिया था, मैंने इसका मुंह फेर रखा था। जो मेरे आगे प्रकाश था वह पीछे छिप रहा था, पर आगे के सुन्दर रंगों को देखकर मेरा दिल लुभा गया था। मैं रंगों में रंगी गई थी। मैंने नहीं समझा था कि ये नाश होंगे और जब आकर काल हिलायेगा, तब वे सारे उड़ जायेंगे।

मेरे भाग्य अच्छे हैं कि एक देव स्वरूप रानी आई, जिसने आकर मुझ सोई हुई को हिलाकर जगाया। वह कहने लगी, हे ग़ाफ़ल! हाय तू सो रही है, पर देख तो तारे लटक गये हैं, प्रभात हो गई है। रात व्यतीत हो चली है, तू किस भुलावे में सो रही है? सफेद दिन जब चढ़ेगा तब सारी कमाई का पाज उधड़ जायेगा।

१. चिंतत ही दीसै सभु कोइ।
चेतहि एकु तही सुखु होइ।। [दः औं मः ५]

2. यहाँ पर लेखक की पंजाबी कविता का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।

पीछे जो कुछ पाया था वह यहाँ पर आकर भोग लिया है, अगले पड़ाव के लिये हे पथिक! तैने क्या बनाया है? पिछले पड़ाव की पूंजी तो इस पड़ाव पर आकर खत्म कर दी, पर अगले पड़ाव के लिये तैने यहाँ पर कुछ भी इकट्ठा नहीं किया।

हे सुँदरी! यह तो सफ़र है, हम धुर के मुसाफ़िर हैं, लाखों पड़ाव करके हम इस पड़ाव पर पहुँचे हैं, पर अभी और काफ़ी रास्ता शेष है। तू तो मन लगाकर यहाँ पर डेरा डालकर बैठ गई है, तेरे सिर पर काफी सफ़र अभी पड़ा है, तुझे कभी याद नहीं आया, हे स्यानी! उठ और होश कर, और समय अब न बिते। समय तो कभी भी ठहरता नहीं है, और जब चला जाता है तो लौटकर नहीं आता। मैं अचानक ही जाग उठी और कहने लगी: हे प्यार वाली! तैंने सोई हुई को आकर जगाया है, अब मुझे ही पड़ाव पर पहुँचाना चाहिये।'

वह देव स्वरूप रानी कहने लगी है: "काई कठिन बात नहीं है; घट रूपी दीप को सीधा कर ले, जिसका रुख उल्टा कर रखा है। धुर से ही तेरे अंतस में प्रेम का कणिका रखा था, तैंने उसका मुँह फेरकर दुनिया की ओर लगा दिया। अब अन्दर ही उसके मुंह को मोड़ दे, और पीछे फिर कर देख कौन प्यारा बैठा हुआ है, जिसने यह कुछ दिखाया था। उस प्रकाश को इस प्रकाश के साथ देख, जिसकी रिज़्म यह है, और इसको जिसने बनाया है।"

देवी ने जब घट रूपी दीप को पकड़कर घुमाया, तब मैंने उसका रूप देखा, जिसने 'जगरूप' बनाया है। पीछे फिरकर नज़र को एक अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ा; क्या देखा कि गुरू सिर पर खड़ा है जिसका रूप दयालू है। झोली फैलाकर बैठा हुआ है और प्रेम से भरा हुआ कह रहा है:-हे बालको! घर को लौट आओ, तुमने खेल में समय खो दिया है। तुमने मिट्टी के खेल से बहुत प्यार किया है, पर मिट्टी तो काम में नहीं आयेगी, जो तुमने इसका ढेर लगा रखा है। तुम्हारे हाथ-पाव इस मिट्टी से भरे हुये हैं, सारे के सारे मैले हो रहे हैं, जब तुम रात को लौटोगे तो यह सारा खेल समाप्त हो जायेगा। हे लाल! इस मिट्टी को तब धोने के लिए तुम्हें काफी कष्ट होगा, इसलिये तुम समय पर घर में आ जाओ, मैं तुम्हारा मिट्टी से भरा हुआ मुँह बना संवारकर धो दूँगा।"

गुरू की यह प्यारी आवाज़, यह वाणी मस्ती से भरी हुई है। इस मीठी तथा रस से भरी हुई वाणी ने हृदय में प्रेम लगा दिया है। अंतस में आपका स्वरूप बस रहा है, सुमरन का भी साथ निवास है, ऐसा रंग लग रहा है कि प्यारी आकर्षन आकर्ष रही है। मैं तरसती हुई तेरे द्वार पर खड़ी हूँ, कि कहीं आपके शरीर के दर्शन हो जायें, जब कि प्यारा चोजी गुरू अब रूप धारण करके आया है। हम अवगुणों से भरे हुये हैं, कर्म धर्म से खाली हैं, पर अपने विरद के कारण उसने हम पतित लोगों को आकर जगा दिया है। हमारे मन में उसके दर्शनों की लालसा जग उठी है, वह और अधिक तीव्र हो रही है, इसी के कारण दिन रात मुझे लालसा लगी हुई है। हे त्राणकर्ता! आप आओ, हे सृष्टि के उद्धारकर्ता आओ। मेरी यह किश्ती भँवर में फँस गई है, इसे आकर निकालो। हे सतगुरू जी! हम नीचों को आकर दर्शन दो। यदि आपने सोये हुओं को आकर जगा दिया है, तो हम भूल में पड़े हुओं

को आकर अपने साथ मिला भी लो। मैं गुरू के दर्शनों की लालसा में रातें जगती हूँ। दिन को भी उसी को ही प्रतीक्षा करती हूँ, इसी लगन में सारा काम-काज भुला दिया है। अब तो मुझे राज्य भी अच्छा नहीं लगता, दौलत भी अच्छी नहीं लगती, महल भी मेरे लिये वीरान हो रहे हैं, ऐसा मेरा जी उच्चाट-सा हो गया है। मुझे तो केवल एक ही दर्शन की लौ लग रही है; इसी लौ ने मेरे दिल को घेर रखा है। रोम-रोम में यही लौ लग रही है। इसी के आकर्षण ने ज़ोर डाल रखा है। मेरे ये नैन तरसते हुये रोते हैं, इनके साथ-साथ हृदय भी काँपता है। यह डावांडोल हो गया है, इसे थरथराहट ने थरथरा दिया है। मुझ दासी की यही एक प्रार्थना है कि प्यारे गुरू जी! एक बार दीदार दे दो, और यह माया बीच में से दूर कर दो। मेरी तो यही लालसा है कि एक बार आपके चरणों की धूल को मुख पर लगाऊँ, मेरा यह अहंकारी सिर आपके चरणों के साथ लगकर सफल हो जाये। मेरे ये हाथ रिक्त हैं, यह तो रिक्त आज्ञा देना ही जानते हैं, इन मेरे हाथों ने सेवा का सफल रस नहीं चखा है। मेरे ये पैर कठोर हैं, ये हकूमत में ही चले हैं, इन्होंने सत्संग के द्वार पर सुख नहीं पाया। हाय मेरे विह्वल नैनों ने केवल कोट ही देखे हैं। मगर साधुओं के दर्शन न करके आपे को सफल नहीं किया। हाय मैं सफल नहीं हुई हूँ, मेरा जन्म व्यर्थ जा रहा है, हे संसार को सफल करने के लिये आये हुये, मुझे भी अपना दर्शन देकर सफल बनाओ। हाँ, हे रिवी! तू ही आकर कह दे कि चोजी गुरू जी आये हैं; और मैं यह सुनकर आंखों के बल भाग कर जाऊँ, पंखों की शक्ति पाकर उड़ कर जाऊँ।"

रानी अभी अपने रंग में से बाहर नहीं आई थी, अपने भावों में ही आंखें मून्दकर बैठी थी कि इतने में दुर्गा नामक एक दासी भागती हुई आई। कहने लगी, महारानी जी; बहुत दूर से गर्दा दिखाई पड़ रहा है, न जाने कोई राजा सेना लेकर चढ़ाई करके आ रहा है।

राजेश्वरी दासी हाँपती हुई आई—दीवान जी द्वार पर आये हैं और कहते हैं, आप को कई बार समझाया था कि गुरू गोबिन्द सिंघ जी के सिख मत बनो, अब देखो रामगढ़ वाला राजा जसवारिया और कहलूरिया और न जाने कौन-कौन गुरू जी के पीछे आये हुये इधर को बढ़ आए हैं। अब बताइए कि इनकी शरण ले ली जाये अथवा इनके साथ युद्ध लड़ा जाये? अचानक ही बिजली आ पड़ी है, तैयारी भी कुछ नहीं हो सकती चाहे सारे ही सिर हथेली पर रखकर खड़े हैं। मैं बख्शी जी को तैयारी के लिये कहकर आया हूँ और सेना को हुकम दे दिया गया है।

रानी कुछ सोच में पड़ गई।

कुटरोल बाई (भागी हुई आई)—सेनापति, मन्त्री, दीवान सभी आये खड़े हैं, कुछ सेना तैयार हो गई है, सवारों की एक टुकड़ी आगे गई है। सभी आपको आज्ञा खड़े मांगते हैं।

रानी—कुटरोलां! शत्रु?

सारे—यह तो धौंसे की आवाज़ भी आ गई है।

रानी—यह क्या है?

कुटरोली—शत्रुओं को हमारी सीमाओं को पार करके हमारे ग्रामों में आ जाने की पहली विजय की आवाज़।

माई–तनिक चुप करो (कान लगाकर और फिर सोचकर) रानी! यह तो मेरे सतगुरू जी के सफ़र के रणजीत नगाड़े की चोट है और जो गत नगाड़े पर पड़ रही है, वह इस अर्थ वाली है कि हम सज्जनों के इलाके में आये हैं।

रानी–मुझे तो पहचान नहीं है, पर मेरा मन डरा नहीं है, खुश हो रहा है। यदि आपको पक्की पहचान है तो मैं चुप रहने का हुकम दिये रखूँ। ऐसा न हो कि किसी मूर्खता में दाता जी की अवज्ञा कर बैठूँ।

अब नगाड़े की आवाज़ बन्द हो गई और नरसिंघे की आवाज़ पहुँची; इसमें पीलो राग के साथ मिलती हुई एक ध्वनि थी जिसे पहचानकर माई ने कहा, "बेफ़िकर हो, शत्रु की सेनाएँ नहीं हैं।" यह शहनाई के साथ नरसिंघे की मिलती हुई ध्वनि हिन्दुस्तान में मेरे प्यारे के संगीतज्ञों के बिना और कौन बजा सकता है? प्यारी बिटिया! डर के स्थान पर अब फूली न समा, यह तो 'प्रियतम जी आ गये' की आवाज़ है।

'प्रियतम जी आ गये' क्या था, जादू की एक टेक थी। रानी मग्न हो गई। सुन्दर और भोले चेहरे वाले कुंअर जी चाव से भर गये। दासियाँ बाहर से आ रही थीं, पर अन्दर आकर सहमकर खड़ी हो जाती थीं। रानी के मन पर वैराग्य भरी प्रसन्नता थी, चाव था, पर दैवी भय वाला था, आनन्द था पर ठण्डा और शीतल, नम्रता तो थी पर थी सिदक वाली, अवगुणों की याद थी पर पवित्र आशा से भरी हुई, सभी भाव मगन भरे चाव में लिये जा रहे थे। कुछ समय तक इस दशा में रहकर रानी बोली, अम्माँ! अब मेरा अपना आपा मेरे बस में नहीं रहा। सतगुरू हमारा है और हम सतगुरू के हैं। मेरी कुलरीति और लोकलज्जा के भय दूर हो रहे हैं। वाहिगुरू के द्वार से जो यहाँ पर हमारा उद्धार करने के लिये आता है, जो पापियों को बुलाता नहीं, पापियों का कल्याण करने के लिये आप जा पहुँचता है, उसके आगे राजसी घमंड क्या, क्या कुल की रीति और क्या देश की चाल? चाहे लोग हँसे और अम्माँ! चाहे तू भी गुस्से हो जाय, मैं उन मार्गों पर से न्योछावर होने जा रही हूँ, जिन मार्गों पर चलकर वाहिगुरू का दुलारा आ रहा है। मैं अब पर्दे और घूँघट को तिलांजलि देकर उस धूल में लेटने के लिये चली हूँ, जोकि प्यारे के चरणों से पवित्र हो गई है। आ अम्माँ? मुझे सतगुरू जी के चरणों की धूल बना दे, या मुझे दरगाह के बसीठ के चरण कमलों की रज लेकर दे।

यों कहती हुई रानी बच्चों को साथ लिये हुये अत्यन्त प्रेम, नमता पर गंभीर चेहरे से दमकती हुई बाहर आई और सीधी ड्योढ़ी में से बाहर निकल खड़ी हुई। माई जी ने रानी का बाँया हाथ पकड़ रखा था और उसके साथ-साथ जा रही थी। दाईं ओर कुँअर जी माता जी की बाँह से लगे हुये थे और दासियों का समुदाय पीछे-पीछे था। अहलकार बाहर खड़े थे। रानी ने भरे हुये गले में से मुश्किल से मीठी और गंभीर आवाज़ से कहा:– "मन्त्री, सेनापति, दीवान, सभी सज्जनो! सेनापति जी सहित मेरे पीछे आओ, पापों का विध्वंस करने वाला और पापियों का उद्धार करने वाला बली योद्धा आ गया है। उसने बिना कमान खींचे, हमें जीत लिया है, उसकी शरण उद्धारकर्ता है।"

आज्ञा थी कि नर रानी का एक प्रचंड तेज था, कुछ तो समझ ही न सके, पर सभी शतरंज के मोहरों की भांति जिधर को चलाये गये, उधर को चुपचाप चल पड़े। दल अब

नगर से थोड़ी दूरी पर था। रानी आगे बढ़ो और अपने पापों के शत्रु के रास्ते पर सामने आ गई। आँखें उठाती है, मगर दिल उछलता है; कलेजा धड़कता है, आकर्षण और श्रद्धा उमड़-उमड़ कर सिर को चढ़ते हैं। आंखों के सामने से प्रकाश के कई चक्कर सूर्य की भांति गुज़रते हुये मानो देखन शक्ति के आगे अँधेरा करके चले जाते हैं। देखती है और फिर झिजकती है, सिर झुका लेती है–"क्या मैं अभागी पवित्रता के पुंज के दर्शन करने लगी हूँ?" पर फिर खींचकर सिर को ऊँचा करती है और देखती है। इस तरह करते हुए पापों के शत्रुओं का सरदार अत्यन्त निकट आ गया। उसके सबज़ घोड़े की टाप ने तरसते हुये दिलों की धाप को मन्द कर दिया। वह बाँका चौकड़ी भरकर चलने वाला घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा है। रानी अब बेबस ही खिंची जा रही है। वह देखिये अब घोड़े के पास पहुँच गई है। हंस की भांति सुडौल गर्दन, जिसके आगे देश झुकता था, वह झुक गई। वह अमूल्य सिर जिसमें बस रही बुद्धि के लिये नीतिज्ञ आकर झुका करते थे, अब देखिये वह सिर कैसे नीचे को जा रहा है। वह देखिये बुद्धि वाला, मान वाला और ताज वाला सीस जगत सिंधु के सेतु चरणों पर जा टिका है रकाबों में प्यारे चरण कमल हैं, और चरण कमलों पर प्रेम भरा सिर पड़ा है। हाँ जी

[१]"धौंसे की टंकार आती है और निकट ही सुनाई देती है। हे रानी! प्रियतम गुरू जी आये हैं, ध्यान लगा ले। यह संदेश सुनकर कुल की सारी लज्जा भाग गई थी, पर्दे की रीति भूल गई थी और रानी घटा की भांति उमड़ी आई। मैं भूल गई थी कि मैं कौन हूँ, रानी हूँ कि भिखारिन। मैं कहां से चली हूँ और भागकर किधर को जा रही हूँ। नैनों में नीर भरा हुआ है, मोती ढरक रहे हैं, प्यारे की जगमगाती हुई सूरत दिखाई पड़ती है। नाजुक कोमल पैरों वाली वैराग्य में मस्त प्यारी रानी चली जा रही है, उसे कोई परवाह नहीं है। देखिये अब वह गुरू जी के पास पहुँच गई है। श्रद्धा की बाधा पड़ जाने पर गुरू जी का घोड़ा भी ठहर गया है। रानी का वह बड़ा सिर झुका, वह सिर जिसके अन्दर कभी अकड़ भरी हुई थी–वह सिर अब गुरू जी के चरण कमलों पर झुका है, एक झन्नाहट-सी छिड़ उठी है। उसमें कोई होश बाकी न रहा, चरणों की लहर आई है, यह लहर कैसी ऊँची है, जिसने सारा होश भुला दिया है। जगत अब घटिया बन गया दीखता है, घटिया अकल भी अब पीछे को रह गई है, सुरति ऊँची चढ़ी है और ध्येय में समा गई है।"

दूसरी ओर होनहार कुंअर जी उसी तरह चरण कमलों पर सिर झुकाये हुये हैं। सभराँव कौर सिर झुकाये हुये भक्ति की मूर्ति बनकर खड़ी है। नेत्र बन्द हैं, पर बन्द नेत्रों में से आँसू टप-टप गिर रहे हैं। इनके पास ही कुँअर जी सिर झुकाये हुये आशा लगाये खड़े हैं। सतगुरू जी स्वयं इस तरह के रंग में ऐसे पसीजे हैं कि आपके नैनों में दया और प्रेम के मोती भर आये हैं। वह देखिये चरण कमलों पर टिके हुये सीस के श्रद्धा भरे मुखड़े से विनती निकलती है:–

मैं सेवकनी हौं प्रभो निज करुना कीजै।
उतर लगावो सिवर निज मम भाउ पुरीजै।। [सूरज प्रकाश]

१. पंजाबी कविता का यह अनुवाद है। २०३ पन्ने पर समाप्त हुई कविता का यह अंतम भाग है।

सतगुरू जी अब घोड़े से उतरे। रानी, राजकुमार, कुँअर और फिर सारे अहलकार नमस्कार में पड़ गये। सभी चरणों पर झुक गये। श्री गुरू जी ने तीनों के शीसों को उठाकर प्यार किया और धीरे-धीरे चले।

अब सूरज पश्चिम की ओर मुंह छिपा रहा था। एक सुन्दर स्थान पर महाराज जी की सेना का डेरा करवाया गया। सबको यथा योग्य ज़रूरत का सामान पहुँचाया गया। थोड़ी देर के बाद दीवान सज गया और सोदर वाणी का कीर्तन शुरू हुआ। श्री जगत् के स्वामी जी आप तैयार होकर आए और विराजमान हो गये। रानी और सारा समाज भी दीवान में आकर हाज़िर हो गये। कीर्तन और शबद का उच्चारण इस तरह के भीने रंग से हुआ कि मानो उड़ते हुये पक्षी भी सुनने के लिये खड़े हो जाते थे। समाप्ति हो गई, आरती का उच्चारण हो चुका। तब तक रानी के पकवान बनाने वालों ने अति स्वादिष्ट पकवान तैयार कर लिया था, जिसे गुरू जी ने संगत सहित खाया। अब रानी ने विनय की कि हे संसार की रक्षा करने वाले जी! दया कीजिये, और मेरे इन रिक्त हाथों को पवित्र कीजिये। इन हाथों ने सोना पहन रखा है, पर सेवा की ओर से ये रिक्त हो रहे हैं। इन असफल हाथों को सेवा से सफल कर दीजिये। यदि आपकी आज्ञा हो तो सवेरे आपके दर्शन किले की कुटिया में हों और ये गुणहीन हाथ आपके लिये भोजन तैयार करें।

श्री गुरू जी ने यह वचन मान लिया।

रात को सतगुरू जी अपने डेरे पर ही हरि रंग में मग्न हो गये और निकटवर्ती सिंघ, सिख और प्रेमी सेवा करके अपने-अपने स्थानों पर सुख से सो गये। पर रायकोट के किले में रानी और माई तथा छोटे पुत्र जी राजसी दीवानखाने को सतगुरू जी के दरबार के लिये तैयार कर रहे हैं। बाकी के अहलकार कल के दरबार के लिये किले में दूसरी तैयारी में लगे हुये हैं। दरबार के कमरे को रानी ने स्वयं साफ किया और संवारा। बीच में श्री गुरू जी के बैठने के लिये चन्दन की चौकी के ऊपर रेशमी ग़लीचा बिछाया गया, बाकी सारा कमरा सुन्दर बिछौने से सजा दिया।

इधर माई सभरांव कौर ने सतगुरू जी के डेरे पर जाकर विनय की कि हे पुरुषोतम जी! अमृत वेला में आसा की वार का दीवान किले के दीवानखाने में लगाया जाय, रानी ने आपके दरबार के लिये उसे स्वयं सजाया है। फिर माई ने राजकुमार, राजरानी और सारे दासों की सेवा का हाल बताया। इस तरह के प्रेम और श्रद्धा को देखकर सतगुरू जी ने रागी सिंघों को कहा कि वे सवेरे किले में दीवान का आरम्भ करें और बाकी सारे डेरे में हुकम भेज दिया।

अमृत वेले कोट में आसा की वार का कीर्तन शुरू हुआ। तीन घण्टों तक ऐसा वाहिगुरू का यश हुआ कि मानों सभी श्रोतागण अमृत के कुण्ड में स्नान करते रहे। जब समाप्ति हुई, तब माई सभरांव कौर ने खद्दर की एक पोशाक भेंट की। सतगुरू जी ने अपने लिबास के ऊपर ही इस माई के चोले को पहन लिया।

अब दिन चढ़ आया था। सतगुरू जी उठे। पहले आपने किले को देखा। राजकुमार के साथ कुछ प्यार और कुछ शिक्षा के वचन हुए। फिर सारे अहलकारों और दूसरे मिलने वालों से वचन किये। इस तरह सवा पहर दिन चढ़ गया। रानी का तो पता ही नहीं है कि वह कहाँ पर है? सतगुरू जी ने पूछा ही था कि लाल आँखें किये हुए, लंगर में से रानी

बाहर आई और हाज़िर होकर भोजन के लिए प्रार्थना की। सतगुरू जी ने उसके भाव और नम्रता को देखकर वचन कहा, "निवै सु गउरा होइ। निवै सु गउरा होइ।।" फिर उठकर भोजन वाले दालान में गये। जिस प्रीत से भोजन तैयार हुआ था उसी रस से सतगुरू जी तथा सारी संगत ने भोजन किया।

सतगुरू जी अब चलने के लिए तैयार हुए। रानी का चित्त चाहता था कि सतगुरू जी कुछ दिनों तक वहाँ पर ठहरकर उसे, उसकी प्रजा का, वाहिगुरू की शरण में लगायें, पर उसको पता था कि आपको अनेकों के उद्धार के लिए शीघ्र पहुँचना है। इसलिए आज्ञा मान ली और एक थैली मोहरों की सतगुरू जी के चरणों में रखकर पुत्रों को चरण कमलों पर लिया टिया और विनय की, 'हे अभयपद के दाता जी! दास जानकर निवाज लीजिय।' तब सतगुरू जी ने आज्ञा दी, "तेरा पुत्र राजऋषि है, यह राज्य और सिख धर्म दोनों बातों में सम्पूर्ण होगा। तू माता है और इसकी पालक, रक्षक और शिक्षक है।"

होइ प्रसन्न श्री प्रभु कहयो 'सिर केस रखीजै'।।
आयुध विद्या के बिखै सुत निपुण्य करीजै।।

फिर कुँअर जी को वरदान दिया, तब रानी केशों की ओर से कुछ झिजकती-सी दिखाई दी। पहाड़ी राजाओं और तुर्कों का कुछ भय-सा आँखों के सामने आ गया।

पुनः फुरमायो श्री प्रभु "नहिं मानहु त्रासा।।
केतिक दिन इन राज्य है फिर होइ बिनासा"।। [सूरज प्रकाश]

रानी ने आज्ञा को सिर पर माना। सतगुरू जी ने प्रसन्न होकर एक तलवार और एक ढाल प्रदान की और एक पोथी दी जिसे रानी ने सिर झुकाकर स्वीकार किया। उसी क्षण सतगुरू जी विदा हो गये। सतगुरू ज़ी क़ो विदा करने के लिए रानी किले से बाहर तक आई। अब जब कि सतगुरू जी आगे बढ़ने लगे, तब उन्होंने यह आशीर्वाद देकर उसे निहाल किया:-

"थिरहु गुरू सिमरहु सदा परलोक सुधारो।"
चलहि बंस हुइ राज थिर नित हरि उरिधारो।। [सूरज प्रकाश]

यह वरदान देकर उपकारी घटाओं की भांति सतगुरू जी इस स्थान पर वर्षा करके दूसरे स्थान पर वर्षा करने चल दिये।



सूचना- रायपुर की रानी गुरू जी की प्रेमी थी। उसने आपका स्वागत सिखी वाले सिदक से किया। सारे लेखकों ने यही बात लिखी है, पर खोज करने से पता चलता है कि इस समय 'राव' साहब, फतह सिंह के न होने के कारणों पर राय मिलती नहीं। एक रवायत यह भी है कि राव जी उस समय जीवित नहीं थे और रानी ही राज्य कर रही थी। दूसरी कम प्रसिद्ध रवायत यह है कि राव साहब जीवित थे और गुरू जी का आगमन सुनकर आसपास के पठानों से डरकर पहले ही भाग गये थे और कहीं पर जाकर छिप गये थे। परन्तु रानी ने सभी डरों से बेडर होकर गुरू साहब का स्वागत किया, भोजन कराया, सिख धर्म धारण किया और बच्चों के लिए बख्शीश प्राप्त की।

१६ आनन्दपुर में प्रवेश

रायपुर की रानी से विदा होकर गुरू साहब माणक टबरे पर अपने डेरे में आये। यहाँ पर अब गुरुद्वारा है[१]। यहाँ से चलकर आपने अगला पड़ाव टोडे[२] गाँव में आकर किया। सायंकाल को रहरास के पाठ के उच्चारण का समय था। श्री गुरू जी अपने डेरे से दीवान की ओर जा रहे थे कि एक वृक्ष के नीचे एक तपस्वी समाधि लगाये बैठा था। सतगुरू जी निकट आये और उसे देखकर खड़े हो गये। कुछ समय खड़े रहने के बाद उसके नैन खुले। उसने देखा कि सामने श्याममूर्ति जी खड़े हैं। उसने समझा कि तप सिरे चढ़ गया है, श्री कृष्ण जी आ गये हैं। वह विह्वल होकर उठा और चरणों से लिपट गया। गुरू साहब ने कन्धे पर से कमान उठाकर उसकी नोक उसकी पीठ पर फिराई ज्यों-ज्यों कमान फिरती थी उसे शान्ति मिलती थी। वर्षों के हठ तप में, जिस रस का उसने कभी अस्वादन नहीं किया था, वह रस उसको इस स्पर्श में आ रहा था। थोड़े समय के पश्चात् गुरू साहब ने कमान कन्धे पर रख लिया और दायीं ओर से झुककर अपने हाथ से उसे कन्धे से पकड़कर खड़ा कर लिया और कहा–भाई तपस्वी! बोलो, क्या चाहते हो?

तपी–हे हरि! मुझे नहीं पता कि मैं किसकी खोज कर रहा हूँ, गृहस्थी से तंग होकर मैं साधु बना था, साधु बनकर तप किये थे; योगिराज कहते थे कि तप करने से सदा शिव में पहुँच हो जाती है, पर मेरा तो कुछ भी न बना। फिर और साधुओं की सेवा की, उन्होंने भी तप ही बताया। तप करते हुये ये दिन आ गये हैं, न 'शिवोंह' हुआ हूँ और न हरि ही मिले हैं। आज हे हरि! आप आकर मिले हैं, तप सफल हो गया है। आपके स्पर्श से कोई अगम्य का स्वाद आया है। धन्य हैं आप! धन्य हैं आप हैं हरि!!

गुरू जी–हे तपी पुरुष! मैं तो परम पुरुष का दास हूँ, पर मुझ में उसका निरन्तर निवास है। मेरे स्पर्श से वह है, उसका स्वरूप आनन्द है, हां, वह रसरूप है, तब ही तो तुझमें मेरे स्पर्श से रस की झन्नाहट छिड़ी है। तेरा तप तो नहीं फला, पर तेरे तप करने में जो सचाई की तड़प थी, उसे फल लगा है हाँ, तप भी बुरा नहीं है, यदि लक्ष्य ठीक हो। भैया! यदि लक्ष्य ठीक न हो, अन्दर में साईं के मिलाप की रुचि न हो, उस परम पुरुष के साथ स्नेह न लगे, नेह स्नेह होकर न चले, स्नेह प्रेम न बन जाय, तो तप करने का क्या गुण? तप तो जितना अधिक किया, इतना अधिक तन को ही तपाया और कष्ट दिया।

यदि किसी तपी और योगीश्वर की संगति न हुई, और कोई विद्वान मिल गया, तो उसके साथ जाकर काशी में निवास किया। व्याकरण, दर्शन, शास्त्रादि पढ़े, उनकी छानबीन

---

१. गाँव से कोई आधा मील इधर को है, इसे गुरुआणा (गुरू का गृह) कहते हैं, तहसील नारायणगढ़, ज़िला अम्बाला है।

२. यहाँ पर आपका यादगारी स्थान कोई नहीं सुना गया।

की और वेदों का विचार किया तो बुद्धि चतुर हो गई, पर सार का कुछ पता न चला, क्योंकि अन्दर प्रभु का लक्ष्य, और लक्ष्य द्वारा उसको प्राप्त करने की रुचि नहीं थी। मन तो विद्या की छानबीन में हो रहा, पर रुचि का पौधा न तो पनपा और न ही स्नेह लगा। नेह स्नेह न बना, स्नेह ने प्रेम की प्रज्जवलित शिखा वाली सूरत न पकड़ी तो विद्या का सार जो 'परमात्मा प्राप्ति' था, वह एक ओर को रह गया। सो जो कुछ विद्या ग्रहण की उसने भी एक प्रकार की विक्षेप में ही रखा।

यदि किसी शुभकर्मी अथवा कर्मकांडी की संगति मिल गई तो कर्म के चक्कर में पड़ गये। सबसे उत्तम कर्म दान था; अत: दान देकर धन और धाम खो लिये, पर वह हरि बस में न आया। मन की सीध परमात्मा की ओर नहीं थी, दान उसके लिए नहीं दिये थे। दान देते समय प्रभु का स्नेह पुलकित हो-होकर नहीं उठता था। पहले लक्ष्य ठीक नहीं बनाया था और रुचि को शक्ति वाली कमान पर निशाना बाँधकर तीर नहीं चलाया था। इसलिए हरि परम पुरुष हाथ न लगे। दे-देकर अपना धन-धाम खोकर भिखारियों की सी दशा बना ली। दाता के स्थान पर स्वयं भिखारी बन गये। भरे हुए हाथों वाले, खाली हाथों वाले हो गये। भाई तपस्वी! जिसने अंदर प्रभु जी की सीध बाँध ली और उसकी प्राप्ति की रुचि अंदर धारण कर ली (इस रुचि को बढ़ाकर हित बना लिया, हित बढ़कर प्रेम बन गया) तो उसने परम पुरुष को पा लिया। जिसने प्रेम न किया, उसका परिश्रम व्यर्थ गया[१]।

यह वाक्य सुनकर मानो सोये हुए तपी की आँख खुली। तप से सीधे हुये मन ने अंदर से लक्ष्य की सीध प्राप्त कर ली। प्रत्यक्ष दर्शन खींच रहे थे। प्यार की झन्नाहट स्पर्श के कारण छिड़ रही थी; दर्शनों से और बार-बार दर्शन करने से शीतलता आ रही थी और स्वाद आ रहा था; मगनता छा रही थी और रसना अबोल हो रही थी। दाता जी सिर पर हाथ फेर रहे थे, वह घुटनों के बल होकर सिर झुकाये हुए करबद्ध खड़ा हुआ था। सांझ का समय था, दो दिशायें मिल रही थीं, शान्ति और मूकता छा रही थी। संगम हो रहा था; दिन और रात के रूप में काल का सायंकाल का स्वरूप लेकर; संगम हो रहा था देश का एक ठिकाने–तपस्वी और वरदाता के इकट्ठे हो जाने का, संगम हो रहा था निमित्त का–मांग और अनुग्रह के आमने-सामने आ जाने का, जिज्ञासा और प्रसाद के मिल जाने का; संगम हो रहा था वस्तु का–फैला रखी झोली और उसमें पड़ रहे नाम के पदार्थ का; संगम हो रहा था प्रेम का–पिय्रतम और प्रेमी के संयोग में; संगम हो रहा था आत्मा

---

१. यह वार्तालाप उस सवैये का खुला अनुवाद है जो २४८४ अंक वाला कृ: अवतार में है और वह यों है:

प्रेम कीओ न, कीओ बहुता तप कष्ट सहियो तन कउ अतितायो।
कांशी में जाइ पढ़िओ अतिही बहु वेदन को करसार न आयो।
न दान दीए बसि है हवै गयो स्याम सभै अपनो तहिं दरब गवायो।
अंतर की रुचि कै हरि सिउ जिस हेत कीओ तिनहूं हरि पायो।

परमात्मा का–अंतरात्मा में सिख के लौलीन हो जाने और गुरू के उसको अपने तत्वस्वरूप में लौलीन कर लेने के स्वरूप में।

परम पुरुष के साथ सदैव अभेद रहने वाले साहब गुरू गोबिन्द सिंघ जी के तत्वस्वरूप में प्रेमी प्रेम लीनता में लीन हो रहा है।

हार चले ग्रिह आपन कउ बन मों बहुतो तिन ध्यान लगाए॥
सिद्ध समाधि अगाधि कथा मुनि खोज रहे हरि हाथ न आए॥
स्याम भनै सभ बेद कतेबन संतन के मत यौ ठहराये॥
भाखत है कवि संत सुनो जिह प्रेम कीयो तिन श्री पति पाए॥२४८८॥

[कृ: अवतार]

उधर दीवान में सोदर रहरास की समाप्ति हो गई। फिक्र लग रही है कि गुरू साहब नहीं आये, कुशल हो। इधर समुद्र–गुरू उछल-उछलकर कष्ट सहन करती हुई, अटक रही, फटक रही, टकरा रही, घबड़ा रही नदी को लेने–अपने में ले लेने–के उछाल में है, ज्वारभाटे की भाँति रेतीले स्थानों को चीर कर आगे से नदी को आकर मिला है और अपनी कलाई में लेकर उसे शीतल कर रहा, निर्मल कर रहा और अपने स्वरूप में निवास दे रहा है। अचानक ही तपी दर्शनों से प्रेम के हिंडोले पर चढ़ गया है। स्वच्छ हृदय के प्रेम रस को दाता जी भी ले रहे हैं, उसे मान प्रदान कर रहे हैं और अपने समान कर रहे हैं। धन्य हैं साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ! प्रेम रस से लबालब भर रही यह प्रेम मूर्ति प्रेमियों के हृदय में सदा टिकी रहे।

रात बीत गई, उसी तरह जैसे कि सैकड़ों लाखों वर्षों से बीतती चली आ रही है, तब से जब मनुष्य इस धरती पर नहीं आया था, और जब से यह यहाँ का निवासी नहीं बना। अभी दिन नहीं चढ़ा था कि टोडे में सतगुरू जी के दरबार में आसा की वार समाप्त हो गई। समाप्त होते ही कूच का नगारा बज गया। घड़ियाल की फ़रियाद ऊँची हो गई, यह बताने लगी कि हे ग़ाफल लोगो! चलो कूच है, जहाँ पर रात काटी थी, वह पड़ाव नहीं था, यह तो रैन बसेरा था। हे मुसाफिरो! दाता जी के सिपाहियो उठो अब कूच है। हाँ भाई जिन्होंने कूच समझा, वही सचेत रहे, जिन्होंने रैन बसेरे को मुकाम समझा, वे अचेत रहे। घड़ियाल बन्द हुआ तो दमामा बज उठा। दमामे वाले ऊँट जी आगे होकर चले, पीछे-पीछे बाकी लोग चले और चल दिए सुन्दर बांके घोड़े पर सवार होकर साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ। आपके एक हाथ में तलवार है और दूसरे हाथ में समरण की देन है। एक कन्धे पर कमान लटक रही है और दूसरे पर जगत के बोझ को कम करने वाली, कृपादृष्टि की अदृश्य थैली लटक रही है। शनैः शनैः चलते-चलते दोपहर से पहले नाडे[१] में पहुँच गये। यहाँ पर पहले से ही भोजन तैयार था। संगतें भी दर्शन के लिये भेटां लेकर आई खड़ी थीं और दर्शनों की देन की प्रतीक्षा कर रही थीं। गाँवों के मुखिया और राव भी आये खड़े थे कि बली योद्धा जा रहा है, जिसने बाईस धार के राजाओं की सम्मिलित सेना को हराकर

---

१. इस गाँव के निकट मंजी साहब यादगारी चिन्ह है। यह गाँव थाना पिंजौर पटियाला ज़िला में है।

भगा दिया है, उसके साथ जाकर भेंट करें। वीर रस वाले और शान्त रस वाले, दोनों प्रकार के लोग खड़े होकर रास्ता देख रहे थे। जब साहब पहुँचे, तो सभी भेंटें लेकर मिले। गुरू साहब ने सबको आदर सत्कार दिया, हरेक की जरूरत को पूरा किया। फिर लंगर बटा। आये हुए प्रत्येक बड़े-छोटे को गुरू जी के लंगर से भोजन मिला। लंगर वाले दाता जी ने स्वयं भी भोजन किया और फिर आराम किया। तीसरे पहर से पहले जागकर आगे को कूच किया। रात ठहरने का संकल्प अगले पड़ाव पर रखा। आगे रैन बसेरे का पड़ाव ढकोली आया। ढकोली से उत्तर की ओर आधे मील से कम दूरी पर गुरू जी का तंबू लगा[1]। यहाँ पर भी बहुत संगतें आईं और लोग भी दर्शनों के लिए आये। आपके डेरे के और घास दाने के प्रबन्ध सुन्दर से सुन्दर हुए। रात आराम से बीती। सवेरे आसा की वार का दीवान सजा। समाप्ति होने पर कड़ाह प्रसाद बाँटा गया, तब ढकोली की संगत ने जल की तंगी के बारे में विनय की। गुरू साहब सुनकर कहने लगे:-भाई! गुरू नानक का घर बड़ा दयालु है; यह तो दूध, दही, घी देने को समर्थ है, पानी की क्या बात है? यह वचन कहकर आप उठे, अपने डेरे के इधर-उधर चहलक़दमी करते रहे और संगत भी साथ-साथ चक्कर काटती रही। अचानक एक स्थान पर ठहर गये और हाथ में जो बरछा था, उसे ज़ोर से ज़मीन में गाढ़ दिया जहाँ से जल निकल आया। सिख संगतें देखकर चकित हुईं। 'धन्य गुरू, धन्य गुरू' की मीठी ध्वनि सब के हृदयों में से निकली। फिर गुरू साहब ने बावड़ी को पक्का बनाने के लिए कुछ धन दिया। दोपहर ढलने पर कूच हो गया। आप जा रहे थे कि रास्ते में एक नाभा नामक गाँव आ गया। इसकी सीमा में से निकल रहे थे कि कंबो सिंघों की संगत ढोलक मदीरे लिये हुए, शबद गायन करती हुई आगे से आकर मिली। उन्होंने विनय करके गुरू जी को यहाँ ठहरा लिया। रात को डेरा यहाँ पर ही रहा। गरीब सिखों की संगत ने जिस भाव और भक्ति से सेवा की, उस पर गुरू साहब बहुत प्रसन्न हुए। आसा की वार के कीर्तन के पश्चात संगतों को नाम का उपदेश मिला। जो इस प्रकार था:-

जड़ और कृत पदार्थों की पूजा नहीं करनी, सदैव एक ही अकाल पुरुष की पूजा करनी है। तब एक साधु, जो कुछ ज्ञान, कुछ भक्ति, कुछ योग का ज्ञाता था, कहने लगा: गीता में तो एक कृष्ण की शरण लेना ही श्रेष्ठ बताया है, क्या अवतार के रूप में उनकी शरण लेना है अथवा उनके अनावतारी अव्यक्त रूप में? तब श्री गुरू जी मुस्कराये और बोले-भाई परम पुरुष के चरणों से लगो। परम पुरुष सबसे बड़ा है, जनम मरण से रहित है, वह ईश्वरों से ऊपर है, परम ईश्वर है, सबका स्वामी है, वह निर्विकार है। गुरू नानक के घर में उस परम पुरुष की उपासना बताई।

साधु-फिर जी! उसका-जो रूप वाला नहीं-ध्यान कैसे लगाया जाता?

गुरू जी-भाई! जगत् मोह निद्रा में सो रहा है, सोये हुए व्यक्ति के ध्यान स्वप्न की भाँति भुलावा ही होते हैं पहले मोह की निद्रा को खोली। गृहस्थी मोह में है, पत्नी, पुत्र,

---

१. यहाँ पर बावड़ी साहब नामक गुरुद्वारा है। साथ एक तालाब है। अम्बाला-कालका लाईन पर, घग्गर रेलवे स्टेशन से यह गाँव दो मील पर है।

पदार्थ, मान के मोह में। साधु अपनी बड़ाई के मोह में है—चेलों बालकों और डेरे के मोह में। सारे, क्या राजसी वृति वाले, क्या गृहस्थी, क्या कर्म कांड वाले साधु, संन्यासी किसी न किसी बहाने शारीरिक रसों में लग रहे हैं। जब मन को संचय तो करना है इन रसों का, तब वह ध्यान किसका धारण करेगा? उसके अंदर तो उसी का ध्यान है जिसके संचय में वह लगा हुआ है। वह सर्गुण का ध्यान और निर्गुण का ज्ञान कहाँ से प्राप्त करेगा। अत: भाई, पहले अपने चित्त की मोह निद्रा को खोलो। यह खुलेगी सतसंग के साथ, जहाँ से इस बात का पता चलेगा कि स्थिर क्या वस्तु है और अनस्थिर क्या है। फिर पता चलेगा कि यह जो विषय रसों का मोह है यही पर्दा है हमारे और परम पुरुष के बीच में[१]!

साधु—स्वामी जी! फिर यह बात हुई न कि जीव कर्मकांड के कर्म करे।

गुरू जी—न भाई! जो कर्मकांड के केवल कर्म हैं, वे तो भ्रम में फँसा देते हैं। वे सुख और सूझ के घर में नहीं ले जाते। यदि कल्याण की जरूरत है तो 'धर्म के कर्म' में लगो।

साधु—गुरू जी! धर्म का कर्म कौन-सा है?

गुरू जी—सदैव स्मरण। यह धर्म का कर्म है। यह कर्म नहीं, पर कर्मों का शिरोमणि कर्म भी यही है। यह स्मरण है, पर ध्यान का शिरोमणि भी यह ध्यान है। भाई निर्गुण, निर्विकार का ध्यान उसका स्मरण है। देखो श्री गुरू नानक देव जी ने फुरमाया है:—

मैं अवरु गिआनु न धिआनु पूजा हरि नामु अंतरि वसि रहे॥

[बिलावल महला १ छन्त दखणी]

यह शर्त यह है कि साथ-साथ पापों का त्याग भी करो। पहले आपे को बड़े पापों से रोको, फिर शारीरिक रसों रंगों की निद्रा वाले मोह रूप कर्मों से बचो[२]। विचार द्वारा पापों से बचा जा सकता है और हठ से, अर्थात् आपे पर ज़ोर डालने से बचाव हो सकता है। साथ-साथ स्मरण जारी रहता है और स्मरण अंदर से पापों के मैल को काटता है। साथ-साथ आगे से पाप करने की रुचि के मुँह को मोड़ता है, फिर रुचि की परम पुरुष की ओर सीध बँधती है। यों इस निर्मल कर्म से निर्मल हो जाया जाता है[३]। यह नाम ही निर्मल कर्म है[४]। पाप कर्म हो अधर्म के कर्म हैं, अधर्म कर्म पाप कर्म हैं। अधर्म मैल है धर्म निर्मलता है। अधर्म कर्मों का मैल धर्म के कर्म से उतरता है। धर्म कर्म क्या है? परमेश्वर का नाम।

साधु—फिर ज्ञान होगा अथवा ईश्वर मिलेगा?

गुरू जी—शाब्दिक के झगड़ों और बाल की खाल उतारने की ओर मत पड़ो और न ही जगत को डालो। अपने आपको समरण से निर्मल कर लो, फिर उपदेश दो। हाँ, उपदेश

१. बिखिआ अजहु सुरति सुखु आसा॥
कैसे होई है राजा राम निवासा॥ (गउ: कबीर)
२. निज घरि सूतड़ीए पिरमु जगाए राम॥ (बिलावल म: १)
३. मन निरमल करम करि॥ (धनासरी म: ५)
४. हरि को नामु जपि निरमल करमु॥ (सुखमनी)

दो कि भाई पाप मत कमाओ, अधर्म का कोई कर्म मत करो, मोह की निद्रा खोलो, अपने दाता सृजनहार की हुजूरी में निवास करो। याद रखो कि तुम सदैव उसकी हुजुरी में हो। याद रखो कि वह मालिक, पालक प्यार करने वाला पिता है; यों उसका स्मरण करो। उसका नाम हृदय में पिरोकर रखो। फिर क्या होगा? तुम निर्मल हो जाओगे, पाप कर्म नहीं करोगे। जब पाप कर्म नहीं करोगे, तब भ्रम और भय तथा उनका फल 'दुख' और 'रोग' दूर हो जायेंगे। सब दुखों के साथ बड़ा दुख 'काल का जाल' समाप्त हो जायेगा। इस दुख के दूर होने पर शांति मिलेगी और ईश्वर परम पुरुष के प्यार का रस आयेगा, तुम हरि के रस से रंगे जाओगे। भाई साधु राम! यदि तुम अपने सुख की इच्छा रखते हो तो यही मार्ग है, और यदि सारी सृष्टि का सुख चाहते हो तो भी मार्ग यही है। यह रास्ता आमों की गिनती मात्र का रास्ता नहीं है, यह आमों के रसाल रस की प्राप्ति का रास्ता है, जिसमें ज्ञान, ध्यान, भक्ति योग सारा कुछ आ जाता है। हरि रस की प्राप्ति का मार्ग है–पापों का त्याग, मोह निद्रा से जगना, परमेश्वर के नाम का स्मरण–सदैव उसका स्मरण। यह उपदेश–देकर[1] दाता जी परोपकारी समीर की भाँति धीरे-धीरे वहाँ से चले और अनेकों का उद्धार करते हुए, रास्ते में ठहरते, चलते, ठहरते, दोपहर को घनौले[2] जा पहुँचे। वहाँ पर दोपहर काटने के बाद, पाउँटे को जाते समय जहाँ पर ठहरे थे, वहाँ पर साँझ होने से कुछ समय पहले रोपड़ के पास कोटले आ पहुँचे। यहाँ पर पठान सरदार थे। उन्होंने श्री गुरू जी का डेरा करवाया और आगे रोपड़ को न जाने दिया। अपने गाँव में डेरा करवा दिया और बहुत सेवा की। चलते समय सतगुरू जी ने उन्हें एक कटार और एक ढाल प्रदान की[3]।

इस तरह चलते-चलते आप कीरतपुर पहुँचे।

श्री कीरतिपुर तीर महिं डेरा निज डारा॥
श्रीमुख से फुरमायोः 'बहु करहु कराहू'॥
गए पितामा थान को भट संग महाने॥
कर जोरे करि बंदना अरदास बखाने॥

---

१. पिछली वार्तालाप दशम गुरू के इस मुख वाक्य का खुला अनुवाद है:–
रामकली पातशाही॥१०॥
प्राणी परम पुरख पग लागो॥
सोवत कहा मोह त्रिद्रा में कबहूँ सुचित ह्वै जागो॥१॥ रहाउ ॥
औरन कहा उपदेसत है पसु तोहि प्रबोध न लागो॥
सिंचत कहां परे विखिअन कउ कबहूँ बिखै रस तिआगो॥१॥
केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो॥
संग्रह करो सदा सिमरन को परम पाप तजि भागो॥२॥
जातै दूख पाप नहि भेटै काल जाल ते तागो॥
जो सुख चाहो सदा सभन को तौ हरि के रस पागो॥३॥

२. यहाँ पर गुरुद्वारा है। यह भी ख्याल किया जाता है कि आते समय यहाँ पर नहीं ठहरे थे।

३. यह गाँव रोपड़ से पूर्व की ओर दो-अढ़ाई कोस की दूरी पर है। दो गुरुद्वारे हैं, एक गाँव के अन्दर और दूसरा बाहर।

तब पंचामृत[1] बृन्द[2] को बरतावन कीना॥
पुरिजन दरसति दुति अधिक सभिहिन सो लीना॥
सूरजमल के पौत्र दुइ हुलसावत आए॥
कर दर्शन गुर तरणि[3] को दृग कमल खिराये॥७॥
कुशल प्रश्न कर दुहन कौ सनमान बिठाए॥
मुसकाने श्री प्रभू कहयो: 'अब रहीअहि पासा॥
आनन्दपुर निज इसम[4] कौ करिहैं बहु बास'॥
संध्या लखि रहिरास कौ पठि सुनि तिस काला॥
थान पितामहि को नमो करि प्रक्रम कृपाला॥९॥
शनैः शनैः निज सिवर[5] कौ चलिआई गुसाईं॥
राए गुलाब सिआम सिंघ संग दोनहुं भाई॥
जथा शक्ति सेवा करी सतगुर हरखाए॥
सुपति जथा सुख जामनी बिसरामु सु पाए॥१०॥
बड़ी प्राति उठिकै प्रभू करि सौच शनाना॥
बजयौ दमामा कूच को जनु घन[6] गरजाना॥
चढ़ि मतंग[7] पर सतगुरू पुरि चहैं प्रवेशा॥
सायुद्ध[8] योद्धा हय चढ़े चलि संग अशेशा॥११॥

यों आप वापस आनन्दपुर पहुँचे।

जब इस तुक को पढ़ते हैं कि "काहलूर में बाँधियों आन आनन्दपुर गाँउं" तो समझा जाता है कि यह गाँव नया बनाया गया है, पर इसका अर्थ यह नहीं है। गाँव तो नवें सतगुरू जी स्वयं बनाकर गये थे। इसी को आबाद हुआ छोड़कर श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी पाऊँटे गये थे। 'बाँधियो' का अर्थ यह है: आपके चले जाने के बाद रौनक कम हो गई थी। बहुत से लोग चले गये थे, पर थोड़ी-सी आबादी थी। आसपास के गाँवों को यहाँ से मण्डी की भाँति वस्तुएँ मिल जाती थीं और गुरू जी भी कुछ प्रबन्ध रखकर गये थे। अब आकर नये सिरे से रौनक बढ़ाई और किले कोट आदि का प्रबन्ध करके इसे बाँधा। आज आप जी के पहुँचने से पहले आनन्दपुर से फिर चहल-पहल हो गई थी। एक तो पहली आबादी जोकि शेष थी, वह रह रही थी। दूसरा मामा जी सारे दल और परिवार को लेकर पहुँच गये थे। तीसरा, आसपास के गाँवों के काफी लोग आदर के लिए आ गये थे। चौथा, जो संगतें

---

१. कड़ाह प्रसाद।
२. बहुत।
३. गुरू रूपी सूरज का दर्शन करके।
४. अपनी मालिकी।
५. अपने डेरे।
६. बादल।
७. हाथी।
८. शस्त्रों सहित।

दूर-दूर से आ रही थीं, यह सूचना पाकर, कि गुरू जी आनन्दपुर आ रहे हैं, इधर ही चलकर आ गई थीं। अत: आज आपके स्वागत का बहुत चाव हुल्लास हो रहा था। नगर और नगर से दूर बाहर सड़कों पर छिड़काव किये गये कि आपके आने पर धूल न उड़े। हज़ारों आदमी नगर के बाहर और अन्दर सड़क के आसपास खड़े हो गये। प्रेमी लोग कई स्थानों पर फूलों के टोकरे भरकर वर्षा करने के लिए खड़े थे। ज्यों-ज्यों आप आगे बढ़े, सबके आदर को स्वीकार किया। सबसे प्यार किया, आशीर्वाद दिया और आगे चलते गए। फिर आप हाथी से उतरकर पैदल हो चले और अपने परम प्यारे पिता के स्थान पर आए। नैन मूँदकर अपने सतगुरू पिता और उनके कमाल और करनी को याद करे सिर झुकाया, फिर चार परिक्रमा करके अरदास करवाकर कड़ाह प्रसाद बाँटा। यहाँ से फिर अपने पुराने महलों की ओर गए और सारे परिवार से मिलकर भोजन किया और आराम किया। तीसरे पहर भली-भाँति तैयार होकर दीवान स्थान में आए।

संध्या लग थिर सभा महिं दर्शन को दीना।।
पुरी कामना सभिनि की दुख दारिद हीना।।
सिंघ पवर उठि करि चले सभि बंदन ठीनी।।
प्रविशे सुन्दर सदन महिं सतगुर गुन खानी।। [गुर प्रताप सूरज]

संगतें यह सुनकर उमड़कर आ गईं कि गुरू साहब दूर के देश को छोड़कर फिर आनन्दपुर आ गये हैं। दीपमाला तक बड़ी भीड़ हो गई थी और यह समागम इतना भरकर हुआ कि कोई ठिकाना न रहा। इस समय अगणित धन इकट्ठा हो गया, जिसको सफल करने के लिए गुरू जी ने उसे उस उद्देश्य पर खर्च करना शुरू किया जिस उद्देश्य को आप मन में धारण किये हुए थे। वह उद्देश्य नेकी के प्रचार से प्रजा की स्वतन्त्रता के लिए प्रजा में ही बल भर देने का और उसे अपने पैरों पर खड़ाकर देने का था। सो आप ने आनन्दपुर में आये हुए सिखों में से चुन-चुनकर जवान सेना के लिए रख लिए और अपनी सेना को सुन्दर, सजीला और बलवान बनाना आरम्भ कर दिया ताकि जरूरत पड़ने पर पाऊँटे की भाँति सेना में ऐसे लोग न हों, जोकि लड़ने से इनकार कर दें अथवा नमकहराम बनकर वैरी के दल में जा मिलें। सेना के लिए सामान की आवश्यकता होती है, इसलिए आपने सिलहखाने बनाए। शस्त्र, अस्त्र, बारूद, गोली प्रत्येक वस्तु अपनी ही तैयार करवाते। रहकले, जंबूरे, तोपें तक अपनी ही तैयार होने लगीं। फिर यदि युद्ध गले आकर पड़े, तो किले, दमदमे चाहिएँ। सो ये भी बनवाने शुरू कर दिये। इन सभी कामों के लिए तरह-तरह के कारीगरों की जरूरत भी होती है, वे भी मंगवाये गए। जहाँ पर ये कुछ हो, वहाँ पर व्यापार के लिए मण्डी की जरूरत भी होती है, जिससे सारे सामान अपने आप आते रहें, इसका भी प्रबन्ध किया। यों आनन्दपुर में बड़ी रौनक और आबादी बढ़ती गई।

श्री हजूर साहब के ग्रंथी भाई हजूरा सिंघ जी को कोई उदासी साधु एक पुरानी उस समय की लिखित यादगारों की एक पोथी-सी देकर गए थे, आपने उसकी जो नकल हमें भेजी है, उसमें आनन्दपुर में गुरू ज़ी के इस समय के उद्यम के बारे में यों लिखा है:-जो

संगतें, मसंद, संत और सेवक आते थे उनके लिए आज्ञा होती थी कि वे जहाँ पर किसी विद्वान और कलाकार को देखें उन्हें आपके पास भेज दें। अच्छे-अच्छे शिल्पी साथ लाएं या आपके पास भेज दें। जो गुणी, कारीगर, विद्वान, कलाकार आते उनकी खातिर होती और रोज़ीने बाँध दिये जाते। इनसे रौनक बढ़ी, मुहल्ले और बाज़ार बन गए शूरवीर इकट्ठे हो गए। शस्त्र-अस्त्रों के चलाने का भारी काम जारी हो गया। घोड़े रखना, उन्हें पालना, सिखाना, युद्ध के लिए तैयार करना यह काम भी आनन्दपुर में ही चला। दूर-दूर से अच्छे-अच्छे घोड़े आते, घोड़ों के साज आदि के लिए चमड़े के कारखाने भी खुल गए। सिकलीगर इकट्ठे हो गये और सिलहखाने शुरू हो गए। इनके साथ विद्या का भी काफी सामान हुआ। साधु ने लिखा है कि वहाँ पर संस्कृत आदि के अनेकों विद्वान आकर इकट्ठे हुए। लेखकों की गिनती अस्सी से कम नहीं थी। उसने लिखा है कि मेलों के समय गुरुबाणी की हज़ारों पोथियाँ लिखकर तैयार करवाई जाती थीं और मेले पर आई हुई संगतों में बाँटी जाती थी। पण्डितों और विद्वानों से सिखों को विद्या दिलवाई जाती थी। पण्डितों के अलावा फारसी के विद्वान भी रखे हुए थे, कम-से-कम पाँच बड़े काज़ी, आलम वेतन देकर रखे हुए थे, जोकि फारसी और अरबी सिखाते थे और इस विद्या के काम करते थे। दरजी, लिलारी, रंगरेज, लोहे और पीतल के कारीगर, लकड़ी का काम करने वाले सभी कामों के कारीगर इकट्ठे कर लिए थे।

इन बातों का पता इतिहास, सूरज प्रकाश आदि से भी चलता है। कि श्री गुरू जी ने अपने शान्तरस वाले काम के साथ-साथ संगतों में बीर रसी बल और तेज पैदा करने का जो काम शुरू किया था वह अब आनन्दपुर में बड़े ज़ोर से चल रहा था सिखों की सेना जो कि अब तैयार हुई थी वह बहुत तगड़ी और बलशाली थी। इनमें वीररस भरने के लिये इन्हें पुरातन शूरवीरों के कारनामे सुनाये जाते थे ढाढी वारें (शूरवीरता की कथाएँ) गाया करते थे। इससे एक ओर तो उनमें वीररस का जोश भरता था, दूसरी ओर इन्हें नीति के उपदेश दिये जाते, नीति और फिर धर्म की नीति सिखाई जाती थी, सच की दृढ़ता बाँधी जाती थी। झूठ, छल, कपट की नीति से हटाया जाता था। इस बात के लिये उपदेशों के अतिरिक्त गुरुवाणी के पाठ तथा विचार पर बहुत बल दिया जाता था, ताकि सिख स्वयं पढ़कर विचार कर ले कि जीवन का मनोरथ क्या है? सिख उपकार करे, आपा वारे पर अभिमान और मद से भरकर व्यवहार न करे, छल न करे, किसी को दुख न दे। वाणी नाम का पता बताती है। नाम वाहिगुरू का संगम है। उसका आदर्श गुरू जी के कायम किया वही जोकि बुरू बाबे का था—नाम, दान, स्नान इसके साथ अपने पितामह जी द्वारा जारी किया हुआ, अथवा चलाया हुआ वीररस चलाया' 'दया करो' यह पहली वीरता है, 'दान करो' यह दूसरी वीरता है, 'धर्म के लिये सीस दे दो' यह तीसरी वीरता है पर सबका मूल है सच। इस प्रकार के शूरवीर आनन्दपूर में तैयार किये जाने लगे इस प्रचार का यह असर हुआ कि दूर-दूर से सिख घरों से शस्त्र अपने साथ लेकर खर्च पल्ले में बाँधकर आनन्दपुर में आते और अपनी सेवा और अपने प्राण अर्पित करते थे भंगाणी के युद्ध की फतह के कारण उनके दिल बढ़ गये थे और अत्याचारी आक्रमणकारियों के भय मनों से निकाल

दिये थे; इस लिये गुरू साहब को इस उद्यम में शीघ्र ही सफलता मिलने लगी दर्शनों को आने वाली संगतें भी कुछ शस्त्र अपने साथ लाने लगीं और जब कभी कोई मुसीबत आ पड़ती तो उसका मुकाबला भी करने लगीं।

जहाँ पर अब कोई नया नगर बसे और उसके साथ एक-दो गाँवों की जितनी भूमि भी हो, वहाँ पर चाहे फौजों के लिये दूर-दूर से ही सारे सामान क्यों न आते हों, फिर भी घास-चारे आदि की स्थानीय आवश्यकताएँ वहीं से ही पूरी हो जाती हैं। सिख शिकार को जाते, वनों में जा निकलते, क्रीड़ा युद्ध करते, धावा बोलने के अभ्यास करते, वनों में जाकर चाँदमारी करते। पर जब किसी गाँव में से किसी वस्तु की जरूरत होती तो कई लोग तो पैसे लेकर दे देते पर कई अकड़ जाते और पैसे देने पर भी वस्तुएँ देने से इन्कार कर देते थे। इसके फलस्वरूप जब सिख वीररस की विद्या की नीति के अनुसार पैसे देकर चीजें ज़बरदस्ती उठा लेते तो झड़पें हो जातीं[१]। फिर पहाड़िये सिखों के सामने ठहर न सकते और राजाओं के पास जाकर फरियाद करते। गुरू जी की पुरी में वीररस के सामानों की पूर्णता के समाचार राजाओं के पास भी पहुँचते थे। राजा भीमचन्द का मन्त्री तो इस नीति पर चलता था कि गुरू साहब के साथ राजा का मेल बना रहे। वह बुद्धिमान पुरुष था और गुरू जी के आदर्श को समझता था कि आप अपने लिये कुछ भी बनाना नहीं चाहते। उनका आदर्श केवल प्रजा की स्वतन्त्रता है और देशवासियों की विदेशियों के जुलम से छुड़ाना है। इस लिये वह गुरू जी के साथ राजाओं की केवल समस्या मात्र को ही काफ़ी नहीं समझता था, बल्कि सज्जनता और मित्रता के सम्बन्ध पक्के करने चाहता था। तुर्क पातशाह के संकेतों का भी उसे ज्ञान था इसलिये वह निजी तौर पर जानता था कि यदि गुरू जी का उद्यम सफल हो गया तो हम सबके भले की बात होगी। वह यह भी जानता था कि हिन्द में चाहे अनेकों ही राजा हैं, जगह-जगह पर राज्य हैं और प्रत्येक राजा का दूसरे राजा के साथ द्वेष ही हिन्द के दबे रहने का कारण है, जिसके कारण इनकी सांझी शक्ति और एक संगठित ताकत नहीं बनती। प्रजा की ओर से आई हुई फरियादों के आधार पर उसने राजा को समझाया कि भंगाणी के युद्ध में हार खाकर हमने सिखों को उभरती शक्ति को देख लिया है। फिर गुरू जी अपने ठिकाने पर आकर बसे हैं और प्रफुल्लित हो रहे हैं। वीररस की शक्ति को पैदा करना उनका काम नहीं है, व धर्म के अगुआ हैं, पर वे प्रजा को राज्य की ओर से हुए दुख का अनुभव करते हैं और दुर्बल हुये लोगों में सत्य पर खड़े होकर मुकाबले के लिये आकर खड़े हो जाते हैं और डट कर प्राण तक दे देने का ढंग सिखा रहे हैं। वे हमारे राज्य के शत्रु नहीं हैं। यह बात निश्चय ही ठीक है। फिर उनके द्वारा बनाये जा रहे बल का हम विरोध क्यों करें? हम उस बल को अपना सहायक बल समझें। हां, हम ऐसी नीति पर चलें कि हम इतना भी आगे न बढ़ें कि तुर्क पातशाह हम पर शक करे, पर इधर इनके साथ भी न बिगाड़ें। भंगाणी के युद्ध में हार हो जाने के बाद से अब तक यह एक समस्या बनी हुई है। हम इस समस्या को नये युद्ध में

---

१. यदि पहाड़ी लोग पैसे लेकर भी खुशी से कोई वस्तु न देते तो सिख ज़ोर धक्का करके उनसे जबरदस्ती चीजें ले आते।
[तवारीख़ ख़लासा]

भी तबदील कर सकते हैं। और इसे पक्के पैरों वाली सज्जनता और मित्रता में भी परिपक्व कर सकते हैं। यह मित्रता आवश्यकता पड़ने पर हमारे काम भी आ सकती है। औरंगज़ेब दक्षिण में है, हम कई बार कर देने से आनाकानी कर लेते हैं, न जाने किस समय ज़रूरत पड़ जाये और यही शक्ति हमारे काम में आये।

संक्षिप्त में श्री गुरू जी के साथ पक्की मित्रता वाले मेलजोल और बातचीत खोलने की बात राजा ने मान ली और अपने वकील को कुछ तुहफे सौगातों के रूप में देकर गुरू जी के दरबार में भेज दिया। गुरू जी के पास पहुँचकर दूत को सम्मान सहित ठहराया गया और मुलाकात हुई। मुलाकात में इसने दानाई से सारे समाचार कह सुनाए और बताया कि छोटी-छोटी बातों से राजा के कान भरे जाते हैं, फिर द्वेष पैदा किया जाता है। राजा की अपनी इच्छा तो मित्रता की है। उसकी बातचीत पर गुरू जी के मुख्य दरबारी मामा जी की ओर से और गुरू जी की अपनी ओर से उसे उत्तर दिये गये और असली हालात बताए गये। दूत को आगे-पीछे के सारे हालात का पता था, पर फिर भी उसे यह बात स्पष्ट करके बताई गई कि गुरू का घर निर्वैर है, इसकी ओर से कभी भी राजा के साथ युद्ध करने अथवा द्वेष के लिये पहल नहीं की गई। राजा की ओर से ही अयोग्य मांगें मांगी गईं थीं, राजा की ओर से ही युद्ध की धमकी दी गई थी और अयोग्य व्यवहार किया गया था, जिनके मुकाबले पर गुरू जी की ओर से युद्ध नहीं रचाया गया था, बल्कि आनन्दपुर को छोड़कर पाऊँटे में जाकर डेरे लगाये थे और सदैव के लिये वहाँ पर ही निवास कर लेना कोई अद्भुत बात नहीं थी, पर तुमने ही वहाँ पर जाकर छेड़खानी की। विवाह के बहाने से अपने साथ सेना लेकर गये और धमकियाँ देकर रास्ते की माँग की। जब रास्ता न मिला तब फतह शाह को-जो गुरू जी का सेवक बन रहा था-बहकाकर विवाह के बुलावे पर गये हुये सिखों पर ज़बरदस्ती की, और वे बड़ी मुश्किल से वापिस आये। फिर तुमने वापिस आते हुए सिखों पर फतह शाह की सारी सेना और कई राजाओं को साथ गई हुई सेना को मिलाकर गुरू जी पर धावा बोल दिया। आत्मरक्षा में श्री गुरू जी को विवश होकर तुम्हारे वार को रोकना पड़ा जिसमें तुम्हें हार हुई और तुमने हार मानी। विजय पाकर भी हमने कोई ज़बरदस्ती नहीं की। अपनी मलकियत वाले इलाके में बस रहे हैं और किसी को दुख नहीं दे रहे हैं। अनेकों संगतों के आने के कारण और सिख दलों के यहाँ पर होने के कारण, एक नगर बस गया है, जिससे तुम्हारी और तुम्हारी प्रजा की आय बढ़ रही है। वह कौन-सा अन्याय हमने किया है जिसके कारण तुम्हारा राजा दुखी हो उठता है। इस समय के वार्तालाप पर कवि जी ने एक दो कवित्त गुरू जी की ओर से लिखे हैं जो कि अत्यन्त रसीले हैं:-

खेलिबे अखेर कौ न आन थान जान कहूँ
काहिलूर देश मैं प्रवेश बचरति हैं।
घोरन को घास, किधों मास हेतु छांग लेति
और न बिगारें कछू फिरैं जित कित है।
कहाँ बिगरायो को दुरग नहिं छीन लीओ
ग्राम हूँ न लूटयो कोई, लीनि कहाँ बित है।

पंथ हूँ न रोक्यो कोई, पाके कृष रहे सोई,
कौनसो बिगार कीनि जाते दुख चित है?।२३।
भीमचन्द भूप ने तुरंगम न दीनि कोई,
नालबन्दी आदि धन कछू न पुचायो है।
रहो निज देश, करो राज को अशेष बैठि,
हमरो न द्वेष नहिं काज बिगरायो है[१]।

फिर लिखते हैं–

बाक पुरहूत सम दूत सुन पूत मन
सूत करयो चाहत, सु बेनती अलायो है।
राजे हूँ को मेल लेहु, कीजिये स्नेहु आप,
करुना अछेह ते सकल बनि आयो है॥२४॥

गुरू जी ने दूत के वाक्यों को सुनकर कहा कि राजा जी बड़ी प्रसन्नता से आ जायें। इसके बाद दूत विदा हो गया और कुछ दिनों के पश्चात् राजा अपने दो सौ सवारों सहित आनन्दपुर आ गया, जिसे उसके योग्य सम्मान सहित ठिकाना करवाया गया।

अगले दिन गुरू जी के दरबार में राजा दर्शनों के लिए आया। वहाँ पर आने में गुरू जी की गद्दी होने के कारण उसे वैसे नहीं झुकना पड़ता था जैसे कि राजा के पास जाकर झुकना पड़ता है, क्योंकि गुरू के दरबार में तो राजा, मन्त्री, अमीर, अहुदेदार, धनी, गरीब, श्रमिक, मजदूर सभी आते हैं, और इसे किसी तरह भी घटियापन की बात नहीं कहा जा सकता। राजा भी इसी तरह भेंट लेकर अदब के साथ आकर मिला। राजा अपने मन्त्री, दीवान और सेनापति आदि को साथ लेकर आया था और आगे से स्वागत के लिए गुरू जी के बड़े दरबारी मामा कृपाल चन्द जी और नन्दचन्द आदि मुखिया आये थे। पर दरबार में आकर राजा ने भेंट आगे रखकर सीस झुकाया। श्री गुरू जी ने सत्कार सहित आशीर्वाद दिया और कुशलता पूछी। फिर और वार्तालाप हो चुकने के बाद मतलब की बातें छिड़ीं, जिनमें गुरू जी ने उसे बताया कि हमारे सिख दाना, घास आदि वस्तुओं के बिना और कुछ नहीं माँगते और कोई अपराध नहीं करते। यथा:–

सुभट सिधारैं नित घास को निहारैं लेत
अपर बिगार को करत ना पधार कर।

इस तरह की बातचीत:–

सुनि भीमचन्द रिदै अधिक अनन्द करि
बोल्यो हाथ बंदि "तुम गुन के निकेत हो।"

---

१. घोड़े नहीं भेजे और नाअलबंदी का धन नहीं पहुँचाया, इन पंक्तियों से ध्वनि निकलती है कि भंगाणी के युद्ध के पश्चात राजा ने कुछ घोड़े भेजने और नाअल बहा देना माना हो जिसे उसने नहीं भेजा और गुरू जी कह रहे हैं कि फिर भी हमने कुछ नहीं कहा, तुम आनन्द से राज्य करते रहो। फ़ारसी भाषा में 'नाअल बहा' अर्थात नाअलबंदी धन उस धन को कहते हैं, जिसे कोई छोटा राजा बड़े राजा को देता है अथवा किसी विजई राजा को दिया जाता है। (लु॰ फी॰)। वह धन जो कि आक्रमणकारी को दिया जाये, ताकि वह लूटमार न करे। (गया:)।

शरणि परति हेरि रछिया को करति फेर
आप सुख संग बसो सभि सुख देत हो।
काहलूर देश जो विशेष है अशेश लखो,
आपनो पछान कै हमेश सुधि लेत हो।
अन्तरो न करैं हम सदा अनुसरै होइ,
सेवा को स्नेह धरैं क्वै, पुन न भेत हो"।

राजा ने यह बात भी मान ली कि जो संगतें बाहर से आनन्दपुर आपके दर्शन के लिए आती हैं, उन पर मेरी प्रजा में से कोई ज़बरदस्ती नहीं करेगा; उनकी रक्षा के लिए मैं ज़िम्मेदार हूँ। इससे इस बात की सम्भावना भी होती है कि सिख संगतों पर राजा की प्रजा की ओर से कुछ ज़ोर ज़बरदस्ती हो जाती थी। अब सिख शस्त्रधारी बनते जा रहे थे। इसलिये उनको आगे से बराबर का उत्तर देने वाले और आत्मरक्षा करने के योग्य हो जाने के कारण होने वाली मुठभेड़ों की खबरें राजा के पास बढ़ा-चढ़ा कर पहुँचाई जाती थीं, जिनको पहुँचाने वाले सिखों की ज़बरदस्ती में टीका करके पहुँचाया करते थे। इस समय गुरू के दरबार में राजा को बताया गया कि वास्तव में वे झड़पें संगतों के साथ होती हैं और राजा ने इस बात को माना और इसका प्रबन्ध करने का विश्वास दिलाया। इस प्रकार परस्पर मित्रता के सम्बन्ध और प्रेम के सम्बन्ध जोड़कर राजा विदा हुआ और गुरू जी सृष्टि के भार को हरने के लिये अपने कार्य में लगे रहे। दूर-दूर से प्रतिदिन जिज्ञासु, खोजी और ईश्वर प्राप्ति के इच्छुक आते। सिख संगतें दूर-दूर से आकर दर्शन करतीं। सभी कृत-कृत्य होते। कीर्तन कथा उपदेश, नाम के दान के लंगर जारी रहते, विद्या विज्ञान के सामान बढ़ते जाते और प्रत्येक प्रकार के परोपकार होते। इस प्रकार के काम-काज आनन्दपुर में अधिक से अधिक होने लगे। आनन्दपुर में यह समय बड़े उत्साह और चाव भरा था और संगतें भी उमड़-उमड़ कर दूर-दूर से आ रही थीं और घर-घर में-'धन्य गुरू गोबिन्द सिंघ दीन दुनिया के रक्षक जी' हो रहा था।

इसी समय आनन्दपुर में चार ठिकाने ऐसे बनवाकर मुकम्मल कर लिये थे कि यदि किसी समय आक्रमण हो जाये तो वे किले कोट आदि का काम दे सकें। इनके नाम थे-आनन्दगढ़, लोहगढ़, केसगढ़, फतहगढ़ जिनमें में आनन्दगढ़ बहुत मजबूत बनाया गया था।

ढाढियों की रीति, जोकि छटे गुरू जी से चली आ रही थी, उसे ज़ोर से चलाया गया। बहादुरी और युद्ध की उमंग के गीत शुरू हुए। अन्तर यह रखा गया कि ढाढी खड़े होकर वीरता के गीत गाते और रागी बैठकर कीर्तन करते। इसी तरह साहित्य के कवि और टीकाकार भी अपने पास रखे और संस्कृत के डिब्बों में बन्द पड़ी हुई विद्या के अनुवाद हिन्दी भाषा में करवाये, जिससे कि सर्वसाधारण को लाभ पहुँचे।



सूचना-समय गुज़रता गया। पहाड़ी राजाओं ने औरंगज़ेब को कर न दिया, तब अलफ खाँ उनके साथ लड़कर रुपये वसूल करने के लिये चढ़कर आ गया। इस युद्ध का हाल आगामी प्रसंग में है:-

१७ नादौण का युद्ध

औरंगज़ेब के समय जम्मू की राजसी हवेली में विचार हो रहा है:–

मियाँ खाँ–देखो भाई! हमारे शाह सुलतान को दक्षिण की लड़ाई ने बहुत उलझन में डाल दिया है, अनेक वर्षों से युद्ध जारी है, ख़जाने समाप्त होते जा रहे हैं, पर युद्ध तो समाप्त होता ही नहीं। इधर कर की उगाही नहीं हो रही, खिराज आता नहीं है, कैसे किया जाये जिस से बादशाह का कर की उगाही का हुकम भी पूरा हो जाये और रक्त से हाथ भी न रंगने पड़ें।

अलफ खाँ–जनाबे आली! बादाम को तोड़े बिना उसमें से गिरी नहीं निकलती और बिना दबाए तिलों में से तेल नहीं निकलता। ये पत्थर की पूजा करने वाले, पत्थर की सी बुद्धि वाले पहाड़िये दबाए बिना हाथ से कुछ नहीं देंगे। ये समझकर बैठे हैं कि हज़रत तो दक्षिण की ओर उलझ रहे हैं, अब राज्य में तबदीली हो जायेगी, पर मेरे विचारानुसार हज़रत की शक्ति बढ़ी है।

मियाँ खाँ–शक्ति बढ़ेगी अथवा कम होगी, यह तो समय ही बतायेगा, क्या अच्छा होता कि पातशाह दक्षिण के राजाओं, नवाबों से मेलजोल रखते और उनकी फूट के पीछे-पीछे रहते और इधर अपनी सलतनत की शक्ति को–जो इस समय दोपहर के शिखर पर है, उसे खर्च करने के स्थान पर और अधिक पक्का करते। कई बार शक्ति के बावजूद भी गट्ठर के लम्बा-चौड़ा बढ़ जाने पर सम्भाल करना कठिन हो जाता है, पर खैर, इस तरह के सोच-विचार के लिये पातशाह सलामत स्वयं हैं–उनके मन्त्री बुद्धिमान हैं; हमें तो आज्ञा हुई है कि हम पहाड़ी राजाओं से रुपया उगाह कर भेजें। अत: अब बताइए क्या किया जाये? यदि राजाओं के साथ युद्ध खड़ा कर दें तो काफी खर्च होगा और उगाही का पैसा कम हो जायेगा और मनुष्यों की हानि अलग होगी। कोई ऐसा ढंग लगाया जाये जिससे बिना युद्ध किये सफलता मिले।

अलफ खाँ–देखिये न, सुलह के रास्ते तो प्रयोग करके देख लिये हैं, वकील को भी भेजा है, दर्द-दिलासे के पत्र भी भेजे हैं, पातशाही का रोब भी दिखाया है, मगर किसी ने एक फूटी कौड़ी तक नहीं भेजी। सभी कहते हैं–अकाल पड़ रहा है, मालिया नहीं आया, कहाँ से दें, माफ कर दीजिये, थोड़ा ले लीजिए, किश्तें कर लीजिए–ये तो बहाने हैं, जो कि मुँह तोड़ने से ही टूटेंगे।

मिया खाँ–यह करो, कुछ माफी, कुछ नीति और कुछ रोब–सबको मिलाकर काम निकालो। मैं अभी यहीं पर जम्मू में ही ठहरता हूँ और इस ओर का पता रखता हूँ। तुम कांगड़े से बिलासपुर तक जाओ और सब ओर फिरकर यत्न करो। थोड़ी-सी सेना भी साथ ले जाओ, उनमें आपसी फूट डाल दो, कुछ को अपने साथ मिलाकर अपना बल बढ़ाओ।

फूट पड़ जाने से वे अपने आप दुर्बल हो जायेंगे, फिर तुम्हारे बढ़े हुये बल के रोब में आकर अपने आप दे जायेंगे।

अलफ खाँ–सभी राजा लोहे का थन बने बैठे हैं। लड़ाई ही करनी पड़ेगी। अच्छा मैं चलता हूँ।

मियाँ खाँ–तुमने ठीक ही कहा है, पर इस देश के निवासियों और राजाओं के ऐके की गहराई अधिक नहीं होती। यदि कभी ये लोग आपस में मिलकर रहने वाले होते, तो इनके देश में पठान अथवा मुग़ल पैर तक न रख पाते। इनमें बहुत खुदगर्ज़ी है। इनकी दृष्टि कौम अथवा देश की विशालता पर नहीं उठती, इनकी दृष्टि केवल 'मैं' के दायरे के इर्दगिर्द घूमती है और इनकी सोच की उड़ान आज की शाम से लम्बी नहीं होती।

अलफ खाँ–विद्वान तो इनमें हैं, चतुर लोग भी हैं, धनवान भी हैं, राजा भी सैकड़ों हैं, पर जो कुछ आपने कहा है, वह ठीक है। इनकी बुद्धि की तीव्रता को, लगता है कि खुदगर्ज़ी मैला कर देती है।

मियाँ खाँ–चाहे वैसे ही हँसी की बात समझो, पर मेरा विचार है कि यदि इनके मन में एक खुदा का निवास होता तो इनकी दृष्टि विशाल हो जाती। एक-एक मूर्ति पर दृष्टि लगाये रखने से दृष्टि का स्वभाव अकेलेपन वाला और छोटे मण्डलों तक ही उड़ान करने वाला हो गया है। फिर इनके जितने व्यक्ति उतने ही इनके ठाकुर, सबका एक ठाकुर भी नहीं है। किसी एक लक्ष्य पर सभी नज़रें नहीं लगतीं, इसीलिये इनमें फूट पड़ी रहती है और ये दुर्बल रहते हैं।

अलफ खाँ–ठीक है, पर कुछ स्वभाव ही इनका खुदगर्ज़ी वाला है। पर माफ करना इनमें से एक बड़ी बला उठ रही है, सीक लोग (सिख लोग)।

मिया खाँ–हाँ ठीक है, वे बड़े भक्त लोग हैं, मगर अब वे शमशीर पकड़ कर खड़े हो गये हैं। उनमें एका और बलिदान कमाल के हैं। पर आशा है कि हज़रत सलामत दक्षिण से फारिग़ होकर–अल्लाह जल्दी से जल्दी फतह प्रदान करें–इन्हें खत्म कर देंगे। सतिनामियों[१] की भाँति दबा लेंगे, पर एक थोड़ी-सी कठिनाई है। ये लोग दक्षिण से बलख़ बुख़ारे तक फैले हुए हैं और लाखों ही हैं। कितने समेटे जा सकेंगे। सम्भव है कि इन में से थोड़े लोगों को सख्त मार मारने से बाकी लोग भी दब जायें।

अलफ खाँ–मैंने इनके एक दो कारनामे देखे हैं, उनसे कुछ अधिक भय लगता है।

मिया खाँ–ख़ैर इस समय तो इनके साथ कोई मुठभेड़ नहीं है। नीति यह है कि हम इनकी और पहाड़ी राजाओं की आपस में बनने न दें और इनके हाथों से ही इनकी पैदा हो रही पौद को ख़त्म करवा दें, हमें खुद तो कुछ करना ही नहीं पड़ेगा। यदि बैरी के हाथ ही उसका अपना माथा फोड़ देने में समर्थ हों तो हमें क्या ज़रूरत है कि बन्दूक का कुन्दा आगे को करें। हज़रत सलामत की अभी यही चाल है। अब तुम तैयारी करो, गिने चुने जवान साथ ले जाओ और तीर की सी तेज़ी से काँगड़े पहुँचकर कटोचिये[२] को दबा लो।

१. एक सम्प्रदाय का नाम है।

२. कांगड़े वाले राजा को।

बस फिर वहाँ से इन दो-चार राजाओं को साथ मिलाकर आगे को चल दो। इस राजा के साथ सख्ती का दिखावा करके आगे शीघ्र ही नरम हो जाना, रिआयत कर देना, फिर राजा अपने भाईयों को छोड़कर तुम्हारे साथ हो जायेगा।

अलफ खाँ-बहुत अच्छा।

: २ :

काँगड़े के राजभवन में रात के समय मन्त्री आया है:-

मन्त्री-चोबदार! क्या महाराज सो गए हैं अथवा जाग रहे हैं?

चोबदार (करबद्ध होकर और सीस झुकाकर)-जी सो गए हैं।

मन्त्री-महाराज को जगाओ।

चोबदार (झिजककर)-मैं मारा जाऊँगा।

मन्त्री-डरो मत, मैं तुम्हें बचाऊँगा, एक अति आवश्यक काम है।

चोबदार भारे-भारे कदमों से ड्योढ़ी के अन्दर चला गया। कुछ समय के पश्चात लौट आया और आकर कहने लगा-हजूर जाग उठे हैं, आप दीवानखाने में चलो, वहाँ पर प्रतीक्षा करने की महाराज की आज्ञा है।

मन्त्री अन्दर जाकर बैठ गया। थोड़े समय के पश्चात महाराज आए।

राजा-इस समय नींद खराब कर दी है, कौन सी मुसीबत आ पड़ी है?

मन्त्री (सीस झुकाकर)-आप क्षमा करें सरकार, मैं आपको कदाचित कष्ट न देता, पर एकाएक एक आपत्ति आ पड़ी है और सवेरे तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती।

राजा (चौंककर)--कुशलता तो है?

मन्त्री-वही खिराज (कर) भरने की विपत्ति है। एक गुप्तचर आया है और उसने बताया है कि मियाँ खाँ आप तो जम्मू में ठहर गया है, उस इलाके की उगाही करेगा और अलफ खाँ को इधर भेजा है कि वह हम से कर की उगाही करे।

राजा-फिर कहाँ पर जम्मू और कहाँ कांगड़ा, उड़कर तो नहीं आ जाएगा?

मन्त्री-राम न करे, कल को सूर्योदय होते ही अथवा दो घड़ी दिन चढ़े तक वह हमारी सफील के बाहर गोले बरसा रहा होगा, यही तो उन्होंने चालाकी की बात की है कि चुपचाप कूच करके आ गया है, जिससे हमें सलाह और तैयारी करने का समय न मिले और अचानक आकर छापा मार दे।

राजा (घबराकर)-क्या गुप्तचर सच्चा है?

मन्त्री-मैंने पता कर लिया है, वह सच्चा है।

राजा-बख्शी को बुलाओ।

मन्त्री-मैं उन्हें साथ लेकर आया हूँ, बाहर खड़े हैं, यदि आपने मुझसे कोई बात अकेले में करनी है तो कर लीजिए, अन्यथा उन्हें बुलवा लूँ।

राजा-बुलवा लो, और दीवान साहब?

मन्त्री-घर से एक व्यक्ति को भेजकर आया था, वह भी अब तक पहुँच गया होगा, मैं पता करता हूँ।

(बाहर जाकर पहरे पर खड़ी एक दासी से)

जा बिटिया, बाहर वाले चोबदार से कह दे कि बख़्शी और दीवान साहब को दीवान खाने में भेज दे।

दासी सिर झुकाकर चली गई और दोनों अहलकार महाराज के पास आ पहुँचे; और सिर झुका कर बैठ गए।

राजा–क्यों बख़्शी साहब! यह अचानक बला कैसे आ पड़ी है?

बख़्शी–हजूर! जब आपने जम्मू को उत्तर भेजा था, तब से ही वहाँ के रास्ते पर गुप्तचर छोड़ रखे थे। आज एक घोड़सवार भागा-भागा आया है कि मियाँ खाँ और अलफ खाँ ने अपनी तैयारी का पता नहीं चलने दिया था। बड़े-बड़े अहुदेदारों को यही पता था कि सारी सेना भदरवा को चली है कि अचानक ही अलफ खाँ इस ओर को चल पड़ा है। सेना को भी इस बात का पता नहीं था कि किधर को जाना है। कठूहे पठानकोट पर पहले धावा करना है अथवा कांगड़े पर। पर गुप्तचर ने प्राणों की बाजी लगाकर, अपने सारे करतब लगाकर पता निकाल ही लिया है कि पहले काँगड़े पर धावा बोला जायेगा और कल सवेरे पहुँच जाने की आशा है।

राजा–शाबाश! पर अब समय तंगी का है। हम तो पहले से तैयार ही नहीं थे, विचार कि मियाँ खाँ का दूत घूस खाकर गया है, वह हम पर आक्रमण नहीं करने देगा, यदि होगा भी तो वही दूत हमें झटपट पता बता देगा, पर उसने खाया भी हमसे और धोका भी हम से ही किया।

बख़्शी–तुर्क पठान की सौगन्ध का राजपूत के साथ क्या वास्ता?

दीवान (ठण्डा स्वांस भरकर)–दैव!

राजा–फिर अब क्या सलाह है?

बख़्शी–यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं अभी जाकर सेना तैयार करता हूँ और एक दिन चढ़ने से पहले-पहले किला कोट सभी नाके, मुहाने, पहरे के अधीन करवा देता हूँ। तोपें, बन्दूकें, तीरों के सामान ठीक हो जायें और कुछ सेना आगे से जाकर रोक डाले। इधर से दूत अभी से ही राजाओं की ओर भेजे जायें कि सभी आ जायें। मैं आगे बढ़कर युद्ध नहीं करूँगा, पर अलफ खाँ का दूर ही ठिकाना कराकर सुलह की बात चलाऊँगा, इन बातों में दो-चार दिन व्यतीत हो जायेंगे। यों सबको मिलने का समय मिल जायेगा। जब अलफ खाँ देखेगा कि सारे राजा फौजों सहित इकट्ठे हो गये हैं और युद्ध का सारा सामान तैयार है, तो हमारी बातों को मान जायेगा; ख़िराज की किश्तें बँध जायेंगी, कुछ छूट भी हो जायेगी और इज्जत बनी रहेगी। यदि वह न माना और लड़ाई छिड़ गई तो फिर हम उसे तो पीट ही लेंगे। पहाड़ों का मामला है, हमारा इलाका है, वह परदेसी है। औरंगज़ेब भी अभी दक्षिण में लगा हुआ है यहाँ पर और बड़े युद्ध को छेड़ना नहीं चाहेगा; दबाव, रोब से काम निकालना ही ठीक समझेगा। यदि उसका सरदार यहाँ पर कोई लम्बा मामला छेड़कर बैठ जायेगा तो उस पर वह प्रसन्न नहीं होगा; इस बात को अलफ खाँ भी समझता होगा।

मन्त्री–आप ने ठीक कहा है। आप की बात विचार योग्य है।

दीवान–पर इसका अंत भी सोचो। यदि अलफ खाँ को मार भी लिया तो फिर क्या, 'बे' खाँ आ जायेगा, उसे भी मार लिया तो फिर 'ते' खाँ आ जायेगा। टिड्डीदल और 'तुर्कों की सीहरफी'[1] इनका कोई अंत नहीं है। फिर वह पातशाह, हम रजवाड़े, क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा, कब तक रोकेंगे, अंत को तो हमारी ही हार होगी, फिर मिन्नतें करेंगे, डोल देंगे, चट्टियाँ भरेंगे। इसलिये हम पहले से ही क्यों न झगड़े को खत्म करने वाली सुखैन और निकट ही समाप्त हो जाने वाली बात सोचें।

राजा–ठीक है, शूरवीरता तो हमारा धर्म है, पर नीति भी तो कोई वस्तु है न!

मन्त्री–बख़्शी जी वाली बात तो मेरे मन को लगती है, पर उसे निभाने के लिये बड़ी दानाई और साहस की जरूरत है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हमें लड़ना नहीं है, केवल रोब-दाब ही दिखाना है, फिर जहाँ पर झगड़ा समाप्त हो, वहाँ पर ही समाप्त कर देना है।

बख़्शी–ठीक है, जान बूझकर तो नहीं लड़ना पर यदि लड़ना पड़ ही जाये तो फिर चूड़ियाँ पहनकर नहीं बैठे रहना हम किसी ही धारा[2] के राजा होंगे, सेना होगी, फिर ऐके का भी तो कुछ मूल्य होता है न?

राजा–ठीक है, पर एका है नहीं न, कहलूरिये के मन में हमारे लिये शत्रुता है, न जाने वह क्या करेगा।

बख़्शी–फिर तो हमें समय निकालना चाहिये, दो चार, दस दिन, यदि कहलूरिया न आया तो जो कुछ असफ खाँ कहेगा हम मान लेंगे, एक बार यह भी देखें कि हम इकट्ठे हो सकते हैं अथवा नहीं?

दीवान–राजा जी को भीमचन्द की शत्रुता खटक रही है, सो क्यों न इस समय बदला ले लिया जाये?

राजा–यों ठीक है।

बख़्शी–समय जा रहा है; हम तैयारी तो शुरू करें। कहीं ऐसा न हो कि अलफ खाँ सीधा ही हमारे नगर कोट में सेना लेकर आ जाये; जैसे कि बिल्ली के पीछे उसके बच्चे आ निकलते हैं। अभी तो तीन बातें करो–अपनी तैयारी, उसके आगे बाधा और उसकी ओर दूत भेज कर समय निकालने की और (इधर) राजाओं को बुलाने की।

राजा–यह तो ठीक है, पर कोई तरीका निकालो की साँप और शत्रु आपस में ही उलझ पड़ें और हम दोनों से बच जायें। यदि दोनों मरे तो भी सुख और यदि एक मरे तो भी सुख। अलफ खाँ और भीमचन्द कहलूर पति की टक्कर हो जाये और इनमें से जो कोई भी मरे सो मरे और हम बच जायें।

दीवान–ठीक है।

मन्त्री (दांत पीसकर)–है तो ठीक, परले दर्जे की नीति है, पर विचार है⋯।

राजा–कैसा?

---

१. फारसी वर्णमाला तीस वर्णों की है। सी=तीस।

२. पहाड़ों को, पानी की धारा (प्रवाह) ही कुदरती सीमाएं प्रदान करती है। इस तरह बड़े पहाड़ की श्रेणी को 'धार' कहते हैं।

मन्त्री–अलफ खाँ भी शत्रु है, भीमा भी शत्रु है, वह तो धुर से शत्रु है, और यह नाराज़ हो गया भाई है। नाराज़ हो गये भाई को शुरू के शत्रु के हाथों मरवा देना धर्म के अनुकूल भी नहीं है और नीति भी…।

बख़्शी–महाराज जी! इस समय एक संकट पर विचार हो रहा है, आप मालिक हैं, हम चाकर हैं, पर प्राण न्योछावर करने वाले चाकर हैं। जहाँ पर आपका पसीना बहेगा हम वहाँ पर अपना रक्त बहा देंगे, इसलिये क्षमा करना! सच कहना इस समय धर्म है। भीमा के साथ तो हमारे घर की लड़ाई है, यदि यह लड़ाई घर में ही खत्म हो जाये तो ठीक है, बिरादरी है न। अलफ खाँ सब का वैरी है, इसके हाथों नाराज़ हो रहे घर के सज्जनों को मरवा देना वीरता नहीं है। खुलदिली यह है कि अब तो घर के लोगों के साथ सभी भेदों को भूल जायें, इकट्ठे हो जायें, अलफ खाँ से जितना रुपया बच सके बचा लिया जाये और बिना जरूरत के लड़ें भी नहीं। उससे पीछा छुड़ाकर फिर अपने झगड़े अपने आप निपटा लेंगे। आपस में इकट्ठे होने की यही नीति है। गुरू गद्दी का गद्दी नशीन जो गुरू गोबिन्द सिंघ है–जिसने अब तलवार पकड़ ली है, वह भी आपस में यही एका और मेल ही सिखला रहा है। देखिये न हम तो राजा हैं और वह फकीर है, फकीर को सपना आ गया है कि उसको इस ज़ुल्म के राज्य का अंत कर देना है। इसलिये हम राजाओं को भी कुछ सोचना चाहिये।

दीवान (हँसकर)–हाँ जी, फूँक मारकर किले उड़ा देगा क्या?

बख़्शी–मैं भी हैरान हूँ, मेरी तो समझ काम ही नहीं करती, पर बलिहारी उसके साहस की।

मन्त्री–केवल साहस? सामान भी तो चाहिये।

बख़्शी–युद्ध के सामान तो तैयार कर ही रहा है न, कोई जादू-टोने तो नहीं कर रहा; देख लीजिये न भंगाणी में राजा फतहचन्द ने, सामान वाले ने, और बारात में गये हुये भीमचन्द ने, तथा अन्य सभी राजाओं ने जोर लगा ही लिया था न। गुरू के पाँच सौ पठान नौकर भी राजाओं ने उससे अलग करवा दिये थे, फिर भी उस फूँक मारने वाले फ़कीर ने राजपूतों और पठानों की क्या दशा की थी? उसकी नीति कमाल की थी, उसकी युद्ध-विद्या के करतब भी कमाल भरे थे और उसके युद्ध का ढंग भी निराला ही था। उसके शूरवीर प्राणों को तुच्छ समझकर जूझे थे। अतः देखिये उसकी जीत हुई और सभी राजा लज्जित होकर आये थे, पता है न कितने ही राजाओं की सतियों के मठ वहाँ पर बने हैं?[१]

राजा–वहाँ पर कुछ करामात का खेल भी हे। साथ यह भी बात है कि यदि वह जीत जाये तो उसकी बड़ाई और यदि हार जाये तो फ़कीर का क्या गया? तूंबा चिमटा सदैव सलामत। हम हैं राजा, पीढ़ियों के राज्यों को कौन खतरे में डाले? हमारी जोखिम बड़ी है।

बख़्शी–आपने सच कहा है, यही तो अब विचार कर रहे हैं कि राज्य सदैव सलामत, सदैव कायम रहे। यदि आज्ञा हो तो एक विनय कर दूँ। श्री गुरू गोबिन्द सिंघ तूंबें, चिमटे वाला साधु नहीं है, मैं एक बार गुप्तचार बनकर पाऊँटे में जाकर सब कुछ देख आया हूँ, वह कोई बहुत उच्च व्यक्ति है।

१. ये मठ अब तक भंगाणी में हैं।

मन्त्री–पर इस समय तो हमें अपनी पड़ी हुई है, किसी नतीजे पर आओ।

बख़्शी–तैयारी तो झटपट करें, पहले यह बात तो तय कर लें, फिर अलफ खाँ से हेर-फेर करें और उसे तनिक दूर डेरा करवायें। फिर युद्ध अथवा सुलह? यह विचार कल कर लें, बिझड़वालिये को बुलवा लें, एक-एक और दो ग्यारह हो जायेंगे। यदि कहलूरिया साथ मिल जाये तो गुरू को भी साथ मिला लें।

राजा–ठीक है, पर भीमचन्द को तो मारने का समय अब ही है, उसकी अकड़ टूट जाये, इस समय को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये, सबको इस आवश्यक बात पर विचार करना होगा।

यों मन्त्रणा करके सभी विदा हो गये। मेल वाली बात बीच में ही रही। बख़्शी ने जाकर तैयारी शुरू कर दी। जितनी भी सेना थी उसे बाँटकर जगह-जगह पर लग जाने के आदेश दे दिये गये: मन्त्री और दीवान आदि फिर विचार विमर्श के लिए बैठ गए।

: ३ :

कांगड़े से थोड़ी दूरी पर अलफ खाँ का डेरा लगा हुआ है और उसके तंबू में कटोचिया मन्त्री आया है।

अलफ खाँ–मन्त्री जी! आइए, कहिए मिज़ाज तो अच्छा है?

मन्त्री (कटोचिया)–आपकी कृपा है।

अलफ खाँ–बिराजिए, कहिए राजा साहब अच्छे हैं न?

मन्त्री–ईश्वर की रक्षा है।

अलफ खाँ–शुक्र है।

मन्त्री–आप अच्छे हैं, बाल-बच्चे अच्छे हैं, सब कुशलता है?

अलफ खाँ–अल्लाह का शुक्र है, सब ख़ैरीयत है।

मन्त्री–आपको रसद, पानी, घास-चारा सब कुछ ठीक प्रकार से पहुँच गया है न कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

अलफ खाँ–नहीं जी, आपके अहलकार बहुत अच्छे हैं, सब कुछ ठीक है।

मन्त्री साहब! अब कहिए, क्या बात है? कल आपका अहलकार कहकर गया था कि हमको युद्ध नहीं करना और मित्रता का व्यवहार करना है, आशा है आपने फैसला कर लिया होगा, हज़रत सलामत चाहते हैं कि सम्बन्धों के बिगाड़े बिना ही सभी मामले निपट जायें।

मन्त्री–आं हज़रत और आपकी कृपा है, हमने यही विचार पक्का करके आपका मित्रता-भरा स्वागत किया है। अब आप भी कुछ उसी तरह का व्यवहार करेंगे तो क़ारज सिद्ध होगा। हमको जो कुछ देना है सो तो देना ही है, हमें देने से कोई इन्कार नहीं है, परन्तु बात इतनी है कि अकाल पड़ रहा है, मालिये की उगाही नहीं हुई है, कुछ कम-बढ़ती लेकर प्रसन्न हो जाओ।

अलफ खाँ–जो कुछ आपको देना है, मैं उससे अधिक कुछ नहीं माँगता।

मन्त्री–हम उसमें से भी छूट चाहते हैं।

अलफ खाँ–यह बात कठिन है। आं हज़रत शायद न मानें! मैं शर्तों को कैसे तोड़ सकता हूँ?

मन्त्री–समय की हालत को विचारकर सहानुभूति का व्यवहार कर लेने से शर्तें नहीं टूटतीं; फिर सब कुछ तुम्हारे बस में ही है।

अलफ खाँ–इस तरह यदि मैं छूट करने लगूँ तो फिर सारे पहाड़ी इलाके में से क्या लेकर जाऊँगा, और स्वामी को क्या मुँह दिखाऊँगा?

मन्त्री–आप हमसे तो सज्जनता का व्यवहार करें, हम आपसे मित्र के रूप में आकर मिले हैं, जो आपसे आगे अकड़ करे उससे आप सारा लें, दुगुना लें, साथ जुर्माना भी लें।

अलफ खाँ–मन्त्री साहब! स्पष्ट बात तो एक है, कोई कदम आप भी तो आगे बढ़ो, फिर मैं भी कुछ छूट कर दूँ। मान लो कि मैं तुम्हारी बात को मान लेता हूँ, जितना कि मेरे अधिकार में है, तो फिर तुम क्या करोगे?

मन्त्री–आपकी सहायता, हर तरह की सहायता।

अलफ खाँ (सोचकर)–......उदाहरण के तौर पर......।

मन्त्री–उदाहरण के तौर पर आप हमसे आधे पर मान जाते हैं और बाकी की छूट कर देते हैं और फिर आप आगे बढ़ते हैं और हमारी सहायता की आवश्यकता होती है तो हम आपकी ओर से आपकी आज्ञा को न मानने वाले से लड़ाई करेंगे।

अलफ खाँ–शाबाश! बहुत खुशी की बात है, पर कुछ और सहायता की आवश्यकता भी है।

मन्त्री–किस तरह की सहायता?

अलफ खाँ–कोई तदबीर बताइए जिससे शीघ्रता से काम बन जाये, तुम्हारी मित्रता का कुछ वास्तविक लाभ निकले।

मन्त्री–हाँ, यह रहस्य भी बता देंगे। हाँ एक बार और है कि बिझड़वालिया दयाल चन्द राजा भी हमारे साथ है, दोनों राजा आपके मददगार होंगे, पर आपको दोनों से आधा भाग लेकर फैसला करना होगा।

अलफ खाँ–बहुत अच्छा।

मन्त्री–फिर, हुआ कोई फैसला?

अलफ खाँ–हो गया।

मन्त्री–वचन दीजिये।

अलफ खाँ (हाथ बढ़ाकर)–अल्लाह के नाम पर वचन दिया ओर इकरार किया कि मैं आधे खिराज (कर) से दोनों राजाओं को छोड़ दूँगा और इसके बदले में दोनों राजाओं को पहाड़ी राजाओं के साथ निपटने के लिये मेरी सहायता करनी होगी और जल्दी से काम खत्म करने का रहस्य बताना होगा और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध में शमिल होना होगा।

मन्त्री (हाथ दबाकर)–मैं वायदा करता हूँ कि कर की उगाही का सुखैन रास्ता

बताऊँगा। रसद, रुपये, सेना, युद्ध का सामान, हर तरह से मेरे दोनों राजा आपको मामला उगाह कर देने में सहायता करेंगे।

मन्त्री जी तो नमस्कार करके चले गये और फिर वापिस आये। रुपयों की थैलियाँ आगे रखीं और फैसले की रसीद लिखी जाने लगी। उस समय अलफ खाँ ने कहा: वह तदबीर?

मन्त्री–आप अलग चलिये।

दोनों तंबू के अन्दर वाले भाग में चले गये।

अलफ खाँ–कहिये?

मन्त्री–हममें से सबसे बड़ा राजा भीमचन्द कहलूरिया है, आप केवल उसी एक से माँगिये। यदि पूरा दे दे तो ठीक फिर कोई भी दूसरा राजा नहीं अड़ेगा, सभी दे देंगे; और यदि वह अड़ जाये तो उसके साथ लड़ाई की जाये; हमारी, बिझड़वालिये की और तुम्हारी सेना उसे जीतकर वसूल कर लेगी। इससे दूसरे सारे भयभीत होकर अपने आप दे देंगे, किसी और के साथ युद्ध नहीं करना पड़ेगा।

अलफ खाँ–बहुत अच्छा, मन्त्री जी आप सलतनत के दिली शुभचिन्तक हैं, मैं आपका बहुत आभारी हूँ।

अन्दर से चलकर तंबू के बाहर वाले दालान में आ गए। रसीद पता लिखा गया हस्ताक्षर हो गए। मन्त्री साहब फैसला करके अपनी रियासत–एक बूँद रक्त की दिए बिना ही बचा लेने के चाव में विदा हो गए, पीछे अलफ खाँ ने अपने मातहत से बात की: आपने हिन्दियों की अल्प दृष्टि देख ली है न। यही राज्य–रहस्य है इन लोगों के दुखी रहने का और हमारी विजयी होने का। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी–अपनी गर्ज़ होती है, अपनी खुदगर्ज़ी के लिए भाई–भाई का गला काटता है; खुदा प्रस्तों पर अल्लाह की कृपा है, इन मूर्ति–पूजकों पर उसकी नाराज़गी है। उसी नाराज़गी का यह रूप है: खुदगर्ज़ी और अपने लोगों में बेगानापन।–(आकाश की ओर देखकर) अल्लाह तेरी रहमत!

अहलकार–अलहमदुलिल्ला (खुदा की महमा है) शुक्र है! कठिनाई दूर हुई, शैतान इन काफिरों को और गुमराह करे।

: ४ :

बिलासपुर के राजभवन में राजा भीमचन्द बैठा रियासत का काम कर रहा था कि चोबदार आया:–

सरकार! युग–युग तक राज्य बना रहे: अलफ खाँ का दूत आया है और इस समय मुलाकात करना चाहता है।

राजा (मन्त्री की ओर देखकर)–जाओ और बाहर वाले दीवानखाने में जाकर उसे मिलो, उत्तर दो और सारी बातचीत समझा कर आओ।

मन्त्री चला गया और राजा ऊपर से तो काम–काज में लगा रहा और अन्दर से सोच के आकाश में उड़ता रहा। शीघ्रता से कामकाज खत्म करके अहलकारों को विदा किया, तब मन्त्री आ गया।

राजा—आईए मन्त्री! क्या सन्देश लाए हो?

मन्त्री—हम हिन्दुओं का बेड़ा ग़र्क, कटोचिया और बिझड़वालिया अलफ खाँ के साथ मिल गए हैं, जो हम सबने पक्की मन्त्रणा की थी उसके साथ उन्होंने द्रोह किया है। सेनाएँ लेकर अलफ खाँ के साथ नादौण में आकर टिके हैं। मुझे लगता है कि अलफ खां को उन्होंने ही पट्टी पढ़ाई है कि पहले कहलूरपति पर आक्रमण करो, उसकी मार लेने से सारे बिना लड़ाई किए शरण में आ जायेंगे। मैंने उसकी बातों और तौर-तरीके से यह समझा है। उनका सन्देश यह है कि तीन वर्षों का खिराज (कर) दे दो और स्वयं लेकर आओ, सुलह, सफाई और मित्रता से, नहीं तो युद्ध करो, मैं देश को उजाड़कर लूट-लाटकर सारा धन लेकर जाऊँगा।

भीमचन्द (दाँत पीसकर)—सत्यानाश कटोच का, घर फूटा और दहसिर मारा। अच्छा, यदि पहले देना भी था तो अब नहीं देंगे, युद्ध करेंगे और अपने नेज़े से कटोचिये के पेट को चाक करेंगे, फिर हमारे कलेजे में शान्ति आयेगी। हे मन्त्री! सभी भाइयों की ओर दूतों को भगाकर भेज दो, देखें कि कौन-कौन हमारे साथ है।

मन्त्री—आशा है कि उन दो-तीन के इलावा सभी हमारे साथ होंगे। दूतों को अभी से ही भेजता हूँ। पर·····।

राजा (अधीन होकर)—पर क्या? मुझे तो अलफ खाँ की शरण नहीं लेनी। अलफ खाँ को मेरी तीरंदाज़ी का पता नहीं है? मुझे तो कटोच से अवश्य ही बदला लेना है। मुझे पता है कि औरंगज़ेब दक्षिण में फँस रहा है, हमारे साथ बड़ा युद्ध नहीं छेड़ सकता, चालें चलकर ही हमारी जड़ों में तेल डाल रहा है।

मन्त्री—सच्च है, आप जितना कोप करें, उचित है। पर दूत को उत्तर देने से पहले अपने घर का हिसाब-किताब तो लगा लें। उसे दो-चार दिनों तक रोककर रखा जाए। इतने में राजाओं का पता चल जाएगा और समय भी मिल जाएगा·····।

राजा (अधीर होकर)—किस बात का पता? जल्दी करो, देर क्यों कर रहे हो?

मन्त्री—गुस्ताखी के लिए क्षमा कीजिए! यदि किसी तरह गुरू जी से कुमुक प्राप्त हो जाए, तो मेरे विचारानुसार अवश्य ही हमारी विजय होगी, पर यह तो तब ही हो सकता है जबकि यह मन्त्रणा आपको पसन्द आए और उधर गुरू जी भी इस बात को मान लें। मैंने इसलिए कहा था कि समय मिल जाएगा।

राजा (सोच में पकड़कर)—गुरू जी की ओर से···उनसे···सहायता माँगना···?

मन्त्री—क्यों कोई झुकने की बात तो नहीं है। हमारा वैर मिट चुका है, सुलह हो चुकी है। अब परस्पर सम्बन्ध मेल-मुलाकात का है, फिर कठिनाई के समय यदि मित्रों से, सज्जनों से सहायता न ली जाय तो किस समय ली जाए? मित्र से सहायता माँगना कोई बुरी बात नहीं। चाहे इससे पहले हमारे सम्बन्ध काफी बिगड़े रहे हैं, पर उनके हृदय में वैर नहीं है।

राजा—हाँ···ठीक है, उनकी सेना में बलकार और काफी जोश है···यह ठीक है, दोस्ती है। है भी वचन के पूरे। प्रजाप्रिय भी हैं, पर···मान लेंगे? आप चलेंगे?

मन्त्री–यह बात मुझ पर छोड़ दीजिए, मुझे वहां पर भेजिए। उनका तो लक्ष्य ही यही है कि झगड़े दूर हों, जुल्म हटे, धर्म में से धक्का दूर हो। हिन्दी लोग ही हिन्द को सँभालें, प्रजा के कष्ट दूर हों। आपको याद होगा कि यह सन्देश उनका सबको मिला है।

राजा–ठीक है, फिर तुम गुप्त रूप से चले जाओ और जल्दी वापिस आ जाओ। दूत के आसपास गुप्त पहरे और गुप्तचर रखो, जिससे वह कोई भेद न ले सके और उसका मन भी लगा रहे। तुम्हारे आने पर उसे उत्तर देंगे। मेरी ओर से गुरू जी के आगे सनम्र विनय करना, संत के आगे और गर्ज़ पड़ने पर झुकना बुरी बात नहीं है।

मन्त्री–बहुत अच्छा, फिर आज्ञा है, मैं जाऊँ?

राजा–हाँ, जाओ। मगर पता न चले। बख़्शी को भेजते जाना, अभी आकर हम से मिले, ताकि युद्ध की गुप्त रूप से तैयारी कर लें।

मन्त्री–यदि हो सका तो पंमे और राजा पृथ्वीचन्द को साथ लेता चलूँगा, उनका मान बढ़ेगा।

राजा (सोचकर)–अच्छा है, पर देखना कहीं बात बाहर न निकल जाए; ख़बरदार रहना।

नमस्कार करके और 'बहुत अच्छा' कहकर मन्त्री विदा हो गया।

: ५ :

श्री कलग़ीधर जी अपने दर अंवाले दीवानखाने में विराज रहे थे कि दीवान जी ने आकर बताया कि "बिलासपुर से समाचार मिला है कि मन्त्री परमानन्द आपकी सेवा में आ रहा है। गुप्तचर को इस बात का भी पता चला है कि पंमा पुरोहित और राजा पृथ्वीचन्द[1] भी उसके साथ हैं। वास्तव में इस बात का पता पंमे के घर से किसी तरह मिल गया था और यह बात हम तक आ पहुँची है।"

गुरू जी–कुछ काम का पता चला है?

दीवान–जी हाँ, श्री जी! पहाड़ी राजाओं ने जो मियाँ खाँ अथवा उसके भेजे हुए दूत को खिराज और मुँह माँगा धन न देने का निश्चय करके एका किया था और यह भी सोचा था कि या तो वह इनके एका को देखकर धन लेगा ही नहीं अथवा कुछ छूट हो जाएगी, वह एका अब टूट गया है। काँगड़े के राजा ने और बिझड़वालिये राजा दयालचन्द ने थोड़ा-बहुत धन देकर अलफ खाँ को प्रसन्न कर लिया है और उसके सहायक बनकर नादौण मे आकर टिके हैं और भीमचन्द को चुनौती दी है कि या तो युद्ध करे अन्यथा जो कुछ हम माँगते हैं, वह हमें दे दे। अब चाल यह चली जा रही है कि यदि यह झुक गया तो शेष सभी अपने आप ही झुक जाएँगे और यदि न झुका तो इस एक को मार लेने से बाकी सबके सब झुक जायेंगे। दो राजाओं के अलफ खाँ के साथ मिल जाने से उनकी शक्ति बढ़ गई है और इनकी कम हो गई है। लगता है कि भीमचन्द का सन्देश पहुँच चुका है और उसका स्वभाव गुस्से वाला तो है ही, वह तीरंदाज़ भी है। उसकी इच्छा युद्ध करने की है और आपसे सहायता के लिए तीनों पहाड़िये आ रहे हैं। अतः उनके आने से पहले विचार कर लीजिए कि क्या करना है?

१. तवारीख खालसा।

श्री गुरू जी थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद बोले: "कटोचिए और बिझड़िए ने धर्म हारा है, एका तोड़ा है, अत्याचारियों के साथ जाकर मिल गए हैं, भाइयों को मारने के लिए कुल्हाड़ों के दस्ते बन गए हैं। यह स्वभाव बहुत बुरा है और पतन की ओर लिये जा रहा है। सभी राजाओं के और प्रजा के इस स्वभाव को उपदेश द्वारा अथवा दण्ड द्वारा सुधारना चाहिए। यहाँ पर कई बार उपदेश दिए, मगर व्यर्थ। अब अमली उपदेश का समय आया है। किसी तरह यह स्वार्थपरता का स्वभाव बदल जाए। सांझी हानि और लाभ के समय इकट्ठे होने और अपने लाभ को न्योछावर करने की भावना लोगों में आ जाए। अलफ खाँ की सफलता उस चाल की सफलता है, जिसे हिन्दियों में बढ़ी हुई स्वार्थपरता को देखकर तुर्क चलते आए हैं। इस चाल का मुँह तोड़ना ठीक है। भीमचन्द हारकर हमसे सुलह कर चुका है। अब शरण में है और प्रत्येक तरह से मित्रों वाला व्यवहार करता है और किये हुए वायदों को अब तक पूरा कर रहा है। इसलिए मित्र की सहायता करना भी धर्म है। नीति भी तो यही कहती है कि जिन राजाओं ने परस्पर मित्रता बनाई थी, वे अब युद्ध के समय एक-दूसरे की सहायता करें। फिर भीमचन्द ने विनती करने के लिए अपने दूत भेजे हैं। सहायता के लिए शरण में आये हुए की सहायता न करना भी धर्म नहीं है। इसलिए प्रत्येक पहलू से सहायता करना ही बनता है। यदि हमारी विजय हो गई तो राजाओं के और उनकी सेनाओं के साहस बढ़ेंगे कि उन्होंने तुर्कों पर विजय प्राप्त की है। तुर्कों के रोब का जादू टूट जाएगा।...अब बताओ तुम्हारी क्या राय है?

दीवान–आप त्रिकालदर्शी हैं। आपको कौन कोई सलाह दे सकता है?

बीओ पूछि न मसलति धरै॥
जो किछु करै सु आपहि करै॥२॥

इस विरद के आप विदित स्वरूप हैं। कृपा करके जो वचन आपने कहे हैं, सारे स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं, सभी बातें पूरी हैं। धर्म, सदाचार, नीति आपके विरद के अनुकूल हैं।

गुरू साहब–जगत के मामले हैं, विचार कर लो। अपने लोगों से विचार कर लो। जब दूत आ जाएँ तो सम्मान सहित उनका डेरा करवाओ और दीवान में उन्हें ले आओ। फिर वहीं पर बातचीत करेंगे। तब तक अपने प्रेमियों से गुप्त मन्त्रण कर लो। यदि कोई निर्णय हो तो हमें बता देना।

: ६ :

ततकाल अनंदपुरि धाइ आइ॥
प्रभु थिरे सभा तहिं मिलयो जाइ॥
कर बन्दि बन्दना चरन कीनि[१]॥
दिश भीमचन्द ते भाखि दीन॥२४॥

१. सूरज प्रकाश के अनुसार अकेला मन्त्री ही आया था तवारीख खालसा के अनुसार तीन व्यक्ति आये थे।

सच्चे पातशाह का दैवी आभा वाला और राजसी शोभा वाला दरबार लग रहा है, जिसमें भीम चन्द के दूत हाजिर हुए। तीनों ही महाराज जी के चरणों को छूकर, शीस झुकाकर बैठ गए:–

मुख मन्द मन्द मुसकाति धीर॥
प्रभु कहे वाक जिन धुनि गंभीर:–
'कहलूर पति कहु कुशल गात?
आगमन भयो किम? भनो बात'॥२५॥

तब करबद्ध होकर सत्कार सहित मन्त्री ने कहा–"सच्चे पातशाह! एक उपद्रव हुआ है–राजाओं के साथ मिलकर जो शाही माँग के सामने अड़ने की सलाह बनाई थी, उसे कृपालचन्द कटोचिये ने तोड़ दिया है और अलफ खाँ के साथ जाकर मिल गया है और साथ ही दयालचन्द को भी मिला लिया है। तीनों ही सेनाएँ इकट्ठी करके नादौण में आए हुए हैं। बहुत फुर्ती से एक 'काठ गढ़' बना रहे हैं और हमारे महाराज–आपके धर्म स्नेही सेवक–को सन्देश भेजा है कि धन की जितनी शाही माँग है, उसे भर दीजिए, अन्यथा युद्ध करो। हमारे महाराज की धन देने की इच्छा नहीं है, युद्ध करने की इच्छा है। राजा पृथीचन्द, केसरीचन्द, राजा सुखदेव, राजा रामसिंह जसरोटिया आदि सभी सेना लेकर हमारे साथ चलेंगे। प्रार्थना यह है कि एक तो आप वरदान प्रदान कीजिए जिससे कि विजय प्राप्त हो, दूसरा, अपनी सेना की सहायता दीजिए, तीसरा हमारा मुँह छोटा है और माँग बड़ी है, पर माँगने वाले को लज्जा का ख्याल नहीं रहता, कहने से झिझकता हूँ, पर कह देता हूँ, क्षमा करना! मुसीबत आकर पड़ी है, यदि आपके पवित्र चरण कष्ट करें और इस सुन्दर सुडौल और बलवान भुजाओं से तीर चलाकर शत्रु के दल पर जाकर लगे तो महान कृपालता है।"

श्री कलगीधर जी मुस्कराये, फिर गम्भीर हो गए। नैन मुँद गए, फिर खुले और चारों ओर निकटवर्तियों की ओर देखा और फिर दूत-सभा की ओर दृष्टि डाली। फिर बोले:–

विजय अवश्य ही होगी। हमारी सेना आएगी। हम अपनी सेना के साथ आएँगे और युद्ध करेंगे। पर राजा से जाकर कह दो कि तुम्हें किसी ठिकाने पर भी भयभीत नहीं होना, अड़ जाओ और अड़ जाओ, आग जला दो, यदि बढ़ेगी तो शत्रु रूपी वन को जला देगी।

इस मेघनाद को सुनकर मन्त्री प्रसन्न हुआ, चरणों पर सिर झुकाया:–बलिहारी आपके विरद की! गुरू नानक का महान घर दीन-दुनिया का स्वामी है और शरणपालक है। धन्य हैं आप, धन्य आपकी गुरू गद्दी है। धन्य सिख धर्म है! श्री जी! आप चलने की कब कृपा करेंगे, कुछ तैयारी भी तो करनी होगी।

गुरू जी–हम कल को कूच कर देंगे। तुम चलो, सेना लेकर पहुँचो। हम पीछे पीछे पहुँचेंगे।

यह सुनकर दूत नमस्कार करके "जय हो! जय हो।" कहते हुए चले गए।

: ७ :

बिआसा नदी अपने सुन्दर रंगों में बह रही है, पहाड़ी रास्तों को चीर-चीरकर सुहावने नादौण के मैदान में से गुजर रही है[१]। एक ऊँचे टीले पर अलक खाँ और कृपाल की सेनाएँ स्थान को घेरकर बैठी हैं। लकड़ी का एक किला बना लिया गया है। जो कोई गोली अथवा तीर आए, वह लकड़ी में ही रुक जाए और आड़ में बैठकर ऊँचे स्थान से जो तीर, गोला छोड़ा जाए, वह शत्रुओं में निशाने पर जाकर बैठे। खाने-पीने की रसद का सामान भी पास है। एक तुर्क सेनापति और दूसरे राजपूत राजा है।

भीमचन्द की सेना नीचे से आ रही है। रामसिंह, पृथ्वीचन्द, सुखदेव आदि राजा गर्जते हुए साथ-साथ आ रहे हैं। दिलों में साहस बढ़े हुए हैं कि उनके पीछे करामात का स्वामी और बल का धनी ईश्वरीय योद्धा आ रहा है। इनकी योजना यह थी कि अचानक ही जाकर टूट पड़ें और मार-काट कर लें; पर इनका यह धावा सफल न हुआ। इनके तीर और गोलियाँ काठ और वृक्षों में जा लगते। शत्रु ने ऊँचाई पर काठ की ओट ले रखी थी। उनके तीर, गोले इनका नुकसान करते थे। जितना कुछ ये आगे को बढ़े थे, राजा कृपाल ने धावा बोलकर उतना ही इन्हें पीछे हटा दिया था। उधर से वे योद्धा प्रसन्न हो रहे थे, इधर नीचे खड़े हुए ये शोकातुर हो रहे थे कि रण का पासा इनके विरुद्ध जा रहा है। इस समय की दशा को श्री कलगीधर जी ने स्वयं यों बताया है:-

करी ढूक ढोअं किरपाल चंदं॥
हटाएं सबै मारिकै बीर बिंदं॥४॥
दुतीय ढोअ ढूके, वहै मार उतारी॥
खरे दाँत पीसे छुभे छत्रधारी॥
उतै वै खरे बीर बंबै बजावैं॥
तरे भूप ठांढे बडो शोक पावैं॥५॥
तबै भीमचदं कियो कोप आपं।
हनुमान के मंत्र को मुख जापं॥ [बचित्र नाटक]

सो अब फिर से तैयार होकर राजा और सारी सेनाएँ धावा बोलकर ऊपर को चढ़े कि फुर्ती से पहुँचकर वैरी को काट-बाढ़ दें, पर उधर से अलफ खाँ ने दोनों राजाओं-कृपाल और दयाल को चुनौती देकर भेजा कि तुम नीचे से चढ़ते हुओं पर इस तरह जाकर झपटो कि वह सट्टी-पट्टी सब कुछ भूल जाएं। अत: ये आगे से झपटकर पड़े और बढ़ी हुई सेना के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। इस समय भीमचन्द निराश हो रहा था कि उसे गुरू जी का चेता आया और सहायता के लिए पहुँचने के लिए विनय करके दूत को भेजा। आप पहले से ही तैयार थे, झटपट घोड़े पर चढ़े और शूरवीरों के दल लेकर आ पहुँचे। कवि संतोख सिंघ जी ने इस समय का वर्णन इस प्रकार किया है:-

श्री गुर तेग़ बहादुर नन्दन तेग़ बहादुर यों सुध पाई॥
'थान उतंग पै जंग परयो भट भंग भए ब मार मचाई'॥

१. नादौण कांगड़े के जिले में है।

आयुध धारि लिए ततकाल भए असवार गए समुदाई॥
तुन्द तुरंगत कीनि तबै रण रंग बिखै हुइकै समुहाई॥२८॥
श्री प्रभ को नृप आवति देखि पठाइ सऊर बिनंति उचारी॥
'आप बहादर धीर बडे, सगरे दल के अबि होइ अगारी॥
हेल करावहु, आयुध धावहु बीर चलैं गन आन पिछारी॥
लेहु बिजै कर क्वै न रहें अर, जै लछमी छबि पाइ तिहारी॥२९॥
श्री कलग़ीधर बेनती कौ सुनि देखि मचयो बड जंग कराला॥
ज्यों रसबीर हुतो सुप्तयो ततकाल ही जाग उठियो बलवाला॥
श्री मुख पै उतसाहि सुहावत ज्यों अरणोदय को रंग लाला॥
हेलि करयो हुइ सम्मुख बारि[१] सु पेल दये भट भीम बिसाला॥३०॥
[गु: प्र: सूरज: रुत 2 अंसू ४०]

गुरू जी ने अब अपनी युद्ध विद्या के ढंग से सारी सेना को बाँटकर गोलियों और तीरों की ऐसी वर्षा की और एक ऊँचाई प्राप्त करके शत्रुओं के लकड़ी के गढ़ में ऐसी वर्षा की कि वे सारे घबड़ा गए। यों अपने आपको एक घेरे में आकर मार खाते हुए देखकर वे सारे बाहर आ गए, ताकि सामने आकर लड़ें और गुरू जी और भीमचन्द के दल को बड़ा जोर डालकर वापिस लौटा दें।

गुरू संग होये, मचियो जंग भारा॥
भटं अंग भंगे सुरंगे अखारा॥
इसी रीति धेरियों जबै बार[१] जाई॥
ढुके कोप कै दीह माची लराई॥४०॥

दोहिरा– जो गिरेश बिच बार के बीर धीर को धार॥
ढुके न निकटि रिपु जानि के केतिक पिखे सुमार॥४१॥
लखी पराजय आपनी 'लाज बंस की जात'।
आपस महिं मिल कहति भे–'इम होवहिं सभ घाति॥४२॥
बल संभारो आपनो निकसि लरो बर बीर॥
मन्त्र पका इव जंग को पुनः उमड़े धरि धीर॥४३॥

श्री गुरू जी ने स्वयं इस समय का हाल इस प्रकार संक्षिप्त रूप में लिखा है:–

सबै बीर बोलै, हमै भी बुलायं॥
तबै ढोअ कै कै, सु नीके सिधायं॥६॥
सबै कोप कै कै, महाँबीर ढूके॥
चल बारिबै बार[१] के ज्यौं भभूके॥
तहाँ बिझुड़िआलं हठिय बीर दिआलं॥
उठियो सैन लै संगि सारी कृपालं॥७॥

१. लकड़ी का किला।

इस प्रकार जब आगे बढ़े, तो घमासान का युद्ध हुआ, युद्ध की तीक्ष्णता का वर्णन गुरू जी ने स्वयं इस प्रकार किया है:–

कुपियो कृपाल।। नच्चे मराल।। बज्जे बजंत।। क्ररं अनंत।।८।।
जुझंत जुआन।। बाहैं कृपाण। जीअ धारि क्रोध।। छड्डे सरोघ।।९।।
लूझे निदाण।। तजंत प्राण।। गिर परत भूम।। जाणु मेघ झूम।।१०।।

इस समय घोर संग्राम मचा। अलफ खाँ, कृपाल, दयाल आदि ने सारा जोर भीमचंद की सेना पर डाल दिया। इनका अनुमान था कि इस ओर से शीघ्र ही पाँव हिल जाएँगे। यदि इनके पैर हिल गए तो भागते हुओं को देखते ही गुरू ज़ी की सेना भाग निकलेगी। अत: इनका इतना सख्त मुकाबला हुआ कि भीमचन्द के पैर पीछे हटने लगे।

हटे पैर पाछे पिखे भीम चन्दं।।
पृथीचन्द[1] बोलियो 'बली तू बिलंदं।।१५।।
करो धीर बीरान के होइ आगे।।
परियो जोर जुद्ध नहीं जाइं भागे।।
कृपालं सु दयालं करियो हेलि आए।
हमारे वधे सूर पाछे हटाये'।।१६।। [सू: प्र:]

पृथीचन्द ने अब आगे बढ़कर नंगी तलवार को चमकाकर वापिस जा रही सेना को ऐसी ललकार दी कि सबके पैर जम गए। इसके उठते हुए जोश के पीछे सारे वापिस लौट आए और शत्रु दल पर ऐसा जोर डाला कि अलफ खाँ और राजा दयाल के पैर हिला दिए और वे पीछे हटने लगे। अपनी इस दशा को देखकर बिझड़वालिये दयाल ने नया जोश धारण किया और अपनी सेना को ललकारा। उधर से राजा कृपाल ने दयाल की ललकार को सुनकर घोड़े को उछालकर आगे किया; यों सेना में दोबारा साहस भर गया और उन्होंने डटकर युद्ध किया। अब दोनों ओर से नये जोश से लड़ाई हुई:–

दिशा दौन ते सामुहे भेड़ ऐसे।।
महां जुद्ध कीनो थिरे थंभ जैसे।।
छुटे बान गोरी फुटे अंग सूरे।।
कड़ा काड़ माची रिदे रोस पूरे।।२४।।

पर इधर से फिर पृथ्वीचन्द ने बल डालकर कृपाल को घबराहट में डाल दिया और उसके पैर हिलने लगे, पर दयाल इसे देखकर इतने जोर से झपटा और इस तरह तीर चलाये कि भीमचन्द घबड़ा गया और कृपाल सिर उठाकर खड़ा हो गया। अब इन दोनों का और पीछे से अलफ खाँ का इतना जोर पड़ा कि भीमचन्द को हार जाने की आशा होने लगी। इस समय उसने देखा कि दयाल की चाल और शूरवीरता उसकी (भीमचन्द की) हार का कारण बन रही है और इसके सामने उसका कोई बस नहीं चल रहा है। गुरू जी के शूरवीरों ने दो बार शत्रु के पैर हिलाये हैं, पर जब वे दूसरी ओर से रोकने के लिए जाते हैं तो हमारे शूरवीर हिल जाते हैं। यों विचार करके, घोड़े को भगाकर गुरू जी के पास पहुँचा और

१. यह भीमचंद को कुमुक पहुंचाने वाला था। पीछे बताया जा चुका है कि यह डढवालिया राजा था।

जाकर विनय की कि "आप ने फतह का वरदान प्रदान किया था, उसे अपने बल से सफल कीजिए। बिझड़वालियों ने हमारी शूरवीरता को वापिस लौटा दिया है"। सतगुरू जी ने स्वयं इस समय का हाल संक्षिप्त रूप से इस प्रकार बताया है:

दोहरा:–**कोप भरे राजा सबै कीनो जुद्ध उपाए।**
सैन कटोचन की तबै घेर लई अरि जाए॥१५॥

भुजंग प्रयात छन्द॥

चले नांगलू पांगलू वैंदड़ौलं॥
जसवारे गुलेरे चले बाँध टोलं[1]॥
तहाँ[2] एक बाजियो महांबीर दियालं॥
रखी लाज जौनै सबै बिझड़वालं॥ [बचित्र नाटक]

अत: जब कलग़ी वाले ने भीमचन्द की विजय सुनी, तो कमान को कन्धे पर चढ़ा लिया और पास खड़े हुए दास से बन्दूक सम्भाल ली। गोली भर कर ऐसी फुर्ती से घोड़ा दौड़ाया और दयाल को जाकर चुनौती दी। यथा:–

"सावधान हूजै" बंगारयो उतंगा॥३३॥
"घने बीर मारे अरयो को न आगे॥
"अबै तोहि मारौं, इकं वार लागे।"

यह चुनौती देकर वीर रसिकों के सरदार ने गोली न चलाई, पर दयाल को पहले वार करने दिया! एक लेखक ने लिखा है कि आप ने दयाल से कहा–यदि तैने वार करना है तो पहले कर ले, बाद में मत करना, अथवा तेरा कोई भी साथी यह न कहे कि गुरू ने तुझे एकाएक आकर मारा है। दयाल ने सावधान होकर पहले वार किया। यथा:–

सुनी दयाल ने तीर तीखे चलाये॥
प्रभु फेरि घोरा[3], सभै ही बचाए॥३४॥

अब आपने भय और बाधा को दूर करने वाला निशाना बाँधा, सुन्दर छवि वाली बन्दूक से निशाना बाँधकर एक गोली चलाई, जो दयाल के प्राणों को उसके शरीर से मुक्त कर गई।

इस घटना को स्वयं कलग़ी वाले ने इस प्रकार लिखा है:–

तवं कीट तौ लौ तुफंगं संभारो[4]॥
हिरदै एक रावँत[5] के तकि मारो॥

---

१. जब युद्ध में अपनी यह तेजी देखी तो नांगलू, पांगलू, दडोल, डढवाल, छन्न, चलाहले, छिव प्रल्लड़, कनैत चीएं मीएं आदि गोतों के पवर्ती लोग सब सिखों की ललकार से गुस्सा खाकर झपट पड़े। (तवारीख खालसा)

२. अर्थात अलफ खाँ की ओर।

३. घोड़ा।

४. अर्थात हमने बन्दूक पकड़ ली।

५. अर्थात राजा दयाल।

गिरियो झूम भूमै करियो जुद्ध सुधं॥
तऊ मार बोलियो[१] महा मान कुधं।

जब दयाल राजा मारा गय तब सतगुरू जी ने बन्दूक हाथ में रख दी और फिर कमान तान ली। अब आय की वायु की सी फुर्ती से तीरों की ऐसी वर्षा की कि शत्रु के दल के और गिने चुने शूरवीर मारे गये आपने चार तीर तो दायें हाथ से चलाये और फिर तीन तीर बायें हाथ से चलाए। तीरंदाजी का ऐसा कमाल और अन्तिम कमाल केवल आप में ही था। ये बाण किनको जाकर लगे? कौन-कौन सद्‌गति को पहुँचे? इसका तो पता नहीं, पर अवश्य ही ये तीर छँटे हुए शूरवीरों को लगे, जिससे सातवें बाण के बाद यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी कि वैरी का दल भाग चला है, जैसा कि आपने लिखा है:-

तजियो तुपकं, बान पानं संभारे[२]॥
चतुर बानियं लै सु सबियं[३] प्रहारे॥
तृतियो बाण लै बाम पाणं[४] चलाए॥
लगे या लगे न कछू जान पाये॥१८॥
सु तउ लउ दईव जुध कीनो उझारं॥
तिनै खेद के बार[५] के बीच डारं॥
परी मार बुंगं छुटी बाण गोली॥
मनो सूर बैठे भली खेल होली॥१९॥

राजा कृपाल ने अब भागते हुओं को देखकर अपने आपको सेना के पीछे करके इस बात का प्रयत्न किया कि हानि कम हो और जल्दी से जल्दी काठगढ़ में जा घुसें। अलफ खाँ अपने आपको अधिक हानि से बचाने के लिए आगे-आगे किले की ओर भागा जा रहा था। इधर से अब गोलियों बन्दूकों से हर तरह से ज़ोर डाला जा रहा था कि शत्रु का सारा दल किले में जा घुसे। भीमचन्द विजय की खुशी में मार-मार करता हुआ शत्रु के दल में भगदड़ मचा रहा था जिससे कि अन्त में जो कोई बच रहे वह किले में जा घुसे। अन्दर जाकर काठगढ़ में जो बुर्ज से थे, अगर उन पर जाकर कोई वहाँ से नुकसान पहुँचाने के लिए गोली चलाता था, तो सिख शूरवीर उन बुर्जों पर ही गोलियाँ चलाकर उनके निशाना बना लेने अथवा उन्हें नीचे उतरने पर विवश कर देते थे।

प्रभ सपत बान ते जीत जुद्ध॥ प्रविशाए दिए बिच बार क्रध॥
नहिं थिरियो गयो बाहिर बिसाल॥ कठगढ़े बिखै बडिंगे उताल॥१९॥
बिच बरे यार पिख बारि बारि॥ अरि रहे ओज अरि धारि धारि॥
छूटे तुफंग बुंगेर फेर॥ बिच थिर कटोचीया लीनि घर॥२०॥

---

१. अर्थात गिरता हुआ भी 'मार लो, मार लो' कहते हुये गिरा,
यथा:-मरियो 'मार मार' बकंतं सरोसं॥ (सू: प्र:)
२. हमने बंदूक को रखकर तीर हाथ में ले लिये।
३. दायें हाथ से।
४. बाएं हाथ से।
५. अर्थात वे लकड़ी के किले में जा घुसे।

पुन भयो जुद्ध क्रुधति करार॥ छुटकति बान गोरी हज़ार॥
थिर भये बीच शत्रुनि बिलोक॥ तबि सुभट आपने लीनि रोक॥२१॥
अबि गये हार बिच होइ गाढ॥ निकसहिं न वहिर वड त्रास बाढि॥
हम फते लीनि प्रभु रण मझार॥ दुहि दिशिन बीर लखि कै उदार॥२२॥

[सूरज प्रकाश]

सतगुरू जी ने स्वयं लिखा है:—

लीयो जीत बैरी कीयो आन डेरं॥
तेऊ जाइ पारं रहे बार केरं॥२०॥
भई राति गुब्बार कौ अर्द्ध जामं॥
तबै छोरगे बार देवै दमामं॥

[बचित्र नाटक]

शत्रुओं ने, काफी रात व्यतीत हो जाने पर मन्त्रणा की। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि भीमचन्द की विजय गुरू जी के कारण हुई है। गुरू बहुत शूरवीर है और उनकी सेना जान की बाज़ी लगाकर लड़ती है। भंगाणी का तजुर्बा आँखों के सामने था और दूसरा आज देखा है। श्री गुरू नानक जी की गद्दी होने के कारण करामात और शूरवीरता की शक्तियों को इकट्ठा समझते थे। यह फैसला हुआ कि अब युद्ध को जारी रखना उचित नहीं है। ऐसा न हो कि गुरू जी की और सेना तथा सिख आ जायें और कोई बड़ी आग धधक उठे। अब पीछे हो हटना ही मुनासिब है और कांगड़े में जाकर इन राजाओं में फूट डालने के दाव-घाव सोचे जायें। अतः वे आधी रात के अंधेरे में चुपके से कांगड़े को चल दिये। काठगढ़ में कुछ दमामचियों को छोड़ गये, जो रात भर दमामों पर टंकार देते रहे, जिससे इस बात का पता चलता रहे कि दुश्मन का दल अभी अन्दर ही है। यों नादौण का युद्ध समाप्त हुआ। दाता जी ने स्वयं इस प्रकार लिखा है:—

भजयो अलफ खानं न खाना संभारियो॥
भजे और बीरं न धीरं बिचारियो॥
नदी पै दिनं अष्ट कीने मुकामं[१]॥
भली भाँति देखे सबै राज धामं॥२२॥

: ८ :

दया राम—सच्चे पातशाह जी! जत्था होकर आ गया है, काठगढ़ को देख आया है, उसके अन्दर कोई नहीं है। अलफ ख़ाँ और कृपाल सेना सहित रात को ही भाग गये थे। एक-दो दमामची रात भर दमामे बजाते रहे हैं, सवेरा होते ही वे भी चले गये हैं, वाहिगुरू जी की कृपा द्वारा सम्पूर्ण फतह प्राप्त हुई है।

गुरू जी—श्री असिकेत जी की कृपा है। कुछ पता चला है कि कृपाल और अलफ ख़ाँ कहाँ पर गये हैं?

१. अर्थात् हमने बियास नदी के किनारे डेरा डाला।

दया राम–ठीक पता तो नहीं है, ख्याल है कि रात को लगभग दस कोस दूर निकल गये हैं, सभी घायलों और मृतकों को छोड़ गये हैं, कुछ शस्त्र और रसद भी रह गई है।

गुरू जी–अपने घायलों का क्या हाल है?

दया राम–आपकी आज्ञानुसार रात को ही मशालें जलाकर सभी घायलों को ढूंढा था और सबकी मरहम पट्टी करवाई गई थी। राजाओं के घायलों को भी ढूंढकर ले आये थे, इनकी मरहम पट्टी भी हो गई थी, इन सभी घायलों में से कईयों का तो स्वर्गवास हो गया है और बहुत से अच्छी हालत में हैं, सो आशा है कि बच जायेंगे।

गुरू जी–वैरी के दल का धर्म था कि रात को अपने घायलों को बचाते। यदि उन्होंने अपने प्राणों को प्यारा बनाया है तो अब तुम ही एक जत्थे को भेज दो जो जाकर सभी घायलों को खोजकर ले आये और उनकी मरहम पट्टी, सेवा और संभाल अपने जैसों की सी की जाये।

दया राम–रात के अंधेरे में, मशालों के मन्द प्रकाश में हम कहीं-कहीं कोई शत्रु के घायलों को भूल के कारण अपने घायलों में उठाकर ले आये थे और चार व्यक्तियों को हमने पहचान भी लिया है। उनकी सेवा आपके सदैव के दाता स्वभाव के अनुसार अपने जैसों के तुल्य ही हो रही है। अब दोबारा आदमियों को भेज देते हैं, बहुत से घायल तो काठगढ़ के भीतर हैं, जो गर्मा-गर्मी में भागते दौड़ते हुये भीतर पहुँच गये थे, पर ठण्ढे होकर फिर अपने लोगों के साथ आधी रात को जा नहीं सके।

गुरू जी–फिर जल्दी करो, जिस-जिस का दुख जितनी जल्दी दूर हो सके उतनी ही सुखदाई बात है। एक जत्था उधर भी भेज दो और तुम इधर सबका ध्यान रखो, हम स्वयं भी उन्हें देखने के लिये आ रहे हैं।..........

कुछ समय के पश्चात दया राम फिर आया:–

पातशाह! जत्था भेज दिया है, शहीदों के लिए क्या आज्ञा है?

गुरू जी–बिआसा नदी के किनारे पर चिता बनाकर दाह संस्कार कर दो और राख को नदी के जल में डाल दो। राजाओं के मृतकों के बारे में–मृतकों के शव इकट्ठे करके उन्हें खबर कर दो; जैसे वे कहें, वैसे कर लेना। शत्रु के दल के हिन्दू मृतकों के शव भी इकट्ठे करके, राजाओं से पूछ लो, राजा दयाल के दाह संस्कार का काम भी राजाओं के सुपुर्द कर दो। उसके शव को सत्कार सहित राजाओं के डेरे पर पहुँचा दो। मुसलमानों को गड्ढे खोदकर दबा दो और उनके ऊपर एक छोटा सा टीला बना दो।

दया राम–सत्य वचन!

कुछ समय के बाद सतगुरू जी आप भी उठे, कमर कसकर घायलों के ठिकाने पर पहुँचे, सबके साथ सहानुभूति प्रकट की, फिर शत्रु के दल के घायलों की मरहम पट्टी देखी और उन्हें दिलासा दिया और कहा कि राज़ी हो जाने पर तुम्हें छुट्टी दे दी जायेगी। हमारी तुम्हारे साथ कोई निजी शत्रुता नहीं है। यहाँ से उठकर आप सिखों की चिता के पास आये, अपने हाथों से आग लगाकर वरदान दिया:–

"सदैव सुखी रहो।"

इसके बाद अपना डेरा बिआस नदी के किनार पर सुहावने स्थान पर रखो[१]। सभी राजा मिलने के लिए आते रहे। आसपास के राजा अपने-अपने महलों, राजभवनों में ले जाते रहे, खातिर करते रहे और सेवा करते रहे।

: ९ :

सात दिनों के पश्चात एक दिन दया राम गुरू जी के पास खबर लाया।

दया राम–पातशाह! कांगड़े से गुप्तचर लौटकर आ गया है और वहाँ के राजभवनों में फिरने वाले एक सज्जन ने भी बताया है कि पहाड़िया द्रोह करने में लग गया है।

गुरू जी–कैसे?

दया राम–कृपाल कटोचिये ने विजय का कारण आपको ही मानकर और आगे से विजय में शक समझकर अपनी कुटिल नीति चलाई है:–राजा भीमचन्द के साथ सुलह का योजनाएं बनाई हैं, और बातचीत हो रही है कि यदि भीमचन्द आधी रकम दे दे तो वह अलफ खाँ को मना ले पर दूसरे राजाओं से पूरी-पूरी रकम ले लेने दे और भी जिस जिसका पक्ष भीमचन्द ले, उस उसको अलफ खाँ से छूट दिलवा देगा; पर यह सांठ-गांठ गुप्त रूप से हो रही है। दोनों ओर से राजा प्रयत्न कर रहे हैं कि आपको पता न चले, इसलिए कि आप सुनकर नाराज़ होंगे कि युद्ध भी किया और विजय भी प्राप्त की और फिर धन भी दिया और शरण भी ली, और आगे को आवश्यकता पड़ने पर गुरू जी कभी सहायता नहीं करेंगे।

गुरू जी–अच्छा, वाह-वाह! इन लोगों के दिमाग़ों में से वीरता का मद निकल चुका है, ये लोग हिसाबी हो रहे हैं, धन के पीछे मरते हैं। इन्हें धर्म और मान का कोई ध्यान नहीं है, प्रजा की चिन्ता नहीं है, जो दुखी हो रही है, अपना देश, अपने भाई दुखी हो रहे हैं, दर्द की आवाज़ आकाश तक चली गई है, मन्दिर गिर रहे हैं, घरों की इज्जत जा रही है, इन्हें कोई परवाह नहीं, अपनी.....अपनी.....बस अपनी ही बनी रहे.....। अच्छा, इन्होंने दग़ा किया है कि हमारे मित्र बनकर सुलह करते समय हमारे साथ सलाह भी नहीं की। यह बात नीति के विरुद्ध है कि कुमुक भेजने वाले सज्जनों से छिपकर सुलह सफाई के मन्त्र किये जायें। अपने जत्थे में तैयारी का आदेश दे दो–जब तैयारी हो जाये, नगारे पर कूच की चोट लग जाए। हाँ, पर पहले इस खबर को पक्का कर लिया जाये, जो तुमने बताई है।

दया राम–पातशाह! अभी कागज़ आ रहे हैं।

इतने में एक सिख आया और आपके हाथ में कुछ पकड़ा कर चला गया। वह चिट्ठी थी, जो कि मंजूरी के लिए भीमचन्द की ओर से कटोचिए को जा रही थी, जिसमें लिखा था कि भीमचन्द इन शर्तों के अनुसार खिराज देने के लिए तैयार है। इसे देखकर और इस पर लगी हुई मुहर को पहचानकर आप मुस्कराये और कहने लगे:–

१. जहाँ पर सतगुरू जी ने ठिकाना किया था, वहाँ पर अब तक एक छोटा सा गुरुद्वारा था। महाराजा हीरा सिंघ नामे वाले ने इस गुरुद्वारा के साथ कुछ जागीर लगवाई थी, एक ही घर सिख पुजारी का था। जो कि सेवा किया करता था, आसपास सिखों की आबादी नहीं है। अब दिल्ली वाले सरदार विसाखा सिंघ ने बहुत सा धन खर्च करके गुरुद्वारे की सेवा करवाई है और एक प्रचारक भी नियुक्त किया है।

मरे हुए लोगों में प्राण तो नया जन्म लेने से ही आ सकता है, फिर हाँ (आकाश की ओर देखकर) हे दाता! नया जीवन भेजो, इन अपने मरकर खत्म हुए मनुष्यों में।

जिस समय तैयारी हो गई और नगारे पर चोट लगी तो राजाओं को पता चला कि गुरू जी तो जा रहे हैं, तब भीमचन्द ने शीघ्रता से परमे को भेजा कि जाकर पता करें। मन्त्री ने आकर नमस्कार किया और कहा कि "आपने शीघ्रता से तैयारी कर दी है, थोड़ी देर तक ठहर जाते, हम इकट्ठे ही चलते।"

गुरू जी–राजा को अब हमसे कोई काम नहीं है, जितनी उसकी आवश्यकता थी वह अब पूरी हो चुकी है, अब तो हमारा चले जाना ही बनता है।

मन्त्री–यदि कोई अवज्ञा हुई है तो क्षमा कर दीजिए, आपका विरद पतितों को पावन करने का है। किसी कारण यदि कोई कष्ट पहुँचा हो तो हमें बता दीजिए जिसे ठीक कर दिया जाए, अब आप सभी राजाओं को आपने दास समझिए।

गुरू जी–परमानन्द! नीति झूठ का नाम नहीं है, यदि नीति और झूठ एक ही बात है तो नीति का पद्य कोश में क्यों रखा गया है? यदि तुम समझते हो कि सच के आधार से उत्पन्न हुई विशाल बुद्धि और दानाई के व्यवहार का नाम ही नीति है तो सच क्यों नहीं कह देते कि एक युद्ध में जो इकट्ठे होकर लड़े थे और जिन्होंने हार-जीत और दुख-सुख को सांझा बनाया था उनके साथ जीत के बाद पक्षपात उचित है।

मन्त्री–नहीं जी।

गुरू जी–फिर शत्रुओं के साथ जो संधि हो रही है, वह सबकी राय से हो रही है अथवा गुप्त रूप से? फिर हम तो धर्म का कार्य समझकर आए थे कि विदेशी अलफ खाँ के मुकाबले पर और भाईयों के घातक कृपाल के मुकाबले पर अपने मित्र राजा भीमचन्द की सहायता करें। फिर भीमचन्द ने कैसे विदेशियों और द्रोहियों की शरण लेना मान लिया है?

मन्त्री–आप क्षमा कीजिए।

गुरू जी–हमें अपने लिए कोई गुस्सा नहीं, हम राजा की फतह के लिए आऐ थे, वह प्राप्त हो गई। हम चाहते थे कि राजाओं में प्राण भर जायें, वे प्रजा के दुख को देखें, आपस में मिलें और कुछ करें। पर यदि यह उनका मनोरथ नहीं है, तो शोक के सिवाय और क्या हो सकता है। हमारा काम है प्रजा को धर्म देना, नेकी बताना, सतकार सिखाना और उनके कष्टों को दूर करना। हमको इसी काम के लिए ठहरना है और इसी काम के लिए जाना है। हमारे दिल में द्वैष नहीं है। हमें शोक है कि प्रजा के भाग्य अभी जगे नहीं है। अच्छा अकाल पुरुष अदेश से कोई योजना भेजेगा; कोई संजीवनी भेजेगा, प्रजा की काया पलट करेगा, जगत सुखी होगा! उसने जिस कार्य के लिए हमें भेजा है उसे स्वयं हमसे करवाएगा।

मन्त्री बहुत मिन्नतें करता हुआ चला गया और सब कुछ राजा को जाकर बता दिया। राजा शीघ्रता से कुछ भेंट लेकर आ गया। शीश झुकाकर कहने लगा, "आपकी सहायता से मेरी लाज रह गई है, अन्यथा मान और धन दोनों ही नष्ट हो जाते। अब आप मुझे सदैव अपना दास समझते रहना।"

गुरू जी–गुरू का घर कल्पतरू है, जैसे कोई श्रद्धा रखकर मांगता है वैसा ही उसे फल मिलता है। राग द्वेष इस घर में नहीं है। बाकी वाहिगुरू करे कि तुम से अपने धन और राज्य के साथ-साथ दुखी प्रजा की सेवा का काम भी हो सके।

आलसून

इस तरह बातचीत करते-करते आप चल पड़े, सैर शिकार करते हुए शनैः-शनैः चलते रहे। रास्ते में बहुत कठोर पुरुषों का एक गाँव था–आलसून यहाँ पर जब अगाऊ डेरा आया तो नन्द चन्द जी ने गाँव से रसद लेने के लिए आदमी भेजे और इधर डेरा लगने लगा। गाँव से आदमी वापिस लौटकर आ गए और आकर बताया कि यहाँ के लोग रसद आदि के पैसे नहीं लेते हैं, कहते हैं–कि हमको किसी भाव पर भी नहीं बेचना, बल्कि कुछ बेअदबी के वाक्य भी कहे हैं। नन्द चन्द जी ने विचार किया कि जो लोग पैसे लेकर कूच कर रही सेनाओं को रसद नहीं देते उनसे जबर्दस्ती ले लेना कोई बुरी बात नहीं है, अतः सेना की एक टुकड़ी भेजकर गाँव पर धावा बोल दिया[१]। गाँव का मुखिया अपने छटे हुए शूरवीर लेकर सामने आया, मुठभेड़ हुई, जिसमें आलसून के प्रसिद्ध सूरमें हार खाकर उठ भागे। सिखों ने रसद आदि, घास-चारा सब कुछ ले लिया और पैसे दे दिए। रात को आलसून में ही डेरा रहा। सवेरे को कूच किया, फिर सारे रास्ते में रसद आदि के लिए कोई कठिनाई नहीं हुई, बल्कि लोग स्वयं रसद आदि लेकर आगे से हो कर मिलते रहे।

उपरोक्त युद्ध से इस बात का पता चल जाता है कि प्रजा को सुखी करने, मृतकों में प्राण भरने और धर्म की स्वतन्त्रता देने के लिए गुरू जी कितने तत्पर थे। जिन्हें किसी जोखिम में पड़ने की ज़रूरत नहीं थी वे दयाल चन्द जैसों की गोलियों के सामने खड़े हो जाते थे। आप समय की नाड़ी को समझते थे और हर ओर कष्ट सहन करके जीवों में प्राण भरने का यत्न करते थे। युद्ध केवल युद्ध के लिए ही नहीं था, पर प्रजा पर अत्याचार और विदेशियों की दासता, जो कि कष्ट दे रही थी, वह प्रजा में वीर रस के आने के बिना दूर नहीं हो सकती थी, इसलिए सुरतियों में वीर रंग का रंग लगा रहे थे। एक ओर नाम का रस, दूसरी ओर वीर रस। यह एक नया करामाती स्पर्श लग रहा था। ऊँचे आचरण के बिना कोई जीवन, कोई उन्नति, कोई नीति जगत के लिए सुखदाई नहीं हो सकती। इस आदर्श का कलग़ीधर का जीवन कमाल का जीवन है।



१. तवारीख खालसा में लिखा है कि आलसून वाले भीमचन्द के पक्ष के लोग थे और सिक्खों के साथ गुस्सा रखते थे। चाहिए तो यह था कि वे इस समय सहायता करते क्योंकि गुरू जी भीमे की सहायता करके लौट रहे थे, पर वे उलटे हो गए। उन्होंने पहले दो तीन बार संगत को भी लूटा था ओर अब उन्होंने कुबोल बोलकर सिक्खों को खीझ दिलवाई थी। इसलिए दीवान नन्दचन्द ने धावा बोलकर उन्हें ठीक किया था। स्त्रियों, बालकों और वृद्धों को सिखों ने कुछ नहीं कहा था।

१८ खानज़ादा का हल्ला और भगदड़

: १ :

नादौण के युद्ध को फतह करके श्री कलगीधर जी आनन्दपुर आये। आते ही सारे शहर ने स्वागत किया, दीपमाला हुई, नगर ने बधाई के सभी सामान किए। सतगुरू जी ने भी सबको सम्मान दिया, फिर एक ओर सेना को बढ़ाना, युद्ध के सामानों को पहले की अपेक्षा ज़्यादा मात्रा में तैयार करवाना, इत्यादि काम आरम्भ कर दिए गए और दूसरी ओर कथा, कीर्तन, नाम के उपदेश और सत्संग के सभी सामान जोरों में हो गए।

थोड़े से दिनों के पश्चात आनन्दपुर के निवासियों में यह खबर आ पहुँची कि नादौण के राजाओं के दो धड़े हैं। विजय उसे मिली है जिसकी ओर सतगुरू जी थे, पर बाद में यह धड़ा दूसरे धड़े के साथ सुलह करके कर दे आया है। जिससे लोग समझने लगे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि विपक्षी धड़ा इनको ही साथ लेकर गुरू जी पर धावा बोल दे। कई राजा तो सतगुरू जी के पक्ष में रहे, गुरू जी से आकर मिलते भी थे, झुकते भी थे, पर कई कृपाल के पक्ष को अधिक चालबाज़ समझकर दूर रहने लगे थे। इस बात से आनन्दपुर के निवासियों में चिन्ता रहा करती थी, विशेष करके उनमें, जो केवल व्यापार की ख़ातिर वहाँ पर निवास करते थे। ज्यों-ज्यों इस बात का पता चलता था कि किसी समय भी तुर्की धावा हो जायेगा और अलफ खाँ की बेइज्ज़ती का बदला लिया जायेगा, तो यह बेचैनी और अधिक हो जाती थी। इस तरह के भय के कारण बहुत से व्यापारी नगर को छोड़कर चले गए थे। कई एक अपनी श्रद्धा में तत्पर रहे और बसते रहे। जो लोग नगर को छोड़कर चले गए थे, उनके पैर कहीं पर भी न जमे, उनके रोज़गार न चले और तंग होकर वापिस आ गए। वापिस आकर फिर शरण ली और सतगुरू जी से अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगी। कृपालु दाता ने क्षमा किया, उनके घर, मकान, भूमि, सब कुछ लौटा दिया और वे फिर आनन्दपुर में आबाद हो गए।

इसके कुछ दिन बाद सतगुरू जी के घर में माता जीतो जी की कोख से साहबज़ादा ने संवत १७४७ चैतसुदी ७ को जन्म लिया। साहबज़ादा का नाम जुझार सिंघ रखा गया। इसके पश्चात कुछ समय के बाद ज़ोरावर सिंघ का जन्म हुआ।

: २ :

औरंगज़ेब के दक्षिण के झगड़ों के कारण, हलचल की प्रसिद्ध वाले पंजाब प्रान्त में कई बार अशान्ति मच जाती थी। इन हलचलों को दबाने के लिए दिलावर खाँ नामक एक शूरवीर बड़ा नाम कमा रहा था। इसका दबदबा जगह-जगह पर पड़ा हुआ था। नादौण के युद्ध को दो तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे, पर उस हार की लज्जा अभी जीवित थी, और अब फिर ख़िराज रुक रहा था और उसे प्राप्त करना था। इस मामले पर कि खिराज कैसे

प्राप्त हो और सफलता रहे, दिलावर ने अपने अमीर-सलाहकारों को बुलाया और उसके दीवान में विचार शुरू हुआ:–

दिलावर–पहाड़ियों से ख़िराज फिर प्राप्त करना है, क्या योजना बने और कौन जाये?

एक अहलकार–काँगड़े वाला पहले तो बहुत काम में आया था औरं तब से ही भीमचन्द भी हमारे पक्ष में ही लगता है, उधर से ही काम शुरू करना ठीक है!

दूसरा–ठीक तो है पर यदि कुछ राजा अड़ गए और गुरू गोबिन्द सिंघ उधर जाकर मिल गया; तो फिर पहले की तरह बदनामी सहन करनी पड़ेगी। रुपये लेने में भी पहले लगभग आधी सफलता हुई थी और नादौण की हार का टीका भी लगा हुआ है।

दिलावर–ठीक है।

तीसरा अहलकार–भीमचन्द का क्या भरोसा है? न जाने वह हमारे साथ रहता है या दूसरी ओर चला जाता है। वह तो अवसर पाकर इधर-उधर चला जाता है, उसके झुकाव को समझना कठिन बात है। उस पर टेक नहीं रखनी चाहिए। कटोचिया खूब लड़ने वाला है और वह है भी हमारे पक्ष में, सो वह हमारे साथ रहेगा। पर बहुत सोच-विचार करने वाला है, चाहे रणभूमि में कितने ही शूरवीर क्यों न हों, ज़्यादा सोचने वाले युद्ध से दूर ही भागते हैं।

दिलावर–फिर क्या करें?

दिलावर का बेटा–वालिद साहब! पहले मददगार को क्यों न मारा जाये, जिसने अलफ खां को हराया था, जिसका रोब और नाम बढ़ रहा है। पहले उसी को फतह करके और फिर आनन्दपुर में बैठकर सबसे कर उगाह लिया जाये। देखते हैं कि भीमचन्द क्या करता है और पृथ्वीचन्द क्या बल लगाता है?

दिलावर–बहुत खूब! शाबाश! दिलावर के बेटे को तो ऐसे ही दिलावर (साहसी) होना चाहिए, फिर कौन यह बीड़ा उठाता है?

बेटा–यदि आज्ञा हो तो मैं जाता हूँ, एक हज़ार आदमी काफी हैं, बिजली की सी तेजी से एकाएक जाकर झपटूंगा। पहले गुरू से खिराज देने की बात मनवाऊँगा, फिर सबसे लूंगा।

दिलावर–बहुत अच्छा, तुम्हें आज्ञा है, तुम जाओ। आज ही सारी तैयारी शुरू कर दो, जिस बात की कमी हो उसे पूरा कर लो, पर इसकी भनक बाहर न पड़े, कि पहले किधर को जाना है, 'पहाड़ की ओर जाना' यह कहकर चल दो।

बेटा–बहुत अच्छा।

एक और सरदार कहने लगा:–सरकार! यदि बेअदबी के लिए क्षमा करें तो एक अर्ज़ करूँ, पर उसे कायरता न समझा जाये? वह दूरंदेशी की बात है; समय पर बात न कहने का बाद में अफसोस रह जाता है।

दिलावर–कह दो।

जमींदार–गुरू राजा नहीं है और न मुलकगीर ही है, वह एक फ़कीर है। वह ऊँची शान वाला फ़कीर है। तलवार का धनी है, पर अत्याचारी नहीं है, वह किसी से वैर, शत्रुता

नहीं रखता है। गुरू नानक एक सुहलकुल वली अल्लाह (ईश्वर के अवतार) हुए हैं, यह गुरू उनका जांनशीन है वह अलफ खां के विरुद्ध वैर करके नहीं बल्कि भीमचन्द का शरण में पहुँचकर सहायता माँगने की वजह से और वीरता के उसूल के अनुसार आया था। मेरी समझ में उनके साथ बिगाड़ना ठीक नहीं है। उसकी करामत की ताकत और बहादुरी को अपना विरोधी बना लेना उचित नहीं है। इसलिए राजाओं से ही शुरू किया जाना चाहिए।

दिलावर–तुम ठीक कहते हो, पर फ़कीर राज्य के मामलों में हस्तक्षेप क्यों करता है? हमें तो उसको यह पाठ पढ़ाना है कि वह माला से ही अपना वास्ता रखे और तलवार से हाथ को अलग रख दे।

जमींदार–मैंने उसके करतब देखे हैं, वह बड़ा तलवारिया और तीरंदाज़ है, वह बायें हाथ से तीर चलता है तो दायें हाथ वाले तीरंदाज़ों के मुँह मोड़ देता है। चाहे उसके पास अभी सैनिक शक्ति कम है, पर 'चढ़ते चाँद' और 'उठती हुई शक्ति' का सत्कार करना अच्छा है, शत्रुता करना अच्छी बात नहीं है। फ़कीर ने क्यों तलवार पकड़ी है? सोच-विचार कर लीजिए। आं हज़रत (मुहम्मद साहब) भी तो फ़कीर ही थे, फिर तलवार भी चलाते थे और इधर कृष्ण जी फ़कीर ही था, पर शूरवीर भी था।

बेटा–छोड़िये जमींदार जी, जब तक मेरी तलवार की चमक और चिल्ले की ठमक नहीं देखी, तब तक ही सालार है। मेरी तेग़ का चमत्कार तो देखना। मैं तो झपट का कायल हूँ, सोच-विचार में पड़ने से वीरता को सील लग जाती है।...बेशक फ़कीर हों, फ़कीर की तलवार को कुंद कर दूंगा।

दिलावर–शाबाश बेटा! जाओ, अल्लाह तुझे विजय करे। (उस सरदार की ओर देखकर) बेटे का विचार ठीक है। ज़मींदार जी! उठती हुई ताकत को दबा देना चाहिए, ऐसा न हो कि हिन्दियों में दलेरी आ जाये कि हम भी तुर्कों को मार सकते हैं। अब तो हिन्दी मुग़ल पठान के सामने आंख नहीं उठा सकते। (बेटे की ओर देखकर) बेटा जी! यदि गुरू सुलह से मिल जाये तो मौका हाथ से मत खो बैठना। व्यर्थ तलवार न खींचना।

बेटा–बहुत खूब!

: ३ :

आनन्दपुर में गुरू के महलों के सामने एक गुप्तचर आया और कहने लगा:–

अरे भैया आलम सिंघ! पहरेदार भैया!

आलम सिंघ–कहो कौन आ रहा है?

गुप्तचर–मैं मस्सा हूँ।

आलम सिंघ–आ भाई, कोई सुख की बात सुनाया।

मस्सा (पास आकर कान में)–अचानक ही एक तुर्कों का दल उस पार आया है और अब इस पार आने की तैयारी कर रहा है। श्री कल्ग़ीधर जी को जल्दी से जगाकर खबर करो।

आलम ने जाकर श्री गुरू जी को जगा दिया और बताया कि अचानक ही नदी पार तुर्कों का दल आ गया है। मस्सा गुप्तचर ने बताया है कि दल बिना बताये हुए कि वह

किधर को जा रहा है, बढ़ता चला आया है और इधर को आ निकला है। दो घड़ी रात व्यतीत हो जाने के बाद अचानक ही इधर को रुख कर दिया है और वे नदी के किनारे पर आ पहुँचे हैं। अब आनन्दपुर पर छापा मारना चाहते हैं।

श्री गुरू जी–फुर्ती कर, और दूसरे चोबदार को कह दे कि रणजीत नगारे पर ढैय्या चोट लगाये, और तू दौड़कर इधर को आ जा।

जब आलम आया तब आपने आदेश दिया कि नन्दचन्द, दयाराम और तीनों भानजों को इधर जल्दी बुलाओ, हम तैयार हो गये हैं और दीवानखाने जा रहे हैं, सभी वहीं पर आ जायें।

रणजीत नगारे की ढैय्या चोट को सभी जानते थे, कि इसका मतलब होता है कि झटपट तैयार होकर और हथियार बांधकर आ जाओ। शहर वालों को पता चलता था कि कोई खतरा सिर पर आ बना है। सभी सैनिक अपने-अपने शस्त्रों को सम्भालकर तैयार हो जाते थे, अतः पलों में सेनापति और बड़े-बड़े अगुआ हुजूरी में हाज़र हो गये। आज्ञा हुई कि 'यदि सब सूरमे तैयार हैं, तो दलों को बांटकर कूच कर दो, बंदूकें भर लो। हरावल का एक जत्था झटपट बढ़कर वैरी को पार ही रोक ले। तेज़ हवा चल रही है। हमायती (सहायक)[१] नाला चढ़ रहा लगता है और वह भी शत्रु को रोकेगा। रहकले और छोटी तोपों की बाढ़ लगा दो ताकि शत्रु के दल में तहलका मच जाये।

योद्धा तैयार हो चुके थे, व्यवस्था और बांट करके एक जत्था आगे को चला, एक बन्दूकों से प्रथम गोलीबारी करके चल पड़ा और गोलियों की बौछार के बाद बौछार होने लगी, आसमान को गुंजाने वाली धौंसों की धुंकार छिड़ पड़ी:–

अपर मुखी जोधा सभि चाले।। बाजे दुंदभि नादि बिसाले।।
शलखैं छटी तुफंगन केरी।। तड़भड़ भी इकबार घनेरी।।३६।।
गरजे जोधा शब्द उतंगा।। परियो शोर भारो इक संगा।।
निकसे वहिर नगर ते तबै।। शलख तुफंगन की करि सबै।। [सू: प्र:]

इस तरह गोलीबारी करते हुए शोर मचाते हुये आगे बढ़े जा रहे थे। अब शत्रु दल में आवाज़ पहुँच रही थी किले के ऊपर से भी रहकले और तोपों से गोलीबारी शुरू हो गई। इनका शोर और घनघोर शब्द शत्रु के मनों पर प्रभाव डाल रहा था कि यहाँ पर सेना बहुत भारी है और युद्ध करने को तैयार है, प्रत्येक क्षण आवाज़ पास आती लगती थी।

बर्फानी हवा तेजी से चल रही थी, तुर्क दिन के सफर के थके हुए भी थे, पार होने के लिए नदी में पैर रखते ही सुन्न हो जाते थे; उधर से नदी चढ़ आई थी, सर्दी के कारण सूरमों के पैर पंगु होते जाते थे। साथ ही प्रत्येक क्षण इस बात का पता चलता जा रहा था कि गुरू का दल निकट आ रहा है, तोपों के गोलों की आवाज़ कलेजों को दहला रही थी। अतः समझदार लोगों ने रुस्तमखां[२] को सलाह दी कि:–

१. आज रात को इस नाले के चढ़ जाने के कारण और शत्रु को बाधा डालने के कारण गुरू जी ने यह नाम रखा था।

२. तवारीख खालसा के अनुसार दिलावर के बेटे का नाम रुस्तम खाँ बताया गया है।

'गुर के संग जंग को करनो॥ नहिं आछी लखि हुइ अब मरनो॥४३॥
सुन्न भए तन पारे परे॥ शस्त्र न उठहिं ऊच कर करे॥
सरिता बिखै बरहिं जिस काल॥ बिन ही मारे हुइं भट काल॥४४॥
क्यों नाहक देते हो प्राण॥ उत ते पहुंची सैन महान॥
जिस महिं ऊची परी पुकार॥ को जानहि हुई कितिक हजार॥४५॥
छीन लेहिंगे हम हथियार॥ करो सम्मुख रण लेहिं सु मार॥
तुझको भाखहिं सभ अनजान॥ नाहक दये जाए जिस प्रान'॥४६॥
[सूः प्रः रुः २ अंः ४७]

इस तरह के मन्त्र सुनकर खानज़ादा घबड़ाया। उधर से नदी प्रति क्षण चढ़ रही थी। पीछे पहाड़ पर जोरों की वर्षा हुई थी, अब पानी किनारों से ऊँचा होकर फैलने लगा, और पैरों की दुर्गति करने लगा। यह देखकर और भय छा गया कि कुदरत भी गुरू की सहायता कर रही है। चलते समय उन्हें करामाती भी सुना था। सभी बातों को विचारकर ख़ानज़ादा ने वापिस लौटने का आदेश दे दिया। गुरू का दल जब नदी के किनारे आया, तो ख़ानज़ादा का दल दूर निकल गया था। भागते हुओं की कायरता से पता चल रहा था कि शेर की गर्ज और सिंघ के नाद ने ही युद्ध जीत लिया है। सतगुरू जी ने स्वयं इस घटना का हाल संक्षिप्त रूप से इस प्रकार लिखा है:-

छूटन[1] लगी तुफंगैं तबही॥ गहि गहि शस्त्र रिसाने सबही॥
क्रूर भांति करी पुकारा, शोर सुना सरिता के पारा॥४॥

भुजंग प्रयात छंद-
बजी भेरि धुंकार धूंके नगारे॥ महाबीर बानैत बंके बकारे॥
भए बाहु आघात नच्चे मरालं॥ कृपा सिंधु काली गरज्जी करालं॥५॥
नदीयं लखियो काल रात्रं समानं॥ करे सूरमा सीत पिंगं प्रमानं॥
इतैं बीर गर्जे भए नाद भारे, भजे[2] ख़ान ख़ूनी[3] बिनाशस्त्र झारे॥६॥

नराज छंद- निल्लज खान भजियो॥ किनी न शस्त्र सजियो॥
सु तियाग खेत कौ चले॥ सु बीर बीरहा भले॥७॥
चले तुरे तुराए कै। सकै न शस्त्र उठायकै॥
न लै हथियार गज्ज ही॥ निहार नारि लज्ज ही॥८॥

दोहरा- बरवा गांउं उजार कै, करे मुकाम भलान॥
प्रभु बल हमै न छुए सकै, भाजत भए निदान॥९॥
तव बल ईहाँ न पर सकै बरवा हना रिसाए॥
सालिन रस जिम बानियो रोरन खात बनाए॥१०॥

---

१. गुरू जी की सेना का हाल।
२. शत्रु दल का हाल।
३. ख़ान ख़ूनी या ख़ानख़ानी का अर्थ है ख़ान ख़वानीन, स्वयं ख़ंज़ादा तथा दूसरे सभी।

खानज़ादा और उसकी सेना जब भागी जा रही थी तो उसके रास्ते में बरवा नामक एक गाँव आ गया। असफलता के गुस्से के कारण इस गाँव पर जाकर धावा बोल दिया और निर्दोषों और निहत्थे लोगों को मारपीट कर, काट-बाढ़कर लूट लिया। गुरू जी ने इसकी बहुत सुन्दर उपमा दी है कि जैसे बनिये को मांस तो प्राप्त नहीं हो सकता, पर उसके स्वाद के लिये वह पत्थरों की भाजी बनाकर खाता है, वैसे ही इन मूर्खों ने निहत्थे लोगों पर अपना गुस्सा निकाला। खानज़ादा ने यहाँ से चलकर भलान नामक गाँव में जाकर डेरा डाला। दो दिन यहाँ पर ठहरने के बाद और अपनी असफल चढ़ाई को कोई मनघड़ंत बात बनाकर पिता के पास जा पहुँचा और लज्जा के कारण सिर झुकाकर जा बैठा।

गीत[1]

रानी पंजाब कौर[2] कलग़ी वाले के वियोग में-

हे कलग़ी वाले तू सुन! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही हूँ-घोड़े की बागडोर मोड़कर फिर मेरे आंगन में आ जा।

हे सांईं तू सुन! मेरे पुत्र बड़े उलटे हैं, जिन्होंने आप से भारी द्रोह किये हैं, आप पर आई मुश्किल के समय बेदावे लिखकर दे गये थे और उन्होंने किये हुए वचनों को पूरा नहीं किया था;

पर हे बखशने वाले! मैं हाथ जोड़कर विनय करती हूँ कि घोड़े की बागडोर मोड़ कर फिर मेरे आंगन में आ जा।

हे सांईं तू सुन! मेरी मिट्टी बुरी है, जिसने अत्याचारी पैदा किये थे। जो आप जैसों पर चढ़ाई करके आते रहे और फिर विष के प्याले पीकर मरे, उन्हें तेरा पता नहीं लगा था। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना......

तू पापों के लिये क्षमा करता है, जुल्म को सहन करता है और अवगुणों को कभी भी चिंतन नहीं करता। तू बखशने वाला अनोखा दाता है। तू मुँह से क्षमा कर देता है और मन से भुला देता है। तू सदैव कृपालु। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना......

कलग़ी वाले की आवाज़-

हे सुन्दर सुहावनी धरती! तू सुन, मैं तो विष उतारने के लिए यहाँ पर आया था, मैंने अमृत दे-देकर तेरे लालों को जीवित किया है जिन्होंने तेरा मान बढ़ाया है। हे भाग्यशालिनी तू सुन! प्रभु के सामने हाथ जोड़कर और मन को माया की ओर से हटा कर; तू सदैव उसके नाम को जपती रह।

पंजाब कौर-फिर भी हे कलग़ी वाले मैं करबद्ध विनय करती हूँ:-घोड़े की बागडोर मोड़कर फिर मेरे आंगन में आ जा।



१. यहाँ पर पंजाबी गीत का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।
२. अर्थात् मद्र देश (पंजाब) की धरती।

१९ हुसैन का युद्ध

: १ :

जब दिलावर खाँ ने खानज़ादा की हार की खबर पुत्र के मुँह से सुनी तब दाँत पीसकर इधर-उधर देखने लगा। उस समय दिलावर खाँ का एक गुलाम, जिसे उसने बचपन से पालकर सेना में अहुदेदार बनाया था, मद में आकर बोला कि–"यदि मुझे सेना मिल जाये तो मैं जाकर आनन्दपुर को लूट लूँगा, पहाड़ी राजाओं से कर वसूल करूँगा और यदि कर नहीं देंगे तो पहाड़ी राजाओं के सिर नेज़े में पिरोकर हाज़िर करूँगा।"

दिलावर–शाबाश! तेरे साथ दो हज़ार सूरमों की सेना भेजता हूँ।

हुसैन–बस काफी है, इतनी सेना से ही मैं आपको बताऊँगा कि मैं क्या कुछ कर सकता हूँ।

दिलावर–तू बहुत बहादुर है, पर गुरू भी बड़ा शूरवीर है, उसे फतह करना कोई खेल नहीं। अलफ खाँ आँखों से देख आया है, आमने-सामने लड़कर नादौण में तजुर्बा करके आया है। मेरी सलाह है कि इसे भी तेरी सेना में तेरे साथ भेज दूँ, इसकी जानकारी सहायक सिद्ध होगी। क्यों अलफ खाँ?

अलफ खाँ–जैसे हुजूर की आज्ञा है, मैं हाज़िर हूँ।

हुसैन–बहुत अच्छा है।

दिलावर–किसी दूसरे सरदार को भी साथ भेजूँ?

हुसैन–बस काफी है।

अलफ खाँ–सेना को जितना मजबूत बनाकर भेजो, उतना ही अच्छा है। एक तो गुरू भारी सूरमा है, नादौण के युद्ध में उसके बायें हाथ से चलने वाले तीर भी निशाने पर बैठते थे और हमारे कितने ही सूरमा, अहुदेदार इन बायें हाथ के तीरों से मारे गये थे। दूसरा खाँ साहब! कुछ करामात भी है।

हुसैन–तलवार के आगे करामात क्या वस्तु है?

अलफ खाँ–पर वहाँ पर केवल करामात ही तो नहीं है, तलवार भी है। तलवार से तलवार बजती है और करामात अलग से अपना असर करती है।

दिलावर–अलफ खाँ! पहले से ही दिल को छोटा करके मत चलो।

अलफ खाँ–दिल को छोटा करने की बात नहीं है, आपने कहा था कि कहो तो और सरदारों को साथ भेज दूँ? और मैंने कहा था कि सेना को जितना तगड़ा बनाकर चलोगे उतना ही अच्छा है, शत्रु तगड़ा है, हम जायें और हार खाकर न आयें। बाकी डरने वाली क्या बात है, मलाहों की कब्र तो हमेशा पानी में ही होती है और सूरमों ही हमेशा खून में होती है। जब मरना ही निश्चय कर लिया तो फिर डरने की क्या बात है?

दिलावर–सोच में पड़ गया। काफ़ी देर के बाद बोला:–अलफ खाँ ठीक कहता है। जायें चाहे हिरण के शिकार को, पर तैयारी शेर के शिकार की करनी चाहिए। मैं नूरपुर के राजा चन्दन सिंघ, शमशेर खाँ और कृताराम आदि रईसों[१] को पत्र भेजता हूँ और वे भी तुम से आकर मिलेंगे। इस से एक तो शक्ति बढ़ेगी, दूसरी सलाह मशवरे में सहायता मिलेगी, तीसरे यदि हिन्दू रईस साथ हुए तो हिन्दू राजाओं में आपसी फूट डालने और शरण में ले आने के काम मे अच्छे सिद्ध होंगे।

हुसैन–बहुत अच्छा! जैसी आज्ञा।

अलफ खाँ–बहुत ठीक है। काँगड़े के राजा (कटोचिया) से मेरी अच्छी जान पहचान है, यदि आज्ञा हो तो उसे पत्र लिखूँ कि हमें आकर मिले और भीमचन्द को भी साथ मिलाने का प्रयत्न करे। ऐसा न हो कि भीमचन्द गुरू जी के साथ जाकर मिल जाय। नादौण वाले युद्ध से ही उसका गुरू जी से मेल चल रहा है। हाँ, पर जब भीमचन्द ने हमारे साथ चोरी-चोरी सुलह कर ली थी तब गुरू जी ने इसे पसन्द नहीं किया था। चाहे भीमचन्द ऊपर से उनके साथ मित्रता दिखा रहा है, पर जब कटोचिया उसे बतायेगा कि यह युद्ध गुरू जी के साथ हो रहा है, जो वह स्वार्थ आगे रखकर, मुझे निश्चय है, कि हमारे साथ आकर मिल जायेगा। यों रोब पड़ने पर राजा, राणा, छोटे बड़ी सभी हमारी शरण में आ जायेंगे और यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि गुरू जी भी इतनी शक्ति से अड़ना पसन्द न करें।

दिलावर–बहुत खूब! अलफ खाँ! तू बड़ा शतरंजबाज़ है, तेरी चालों का दबदबा प्रत्येक ओर है। हुसैन तेरी राय से लाभ उठाता रहेगा।

हुसैन–जिस तरह आप कहेंगे, मैं करूँगा। पर मैं अधिकतर तलवार पर भरोसा रखता हूँ और यह समझता हूँ कि भय कायम करके जोर-जुल्म से काम जल्दी बनता है।

दिलावर–ठीक है, प्यार बड़े काम बनाता है पर मौला बख्श (सोटा) सभी काम ठीक करता है और अक्ल की चोंच तो पत्थरों को भी फोड़ देती है।

हुसैन–दुरुस्त! अलफ खाँ मेरे साथ मेरा मुख्य सलाहगीर बनकर रहेगा। हमको तो काम पूरा करना है जैसे भी पूरा हो।

दिलावर–मुंशी! सबको परवाने (पत्र) लिख दो, जिनके नाम अब लिये हैं। हमारी ओर से लिख दो कि सभी हुसैन से आकर मिलें। कटोच और भीमचन्द की चिन्ता अलफ खाँ स्वयं करेगा।

: २ :

हुसैन सेना को और सरदारों, रईसों को साथ लेकर चल दिया। यह व्यक्ति बड़ा अत्याचारी[२] था। अतः पहाड़ी दूतों के इलाके में घुसते ही ज़ोर-जुल्म करने पर उतर पड़ा। रास्ते में जो कोई भी रईस, राव, राणा, आया या तो उससे जुर्माना लिया अथवा उसे मारपीट

१. अलफ खाँ, चन्दन सिंह, नूरपुर वाला राजा, शमशेर खाँ, कृताराम रईस आदि को अपनी-अपनी सेना सहित उसके साथ भेजा गया था।

२. तवारीख खालसा।

कर बर्बाद कर दिया। रास्ते में जो गाँव तनिक प्रसिद्धि वाले नज़र आये उन सबको लूट-लाटकर आगे को चलते बने। जब डढ़वाल पहुँचे, तब राजा ने मुकाबला किया और अकेला होने के कारण हार गया और शरण में आकर प्राणों को बचाया। अलफ खाँ के लिखने पर और प्रतिदिन की मार-पीट और सफताओं के समाचार सुनकर कृपाल कटोचिया भी आ मिला और थोड़ी-सी अपनी सेना को भी साथ लाया। इससे शक्ति और बढ़ गई। अब अलफ़ खाँ ने भीमचन्द को साथ मिलाने की जो योजना बनाई थी वह क्रियान्वित होने लगी। चाहे सतगुरू जी के साथ भीमचन्द की संधि हो चुकी थी कि दोनों ओर से एक दूसरे को फौजी कुमुक भेजा करेंगे, अभी हाल ही में नादौण के युद्ध में गुरू जी ने उसे कुमुक पहुँचाकर उसके धन, धाम और सम्मान की रक्षा की थी, पर अब समय पाकर भीमचन्द धर्म से हार गया और गुरू जी की सहायता के लिये जा खड़े होने के स्थान पर उन पर आक्रमण करने वालों के साथ जाकर मिल गया। यह था उस समय के हिन्दू शूरवीरों का धर्म जो कि समय आ पड़ने पर केवल सहायता देने से इन्कार ही नहीं करते थे, बल्कि विदेशी शत्रुओं के साथ मिलकर अपने ही लोगों के शत्रु बनकर मारने के लिये चल देते थे।

जब इतनी सेना इकट्ठी हो गई, तब पहाड़ी राजाओं, राणों, दून के रईसों और रावों आदि पर भय छा गया। एक-दूसरे से आगे बढ़कर ख़िराज देने लगे और अधीनता मानने लगे। जिन-जिनकी ओर कर काफी इकट्ठा रह रहा था और काफी समय से जिन्होंने दिया नहीं था, वे सब अब सारा कर चुका रहे थे।

: ३ :

साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी! तलवार के धनी आनन्दपुर में अपने गोपन कक्ष में बैठे हैं और अपनी सेना के बड़े अधिकारियों से विचार कर रहे हैं। इस समय माता जी, कुछ मुखिया मसन्द और तीनों शूरवीर भानजे आ गये। माता जी ने हुसैन के आक्रमण का हाल कह सुनाया और कहा कि वह भारी सेना साथ लेकर आ रहा है, भीमचन्द भी उसके साथ जाकर मिल गया है। आपने अभी तक कोई तैयारी नहीं की है और यदि तैयारी कर भी लेते तो हमारी सेना थोड़ी है, मुकाबिला करना कठिन है, इसलिए यह अच्छा होगा कि किसी स्याने मसन्द को भेजकर हुसैन के साथ सुलह कर ली जाय, अथवा कोई ऐसा ढंग निकाला जाय जिससे युद्ध न हो और आनन्दपुर का नगर सुख से बसे।

गुरू जी—माता जी! घबड़ाने की कोई बात नहीं है, मैं अपना काम स्वयं नहीं कर रहा हूँ, जिसका यह काम है वह स्वयं अपने काम को पूरा कर रहा है। वह अकाल पुरुष इस समय आप रक्षा कर रहा है और उसने हुसैन को यहाँ तक पहुँचने ही नहीं देना। हुसैन आनन्दपुर पहुँचने से पहले ही तबाह हो जाएगा। मसन्दों को घबराहट होती है, वे सच्चे हैं, उन्हें युद्ध लड़ाई का कोई ज्ञान नहीं है। वे अपनी ओर से मेरी भलाई की चिन्ता करते हैं पर वे इस बात को नहीं देख सकते कि मैं आराम करने के लिये नहीं आया हूँ, मैं तो दुखी जगत के दुखों को दूर करने के लिए आया हूँ, अपने सिर पर बला लेकर दूसरों की बलाओं को टालने के लिए आया हूँ।

नन्द चन्द–आपके वाक्य सत्य हैं, सदैव सत्य होंगे, मगर सांसारिक रीति है कि समय से पहले कुछ चिन्ता कर लेनी चाहिए। मुगल राज्य दोपहर का सूरज है, इस समय इसके साथ न बिगड़े तो अच्छा है। यह सुनकर गुरू जीः–

गरजे सभी बीच बल भारी, "हम इनकी जड़ देइं उखारी।
राज प्रताप दूर सभ जैहै।। नहीं नगारबन्द को ह्वै है।।११।।
धन गन छीनहिं रंक बनावहिं।। निज दासन को राज वधावहिं।।
जे गुलाम ले दल समुदाई।। आइ करै हम संग लराई।।१२।।
इम रण करहिं उपावहिं त्रासा।। हथियारन ते होइ बिनासा।।
खड़ग केत के कौतक पिखो।। कहाँ करत है? सुख सों लखो।।१३।।
अपर थान ही मर करि रहै।। हमारी नहिं समीपता लहै।।
घटा समान बनावत आवै।। काल करम को करम न पावै।।१४।।
बायु मनिन्द उडाय खपावैं। पिखिन रहे कित सुनिय न जावै।।
तऊ नन्द चन्द! सुनीअहि कान।। रण समाज करि बनि सवधान।।१५।।
गुलकां गन बरूद बरतावो।। सुध को रखो जसूस पठावो।।
सरब प्रकार धारि तकराई।। आवहि रण कर हैं अगुवाई'।।१६।।

[सूरज प्रकाश रुः २ अंसू ४८]

गुरू जी के गर्जन भरे पर गंभीर वाक्यों को सुनकर माता जी को तो निश्चय हो गया, वे जानती थी कि जो वाक्य गुरू जी के मुँह से निकलते हैं वे सदा सत्य होते हैं। अतः वे दिल से मान गईं कि हुसैन आनन्दपुर पहुँचने से पहले ही मर मिट जायेगा। नन्दचन्द को तसल्ली हो गई कि तैयारी की आज्ञा हो गई है। वह यदि आ भी गया तो हमको निहत्थे लोगों की भांति तो आकर नहीं मार लेगा, मगर मन में चिन्ता बनी रही कि न जाने युद्ध का रंग कैसा हो पर वीरता वाली तैयारी के लिए मन मे उद्यम और उत्साह भी था। तीनों भानजे वीर थे और वे युद्ध करने के लिए तैयार थे। यह भी जानते थे कि वैसे तो सभी वाक्य सदैव सत्य होते हैं पर जब कभी गुरू जी इस प्रकार के वाक्य गर्जभरी आवाज़ में निकाला करते हैं, तो वे वाक्य ब्रह्मस्त्र की भांति अचूक हुआ करते हैं। पर दूसरे मसन्द निराश होकर उठकर चले गये, क्योंकि उनका ध्यान इस बात पर लगा रहता था कि समाज बना रहे, चलता रहे, इसमें कोई विघ्न न पड़े और उन्हें कोई कष्ट न हो।

चतुर सिंघ नामक बैराड़ गुरू जी का एक गुप्तचर था। सारा प्रबन्ध करके इसे भेज दिया गया कि जाकर सारे हालात का पता करके हर रोज़ के समाचार भेजता रहे। तवारीख़ ख़ालसा में लिखा है कि चतुर सिंघ फारसी, पश्तो और पहाड़ी भाषाओं को अच्छी तरह जानता था। यों आनन्दपुर में समाचार पहुँचने और शत्रु के धावा बोल देने पर आगे से मुकाबिला करने की तैयारी हुई।

मसन्दों के चले जाने के पश्चात् सतगुरू जी ने सारी तैयारी और व्यवस्था के बारे में अपने सेनापति के साथ भिन्न-भिन्न पहलूओं पर विचार विमर्श किया।

इससे कुछ दिनों के पश्चात् चतुर सिंघ द्वारा भेजी गई खबर आई कि हुसैन का दल अब गुलेर को पराजित करने पर उतर पड़ा है। यदि गुलेर इससे मिल गया तो फिर

आक्रमण आनन्दपुर पर होगा अन्यथा हुसैन पहले गुलेर की ओर रुख करेगा और बाद मे आनन्दपुर की ओर चलेगा। गुप्त खबर यह भी है कि गुलेर के घर में भी युद्ध की तैयारी है, पर वह कुछ रुपये देकर बला को टालने के लिए भी तैयार है। भीमचंद कटोचिया बीच में पड़े हुए हैं और साथ यह भी कि गुलेरिया कुछ आप पर भी आशा लगाकर बैठा है और उसका कोई आदमी आपके पास भी आएगा।'

: ४ :

हुसैन अपने बड़े शामियाने के नीचे बैठा है, उसके सैनिक, अहुदेदार और राजा आये हुए हैं और गुलेर के बारे में विचार हो रहा है। इतने में हुसैन की ओर से लिखे गए पत्र का उत्तर आ गया। जब पत्र को पढ़ा तो उसका भाव यह था की गुलेरिया राजा 'गोपाल' युद्ध करने को तैयार नहीं है। हाँ, यथा शक्ति कर लेकर हाज़िर होने को तैयार है, यदि आज्ञा हो तो आ जाय। हुसैन ने ग़नीमत जानकर हाँ कर दी। एक और राजा गुलेरिया राजा गोपाल का अच्छा मित्र था, जिसका नाम राम सिंघ था। यह राम सिंघ बड़ा शूरवीर व्यक्ति था, ये दोनों हुसैन से मिलने के लिए आए और अपने साथ कर के रूप में कुछ धन भी लाये। मुलाकात के पश्चात गुलेर ने धन पेश किया।

हुसैन–राजा साहब, आपकी ओर सारे खिराज का बहुत-सा रुपया बाकी है, यह धन जो आप लाये हैं, वह थोड़ा है।

राजा–यह सच है, पर कुछ समय अकाल-सा पड़ा रहा है, कर ठीक तरह नहीं उगाहे गए हैं, आप इतना ही स्वीकार कीजिए। मैं आपके पास चलकर आया हूँ।

हुसैन–यह बात ठीक है, पर शाही खिराज में से मैं कैसे कुछ छोड़ सकता हूँ।

कटोचिया–दस हजार की राशि शेष है।

राम सिंघ–हजरत सलामत! है तो ठीक, यदि आप छूट नहीं दे सकते तो किश्त कर लीजिए, राजा साहब शनैः शनैः भेज देंगे।

कटोचिया–यह नहीं हो सकता।

हुसैन–प्रतिदिन कौन धावा करके आता है। जब से हज़रत दीन पनाह दक्षिण को गए हैं तब से तुम लोग सीधे हाथों से खिराज देते ही नहीं हो। अभी इकट्ठा ही दे दो तो ठीक है।

गुलेर–यदि दे न सकें तो क्या करें?

कटोच–यह टालमटोल की बात है। गुलेर के किले में काफ़ी धन है (हुसन की ओर देखकर) राजा साहब अमीर है। आपके गुलेर पहुँचने की देर है, कर स्वयं चलकर आयेगा।

हुसैन–राजा गोपाल! या तो सारी रकम दे दो, या लड़ाई करो। शेष बहस में क्यों समय व्यर्थ खोया जाय। मुझे जल्दी आनन्दपुर पहुँचना है।

राम सिंघ और गोपाल ने आपस में एक गुप-सा संकेत किया। उधर हुसैन और कटोच कानों में कुछ घुर-घुर कर रहे थे कि गोपाल ने अपने दासों से थैलियाँ उठवाईं और कहा दो दिनों का अवसर दीजिए, फिर मैं सारी रकम इकट्ठी करके हाज़िर होऊँगा। यदि आपको कोई छूट नहीं देनी, किश्त की बात भी नहीं माननी, तो मुझे तो हार माननी ही है। दो दिनों के अन्दर सारी रकम लेकर हाज़िर हो जाऊँगा।

कटोचिया–ठीक है राजा साहब! समय की नीति यही है सारा धन दीजिए और साथ आकर मिल जाइए, फिर साथ चलकर आनन्दपुर की दीवारों पर युद्ध का रंग देखिए, काहे के लिये अपने घर में आग लगाते हो, आग में पड़ोसियों की अटारी के ऊपर बरसते हुए देखिये।

हुसैन–बहुत खूब, राजा साहब गुलेर! आप दाना हैं, हमारा कहना मान लिया है, हम आप पर बहुत प्रसन्न हैं।

गुलेर सबका धन्यवाद करता हुआ अपने मित्र राम सिंघ सहित थैलियाँ उठाकर घर को चल दिया।

बाद में हुसैन को पता चला कि गोपाल तो घर को चला गया है और उसे खिराज की सारी रकम लेकर नहीं लौटना है। वह तो चतुराई से अपने प्राण और धन को बचाकर ले गया है और यदि मैं युद्ध करना चाहूँ तो वह युद्ध भी करेगा। हुसैन स्वभाव से तेज और अधीर था, उसने कोई दूरंदेशी की बात न सोची। झटपट अपना रास्ता बदलकर गुलेर के इर्द-गिर्द जाकर घेरा डाल दिया और नाकाबन्दी कर ली।

गुलेर को घेरे में पन्द्रह पहर गुजर गए। उसकी सेना उसे तंग करने लगी कि उन्हें बाहर जाकर एकदम हाथों-हाथ युद्ध करके और लड़कर मरने की आज्ञा दी जाये। उधर राजा ने अपने दूतों को गुरू जी की सेवा में सहायता के लिये भेज रखा था, इधर शत्रुओं की ओर दूत भेज रखे थे और दोनों ओर से प्रतीक्षा की जा रही थी। पहला उत्तर हुसैन की ओर से आया कि यदि दस हजार रुपये नकद[१] दे दो तो सुलह हो सकती है अन्यथा नहीं। तवारीख खालसा में लिखा है कि गुरू जी ने तीन सौ सवार, चार सरदार, लालचन्द, गंगाराम, अघड़ी बैराड़, भाई संगतीये[२] की कमान में देकर कुमुक के लिये भेज दिये। फिर तो गुलेरिये के मित्र, रिश्ते-नाते वाले राजा, राणा भी अपनी-अपनी सेना को लेकर गुलेर में आ गए।

हुसैन तो उसी तरह अकड़ में और दमखम में था, पर भीम चन्द और कृपाल चन्द चालाक थे। वे समझते थे कि कुमुक बढ़ गई है और गुरू जी की सेना आ गई है, अब गुलेर को मारना आसान नहीं है। उन्होंने सोचा कि कोई दंभ रचा जाय, जिससे लड़ाई की जोखिम न लेनी पड़े। इसलिये वे संगतीयआ सिंघ से जाकर मिले और उससे कहा कि राजा गोपाल व्यर्थ युद्ध करता है, तुम उसे समझाओ और अपने साथ लेकर हमारे डेरे पर आ जाओ, यहाँ पर हम भी उसे समझाएंगे, इस तरह से सुलह हो जायेगी। संगीतआ सिंघ जानता था कि ये लोग दाव घाव करते हैं। उसने दोनों राजाओं से अपने-अपने धर्म की सौगन्ध खाने को कहा, तब बीच में आने की बात को माना। संगीतआ सिंघ को गुरू जी की आज्ञा थी कि प्रत्येक तरह से राजा गोपाल का भला करना है। अतः इस अवसर पर इसमें राजा की भलाई समझकर उसने सुलह का दूत बनने की बात को मान लिया और राजा गोपाल ने इस समय बोझ संगतीए पर डाला और उसने मान लिया कि यदि तुम्हारी

१. बचित्र नाटक।

२. गुरू जी ने यों लिखा है:–'सिंघ संगतीआ तहां पठाए'
इससे पता चलता है कि नाम संगतीआ सिंघ था।

आपस में सुलह न हुई तो तुझे वापिस डेरे पर पहुँचा दूँगा और गुरू की कृपा द्वारा युद्ध में ऐसी कला का खेल होगा, जिससे तेरी विजय होगी।

जब संगीतआ सिंघ के साथ राजा गोपाल, भीमचन्द और कृपाल के डेरे पर पहुँचा तो बहुत बातें हुई। भीमचन्द और कृपाल दोनों ने उसे हर तरह से डराया कि हुसैन जबरदस्त है और तेरी कुशलता इसी में है कि तू दस हजार रुपये देकर सुलह कर ले। पर गोपाल ने कहा यदि मुझे इतनी रकम देनी होती तो पहले दिन ही दे देता। मैंने तो जो कुछ कहा है, वही कुछ देना है अन्यथा लड़कर मरूंगा। जब इस तरह की बातचीत से भीमचन्द और कृपाल ने भाँप लिया कि गोपाल तो मानने नहीं लगा है और अपनी नई कुमुक के आ जाने पर डटकर युद्ध भी कर सकता है तब आपस में संकेत करके लड़ाई करने और गोपाल को पकड़कर बंदी बना लेने अथवा यदि आगे से डटे तो मार देने की ठान ली। पर इनके संकेतों से गोपाल ने भी कुछ ताड़ लिया था, अतः संगीतआ सिंघ से कान में कहने लगा कि तुम मुझसे वायदा करके लाये थे और अब यहाँ पर यह उलटा काम करने लगे हैं। तब संगीतआ सिंघ ने कमाल की फुर्ती दिखाई। दोनों राजाओं के संकेतों के क्रियान्वित होते-होते अपने सैनिकों की ओट में गोपाल को लेकर निकल गया और सबको चकित और निराश करते हुए गुलेर में जा घुसा[१]। गुरू जी ने इसका हाल स्वयं इस प्रकार लिखा है:-

तिन के संग न उनकी बनी।। तब कृपाल चित मों इह गनी।।
अैसि घात फिरि हाथ न अैहै।। सबहूँ फेरि समो छलि जैहै।।१४।।
गोपालै सु अबै गहि लीजै।। कैद कीजीअै कै बध कीजै।।
तनक भनक जब तिन सुन पाई।। निज दल जात भयो भट राई।।१५।।

अब हुसैन के लिये युद्ध के सिवाय और कोई चारा नहीं था। सालिसी से फैसला करने के अवसर अब हाथों से खो चुका था और कपट करके अथवा पकड़कर मार देने का दाव भी चुक गया था, अतः युद्ध छिड़ गया। दूसरी ओर से भी जूझने के लिये बाजे बजने लगे। सेनाएं मैदान में आ उतरीं। एक ओर तो हुसैन, राजा कृपाल चन्द और भीमचन्द की सेनाएं है और दूसरी ओर गोपाल, राजा राम सिंघ और संगीतआ सिंघ आदि सूरमा हैं। दोनों ओर से घोर संग्राम मचा। गुरू जी ने इस युद्ध का समाचार स्वयं इस प्रकार लिखा है:-

जब गयो गोपाल।। कुपियो कृपाल।।
हिंमत हुसैन।। जुंमै लुझैन।।१६।।

त्रिभंगी छंद-

कुपियो कृपालं सजि मरालं बाह बिसालं धरि ढालं।।
धाये सभ सूरं रूप करूरं चमकत नूरं मुख लालं।।
लै लै सु कृपाण बाण कमाणं सजे जुआणं तन ततं।।
रणि रंग कलोलं मार ही बोलं जनु गज डोलं बन मतं।।२५।।

---

१. तवारीख खालसा-'तो संगतीआ सिंघ, अपने तीन सौ सिपाहियों सहित तलवारें खींचकर खड़ा हो गया और गोपाल चन्द को झटपट अपनी सेना में ले आये।'

भुजंग छंद–

तबै कोपीयं कांगडेसं कटोचं।। मुखं रक्त नैनं तजे सरब सोचं।।
उते उठीयं खान खेतं खतंगं।। मनो बिहचरे मास हेतं पिलंगं।।२६।।
बजी भेरि भँकार तीरँ तड़वके।। मिले हथि बथँ कृपाणँ कड़क्के।
बजे जँग नीसाण कथे-कथीरं।। फिरै रुँड मुँडँ तनँ तच्छ तीरं।।२७।।
उठै टोप टूकं गुरजै प्रहारे।। रुले लुत्थ जुत्थँ गिरे बीर मारे।।
परै कटीयं घात निरधात बीरं।। फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं।।२८।।
बही बाहु आघात निरधात बाणं।। उठै नद नादं कड़क्के क्रपाणं।।
छके छोभ क्षत्री तजै बाण राजी।। बहे जाहि खाली फिरैं छूछ ताजी।।२९।।
जुटे आप मैं बीर बीरं जुझारे।। मनो गज जुट्टे दंतारे-दंतारे।।
किधो सिंघ सो सारदूलं अरुझे।। तिसी भांति किरपाल गोपाल जुझे।।३०।।
हरी सिंघ धायो तहाँ एक बीरं।। सह देह आपं भली भाँति तीरं।।
महाँ कोप कै बीर बृंदं संधारे, बडो जुधकै देव लोकं पधारे।।३१।।
हठियो हिम्मतं किस्मतं लै कृपानं।। लए गुरज चल्लं सु जल्लाल खानं।।
हठे सूरमा मत जोधा जुझारं।। परी कुट्ट-कुट्टं उठी शस्त्र झारं।।३२।।

इस तरह से दोनों ओर से युद्ध हुआ और कोई सुधबुध न रही। एक ठिकाने पर हुसैन आगे बढ़कर लड़ा, इस पर ऐसा जोर पड़ा कि कुछ मत पूछिये। जसवालिया सेना लेकर इस पार जा झपटा। सूरमा ने इस तरह से मार-मारी कि हुसैन को भी होश आ गया। फिर इस तरह से काट-बाढ़ हुई कि हुसैनी अकेला ही रह गया:–

परयो घोर जुद्धं सु सैना परानी।। तहाँ खां हुसैनी मंडियो बीर बानी।।
उतै बीर धाये सु बीरं जस्वारं।। सबै बिउँत डारे बगासै असवारं।।५०।।
तहाँ खां हसेनी रहियो एक ठाढं।। मनो जुद्ध खंभं रणं भूमि गाडं।।
जिसे कोप कै कै हठी बाणि मारियो।। तिसै छेद कै पैल पारै पधारियो।।५१।।
सह बाण सूरं सबै आण ढूके।। चहूँ ओर ते मार ही मार कूके।।
भली भाँति सों अस्त्र अउ शस्त्र झारे। गिरे भिसत को खां हुसैनी सिधारे।।५२।।

जब हुसैनी मारा गया, तब कटोचिया तो और ज्यादा गुस्से में आकर लड़ा, पर हुसैन की कुछ सेना भाग गई।

कोप कटोच सबै मिलि धाए।। हिम्मत किस्मत सहित रिसाए।।
हरी सिंघ तब किया उठाना।। चुनि चुनि हने पखरिया जुआना।।४५।।

कटोच की ओर से यह बड़ा जोरदार आक्रमण था। वह जिस ओर भी गया उसी ओर को मारता हुआ चला गया।

इसी हमले से संगतीआ सिंघ अपने सात सवारों सहित एक घेरे में आ गया। वह सूरमा इस तरह से डटकर लड़ा कि हल्ला करने वालों को चकित कर दिया, पर बहुत से सैनिकों के घेरे में आ जाने के कारण निकल न सका। अंत तक सात जवानों सहित अत्यन्त शूरवीरता से लड़ता हुआ, मारता हुआ और रण-विद्या के कमाल दिखाता हुआ शहीद हो

गया। पर इस घमासान युद्ध के समय दूसरी ओर के हिम्मत खाँ तथा दूसरे सरदार भी मारे गये। कचोटी कृपाल भी कत्ल हो गया। कीमत खाँ भी चल बसा। यों जब सारे सरदार और राजा कृपाल, हुसैन सहित सभी मारे गये, तो कहलूरिया अपनी सेना को सँभालता हुआ एक ओर खिसक गया। उधर फतह के नगारे बजने लगे।

तवारीख खालसा में लिखा है कि गुरू का योद्धा अघड़ी बैराड़ दस सवारों सहित इस युद्ध में शहीद हो गया। गोपाल के पक्ष वालों में से राज़ा पृथीचन्द, राणा रामचन्द और अमरदास भी मारे गये। हुसैनी की ओर से स्वयं हुसैनी, हिम्मत, किस्मत, सरदार शमशेर खाँ, दलेर खाँ, राजा कृपाल और हरीचन्द आदि मारे गऐ। एक हिम्मत कोई राजपूत भी लगता है जिसने सारा झंझट खड़ा किया था, वह घायल होकर पड़ा हुआ था, जिसे जीवित छोड़कर जाना अच्छा न समझकर गोपाल ने मार दिया।

तह घाइल हिम्मत कह लहा। रामसिंघ गोपाल सिउं कहा॥६७॥
जिन हिम्मत अस कलह बढ़ायो॥ घायल आज हाथ वहि आयो॥
जब गोपाल ऐसे मुनि पावा॥ मारि दियो जीयत न उठावा॥६८॥

राजा गोपाल अब फतह का नगारा बजाता हुआ आनन्दपुर में आ गया तो गुरू जी के हुजूर दरबार में हाज़िर हुआ और भेंट आगे रखकर सीस झुकाकर लाख-लाख बार धन्यवाद करने लगा और कहने लगा कि पहले आपके शूरवीरों ने मेरी सहायता की थी। फिर अपनी जान को जोखिम में डाला और सहायता करके निकालकर ले आये। फिर युद्ध में सहायता की और ऐसी शूरवीरता से लड़े कि महिमा नहीं की जा सकती। आपके सत्तरह जवानों और दो सरदारों ने वीरगति पाई, उनका मुझे बहुत ही शोक है। यह सारी फतह आपकी कृपा से, आपकी सहायता से, आपके इस आदर्श को देखकर हुई है, कि हमें साहस नहीं छोड़ना चाहिए। हम वैसे ही डरकर आन शान को खोकर दूसरों की जाकर शरण लेते हैं। यदि आपकी सहायता हो और हम मुकाबले के लिए डट जायें तो अवश्य ही सफलता मिलती है।

गुरू जी ने बहुत प्यार किया, और आशीर्वाद दिया और कहा कि युद्ध, सुलह, व्यवहार अथवा सेवा, सरदारी अथवा अगुवाई जो कुछ भी आ बने सब में सच्च पर टिककर शूरवीर रहना चाहिये। अन्तरात्मा में लौ और व्यवहार में सच को धारण करके फिर काँपना नहीं चाहिये, इसी से इहलोक परलोक सफल होते हैं।

इस युद्ध का समाचार बताते हुए सतगुरू जी ने अंतिम पंक्तियाँ स्वयं इस प्रकार लिखी हैं।

जीत भई रन भयो उझारा॥ स्मृति करि सभं घरो सिधारा॥
राखि लियो हमको जगराई॥ लोह घटा अनतै बरसाई॥६९॥

[बचित्र नाटक अध्याय ११]

सूचना—अब जब हुसैनी के साथी भी हार खाकर लाहौर पहुँचे, तब फिर और सेना लाहौर से आई और जुझार सिंघ हांडा आदि बहादुर राजपूतों को साथ ले लिया। जसवालियों के राज्य में इनका पहाड़ियों के साथ युद्ध छिड़ गया और शाही सेना की हार हुई। तवारीख

खालसा में लिखा है कि एक छूत का रोग भी फैल गया अतः सारी सेना इस रोग के बहाने से वापिस लौट आई। पंजाब के पहाड़ों का इस तरह का हाल सुनकर औंरगज़ेब ने अपने पुत्र मुअज़्ज़म को भेजा। शाहज़ादा आप तो लाहौर को चला गया और एक मनसबदार और कुछ सेना को इस ओर भेज गया। इस व्यक्ति ने राजाओं के साथ लड़ाई करने से पहले और गुरू जी पर आक्रमण करने से पहले गुरू जी से मिलकर बातचीत करना ठीक समझा। मुलाकात में उन्हें पूर्ण ईश्वरीय जलाल वाले साईं के लोग, सच पर खड़े हुये समझ कर आपका पक्ष लेने के लिए तैयार हो गया। गुरू जी के साथ युद्ध न किया और उधर कुछ नीति लगाकर, कुछ भय देकर, कुछ थोड़ा सा लड़कर काम निकाल लिया ओर कर लेकर चला गया।

पहाड़ी राजाओं ने फिर लाहौर अपने व्यक्ति भेजकर बहलाकर पास से रुपया देकर दलेल खाँ के नेतृत्व में एक आक्रमण आनन्दपुर पर करवा ही दिया। अचानक धावा बोलकर आधे आनन्दुपर को लूट लिया। सिख जान की बाजी लगाकर लड़े, पर आधे शहर के लूट जाने के बाद सिख ऐसे क्रोध में भरकर टूट पड़े कि शेष का आधा नगर बचा लिया और शत्रु दल को आगे न बढ़ने दिया। शत्रु इस सफलता को फतह बताकर लौट गये और पाँच कोस पर जाकर डेरा डाला और फिर भोग विलास में लग गये। सिख अचेत नहीं थे, जब शान्ति हुई तो धावा बोलकर चुपके से चढ़ाई कर दी और ऐसा दबाया कि शत्रु उठकर भाग निकले और लूट का सारा माल वहीं पर छोड़ गये। शाहज़ादा मुअज़्ज़म पेशावर से होकर लाहौर पहुँच चुका था, सूबे ने उसके पास शिकायत की, पर शाहज़ादा को उसके मुख्य मुंशी नन्दलाल ने गुरू जी की आध्यात्मिक शक्ति का समाचार बताया, जिसको सुनकर शाहज़ादा ने और धावा करना बन्द कर दिया और नन्दलाल को गुरू जी के पास भेजा कि जाकर प्रार्थना करे कि गुरू जी उसके लिये अरदास करें कि उसके पिता के पश्चात गद्दी उसे मिले [तवाः खः]। इसके बाद कुछ समय शान्ति से व्यतीत हुआ। आनन्दपुर में जीवनदान के अनेकों कौतुक हुये। बानगी मात्र आगामी प्रसंग 'मोहिना-सोहिना' है।

